अंक-14, 2017

मानव अधिकार : नई दिशाएं

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, भारत

दो शब्द
न्यायमूर्ति श्री एच. एल. दत्तू
अध्यक्ष, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

आमुख
श्री शरद चन्द्र सिन्हा, सदस्य, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

प्रस्तावना
श्री अम्बुज शर्मा, महासचिव, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

सम्पादकीय
डॉ. रणजीत सिंह, संयुक्त सचिव, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

आलेख
- जनतांत्रिक पुलिस व्यवस्था और मानवाधिकार –शैलेन्द्र कुमार अग्निहोत्री
- लोकतंत्र, पुलिस और मानव अधिकार – गीता साताप्पा देवेकर
- लोकतांत्रिक मूल्यों के आइने में भारतीय पुलिस –छाया शर्मा
- संवेदनशील, जवाबदेह एवं नागरिकोन्मुखी पुलिस –जालम सिंह
- पाक-विस्थापितों के मानवाधिकार –नेमीचन्द
- विकास और विस्थापन की प्रक्रिया – ममता कुमारी
- भारतीय किसानों के समक्ष चुनौतियां –शीलेन्द्र कुमार
- किसान आत्महत्या और सामाजिक परिप्रेक्ष्य – शंभू जोशी
- आदिवासी किसान : भुखमरी बनाम आत्महत्या – शमीम मोदी
- किसान आत्महत्या : मानवाधिकार को चुनौती –सुदर्शन वर्मा एवं नितेश कुमार चतुर्वेदी
- किसानों की आत्महत्या : एक विश्लेषण – एस.एम. झरवाल
- जीवन अस्तित्व और कृषक आत्महत्या –अमित कुमार विश्वास
- राजनीति के शिकार भारतीय किसान – दिनकर कुमार
- किसानों की आत्महत्या तथा जीने का अधिकार –विवेक किशोर
- असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं के अधिकार –राकेश कुमार सिंह
- असंगठित क्षेत्र, कामगार तथा उनके अधिकार –पंकज कुमार
- महिला कामगार और मानव अधिकार –आकांक्षा
- महिला सशक्तीकरण और शिक्षा –संजुला थानवी
- स्त्री शिक्षा की चुनौतियां –अनुराग मोदी
- आधी आबादी की शिक्षा एवं चुनौतियां –ज्ञानवती धाकड
- स्त्री-शिक्षा, मुक्ति और मानवाधिकार –सरोज कुमार वर्मा
- लोक कल्याण एवं मानव अधिकार –पुनीत कुमार, मंजुलता गर्ग
- भारतीय संविधान, मानव अधिकार एवं लोक कल्याण –कंचन माला
- नागर समाज की संकल्पना तथा कार्यक्षेत्र –डिम्पल कुमारी
- शिक्षा का अधिकार : एक अध्ययन –जोस कलापुरा एवं आशुतोष कुमार विशाल
- मानवीय अधिकारों का नया पहरुआ : सोशल मीडिया –प्रतिभा
- घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण –लालाराम जाट एवं अनिला
- भारतीय चिकित्सा व्यवस्था : एक विश्लेषण –रजनी गोसांई
- प्रत्यक्ष नकद हस्तांतरण और कृषक –अश्विनी कुमार
- गोरखपुर के बहाने –सरोज जेठू

कहानी
- दबी-दबी लहरें –मधु कांकरिया
- मृगतृष्णा –रीतामणि वैश्य

कविता
- बंत सिंह –कर्मानन्द आर्य
- अध्यारोहण है यह –प्रांजल धर
- लालसा –मनोज कुमार झा
- एक सभ्यता ये भी –उपांशु
- कचोटता है कुछ –अंचित
- निर्वासन (अनूदित कविता) –अंचित
- सड़क के भिखारी और भद्र लोग –अनन्त मिश्र
- दाना मांझी –विश्वनाथप्रसाद तिवारी
- अब ना चुप रह पाऊंगी –लक्ष्मी जायसवाल अग्रवाल

अनूदित खण्ड
- स्वास्थ्य के अधिकार की चुनौतियां: न्यायालयी एवं वैश्विक परिवेश –एलिसिया एली यामीन
- बहुसंस्कृतिवाद और महिलाओं के अधिकार –रुचिरा गोस्वामी

साक्षात्कार
- राष्ट्र निर्माण हेतु बुनियादी शिक्षा व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता –रुकमणि बनर्जी

समीक्षा
- हर आयाम पर पैनी नज़र –आकांक्षा पारे काशिव
- सुशासन की सैद्धान्तिकी –ओम निश्चल

मानव अधिकारों का सार्वभौमिक घोषणा–पत्र

अनुच्छेद 1. सभी मनुष्यों को गौरव और अधिकारों के मामले में जन्मजात स्वतन्त्रता और समानता प्राप्त है। उन्हें बुद्धि और अन्तरात्मा की देन प्राप्त है और परस्पर उन्हें भाईचारे के भाव से बर्ताव करना चाहिए।

अनुच्छेद 2. सभी को इस घोषणा में सन्निहित सभी अधिकारों और आज़ादियों को प्राप्त करने का हक़ है और इस मामले में जाति, वर्ण, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीति या अन्य विचार–प्रणाली, किसी देश या समाज विशेष में जन्म, सम्पत्ति या किसी प्रकार की अन्य मर्यादा आदि के कारण भेदभाव का विचार न किया जाएगा।

इसके अतिरिक्त, चाहे कोई देश या प्रदेश स्वतन्त्र हो, संरक्षित हो या स्त्रशासन रहित हो या परिमित प्रभुसत्ता वाला हो, उस देश या प्रदेश की राजनैतिक, क्षेत्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के आधार पर वहां के निवासियों के प्रति कोई फ़र्क न रखा जाएगा।

अनुच्छेद 3. प्रत्येक व्यक्ति को जीवन, स्वाधीनता और वैयक्तिक सुरक्षा का अधिकार है।

अनुच्छेद 4. कोई भी गुलामी या दासता की हालत में न रखा जाएगा, गुलामी–प्रथा और गुलामों का व्यापार अपने सभी रूपों में निषिद्ध होगा।

अनुच्छेद 5. किसी को भी शारीरिक यातना न दी जाएगी और न किसी के भी प्रति निर्दय, अमानुषिक या अपमानजनक व्यवहार होगा।

अनुच्छेद 6. हर किसी को हर जगह कानून की निगाह में व्यक्ति के रूप में स्वीकृति–प्राप्ति का अधिकार है।

अनुच्छेद 7. कानून की निगाह में सभी समान हैं और सभी बिना भेदभाव के समान कानूनी सुरक्षा के अधिकारी हैं। यदि इस घोषणा का अतिक्रमण करके कोई भी भेद–भाव किया जाया उस प्रकार के भेद–भाव को किसी प्रकार से उकसाया जाया, तो उसके विरुद्ध समान संरक्षण का अधिकार सभी को प्राप्त है।

अनुच्छेद 8. सभी को संविधान या कानून द्वारा प्राप्त बुनियादी अधिकारों का अतिक्रमण करने वाले कार्यों के विरुद्ध समुचित राष्ट्रीय अदालतों की कारगर सहायता पाने का हक है।

अनुच्छेद 9. किसी को भी मनमाने ढंग से गिरफ्तार, नजरबन्द या देश–निष्कासित न किया जाएगा।

अनुच्छेद 10. सभी को पूर्णतः समान रूप से हक है कि उनके अधिकारों और कर्तव्यों के निश्चय करने के मामले में और उन पर आरोपित फ़ौजदारी के किसी मामले में उनकी सुनवाई न्यायोचित और सार्वजनिक रूप से निरपेक्ष एवं निष्पक्ष अदालत द्वारा हो।

अनुच्छेद 11.

(1) प्रत्येक व्यक्ति, जिस पर दण्डनीय अपराध का आरोप किया गया हो, तब तक निरपराध माना जाएगा, जब तक उसे ऐसी खुली अदालत में, जहां उसे अपनी सफाई की सभी आवश्यक सुविधाएं प्राप्त हों, कानून के अनुसार अपराधी न सिद्ध कर दिया जाय।

(2) कोई भी व्यक्ति किसी भी ऐसे कृत या अकृत (अपराध) के कारण उस दण्डनीय अपराध का अपराधी न माना जाएगा, जिसे तत्कालीन प्रचलित राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार दण्डनीय अपराध न माना जाए और न उससे अधिक भारी दण्ड दिया जा सकेगा, जो उस समय दिया जाता जिस समय वह दण्डनीय अपराध किया गया था।

अनुच्छेद 12. किसी व्यक्ति की एकान्तता, परिवार, घर या पत्रव्यवहार के प्रति कोई मनमाना हस्तक्षेप न किया जाएगा, न किसी के सम्मान और ख्याति पर कोई आक्षेप हो सकेगा। ऐसे हस्तक्षेप या आक्षेपों के विरुद्ध प्रत्येक को कानूनी रक्षा का अधिकार प्राप्त है।

अनुच्छेद 13.

(1) प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक देश की सीमाओं के अन्दर स्वतन्त्रतापूर्वक आने, जाने और बसने का अधिकार है।

(2) प्रत्येक व्यक्ति को अपने या पराये किसी भी देश को छोड़ने और अपने देश वापस आने का अधिकार है।

अनुच्छेद 14.

(1) प्रत्येक व्यक्ति को सताये जाने पर दूसरे देशों में शरण लेने और रहने का अधिकार है।

(2) इस अधिकार का लाभ ऐसे मामलों में नहीं मिलेगा जो वास्तव में गैर–राजनीतिक अपराधों से सम्बन्धित हैं, या जो संयुक्त राष्ट्रों के उद्देश्यों और सिद्धान्तों के विरुद्ध कार्य हैं।

अनुच्छेद 15.

(1) प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी राष्ट्र–विशेष को नागरिकता का अधिकार है।

(2) किसी को भी मनमाने ढंग से अपने राष्ट्र की नागरिकता से वंचित न किया जाएगा या नागरिकता का परिवर्तन करने से मना न किया जाएगा।

अनुच्छेद 16.

(1) बालिग स्त्री–पुरुषों को बिना किसी जाति, राष्ट्रीयता या धर्म की रुकावटों के आपस में विवाह करने और परिवार को स्थापन करने का अधिकार है। उन्हें विवाह के विषय में वैवाहिक जीवन में तथा विवाह विच्छेद के बारे में समान अधिकार हैं।

(2) विवाह का इरादा रखने वाले स्त्री–पुरुषों की पूर्ण और स्वतन्त्र सहमित पर ही विवाह हो सकेगा।

(3) परिवार समाज की स्वाभाविक और बुनियादी सामूहिक इकाई है और उसे समाज तथा राज्य द्वारा संरक्षण पाने का अधिकार है।

अनुच्छेद 17.

(1) प्रत्येक व्यक्ति को अकेले और दूसरों के साथ मिलकर सम्मति रखने का अधिकार है।

(2) किसी को भी मनमाने ढंग से अपनी सम्मति से वंचित नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद 18. प्रत्येक व्यक्ति को विचार, अन्तरात्मा और धर्म की आजादी का अधिकार है। इस अधिकार के अन्तर्गत अपना धर्म या विश्वास बदलने और अकेले या दूसरों के साथ मिलकर तथा सार्वजनिक रूप में अथवा निजी तोर पर अपने धर्म या विश्वास को शिक्षा, क्रिया, उपासना, तथा व्यवहार के द्वारा प्रकट करने की स्वतन्त्रता है।

अनुच्छेद 19. प्रत्येक व्यक्ति को विचार और उसकी अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का अधिकार है। इसके अन्तर्गत बिना हस्तक्षेप के कोई राय रखना और किसी भी माध्यम के जरिए से तथा सीमाओं की परवाह न कर के किसी की सूचना और धारणा का अन्वेषण, ग्रहण तथा प्रदान सम्मिलित है।

jk"Vªh; ekuo vf/kdkj vk;ksx] Hkkjr

v/;{k

न्यायमूर्ति श्री एच. एल. दत्तू

lnL;

न्यायमूर्ति श्री पिनाकी चन्द्र घोष

न्यायमूर्ति श्री डी. मुरुगेशन

श्री शरद चंद्र सिन्हा

श्रीमती ज्योतिका कालरा

egklfpo

श्री अम्बुज शर्मा, आई.ए.एस.

l;Dr lfpo

डॉ. रणजीत सिंह

प्रकाशक :

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
मानव अधिकार भवन,
ब्लॉक–सी, जी. पी. ओ. कॉम्प्लैक्स,
आई. एन. ए., नई दिल्ली – 110023

© 2017 jk"Vh; ekuo vf/kdkj vk;kx] Hkkjr

vLohdj.k % प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के निजी विचार हैं। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, सलाहकार मण्डल या संपादक मण्डल का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

प्राप्ति स्थान :

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
मानव अधिकार भवन,
ब्लॉक–सी, जी. पी. ओ. कॉम्प्लैक्स,
आई. एन. ए., नई दिल्ली – 110023
वेबसाईट : www.nhrc.nic.in
ई–मेल : covdnhrc@nic.in

मूल्य : निःशुल्क

मुद्रण एवं डिजाईनिंग :

मित्तल इंटरप्राईजेज़
2076, गोकुलशाह स्ट्रीट,
बाजार सीताराम, दिल्ली–110006
फोन : 09811340726, 09811756181

ekuo vf/kdkj % ubl fn'kk,a
jk"Vªh; ekuo vf/kdkj vk;ksx] Hkkjr

vad& 14 2017

सलाहकार मण्डल

Jh 'kjn pUnz flUgk
सदस्य, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

Jh vEcqt 'kekZ
महासचिव,
राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

Mk- j.ktha flag
संयुक्त सचिव,
राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

Mk lajkt dqekj 'kqDy
सहायक निदेशक,
राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

Áks- 'kEHkq ukFk
पूर्व निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान
आगरा

Áks- v#.k'k ^uhju*
वरिष्ठ साहित्यकार एवं लेखक

Áks- v#.k dey
प्रसिद्ध कवि एवं लेखक

Jh fodkl ukjk;.k jk;
भारतीय पुलिस सेवा (सेवानिवृत्त)

संपादक
Mk- j.ktha flag

सह संपादक
Mk lajkt dqekj 'kqDy

संपादन सहयोग
Jherh vatfy ldykuh
Jh vfer dqekj lko

rduhdh lg;kx ,o dEI;Vjhdj.k

श्री जितेन्द्र सिंह

ekuo vf/kdkj % ubl fn'kk,a
राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

vad& 14 2017

vuØe

nks 'kCn

न्यायमूर्ति श्री एच. एल. दत्तू
अध्यक्ष, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

vkeq[k

श्री शरद चन्द्र सिन्हा, सदस्य, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

çLrkouk

श्री अम्बुज शर्मा, महासचिव, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

lEikndh;

डॉ. रणजीत सिंह, संयुक्त सचिव, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

vkys[k

❖ turkaf=d iqfyl O;oLFkk vkSj ekuokf/kdkj 3&13
शैलेन्द्र कुमार अग्निहोत्री

❖ yksdra=] iqfyl vkSj ekuo vf/kdkj 15&20
गीता साताप्पा देवेकर

❖ yksdrkaf=d ewY;ksa ds vkbus esa Hkkjrh; iqfyl 21&25
छाया शर्मा

❖ lqonu'khy] tokcnsg ,oa ukxfjdksUeq[kh iqfyl 27&36
जालम सिंह

❖ ikd&foLFkkfirksa ds ekuokf/kdkj 37&48
नेमीचन्द

❖ fodkl vkSj foLFkkiu dh çfØ;k 49&56
ममता कुमारी

❖ Hkkjrh; fdlkuk d le{k pqukfr;k — 57&68
शीलेन्द्र कुमार

❖ fdlku vkRegR;k vkj lkekftd ifjç{; — 69&82
शंभू जोशी

❖ vkfnoklh fdlku % Hkq[kejh cuke vkRegR;k — 83&88
शमीम मोदी

❖ fdlku vkRegR;k % ekuokf/kdkj dk pqukrh — 89&98
सुदर्शन वर्मा एवं नितेश कुमार चतुर्वेदी

❖ fdlkuk dh vkRegR;k % ,d fo'y"k.k — 99&107
एस.एम. झरवाल

❖ thou vfLrRo vkj Ñ"kd vkRegR;k — 109&118
अमित कुमार विश्वास

❖ jktuhfr d f'kdkj Hkkjrh; fdlku — 119&122
दिनकर कुमार

❖ fdlkuk dh vkRegR;k rFkk thu dk vf/kdkj — 123&128
विवेक किशोर

❖ vlxfBr {k= e dk;jr efgykvk d vf/kdkj — 129&141
राकेश कुमार सिंह

❖ vlxfBr {k=] dkexkj rFkk mud vf/kdkj — 143&155
पंकज कुमार

❖ efgyk dkexkj vkj ekuo vf/kdkj — 157&164
आकांक्षा

❖ efgyk l'kDrhdj.k vkj f'k{kk — 165&178
संजुला थानवी

❖ L=h f'k{kk dh pqukfr;k — 179&184
अनुराग मोदी

❖ vk/kh vkcknh dh f'k{kk ,o pqukfr;k — 185&198
ज्ञानवती धाकड

❖ L=h&f'k{kk] efDr vkj ekuokf/kdkj — 199&209
सरोज कुमार वर्मा

- ykd dY;k.k ,o ekuo vf/kdkj 211&224
  पुनीत कुमार, मंजुलता गर्ग
- Hkkjrh; lafo/kku] ekuo vf/kdkj ,o ykd dY;k.k 225&233
  कंचन माला
- ukxj lekt dh ladYiuk rFkk dk;Z{k= 235&245
  डिम्पल कुमारी
- f'k{kk dk vf/kdkj % ,d vè;;u 247&262
  जोस कलापुरा एवं आशुतोष कुमार विशाल
- ekuoh; vf/kdkjksa dk u;k ig#vk % lkekftd ehfM;k 263&267
  प्रतिभा
- ?kjsyw fgalk ls efgykvksa dk laj{k.k 269&282
  लालाराम जाट एवं अनिला
- Hkkjrh; fpfdRlk O;oLFkk % ,d fo'ys"k.k 283&290
  रजनी गोसांई
- iR;{k udn gLrkarj.k vkSj Ñ"kd 291&294
  अश्विनी कुमार
- xkj[kiqj ds cgkus 295&303
  सरोज जेठू

dgkuh

- nch&nch ygjsa 307&315
  मधु कांकरिया
- e`xr".kk 317&327
  रीतामणि वैश्य

dfork

- cqr fliqg 331&332
  कर्मानन्द आर्य
- v/;kjksg.k gS ;g 333&335
  प्रांजल धर

❖ ykylk — 336
मनोज कुमार झा

❖ ,d lH;rk ;s Hkh — 337
उपांशु

❖ dpkVrk gS dqN — 338
अंचित

❖ fuokZlu ¼vuwfnr dfork½ — 339
अंचित

❖ lM+d ds fHk[kkjh vkSj Hkkns ykSx — 340&342
अनन्त मिश्र

❖ nkuk ek>h — 343&344
विश्वनाथप्रसाद तिवारी

❖ vc uk pqi jg ikÅaxh — 345&346
लक्ष्मी जायसवाल अग्रवाल

vuqfnr [k.M

❖ LokLF; ds vf/kdkj dh pqukSfr;k¡
U;k;ky;h ,oa oSf'od ifjos'k — 349&383
एलिसिया एली यामीन

❖ cgqlkaLd`frokn vkSj efgykvksa ds vf/kdkj — 385&396
रुचिरा गोस्वामी

lk{kkRdkj

❖ jk"Vª fuekZ.k gsrq cfu;knh f'k{kk O;oLFkk esa
vkewypwy ifjorZu dh vko';drk — 399&402
डॉ. रुकमणि बनर्जी

leh{kk

❖ gj vk;ke ij iSuh utj — 405&408
आकांक्षा पारे काशिव

❖ lq'kklu dh lS)kfUrdh — 409&414
ओम निश्चल

nk 'kCn

ekuo vf/kdkj % नई दिशाएँ के चौदहवें अंक के प्रकाशन के अवसर पर मैं, चिंतकों, साहित्यकारों, लेखकों, कहानीकारों, कवियों तथा समीक्षकों का आयोग की ओर से हार्दिक अभिवादन करता हूँ। मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आयोग के इस शोधपरक, महत्वपूर्ण एवं सूचनाप्रद प्रकाशन के द्वारा हम मानव अधिकारों से संबंधित समसामयिक एवं महत्त्वपूर्ण विषयों पर आम जनमानस में जागरुकता तथा रूचि पैदा करने में सक्षम हो सकेंगे।

आयोग द्वारा प्रकाशित यह पत्रिका पिछले एक दशक से अकादमिक क्षेत्र से जुड़े बुद्धिजीवियों, शोद्यार्थियों तथा विद्यार्थियों के मध्य एक सशक्त, प्रभावी एवं लोकप्रिय माध्यम बन कर उभरी है। साथ ही, इसने मानव अधिकारों की जमीनी हकीकत को जाँचने व परखने का एक सशक्त एवं प्रभावी मंच भी प्रदान किया है।

वर्तमान अंक में मुख्यतः लोकतांत्रिक पुलिसिंग और मानव अधिकार, विस्थापन, पलायन एवं शरण; मानव अधिकार तथा किसानों की आत्महत्या, असंगठित क्षेत्रों के कामगार तथा उनके अधिकार, स्त्री शिक्षा की वर्तमान दशा एवं दिशा, लोक कल्याण और मानव अधिकार, मानव अधिकारों के संरक्षण एवं संवर्द्धन में नागर समाज (सिविल सोसाइटी) की भूमिका पर केन्द्रित आलेखों को शामिल किया गया है साथ ही, मानव अधिकारों से जुड़े विभिन्न ज्वलंत मुद्दों पर भी विचार किया गया है।

हम आशा करते हैं कि पत्रिका का वर्तमान अंक उक्त सामाजिक समस्याओं पर गहराई से प्रकाश डालने तथा उनके निवारण हेतु जनमानस को प्रेरित करने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकेगा।

इस अंक में जिन सुधी लेखकों, विद्वानों, बुद्धिजीवियों, समीक्षकों, कहानीकारों तथा अकादमिक क्षेत्र से जुड़े महानुभावों ने अपना योगदान दिया है उन सभी को मैं आयोग की ओर से हार्दिक धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि भविष्य में भी हमें उनका इसी प्रकार निरंतर सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

सशक्त भारत एवं बेहतर समाज के निर्माण में युवाओं की भूमिका को नज़रंदाज नहीं किया जा सकता है अतः मैं यह अंक देश की युवा पीढ़ी को समर्पित करता हूँ–

ykdk% leLrk% lf[ku% HkoUrqA

नई दिल्ली
10 दिसम्बर, 2017

¼U;k;ewfrZ ,p- ,y- nÙkq½

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

vke|[k

सभ्यता और संस्कृति की चिंतन–धारा में मानव की अस्मिता, मानवीय गरिमा की सर्वोच्चता, मानवीय प्रतिष्ठा की अपरिहार्यता और मानव के सर्वांगीण विकास का भाव प्रकट हुआ है। इस सर्वव्यापी और सार्वभौमिक अवधारणा के भीतर मानव अधिकारों के विभिन्न संदर्भ और आयाम छिपे हुए हैं। वास्तव में, भारतीय संस्कृति में मानव अधिकारों की अवधारणा का बीज सदियों से मौजूद था। प्राचीन भारत में 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः (सभी सुखी हों, सभी निरोगी हों) का सूत्र अत्यन्त प्रसिद्ध था। जिसकी व्यापक एवं सारगर्भित अवधारणा न केवल अशोक के शिलालेखों, मध्यकालीन संतों की वाणियों तथा बाइबिल और कुरान में बल्कि उपनिषदों की अमृत वाणी में भी प्रवाहित होती दिखाई देती है। ऐसे वैचारिक अनुभव से समृद्ध होने के कारण हमारे संविधान निर्माताओं ने मानव अधिकारों की अनिवार्यता को न केवल भली–भांति समझा अपितु उन्होंने मौलिक अधिकारों और राज्य के नीति–निर्देशक सिद्धान्तों के अंतर्गत मानव–जीवन से संबधित लगभग सभी आयामों के बारे में प्रावधान किए तथा मानव अधिकारों की समसामयिक अवधारणा से उनका समन्वय भी स्थापित किया।

यदि विशेष रुप से विचार किया जाए तो हमारे देश में मानव अधिकारों को स्थापित करने और उनकी सुरक्षा का कार्य दिन–प्रतिदिन कठिन होता जा रहा है। विशेष रुप से संचार क्रांन्ति के कारण साइबर अपराध और षड़यंत्र बढ़ रहे हैं। आज भी हमारे देश में अशिक्षा, गरीबी, अंधविश्वास, छुआछूत, भेदभाव को मिटाने में प्रभावी व्यवस्था के अभाव के कारण मानव अधिकारों के हनन की घटनाएं लगातार जारी हैं। ऐसे में आयोग का निरन्तर प्रयास रहता है कि ऐसी घटनाओं को स्वतः संज्ञान में लेकर देश की न्यायिक व्यवस्था के अनुरुप तत्काल कार्रवाई करने हेतु सरकारों को प्रेरित किया जाए। आयोग के सतर्क हस्तक्षेप के फलस्वरुप अनेक ऐसे मामले जो किन्हीं कारणों से उपेक्षित थे या दबा दिए गए थे, सामने आए और उन पर पुनर्विचार किया जा सका।

आयोग के प्रयासों के फलस्वरुप देश के सामाजिक तथा प्रशासनिक क्षेत्रों में अनेक नई पहल हुई हैं और उनके सकारात्मक परिणाम भी दिखने लगे हैं। फिर भी अनेक चुनौतियां बनी हुई हैं और इस दिशा में हमें अभी काफी लम्बा फासला तय करना है।

देश में अभी भी पुलिस को जनता के मित्र व सहायक के रुप में नहीं देखा जाता तथा पुलिस के द्वारा किए जाने वाले मानव अधिकारों के उल्लंघन समय–2 पर सामने

आते रहते हैं। देश की न्याय व्यवस्था अभी भी गरीबों, दलितों एवं अल्प संख्यकों की पहुंच से बाहर है। देश की जेलों में इन वर्गों का प्रतिनिधित्व देश की जनसंख्या के अनुपात से कहीं अधिक है। देश में अभी–भी अशिक्षा है एवं जो शिक्षा प्रदान की जा रही है, वह अत्यंत निम्न स्तर की है। देश में अभी भी भूख है और देश की स्वास्थ्य व्यवस्था चरमरा रही है। बेरोजगारी की समस्या का अब तक कोई हल नहीं निकाला जा सका है। हाल में हुई अनेक घटनाओं ने देश में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर भी प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। देश में महिलाएं अभी भी उत्पीड़न का शिकार हैं महिलाओं एवं बच्चों की मानव तस्करी सभी प्रयत्नों के बावजूद लगातार जारी है। इसी प्रकार आयोग के निरंतर प्रयासों के बावजूद देश के अनेक भागों में गरीब अभी भी बंधुआ मजदूर के रुप में कार्य कर रहे हैं।

आयोग के इस वार्षिक प्रकाशन का उद्देश्य देश की इन गंभीर समस्याओं को उजागर करना है तथा उन पर चिंतन एवं उनके हल खोजने और सुझाने का प्रयास करना है।

यह अत्यंत गौरव की बात है कि आयोग के आग्रह पर पत्रिका के वर्तमान अंक में देश के शीर्षस्थ विद्वानों, रचनाकारों तथा गैर सरकारी संगठनों के विशिष्ट प्रतिनिधियों द्वारा मानव अधिकारों से जुड़े अनेकों समसामयिक एवं ज्वलंत विषयों पर अपने आलेख प्रस्तुत किए गए हैं। हम, उन सभी लेखकों, विद्वानों के प्रति अपना आभार व्यक्त करते हैं।

मुझे आशा है कि यह पत्रिका समाज में मानव अधिकारों के बारे में चल रही सोच–विचार की परंपरा को और अधिक सुदृढ़ बनाएगी तथा साथ ही देश को बेहतर तथा मानव अधिकारों के प्रति और अधिक सजग तथा सूक्ष्मग्राही बनाने में सहायक होगी।

नई दिल्ली
10 दिसम्बर, 2017

¼'kjn pUæ flUgk½

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

ÁLrkouk

भारतीय संस्कृति और सभ्यता संपूर्ण संसार में न केवल सबसे पुरानी है अपितु इसमें विभिन्न विचारधाराओं, पंथों और मतों का अद्‌भुत संगम भी है। विविधता में एकता हमारे देश की अद्वितीय पहचान है, जिसका आधार अहिंसा, अस्तेय तथा परस्पर साझेदारी व हिस्सेदारी है। हमारी संस्कृति की विरासत में केवल मानव मात्र से ही नहीं अपितु संपूर्ण जीव–जगत के साथ–साथ प्रकृति से भी निकटता स्थापित करने की बात बार–बार दोहरायी गई है। हमारी हर सुबह समष्टि के कल्याण के साथ शुरू होती है। सदियों से हमारी सांस्कृतिक विरासत में संजोयी आदर्श समाज की यह संकल्पना निरंतर एक नए संदेश के साथ हमारे समक्ष विराजमान रहती है।

आज 21वीं सदी में भी नस्ल भेद, सामाजिक असमानता, छुआछूत, धार्मिक अंध–विश्वास तथा इज्ज़त के लिए हत्या, खाप पंचायत तथा महिला सशक्तिकरण आदि ऐसे कुछ ज्वलंत प्रश्न हैं जो आज भी मानव अधिकार के लिए चुनौती बने हुए हैं। जब तक हम इन समसामयिक मुद्‌दों पर विजय नहीं पा लेंगे तब तक सही अर्थों में हमारे राष्ट्र का संपूर्ण रूप से विकास असंभव है।

किसी भी देश व राष्ट्र की स्वतंत्रता एवं उसकी नैतिक व्यवस्था को आंकने के कुछ मुख्य आधार होते हैं जैसे सम्मान सहित गरिमापूर्ण जीवन तथा आज़ादी एवं समानता। इनके अभाव में मानव अधिकारों की संपूर्ण प्राप्ति असंभव है। आज़ादी के लगभग सात दशक बाद भी हमारे समाज में भेदभाव, अंध–विश्वास एवं अज्ञानता का बोलबाला है। इन्हीं अज्ञानताओं के चलते हम अपनी लोकतांत्रिक व्यवस्था में समुचित रूप से सबकी भागेदारी सुनिश्चित नहीं कर पा रहे हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि देश के हर कोने में मानव अधिकारों के हनन से संबंधित घटनाएं निरंतर जारी हैं जो मनुष्यता को कलंकित करने के साथ–साथ हमारी लोकतांत्रिक प्रणाली को भी कमज़ोर करती हैं।

आयोग सदैव से ही मानव अधिकारों के सरंक्षण व संवर्द्धन के लिए न केवल प्रयासरत है अपितु अनेक नीतिगत एवं संवेदनशील मुद्‌दों में सार्थक एवं सर्तक हस्तक्षेप कर सरकार का ध्यान भी उनकी ओर आकर्षित करता रहा है। आयोग की निष्ठा का एक प्रमाण यह जर्नल है जिसमें जहां एक ओर भारतीय परंपरागत विचारों को एक

साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है वहीं दूसरी ओर मानव अधिकारों से संबंधित समसामयिक, संवेदनशील एवं आज के लिए प्रासंगिक विषयों पर वैचारिक परिधि को आगे बढ़ाने की चेष्टा भी की गई है। ऐसे महत्वपूर्ण, उपयोगी एवं सूचनाप्रद ग्रंथ से हमें विशाल भारतीय समाज में मानव अधिकारों का परचम लहराने में निश्चित रूप से सहायता मिलेगी।

पिछले अंकों में प्रस्तुत की गई सामग्री से अलग हटकर इस बार के अंक में देश के लिए सबसे ज्वलंत समस्याएं जैसे विस्थापन, पलायन एवं शरण; किसानों की आत्महत्या, असंगठित क्षेत्रों के कामगार, स्त्री शिक्षा आदि को केंद्र में रखकर लेख प्रकाशित किए जा रहे हैं जो न केवल वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिक हैं अपितु वे भविष्य के लिए 'मील का पत्थर' भी साबित हो सकते हैं। मुझे विश्वास है कि इससे न केवल स्वस्थ एवं वैचारिक परंपरा का उदय होगा अपितु मानव अधिकारों पर केंद्रित एक नई सुबह के आगाज़ की संकल्पना की आधारशिला भी रखी जा सकेगी। इस अवसर पर मैं इस अंक में योगदान करने वाले सभी विद्वान लेखकों को अपनी ओर से विशेष बधाई देता हूँ।

अम्बुज शर्मा

नई दिल्ली
10 दिसम्बर, 2017

¼vEc|t 'kek½

l ikndh;

"मानव अधिकार : नई दिशाएं" का चौदहवां अंक पाठकों को समर्पित करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। विगत वर्षों में मानव अधिकारों के प्रति अकादमिक स्तर पर जागरूकता पैदा करने में पत्रिका की अहम् भूमिका रही है। साथ ही, इसके माध्यम से आम नागरिकों में मानव अधिकारों की एक मुकम्मल समझ बनी है। भारत में मानव अधिकारों का हनन आज भी बदस्तूर जारी है जिसमें पुलिस और लोक सेवकों की लापरवाही दिखाई पड़ती है। आजादी के सात दशक बाद भी, आम नागरिक अपने अधिकारों के प्रति उतना जागरूक नहीं हो पाया जितना कि उसे होना चाहिए।

इस पत्रिका के माध्यम से मानव अधिकारों के विविध आयामों पर अकादमिक तथा लोक सेवा से जुड़े विद्वानों द्वारा बेबाक विचार प्रस्तुत किये गऐ हैं। एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में पुलिस की क्या भूमिका होनी चाहिए और वह मानव अधिकारों के हनन के बजाय उसका संरक्षण कैसे करें, यह एक बड़ा यक्ष प्रश्न है। इस अंक में पुलिस और मानव अधिकार के अंतर्सबंधों को रेखांकित करते हुए, अनेक उदाहरणों द्वारा सुस्पष्ट किया गया है।

हमारे देश में किसानों द्वारा आत्महत्या एक बहुत बड़ी चिन्ता का सबब रहा है। आयोग ने इस समस्या की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया और यह अनुभव किया कि किसानों द्वारा की जाने वाली आत्महत्या के कारणों की गहराई से पड़ताल की जाए। इसी उद्देश्य से इस विषय पर पत्रिका के वर्तमान अंक में बुद्धिजीवियों और लेखकों के लेख प्रकाशित किए गए हैं।

पत्रिका में असंगठित क्षेत्र के कामगारों तथा उनके अधिकारों को लेकर महत्त्वपूर्ण लेख भी शामिल हैं जो उनकी जीवन स्थितियों को हमारे समक्ष विडंबनापूर्ण ढंग से रखते हुए उनके शोषण की कथा को मार्मिकता से विश्लेषित करता है। यहां महिलाकर्मियों की स्थिति और भी बुरी है। उनके अधिकारों की रक्षा के लिए कई क़ानून बने हैं, लेकिन उनका अनुपालन सुनिश्चित करने की आवश्यकता है। इनके लिए अभी बहुत कुछ करने की ज़रूरत है जिस पर ये आलेख रोशनी डालते हैं।

स्त्री शिक्षा भी एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा है जो उनके अधिकारों को सुनिश्चित करने में अहम् भूमिका निभा सकता है। शिक्षा, सर्वांगीण विकास का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है। हमारे पूर्वजों ने स्त्री शिक्षा के लिए संघर्ष किया जिसके लिए उन्हें समाज से प्रतिरोध

का सामना भी करना पड़ा। आज सर्व शिक्षा अभियान द्वारा स्त्री शिक्षा को सुनिश्चित किया जा रहा है। 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' जैसे अभियान इसमें सहायक हैं। फिर भी, शिक्षा व्यवस्था में आमूल–चूल परिवर्तन की ज़रूरत है। पत्रिका में शामिल आलेख इस आवश्यकता को प्रमाणिकता के साथ हमारे सामने रखते हैं।

मानव अधिकारों के संरक्षण से किस प्रकार लोक कल्याण संभव है, इसे भी गहन विश्लेषण के साथ रेखांकित किया गया है। हमारे प्राचीन वाङ्मय में लोक कल्याण को एक महत् मूल्य माना गया है और लोक कल्याण हेतु स्वयं को बलिदान कर देने की बात कही गई है। किसी भी सभ्य समाज की जिम्मेदारी होती है कि वह समाज में मानवीय मूल्यों की प्रति स्थापित करे तथा किसी भी कमज़ोर या दुर्बल का शोषण न होने दें। सभी को जीवन जीने का उचित परिवेश मिल सके।

पत्रिका के हर अंक में कथा, कविता और आलेखों के माध्यम से हम सृजनात्मक साहित्य को बढ़ावा देते हैं ताकि आम जनमानस के बीच मानव अधिकारों के अंतर्निहित भावों की समझ विकसित हो सके तथा हम एक ऐसे समाज का निर्माण कर सकें, जहां किसी तरह की कुरीति और विषमता के लिए कोई स्थान न हो तथा 'बहुजनहिताय एवं बहुजनसुखाय' की परिकल्पना साकार हो सके।

हमने इस अंक से अनुदित खण्ड नाम से एक नई शुरूआत की है जिसमें महत्वपूर्ण अंग्रेजी जर्नलों में प्रकाशित मानव अधिकारों से संबंधित महत्त्वपूर्ण आलेखों के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित कर रहे हैं। साथ ही, पूर्व के क्रम को जारी रखते हुए, मानव अधिकारों से संबंधित महत्त्वपूर्ण पुस्तकों की समीक्षाएं तथा साक्षात्कार भी प्रकाशित किये जा रहे हैं।

पत्रिका नए कलेवर के साथ आपके समक्ष प्रस्तुत है। हमें अपने पाठकों की प्रतिक्रियाओं की उत्सुकता से प्रतीक्षा रहती है ताकि हम प्रकाशित सामग्री के बारे में उनकी सम्मति से अवगत हो सकें और उनके सुझावों के अनुरूप उचित परिवर्तन भी कर सकें।

रणजीत सिंह

¼j.kthr flg½

नई दिल्ली
10 दिसम्बर, 2017

vkys[k

chrs dy dk vQlksl vkSj vkus okys dy dh fpUrk %
;s ,sls nks pksj gSa tks gekjs orZeku ;k vkt dh [kqclwjrh dks pqjk ys
tkrs gSa

– अज्ञात

turkf=d ifyl 0;oLFkk vkj ekuokfèkdkj

'kyUn dekj vfXugk=h•

पुलिस व्यवस्था के विषय पर विचार करने पर दो धारा दिखायी देती हैं। पहली धारा के अंतर्गत पुलिस तंत्र में स्वायत्तता पर ज़ोर है। स्वायत्तता का मतलब किसी भी संस्था को कार्य करने की स्वतंत्रता अधिक होती है। दूसरे शब्दों में वह संस्था अपने आप में कार्य करने को स्वतंत्र होती है। दूसरी धारा प्रजातांत्रिक जवाबदेही के रूप में होती है, क्योंकि प्रजातंत्र मूलरूप से दो आधारों पर कार्य करता है। पहला आधार जवाबदेही का है, जबकि दूसरा आधार क़ानून के राज के सिद्धान्त का पालन है अर्थात् प्रजातंत्र में जवाबदेही क़ानून के राज को ध्यान में रखकर होती है। प्रजातांत्रिक सोच में इन दोनों धाराओं में कोई टकराव नहीं होना चाहिए, किन्तु हमारे देश में दुर्भाग्य से पुलिस के वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा स्वायत्तता पर अधिक ज़ोर दिया जा रहा है जबकि पुलिस व्यवस्था की प्रजातांत्रिक जवाबदेही के विषय में इनके द्वारा गंभीरता से न तो विचार किया जाता है और न ही स्वयं कोई निर्णय लिया जाता है। उल्टा यह देखा गया है कि जिन व्यक्तियों/अफसरों द्वारा क़ानून के राज का उल्लघंन होता है और जिनको अदालत द्वारा दोषी पाया गया। उनके विरुद्ध भी कार्यवाही करने में हिचकिचाहट होती है।

सर्वाधिक गंभीर मसला नज़रबंदी के दौरान मृत्यु के मामले में है इस सम्बन्ध में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कई आदेश/दिशानिर्देश दिए जा चुके हैं किन्तु आज भी स्थानीय थाने के अधिकारियों को या तो उनके बारे में कोई जानकारी ही नहीं है या उनके लिए इन दिशानिर्देशों का कोई मतलब नहीं है। डी. के. बसु के मामले में सर्वोच्च न्यायालय में कुछ दिशानिर्देश दिए थे जो कि मुख्यतया निम्न हैः–

lokPp U;k;ky; }kjk Mh- d- cl d lcèk e fn, x, fun'k

इस प्रकरण में न्यायालय द्वारा निम्न 11 दिशानिर्देश दिए गए :–

1. गिरफ़्तारी करने के लिए एवं पूछताछ के लिए गए, पुलिस कर्मी को अपनी वर्दी में अपनी पहचान लगा हुआ नेम प्लेट/पहचान पत्र रखना आवश्यक है जिससे कि उसकी तथा उसके पद की सही पहचान हो सके। इसी प्रकार उक्त पुलिस कर्मियों की पहचान का विवरण एक रजिस्टर में भी अवश्य अंकित होना चाहिए।

2. गिरफ़्तारी के लिए गए पुलिसकर्मी द्वारा गिरफ़्तारी के समय एक मेमो ऑफ अरेस्ट बनाया जाना आवश्यक है। इस मेमो में एक गवाही ऐसे व्यक्ति की अवश्य होनी चाहिए जो कि गिरफ़्तार होने वाले व्यक्ति के परिवार का हो या कि उसके इलाके

• भारतीय प्रशासनिक सेवा से सेवानिवृत्त वरिष्ठ अधिकारी एव लेखक

का। एक संभ्रात व्यक्ति हो। इसके अतिरिक्त मेमो में गिरफ़्तार होने वाले व्यक्ति के हस्ताक्षर के अलावा गिरफ़्तारी का समय एवं दिनांक अंकित होना चाहिए।

3. गिरफ़्तारी या बन्दी बनाने के लिए पुलिस थाने में लाने या पूछताछ केन्द्र पर या कि लॉक–अप में रखे जाने पर उस व्यक्ति को ये अधिकार प्राप्त हैं कि उसके साथ उसका मित्र या संबंधी या कोई अन्य व्यक्ति हो या उसके कोई जानकार व्यक्ति को इस संबंध में यथाशीघ्र बताया जाना भी आवश्यक है। इस विषय में यह प्रयास करना चाहिए कि गिरफ़्तारी के समय बनाये गए मेमो ऑफ़ अरेस्ट में उस व्यक्ति के भी हस्ताक्षर हों।

4. गिरफ़्तारी का समय और स्थान संबंधित रिश्तेदार या मित्र को बताया जाना आवश्यक है किन्तु यदि गिरफ़्तारी अन्य जिले में की गई है तो ऐसी दशा स्थिति में संबंधित पुलिस थाने या जिले की क़ानूनी सहायता संस्था के माध्यम से उपर्युक्त जानकारी 8 से 12 घण्टे में संबंधित रिश्तेदार या मित्र को बताया जाना आवश्यक है।

5. नज़रबंदी या गिरफ़्तारी के तुरंत बाद संबंधित व्यक्ति को यह जानकारी अवश्य दे दी जाय जिससे कि वह किसी भी परिचित को इस संबंध में बता सके।

6. गिरफ़्तारी के स्थान पर डायरी में यह अंकित किया जाना आवश्यक है कि किस व्यक्ति को गिरफ़्तार किया गया है तथा डायरी में यह भी बताया जाना आवश्यक है कि गिरफ़्तारी की जानकारी गिरफ़्तार किए गए व्यक्ति के किस परिचित को दी जा चुकी है तथा उसका नाम और अन्य जानकारियां उसमें अंकित होनी चाहिए। गिरफ़्तार किया गया व्यक्ति किस पुलिस अधिकारी की हिरासत में है, यह भी संबंधित डायरी में अंकित होना चाहिए।

7. गिरफ़्तार किए गए व्यक्ति के अनुरोध पर गिरफ़्तारी के समय डाक्टरी जांच की जा सकती है जिसमें गिरफ़्तार व्यक्ति की छोटी और बड़ी चोटों की जांच शामिल है। इन्सपेक्शन–मेमो गिरफ़्तार व्यक्ति तथा उस पुलिस अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित होगा जिसने कि गिरफ़्तारी की है।

8. गिरफ़्तारी के बाद प्रत्येक 48 घण्टे में संबंधित गिरफ़्तार व्यक्ति की डाक्टरी जांच डाक्टर द्वारा होगी। यह डाक्टर निदेशक, स्वास्थ विभाग द्वारा स्वीकृत होगा। निदेशक स्वास्थ सेवाएं इस विषय में तहसील एवं जिला स्तर पर एक डाक्टरों का पैनल बनाएगी।

9. मेमो ऑफ़ अरेस्ट से संबंधित सारे कागजात इलाके के मजिस्ट्रेट को अवश्य भेजे जाएगें।

10. गिरफ़्तार किए गए व्यक्ति को पूछताछ के दौरान अपने वकील से मिलने की

अनुमति दी जाएगी किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि पूरी पूछताछ के दौरान उसका वकील उपस्थित रहे।

11. हर जिला एवं राज्य स्तर पर एक पुलिस कन्ट्रोल रूम बनाया जाएगा जहॉ पर गिरफ़्तार किए गए व्यक्ति तथा उसको रखे गए स्थान के बारे में जानकारी उपलब्ध कराई जाएगी। यह जानकारी उस अधिकारी द्वारा 12 घण्टे के अन्दर उपलब्ध कराई जाएगी जिसने कि संबंधित व्यक्ति को गिरफ़्तार किया है तथा उपर्युक्त जानकारी एक नोटिस बोर्ड पर भी दिखलायी जाएगी।

उपर्युक्त दिशानिर्देश के बावजूद प्रत्येक वर्ष में ऐसे मुकदमे उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय में आ रहे हैं जिनके तथ्यों को देखने से स्पष्ट है कि इन दिशानिर्देशों का कोई पालन नहीं हो रहा है। आज की पुलिस व्यवस्था में कई थानों में आदर्श थाना का बोर्ड लगा हुआ मिल जाता है किन्तु थाने के अंदर आम जनता के साथ किया गया व्यवहार अपने आप में बहुत से प्रश्न–चिह्न उठाता है। सर्वाधिक कठिनाई तब होती है जब इन थानों में पूछताछ के दौरान नज़रबंदी में अपराधी की मृत्यु हो जाती है। हर साल कई मुकदमे ऐसे आते हैं जिनमें उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा नज़रबंदी दौरान मृत्यु के मामलों में मुआवज़ा दिलाया जा रहा है। इसी के साथ दूसरे नम्बर, पर ऐसे मुकदमे आते है जिनमें किसी भी निर्दोष व्यक्ति को पुलिस बल द्वारा पकड़ लिया जाता है और उनके विरुद्ध थाने में गंभीर अपराध की रिपोर्ट दर्ज़ कर ली जाती है। जिसके फलस्वरूप उस व्यक्ति के विरुद्ध न्यायालयों में अपराधिक मुकदमा चलने लगता है। उस व्यक्ति को निर्दोष सिद्ध करने में कभी–कभी पूरी उम्र लग जाती है। इस प्रकार उस व्यक्ति और उसके परिवार का जीवन नरक बनकर रह जाता है। अभी हाल में अक्षरधाम, आमिर अली तथा अन्य के मामले में यह स्पष्ट हुआ कि पुलिस अधिकारियों द्वारा निर्दोष लोगों के विरुद्ध जानबूझकर कार्यवाही की गई, जोकि अन्त में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पकड़ भी ली गई। स्वाभाविक रूप से प्रश्न उठता है कि जब अदालतों में इतने मुकदमे आ रहे हैं जिनमें यह पाया जा रहा है कि पुलिस अधिकारियों द्वारा जानबूझकर निर्दोष लोगों के विरुद्ध अपराधिक मुकदमे बनाये जा रहें तब भी लगातार इससे कहीं अधिक मामले ऐसे लम्बित है, जिनमें निर्दोष लोगों के विरुद्ध अपराधिक न्यायालयों में मुकदमे चल रहे हैं। मौजूदा पुलिस व्यवस्था द्वारा ऐसे कोई ऑकड़े सामने नहीं आए हैं जिससे कि यह पता चल सके कि पुलिस व्यवस्था के अन्तर्गत ऐसे अधिकारियों/कर्मचारियों के विरुद्ध विभागीय स्तर पर कोई कार्यवाही की गई। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि क़ानून प्रदत्त अधिकारों को दुरुपयोग करने वाले अधिकारियों/कर्मचारियों के विरुद्ध अधिकतर विभागीय स्तर पर कोई कार्यवाही नहीं होती है।

ऐसा नहीं है कि इस तरह गलत गतिविधियां पुलिस अधिकारियों/कर्मचारियों द्व ारा केवल गंभीर मामलों में ही होती हैं। *d/'ko d/ekj* [2] के मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 107 में पुलिस अधिकारियों को

प्रदत्त अधिकार का गलत इस्तेमाल पाया गया जोकि बहुत ही मामूली अपराध की धारा है। उच्च न्यायालय द्वारा गैर–कानूनी नज़रबंदी के लिए रु. 50,000.00 हजार का जुर्माना संबंधित अधिकारियों पर लगाया। खण्डपीठ ने यह भी आदेश दिया कि संबंधित अधिकारियों के विरुद्ध प्रशासनिक कार्यवाही की जाय। स्पष्ट है कि स्थानीय पुलिस अधिकारी दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 107 में दिए गए सामान्य अधिकारों का दुरपयोग एक पक्ष के कहने पर दूसरों के विरुद्ध कितनी निडरता से कर रहे हैं।

राज्य के अन्तर्गत किसी भी व्यक्ति को पकड़ने और जेल में बन्द करने का अधिकार मात्र पुलिस के पास ही होता है। किसी भी देश या समाज की पुलिस व्यवस्था उसके नागरिकों के लिए सर्वाधिक प्रभावित करने वाली होती है किन्तु अधिकतर देशों में सामान्यतः पुलिस द्वारा क़ानून सम्मत शक्तियों के दुरुपयोग सामने आते ही रहते हैं। हमारे देश में वर्तमान समय में पुलिस के अधिकार पुलिस अधिनियम 1861 से प्रारम्भ होते हैं जिनको बाद के पुलिस अधिनियम, 1888 द्वारा संशोधित किया गया। यह अधिनियम तत्कालीन बर्तानिया हुकूमत द्वारा अपने राज को बनाये रखने के लिए लागू किया गया था। मुख्य रूप से इस अधिनियम द्वारा जो पुलिस व्यवस्था बनायी गई उसमें आमजन की सुनवाई और कष्टों के बारे में विचार नहीं किया गया था अपितु इस अधिनियम द्वारा प्रत्येक जिले में ऐसी व्यवस्था बनायी गई जिसका मुख्य उद्देश्य अपराध रोकना और उसकी जांच करना है, यानी पुलिस अधिकारी/कर्मचारी का ध्यान सिर्फ़ अपराध रोकने और उसकी जांच करने में सीमित है। उल्लेखनीय है कि पुलिस अधिनियम, 1861 अग्रेजी शासकों द्वारा अपने राज को बचाने और आम जन को डराने तथा प्रताड़ित करने के लिए बनाया गया था। संविधान लागू होने के बाद भी चूंकि पुलिस अधिनियम, 1861 आज भी देश में लागू है अतः इस अधिनियम के अन्तर्गत पुलिस अधिकारी और कर्मचारियों के मुख्य उद्देश्य वही हैं जिनका विवरण उपर्युक्त में दिया जा चुका है। पुलिस अधिकारियों और कर्मचारियों को इसके अतिरिक्त बहुत से अधिकार दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 के द्वारा भी मिले हुए हैं। मूलरूप से दण्ड प्रक्रिया संहिता भी अग्रेजों द्वारा बनाये गए प्रावधानों को आत्मसात करती है। स्वाभाविक रूप से पुलिस अधिनियम तथा दण्ड प्रक्रिया संहिता को संविधान सम्मत और मानवीयता को ध्यान में रखकर पुनः नए रूप में बनाने की आवश्यकता है।

i|fy l vfèkdkj

वर्तमान में दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत ''पुलिस अधिकारी'' को जो अधिकार मिले है उनमें से कुछ परीक्षण करने योग्य हैं जैसे कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा–41 में यह प्रावधान है कि कोई पुलिस अधिकारी बिना किसी मजिस्ट्रेट (न्यायिक या प्रशासनिक) के आदेश या वारण्ट के किसी भी व्यक्ति को गिरफ़्तार कर सकता है यदि उस व्यक्ति द्वारा धारा–41 में वर्णित अपराध किए गए हैं। उल्लेखनीय है कि धारा–41 में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो यह निर्देशित करता हो कि संबंधित पुलिस अधिकारी को उस व्यक्ति द्वारा धारा–41 में वर्णित अपराधों को करने के विषय

में अपने को संतुष्ट करना अनिवार्य हो। दूसरे शब्दों में एक पुलिस अधिकारी बग़ैर अपनी संतुष्टि के मात्र संदेह के आधार पर दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा–41 में वर्णित अपराधों के लिए किसी व्यक्ति को बगैर किसी आदेश या वांरट के गिरफ़्तार कर सकता है। स्वाभाविक रूप से प्रजातांत्रिक जवाबदेही में यह प्रश्न उठता है कि अगर यह पाया गया कि गिरफ़्तार व्यक्ति ''दूसरा'' है या कि पुलिस अधिकारी ने जानबूझकर दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा–41 की आड़ लेकर पुलिस कार्यवाही की है तो ऐसी हालत में उस पुलिस अधिकारी के विरुद्ध क्या कार्यवाही होगी, इस विषय में दण्ड प्रक्रिया संहिता में कोई प्रावधान नहीं है जबकि यह प्रावधान अवश्य है कि किसी पुलिस अधिकारी के विरूद्व उसके किए गए कार्यों के विरुद्ध किसी न्यायालय में बगैर कोई सरकारी संस्तुति के कोई भी मुकदमा नहीं चल सकता उनको अपने कार्यों के लिए एक हिसाब से अभयदान मिला हुआ है। कई मामलों में ऐसा पाया गया कि पुलिस अधिकारियों ने किसी निर्दोष को एक अन्य व्यक्ति बताकर उसका एनकाउंटर कर दिया गया। एनकाउंटर के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कुछ आदेश/निर्देश दिए गए हैं जिनका पालन करना अनिवार्य है किन्तु अधिकतर ऐसा पाया जाता है कि पुलिस स्वयं को जवाबदेह नहीं समझती। उल्लेखनीय है कि प्रत्येक राज्य में कुछ पुलिस अधिकारी एनकाउंटर स्पेशलिस्ट के रूप में जाने जाते हैं। अभी हाल में बम्बई और दिल्ली की अदालतों में कुछ इन्हीं अधिकारियों के विरुद्ध मुकदमें चल रहे हैं। इसी प्रकार बहुत से ऐसे मामले अदालतो में आ रहे है जिनमें यह सिद्ध पाया गया कि पुलिस अधिकारियों ने दण्ड प्रक्रिया संहिता में प्रदत्त शक्ति का दुरुपयोग किया। वर्तमान में इस शक्ति का दुरुपयोग एक आम बात हो गई है। कुछ उदाहरण निम्न हैः–

1. पुलिस नज़रबंदी में मृत्यु हो जाने पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कई मामलों में यह आदेश करना पड़ा कि संबंधित पुलिस/सेना के अधिकारियों/जवानों के विरुद्ध क़ानूनी कार्यवाही की जा सकती है। सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी आदेशित किया कि चूंकि यह अधिकारी भारत सरकार या राज्य सरकार के अन्तर्गत आते हैं, अतः इनके द्वारा किए गए गैर क़ानूनी और असंवैधानिक कृत्यों के लिए संबंधित सरकार जिम्मेवार होगी। ऐसे मामलों में न्यायालय द्वारा यह भी प्रतिपादित किया गया कि मृतक के परिवारजनों को मुआवज़ा संबंधित सरकार देगी। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह प्रतिपादन :ny 'kkg[3]] lofr;u gxjh[4] ,o Hkhe fl g[5] के मामलों में क़ानूनी व्यवस्था दी गई। Mh- d- cl| cuke Hkkjr ljdkj[1] के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कई निर्देश भविष्य के लिए दिए, जिनका पालन प्रत्येक थाने की पुलिस को करना अनिवार्य है। दुख की बात है कि 20 वर्ष व्यतीत होने के बाद भी इन निर्देशों का पालन थाने की पुलिस द्वारा अमूमन तौर पर नहीं किया जाता है। जिसके कारण आम नागरिकों का पुलिस पर से विश्वास उठ गया है। वास्तव में पुलिस की प्रकृति और प्रवृति नागरिकों के अधिकारों के दमन के लिए विख्यात है। जबकि संविधान के अन्तर्गत पुलिस को आम नागरिक के संवैधानिक अधिकारों, विशेष रूप से मूलभूत अधिकारों के पालन में सहयोग करना चाहिए

किन्तु पुलिस अफसरों और सिपाहियों द्वारा आम नागरिक को डराना एक आम बात हो गई है। उल्लेखनीय है कि इस विषय में 1960 के दशक में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश आनन्द नरायण मुल्ला ने पुलिस को ''वर्दीधारी गुण्डों का गिरोह'' बताया था। यह कथन आज भी उतना ही लागू होता है।

2. बम्बई उच्च न्यायालय की दो सदस्यीय खण्डपीठ ने 11.08.2017 को यह पाया कि स्थानीय पुलिस द्वारा tokgj yky 'kek[6] को गुड्डू की हत्या के मामले में निर्दोष पाया। तथ्यों से यह पाया गया कि स्थानीय पुलिस को यह जानकारी 05.07.1996 को हो गई थी कि गुड्डू जीवित है किन्तु वह जवाहर लाल शर्मा के विरुद्ध गैर–कानूनी रूप से कोर्ट में केस चलाते रहे। 15 वर्ष बाद कोर्ट के सामने गुड्डू हाजिर हुआ। इसके बाद जवाहर लाल शर्मा द्वारा गैर क़ानूनी अभियोजन चलाने पर याचिका दायर की गई। इस याचिका के निस्तारण में उपर्युक्त खण्डपीठ ने संबंधित पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध रु. 6,00,000.00 (रु. छः लाख) का मुआवज़ा देने का आदेश दिया। उल्लेखनीय है कि जिन तीन अधिकारियों के विरुद्ध यह आदेश पारित किया गया उनमें दो की मृत्यु हो गई है और अन्तिम तीसरा व्यक्ति सेवानिवृत्त हो गया है। खण्डपीठ ने अपने आदेश में स्पष्ट किया कि राज्य सरकार यह मुआवज़ा आठ सप्ताह में जमा करें। खण्डपीठ द्वारा इस धनराशि को गलत काम करने वाले अधिकारियों से वसूली के प्रकरण को राज्य सरकार पर छोड़ दिया गया। उक्त केस से स्पष्ट है कि पुलिस अधिकारियों द्वारा किस प्रकार एक निर्दोष को गैर–कानूनी केसों में फसाकर प्रताड़ित किया जाता है।

3. eekk ikVdj cuke ee; in'k ljdkj[7] के मामले में उच्च न्यायालय ने यह पाया कि याचिकाकर्त्ता अपनी मांगों के समर्थन में सड़क पर बैठकर नारे लगा रहे थे और ''भूमि के बदले भूमि'' की मांग कर रहे थे। उन्हें यह अधिकार भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19 के अन्तर्गत प्राप्त है। उच्च न्यायालय ने रू. 10,000.00 हजार का मुआवज़ा याचिकाकर्ताओं को दिलाया क्योंकि संबंधित पुलिस अधिकारियों ने याचिकाकर्ताओं को संविधान में दिए गए अनुछेद–21 में प्राप्त अधिकारों को हनन किया।

4. सन् 2011 में egcc ckpk[8] के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह पाया कि पुलिस थाने में नज़रबंदी के दौरान मृतक को निर्दयता से मारा गया जिससे उसकी मृत्यु हो गई। उसकी पत्नी के साथ चार पुलिस वालों ने बलात्कार किया किन्तु दुर्भाग्य का विषय है कि सर्वोच्च न्यायालय में पहुचने के बाद भी संबंधित पुलिस अधिकारियों और कर्मचारियों के विरुद्ध भारतीय दण्ड संहिता की धारा–302 के अन्तर्गत इनके विरुद्ध कार्यवाही नहीं की गई क्योंकि प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफ.आई.आर.) में इस धारा का उल्लेख नहीं था। स्पष्ट है कि ऊपर के अधिकारियों द्वारा इन अधिकारियों और पुलिस वालों के विरुद्ध कार्यवाही करने में

जानबूझकर धारा 302 नहीं लगा गई। उपर्युक्त घटना से स्पष्ट है कि जितने दोषी इस कृत्य को करने वाले में संबंधित अधिकारी/कर्मचारी हैं उससे अधिक मानवता के दोषी उनके वरिष्ठ अधिकारी हैं जिन्होनें इनको बचाने के लिए तथ्यों से विपरीत प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफ.आई.आर.) में उक्त तथ्यों के अनुसार संबंधित धारा 302 का उल्लेख नहीं किया। दुःख का विषय है कि निचली अदालतों (उच्च न्यायालय तथा सत्र न्यायालय) में भी इस तथ्य को नजर अन्दाज किया गया। मृतक की पत्नी पदमनी को, यह सिद्ध हो जाने के बाद भी कि उसके पति की मृत्यु संबंधित थाने में पुलिस अधिकारियों और कर्मचारियों के कारण हुए नुकसान का कोई भी मुआवज़ा नहीं मिला।

5. luhrk[9] के मामले में दिल्ली हाईकोर्ट ने यह पाया कि मृतक ने अपने प्रोविडेन्ट फण्ड एकाउन्ट से रु. 1,30,000.00 निकाले थे। वह उस धनराशि को लेकर जा रहा था जब 15.08.1999 को सुबह 5:00 बजे दो पुलिस वालों ने उसको पकड़ लिया और थाने में उसकी मृत्यु हो गई उसकी पत्नी सुनीता द्वारा याचिका दायर करने पर उच्च न्यायालय ने रु. 3.00 लाख का जुर्माना लगाया सर्वोच्च न्यायालय ने इस जुमार्न को 5.00 लाख रूपये कर दिया।

6. MkDVj jkthr[10] के मामले में एक पुलिस अधिकारी ने एक चिकित्सा अधिकारी को इतनी ज़ोर से थप्पड़ मारा कि उसके बांए कान से सुनने की शक्ति चली गई। उच्च न्यायालय ने याचिका को मंजूर करते हुए यह प्रतिपादित किया कि राज्य सरकार इन कर्मचारियों के कृत्यों के लिए उत्तरदायी है। स्वाभाविक रूप से प्रश्न उठता है कि ऐसे मामलों में राज्य सरकार से जुर्माना वसूली क्यों की जाए क्योंकि जुर्माने की राशि का भुगतान राज्य सरकार जनता से प्राप्त कर के ही करेगी। पुलिस अधिकारियों और कर्मचारियों की उद्दण्डता के लिए राज्य की जनता को भार क्यों सहना पड़े।

7. पिछले कुछ वर्षो से आतंकवाद के नाम पर मुस्लिम वर्ग के व्यक्तियों को पकड़कर आतंकवादी घोषित करने के साथ उनके विरुद्ध राष्ट्रविरोधी गतिविधियॉ रोकने के क़ानूनों का उपयोग किया जा रहा है। अभी हाल में अक्षरधाम के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तथा कथित अभियुक्तों को रिहा किया गया और यह कहा गया कि संबंधित व्यक्तियों को अभियोग पक्ष द्वारा जानबूझकर फंसाया गया। अभी हाल में एक किताब सामने आई जिसका शीर्षक ''आई एम फ्रेमड एज ए टेररिस्ट''। इस किताब से यह ज्ञात होता है कि किस प्रकार पुलिस व्यवस्था द्वारा एक नौजवान के यौवन के दिन जेल और अदालत में बग़ैर जुर्म के बिताने पर मजबूर किया। दुःख की बात यह है कि आज की पुलिस व्यवस्था में इस तरह की घटनाएं आम हो गई हैं। उल्लेखनीय है कि केवल कुछ घटनाओं में ही न्यायालयों द्वारा काफ़ी समय बाद यह तय किया जाता है कि संबंधित अभियोजन गलत और जानबूझकर किया गया था।

8. jkeyhyk elnku[11] में सर्वोच्च न्यायालय ने यह पाया कि संबंधित पुलिस अधिकारियों द्वारा रात में सोते हुए नागरिकों पर लाठीचार्ज और आंसू गैस का प्रयोग किया गया। उनकी इस कार्यवाही से बहुत लोग घायल हो गए और एक जान भी चली गई। सर्वोच्च न्यायालय ने यह पाया कि पुलिस द्वारा की गई कार्यवाही आवश्यकता से अधिक बल प्रयोग करने का उदाहरण है। सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी कहा कि केस में कोई आकस्मिकता नहीं थी, अतः इस तरह की कार्यवाही उचित नहीं थी। दूसरे शब्दों में, सर्वोच्च न्यायालय यह प्रतिपादित किया कि नागरिकों का सोने का भी एक अधिकार है जिसका उल्लघंन पुलिस व्यवस्था द्वारा नहीं किया जा सकता।

9. iFkhiky flg[12] के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह पाया कि एक मानव अधिकार कार्यकता श्री जसवन्त सिंह खालरा को पुलिस द्वारा ज़बरदस्ती गिरफ़्तार कर लिया गया और पुलिस कस्टडी में उनकी मृत्यु हो गई। न्यायालय ने यह पाया कि तत्कालीन वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक अजीत सिंह संधू और कुछ अन्य व्यक्तियों ने मृतक का अपहरण कर उनको मार दिया गया। इस प्रकार के उदाहरण लगातार मिलते जा रहे हैं।

उपर्युक्त विवरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि मौजूदा पुलिस व्यवस्था में अधिकारियों और कर्मचारियों द्वारा क़ानून सम्मत अधिकारों का दुरुपयोग अधिक हो रहा है। इसके विपरीत पुलिस के कुछ अधिकारियों द्वारा बराबर यह मांग की जा रही है कि उनके कामों में दख़लन्दाज़ी की जाती है। पूर्व महानिदेशक प्रकाश सिंह द्वारा दायर याचिका में पुलिस व्यवस्था में स्वायत्तता पर ज़ोर दिया गया। सर्वोच्च न्यायालय सन् 2006 में इस विचार को माना और उनके द्वारा कुछ दिशानिर्देश दिए गए। चूंकि इन दिशानिर्देशों का पालन राज्य सरकारों द्वारा नहीं किया जा रहा है अतः उनके विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में कार्यवाही भी की जा रही है।

स्वाभाविक तौर पर यह प्रश्न उठता है कि पुलिस द्वारा किस बात को दख़लन्दाज़ी माना जाता है तथा प्राप्त पुलिस अधिकारों का इन अधिकारियों द्वारा गलत इस्तेमाल करने पर स्वायत्तता के अन्तर्गत अपने अधिकारियों/कर्मचारियों के विरुद्ध क्या कार्यवाही की जा रही है। डी. के. बसु के मामले में प्रत्येक थाने में गिरफ़्तारी के बाद पुलिस अधिकारियों द्वारा किस प्रकार बर्ताव किया जाय इस विषय में सर्वोच्च न्यायालय ने सन् 1996 में कुछ दिशानिर्देश जारी किए थे किन्तु सर्वविदित है कि इन दिशानिर्देशों को पालन 20 वर्षों बाद भी किसी राज्य में नहीं किया जा रहा है। दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत वर्णित अधिकारों के अनुसार थाने में गलत कामों के लिए वरिष्ठ पुलिस अधिकारी भी उतने ही दोषी है किन्तु आज तक कितने ही मामले आने के बावजूद किसी भी वरिष्ठ पुलिस अधिकारी पर कोई भी कार्यवाही करने का आंकड़ा सामने नहीं आया है। इन आदेशों के पालन के बजाय सन् 2006 में प्रकाश सिंह मामले में स्वायत्तता के लिए सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कुछ आदेश/निर्देश जारी किए गए। स्वाभाविक रूप

से यह प्रश्न उठता है कि मौजूदा पुलिस अधिकारों के सर्वविदित गलत उपयोग के बाद भी इन पुलिस अधिकारियों को किस प्रकार स्वायत्तता का अधिकार देना उचित होगा? मौजूदा पुलिस अधिकारों की प्रजातांत्रिक जवाबदेही सुनिश्चत करना इन पुलिस अधिकारियों का प्रथम कार्य है। बग़ैर इस जवाबदेही के प्रजातांत्रिक पुलिसिंग के बारे में सोचना व्यर्थ होगा।

राज व्यवस्था चलाने में प्रशासनिक अधिकारियों के साथ पुलिस अधिकारियों का भी दायित्व बनता है किन्तु अकसर यह देखा जा रहा है कि इन दोनो अधिकारियों में अहम की लड़ाई अधिक हो रही है। *Vh- ih- l|u d|ekj*[13] में केरल राज्य के पुलिस महानिदेशक (डी.जी.पी.) ने प्रशासनिक तंत्र के एस.डी.एम. और तहसीलदार को घटना की जगह पर न मौजूद होने के कारण उनके विरुद्ध कार्यवाही करने का अनुरोध किया। इसके विपरीत संबंधित प्रशासनिक अधिकारी ने यह प्रश्न उठाया कि क़ानून व्यवस्था लागू करने की प्रारम्भिक जिम्मेदारी पुलिस तंत्र पर होती है और इस कारण किसी भी अप्रिय घटना में क़ानून व्यवस्था ध्वस्त हो जाने पर संबंधित पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध कार्यवाही आवश्यक है। इस प्रकरण में मुख्यमंत्री द्वारा पुलिस महानिदेशक (डी.जी.पी.) को अपने पद से हटाकर दूसरे पद पर स्थानान्तरित कर दिया गया, जिसके विरुद्ध पुलिस महानिदेशक द्वारा अदालत में याचिका दायर की गई। यह मामला सर्वोच्च न्यायालय तक पहुंचा जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने स्थानान्तरण को गलत बताया और आदेशित किया कि उनको पुनः पुलिस महानिदेशक के पद पर नियुक्त किया जाए। समय पर कार्यवाही न होने पर तत्कालीन महानिदेशक द्वारा एक अवमानना याचिका दायर की गई और अन्त में लगभग 6 माह तक तत्कालीन महानिदेशक उस पद पर रहकर सेवानिवृत्त हुये। सेवानिवृत्त होने के बाद तत्कालीन महानिदेशक ने अपने एक साक्षात्कार में यह स्वीकार किया कि पुलिस बल में कुछ गलत अधिकारी और कर्मचारी भी हैं। उनके द्वारा यह स्वीकार किए जाने के बाद स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि महानिदेशक के पद पर या उसके पहले उनके द्व ारा इन गलत लोगों के विरुद्ध क्या कार्यवाही की गई। दुख का विषय है कि सर्वोच्च न्यायलय द्वारा इस प्रकरण में धार्मिक स्थल पर हुए हादसे के लिए दोषी व्यक्तियों के प्रति कोई स्पष्ट टिप्पणी नहीं की गई जबकि पूरा प्रकरण धार्मिक स्थल पर आग लगने से मरे लोगों के संबंध में था। उल्लेखनीय है कि इस प्रकरण में प्रशासनिक और पुलिस अधिकारी घटना स्थल से भाग गए थे। पुलिस अधिनियम, 1861 और दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 के अनुसार इसमें कोई दो राय नहीं कि शान्ति व्यवस्था बनाये रखने की जिम्मेदारी पुलिस अधिकारियों पर ही होती है और इस प्रकरण में तत्कालीन पुलिस महानिदेशक द्वारा संबंधित स्थानीय पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की गई। उनके द्वारा कार्यवाही न करने के संबंध में यह प्रश्न उठाया गया कि स्थानीय प्रशासनिक अधिकारी भी मौके से नदारत थे। इन परिस्थितियों में स्वायत्तता और प्रजातांत्रिक जवाबदेही दोनों ही बेकार हो जाते हैं क्योंकि संबंधित अधिकारियों द्व ारा आवश्यकता पड़ने पर उचित कार्यवाही करने के बजाय अपने को बचाने का प्रयास

अधिक किया जा रहा है। ऐसा लगता है कि पुलिस व्यवस्था में स्वायत्तता के नाम पर किसी भी दख़लन्दाज़ी को वर्तमान पुलिस अधिकारी मानने को तैयार नहीं है।

प्रजातांत्रिक व्यवस्था में यह सोच आवश्यक है एक व्यक्ति अपने अधिकारों के उपयोग में उतना ही स्वतंत्र है जिससे कि दूसरे व्यक्ति के अधिकारों और स्वतंत्रता का हनन न प्रारम्भ हो जाए, यानी पहले व्यक्ति की स्वतंत्रता और दूसरे व्यक्ति की स्वतंत्रता का आपस में टकराव नहीं होना चाहिए। दूसरे शब्दों में पहले व्यक्ति के अधिकारों के उपयोग की स्वतंत्रता दूसरे व्यक्ति के अधिकारों के उल्लघंन की सीमा–रेखा होती है। यदि दो व्यक्तियों के अधिकारों के उपयोग की स्वतंत्रता में कोई टकराव होता है तो राज शक्ति को इनके बीच में हस्तक्षेप करने का अधिकार मिल जाता है। चूंकि राज शक्ति द्वारा यह हस्तक्षेप पुलिस व्यवस्था द्वारा किया जाता है अतः यह स्वाभाविक है कि राज शक्ति और पुलिस व्यवस्था द्वारा पुलिस अधिकारी और कर्मचारी को कुछ विशेष अधिकार दिए जाएं। पुलिस अधिनियम, 1861 और दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 के प्रावधानों में पुलिस अधिकारी को यदि यह विश्वास हो जाए कि कोई व्यक्ति ''अपराधी'' है तो उस व्यक्ति को गिरफ़्तार करने, उसके घर, दफ्तर तथा अन्य संबंधित स्थानों में छापा मारने तथा खोज–बीन करने का अधिकार मिल जाता है। स्वभावतः यह सवाल उठता है कि यदि किसी पुलिस अधिकारी द्वारा जानबूझकर व्यक्ति विशेष के विरुद्ध इस पुलिस ताकत का गलत इस्तेमाल किया जाता है तो ऐसी दशा में क्या संभावनाएं हैं, हालांकि, दोनों व्यक्तियों के अधिकार और कर्तब्य की दशा में संबंधित पुलिस अधिकारी को भी उस सीमा रेखा का ध्यान रखना पड़ेगा। जहॉ दो व्यक्तियों को अपने अधिकारों के उपयोग में तय सीमा रेखा को पार नहीं करना है वहीं संबंधित पुलिस अधिकारी को उस सीमा रेखा को छोड़कर किसी व्यक्ति के पक्ष में नहीं खड़े होना चाहिए। उसके द्वारा उस सीमा रेखा को छोड़ना अपनी राज शक्ति का गलत इस्तेमाल माना जाएगा।

प्रजातंत्र में पुलिस व्यवस्था का काम केवल अपराध रोकना और उसकी विवेचना करना ही नहीं है। पुलिस व्यवस्था का उदभव पुलिस अधिनियम, 1861 तथा दण्ड प्रक्रिया संहिता 1889 से हुयी थी किन्तु सन् 1947 में आज़ादी मिलने के बाद देश की जनता द्वारा भारतीय संविधान को अपनाया गया है। अतः पुलिस व्यवस्था और उसके अन्तर्गत कार्य करने वाले प्रत्येक पुलिस अधिकारी व कर्मचारी को यह ध्यान रखना होगा कि पुलिस अधिनियम, 1861 और दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 में प्रदत्त अधिकारों से मिले अधिकार संविधान और मानवता के अधिकारों से बड़े नहीं हो सकते। उन्हें अपनी कार्यवाही में यह मानक सदैव बनाये रखने चाहिए कि उनके द्वारा संविधान प्रदत्त मौलिक अधिकारों और मानवता के अधिकारों का हनन उनके किसी कार्य से न हो। अभी तक अपराधिक मामलों में यह आदर्श सिद्धान्त माना जाता है कि ''भले ही 100 अपराधी छूट जाएं किन्तु एक निरपराधी को सजा नहीं होनी चाहिए'' किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि पुलिस अधिनियम, 1881 और दण्ड प्रक्रिया

संहिता, 1973 के अनुसार कार्य करने वाले पुलिस अधिकारी और कर्मचारी यह मानकर चलते है कि उनके द्वारा पकड़ा गया व्यक्ति अपराधी ही है, जब तक कि वह यह सिद्ध न करे कि वह निर्दोष है। इस मानसिकता के बदले बग़ैर प्रजातांत्रिक पुलिस व्यवस्था संभव नहीं हो सकती। साथ ही आवश्यकता इस बात की भी है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता में जहॉ पुलिस कर्मचारी/अधिकारी को विशेष अधिकार दिए गए हैं वहीं पर यह भी स्पष्ट होना चाहिए कि इन अधिकारों का दुरपयोग करने पर संबंधित पुलिस अधिकारी के विरुद्ध क्या कार्यवाही हो, वस्तुतः अधिकारों के दुरपयोग सिद्ध हो जाने पर स्वतः संज्ञान की व्यवस्था दण्ड प्रक्रिया संहिता में होनी चाहिए। किसी भी पीड़ित व्यक्ति को दीवानी या अपराधिक अदालतों में शरण लेने की आवश्यकता न पड़े क्योंकि संबंधित पुलिस अधिकारी/कर्मचारी के अपराध को सक्षम न्यायालय द्वारा सिद्ध पाया जा चुका है।

1. डी. के. बसु बनाम भारत सरकार, (1997) 1 एस.सी.सी. पृष्ठ 416
2. केशव कुमार बनाम सरकार, 2008 क्रिमिनल सिविल जर्नल 3065
3. रूदल शाह[3] (ए.आई.आर. 1983 एस.सी. पृष्ठ 1086),
4. सेवतियन हंगरी[4] (ए.आई.आर. 1987 एस.सी. पृष्ठ 571)
5. भीम सिंह[5] (ए.आई.आर. 1986 एस.सी. पेज
6. जवाहर लाल शर्मा, Livelaw.in
7. मेधा पाटेकर बनाम मध्य प्रदेश सरकार, 2008 क्रिमिनल लॉ जर्नल 47 (सर्वोच्च न्यायालय)
8. महबूब बाचा 2011(4) SCALE 20
9. सुनीता 151, (2008) डी.एल.टी. 192
10. डाक्टर रंजीत (2008, सी.आर.एल.जे. 4607)
11. रामलीला मैदान (2012) 5 एस.सी.सी. पृष्ठ 1
12. पृथीपाल सिंह (2012) 1 एस.सी.सी. पृष्ठ 10
13. टी.पी. सेन कुमार के प्रकरण (2017) 6 एस.सी.सी. पृष्ठ 801

• • •

U;k; e ftruh mnkjrk dh t:jr g] bruh gh U;k; dh mnkjrk e g

– महात्मा गांधी

ykdr=] ifyl vkj ekuo vfèkdkj

xhrk lkrkIIkk nodj•

ekuokfèkdkj

मानवाधिकार वे अधिकार हैं जिनके लिए प्रत्येक व्यक्ति मानव होने के नाते अधिकारी है। ये अधिकार मानव होने के नाते अंतर्भूत, अंतर्निहित और अदेय है। सभी मनुष्य जन्म से समान है और इसलिए नस्ल, लिंग, भाषा, क्षेत्र, राष्ट्रीयता, सम्पत्ति, जन्म या स्थिति के भेद—भाव बिना सभी इन अधिकारों के लिए समान रूप से अधिकृत है। मानवाधिकार सार्वभौमिक है और सभी मनुष्यों को मिलना चाहिए, भले ही उनके राज्य के क़ानून कुछ भी हों।

आज सारे विश्व में मानवाधिकार चर्चित है तथा समस्त देशों में मानवाधिकारों के संरक्षण हेतु विभिन्न प्रयास किए जा रहे हैं योजनायें बनाई जा रही हैं तथा आधुनिक परिवेश में नए नियमों/कार्य प्रणालियों के क्रियान्वयन पर समीक्षा कराई जा रही है तथा साथ ही साथ देश के प्रचलित क़ानूनों में भी संशोधन की प्रक्रिया अपनाई जा रही हैं। मानव अधिकारों का क्षेत्र जितना व्यापक है उतना ही उसका इतिहास पुराना है। मानव अधिकारों का तात्पर्य ऐसे न्यूनतम अधिकारों से हैं जो प्रत्येक व्यक्ति में लिंग भेद, वर्ण भेद, भाषा भेद और धर्मभेद होते हुए भी, मानव परिवार का सदस्य होने के नाते होते हैं। और जो व्यक्ति के जीवन, समानता, स्वतन्त्रता तथा प्रतिष्ठा से जुड़े हुए हैं तथा संविधान में जितनी रक्षा की गारंटी दी गई है और भारत के न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय है तथा जो अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के रूप में संयुक्त राष्ट्र की महासभा में स्वीकार किए गए हैं। इन अधिकारों में प्रदूषण मुक्त पर्यावरण के वातावरण में जीने का एं समानता और स्वतन्त्रता संबंधी अधिकारों के अतिरिक्त गरिमामय जीवन व्यतीत करने का अधिकार, चिकित्सा सुविधा का अधिकार, अभिरक्षा में यातनापूर्ण या अपमानजनक व्यवहार न होने संबंधी अधिकार तथा प्रत्येक बच्चे को 14 वर्ष की आयु तक शिक्षा प्राप्ति का तथा विकास के समुचित अवसर पाने का अधिकार शामिल है। मानव अधिकारों की रक्षा करने के क्षेत्र में प्रमुख उपलब्धि संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा मानवाधिकारों के संबंध में की गई सार्वजनिक घोषणा है जिसे महासभा ने 10 दिसम्बर, 1948 को पारित किया था। संयुक्त राष्ट्र का घोषणा—पत्र पहला ऐसा दस्तावेज़ है जिसमें पुरुषों एवं महिलाओं के बीच समान अधिकारों की बात कही गई है। इनमें स्पष्ट किया गया है कि सभी व्यक्ति जन्म से स्वतन्त्र हैं। और अपनी गरिमा एवं अधिकारों के मामले में बराबर हैं। इनमें किसी आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाएगा।

मानव अधिकारों की सार्वजनिक घोषणा को मंजूरी देने के बाद दो अन्तर्राष्ट्रीय

• शोध छात्रा, राजनीति शास्त्र विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापूर (महाराष्ट्र)

प्रतिज्ञा पत्रों पत्रों को अनुमोदित किया गया। मानव अधिकारों को सुनिश्चित करने वाले इन प्रतिज्ञा पत्रों में से प्रथम का संबंध नागरिक के आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों से है जबकि दूसरे का संबंध नागरिकों के नागरिक और राजनैतिक अधिकारों से है। संयुक्त राष्ट्र महासभा ने इन्हें 16 दिसम्बर, 1966 को अनुमोदित तथा 3 जनवरी, 1976 एवं 23 मार्च, 1976 को लागू किया। मानव अधिकारों का संरक्षण होना एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है। मानव अधिकारों का संरक्षण साध्य है, मानव अधिकार आयोग साध्य प्राप्ति का साधन है। इसी साध्य की प्राप्ति के लिए भारत के राष्ट्रपति ने 28 सितम्बर, 1993 को एक "मानवाधिकार संरक्षण अध्यादेश, 1993" जारी किया तथा इस अध्यादेश के तहत अक्टूबर, 1993 में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का गठन किया तथा इसका अध्यक्ष पद उच्चतम न्यायालय के न्यायमूर्ति को प्रदान किया। मानवाधिकारों के हनन की घटनाओं को ध्यान में रखते हुए इस आयोग ने समाज में व्याप्त बुराइयों तथा कतिपय अमानवीय प्रथाओं को रोकने में क़ानून की अक्षमता को भी अपने संज्ञान में लिया है तथा इन्हें समाप्त करने के उद्देश्य में सरकार, समाज तथा सामाजिक संस्थाओं के मध्य गहरे तालमेल की आवश्यकता पर बल दिया है। हमारे देश में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को कई वैधानिक अधिकार दिए गए हैं। फिर भी संक्षिप्त रूप में इतना टिप्पणी करना आवश्यक होगा कि मानवाधिकार आयोग इन संबंधी शिकायतों की जाँच समय, केन्द्रीय अथवा प्रांतीय सरकार या उनके किसी अन्य प्राधिकरण अथवा संगठन से निर्दिष्ट तिथि तक अपेक्षित सूचना या आख्या मंगा सकता है तथा निर्दिष्टि तिथि तक उपर्युक्त जानकारी प्राप्त न होने की दिशा में स्वयं अपनी ओर से शिकायतों की जाँच कर, निष्कर्षो के आधार पर अपनी संस्तुतियां दे सकता है।

ekuokfèkdkj % iqfyl ds lnHkZ esa

मानवाधिकार जो सामान्यतः संवैधानिक अधिकार ही हैं, को क्रियान्वित करने और सम्पूर्ण मानव समाज की रक्षा की जबावदेही पुलिस प्रशासन की है। पूर्व प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने एक बार कहा था– "पुलिस सही और गलत के चौराहे पर खडा एक ऐसा व्यक्ति है जिसकी जिम्मेदारी सही की रक्षा करना और गलत को पकडना है। अपनी सर्वश्रेष्ठ भूमिका में वह अपने आप में ही एक संरक्षक, एक मार्गदर्शक, एक सामाजिक कार्यकर्ता तथा व्यवस्था और प्राधिकार का प्रतीक हैं।" पुलिस का यह सही एवं वास्तविक मूल्यांकन है। पुलिस समाज का सुरक्षा प्रहरी है। समाज में क़ानून और व्यवस्था बनाये रखना, अपराधों की रोकथाम करना तथा अपराधियों की धरपकड़ कर उन्हें क़ानून के हवाले करना पुलिस का ही कार्य है। यही कारण है कि अपने कर्तव्य निष्पादन के लिए विभिन्न विधियों में पुलिस को विपुल शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। इन शक्तियों में अपराधों का अन्वेषण करना तथा अभियुक्त व्यक्ति को गिरफ़्तार करना प्रमुख है। अपराधों के अन्वेषण में पुलिस को मामले की तह में जाकर निरापद सत्य का पता लगाना। यह कार्य उतना आसान नहीं होता है है जितना कि उसे समझा

जाता है। एक कुशल, प्रशिक्षित एवं निष्ठावान पुलिस अधिकारी ही अपराध से अपराधी तक पहुँचने की इस यात्रा को सफलतापूर्वक तय कर सकता है। कई बार पुलिस को अत्यन्त कठोर कदम भी उठाने पडते हैं। यही कठोरता कभी–कभी यातना का रूप ले लेती है।

आज स्वतन्त्रता प्राप्ति के छह दशकों बाद भी विश्व के सबसे बडे लोकतान्त्रिक देश भारत में पुलिस ही छवि व उसके तौर–तरीके कमोबेश वैसे ही हैं, जैसे स्वतन्त्रता के पूर्व हुकूमत–ए–बर्तानिया के समय हुआ करते थे। जो खूंखार व बर्बर चेहरा पुलिस का तब था, लगभग वही अब भी है। जहाँ तक कर्तव्य और दायित्व बोध का प्रश्न है, तो इस कोण से देखने पर हम पाते हैं कि आज की पुलिस का स्तर और गिर गया है। पुलिस की अपराधियों से सांठगांठ को खुलेआम देखा व समझा जा सकता है।

देशभर की पुलिस बर्बरता के नित नए कारनामे पेश कर रही है। 'पुलिस' शब्द भय और आतंक का पर्याय बन चुका है। आज भी खाकी वर्दी देखकर चेहरे जर्द पड जाते हैं। खाकी वर्दी के प्रति वही हिकारत बनी हुई है, जो गुलामी के समय थी। पुलिस के इसी जालिमाना चेहरे के कारण शरीफ और सामान्य आदमी पुलिस से कतराता है और घबराता है।

आज आम आदमी की यह शिकायत है कि पुलिस का उसके साथ व्यवहार उचित नहीं है। गिरफ़्तार व्यक्तियों के साथ अमानवीय एवं क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया जात है। निर्दोष व्यक्ति को तंग एवं परेशान किया जाता है। परिवादी की सुनवाई नहीं होती है। यही कारण है कि आज कोई भी भद्र पुरुष पुलिस को सहयोग करने को तैयार नहीं होता। काफ़ी हद तक यह सही है। विगत वर्षों में पुलिस के व्यवहार में काफ़ी बदलाव आया है। पुलिस यातना के कई मामले सामने आए हैं। किसी व्यक्ति को गिरफ़्तार करते ही पुलिस उसे अपराधी मान लेती है। उसके साथ अमानवीय व्यवहार किया जाने लगता है। पुलिस यह भूल जाती है कि जेल की दीवारों में बंद व्यक्ति भी समाज का ही एक अंग है, उसके भी कुछ मूल अधिकार और मानवाधिकार हैं। संविधान मे अनुच्छेद 21 में प्रदत्त प्राण और दैहिक स्वतन्त्रता का अधिकार उसे भी उपलब्ध है। मात्र गिरफ़्तार हो जाने अथवा जेल की दीवारों में कैद हो जाने से उसके यह अधिकार समाप्त नहीं हो जाते।

वस्तुतः समूचे पुलिस तंत्र में खामियाँ ही खामियाँ हैं। कुछ क़ानूनी धाराओं हा प्रयोग वे हाथियार की तरह करते हैं। मसलन सीआरपीसी की धारा 151, इसके तहत बिना मजिस्ट्रेट की आज्ञा के पुलिस कभी भी किसी को गिरफ़्तार कर सकती है। अक्सर धारा 144 का भी पुलिस मनमाना प्रयोग करती है। इस धारा के तहत ऐसा प्रावधान है कि चार या चार से अधिक व्यक्ति यदि किसी उद्देश्य से कहीं एकत्र हैं तो उन्हें तत्काल गिरफ़्तार किया जा सकता है। ऐसी ही धाराएँ हैं 107 व 116 जिनका पुलिस नाजायज फायदा उठाती है।

अक्सर प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफ.आई.आर.) की बारीकियों का भी पुलिस खूबसूरती से फायदा उठाती हैं। अपराधी से मिलकर केस को इस प्रथम स्तर पर ही इतना कमज़ोर व संदिग्ध बना दिया जाता है कि अपराधी अदालत से बरी हो जाता है। अक्सर निर्दोषों को फँसाने के लिए या अपनी चिढ़ किसी से निकालने के लिए पुलिस आर्म्स एक्ट की दफा 25 व आई.पी.सी. की धारा 307 तथा 506 का भी प्रयोग करती है। इसी प्रकार आंकड़ेबाजी व खानापूर्ति के लिए अक्सर पुलिस 'नारकोटिक्स एक्ट' का भी मनमाना प्रयोग करती है। पुलिस के पास लचीले क़ानूनों का फायदा उठाने के सौ तरीके हैं। यही नहीं, एफ.आई.आर. लिखने में हीलाहवाली करना या पीड़ित को थाने से फटकार कर भगा देना भी पुलिसिया निकम्मेपन का एक अंग है।

थानों के भीतर महिलाओं के साथ बलात्कार, उत्पीड़न, अपमान, फर्जी धरपकड़, फर्जी मुठभेड़, पुलिस अभिरक्षा में मौतें, अमानवीय यातनाएँ, महिलाओं से छेड–छाड, क़ानूनों का पुलिस द्वारा गलत इस्तेमाल व मानवाधिकारों के हनन ही शिकायतें तो पुलिस से बावस्ता ही हैं, अपनी कार्य पद्धति व अपराधों पर नियंत्रण के मामले में भी उसकी छवि संदेह के घेरे में है। अपराधियों के साथ हमारी पुलिस की सांठगांठ के किस्से तो जग जाहिर ही हैं। यहाँ तक कि लतीफ़ों तक में यह जाने लगा है कि हमारी पुलिस इतनी तेज़–तर्रार है कि उसे अपराध होने से पूर्व ही अपराध के बारे में पता चल जाता है। ऐसे लतीफ़ों का आधार पुलिस व अपराधियों की वह सांठगांठ ही है, जो अब बेपर्दा हो चुकी है। खुलेआम अपराधियों के साथ उठते–बैठते पुलिसकर्मियों को देखकर, माफ़ियाओं के घर पार्टियों में आने वाले पुलिस के ऊँचे अफसरों को देखकर, अपनी सुरक्षा व संरक्षण को लेकर आम आदमी के दिल पर क्या गुज़रती होगी, इस बात का सहजता से अंदाज़ा लगाया जा सकता है। आज़ादी से पूर्व पुलिस का चेहरा भले ही निहायत बर्बर रहा हो, पर तब अपराधियों पर नियंत्रण संतोषजनक था। जबकि न इतने थाने थे, न इतनी चौकियाँ, और न ही आज जैसे संसाधन। आज की पुलिस बर्बरता में तो आगे है ही, लापरवाही व सुस्ती के मामले में भी काफ़ी आगे है। यहाँ पुलिस विशेषज्ञ प्रोफेसर पॉल आर. ब्रास का अपनी पुस्तक–'दि न्यू कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया' में यह कहना गौरतलब है –''वस्तुस्थिति तो यह है कि पुलिस ग्रामीण या शहरी किसी भी क्षेत्र में व्यवस्था बनाए रखने का काम नहीं कर पा रही है। वह तो खुद ही अव्यवस्था उत्पन्न करने वाली एक खतरनाक ताकत के रूप में उभर रही है।''

आख़िर हमारे देश में पुलिस की ऐसी कलंकित छवि क्यों विद्यमान है, इस प्रश्न पर गौर करने पर सबसे पहले पुलिस का ढाँचागत स्वरूप सामने आता है। पुलिस का ढाँचागत स्वरूप आज भी वही है, जो गुलामी के दिनों में था। पहले अंग्रेज़ अफसरानों के अंगरक्षक का काम जो लोग करते थे, उन्हें पोलिस (police) कहा जाता था। कालांतर में आवश्यकतानुसार यही लोग सुरक्षा के दायित्वों का निर्वाह करने लगे। भारतीय पुलिस सन् 1772 से 1778 के मध्य वारेन हेस्टिंग्स के शासनकाल में अस्तित्व

में आई। इससे पहले सन् 1765 में 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' ने बिहार व उडीसा प्रान्तों में पुलिस संगठन की स्थापना की थी, जो कि अल्प अधिकारों वाला संगठन था। लार्ड मैकाले जैसे चतुर हाकिम ने इस संगठन में प्राण फूँकने का काम किया। उसने भारतीय लोगों को पुलिस में रखकर उन्हें ब्रिटिश हुकूमत ही रक्षा के लिए प्रयोग किया और उसी के अनुरूप उनकी मानसिकता को भी ढाला। सन् 1860 में आई.पी.सी. व सन् 1861 में भारतीय पुलिस क़ानून मैकाले की ही देन है। अंग्रेजों द्वारा तामील आई.पी.सी. व सी. आर.पी.सी. के क़ानून कमोबेश आज भी जरा से रद्दोबदल के बाद कायम हैं। अंग्रेज़ो के समय जिस उद्देश्य के लिए पुलिस बल का गठन किया गया था, वह उससे सौ प्रतिशत पूरा होता रहा और पुलिस भारतीय मूल के नागरिकों पर कहर बरपाती रही।

यद्यपि पुलिस तंत्र में सुधार के लिए कुछ कदम उठाए गए व कुछ क़ानून भी प्रदत्त किए गए पर ये निष्प्रभावी ही सिद्ध हुए। आई.पी.सी. की धारा 218 के तहत ऐसे प्रावधान हैं कि यदि पुलिसकर्मी दायित्वों का निर्वाह ठीक ढंग से नहीं कर रहा है तो उसके खिलाफ एफ.आई.आर. दायर की जा सकती है। यह अधिकार किसी भी नागरिक को है। यह धारा किसी भी सरकारी कर्मचारी पर लागू होती है। पर शायद की कभी इसका प्रयोग करते हुए किसी को देखा–सुना गया हो। समय–समय पर माननीय अदालतों ने भी पुलिस पर लगाम कसने व उन्हें सबक सिखाने के प्रयास किये, पर ये बहुत अल्प रहे और अदालतों द्वारा की गई टिप्पणी पर सरकारी स्तर व कोई ध्यान भी नहीं दिया गया।

गरिमापूर्ण, सुरक्षित, दबावमुक्त और स्वतन्त्रता के लिए मानवाधिकारों की परिकल्पना की गई। भारतीय संविधान के भाग–3 में भारतीय लोगों को अनेक अधिकार प्रदान किए गए हैं। 29 सितम्बर, 1993 को भारत के राष्ट्रपति ने एक अध्यादेश पारित कर मानवाधिकारों के राष्ट्रीय आयोग की स्थापना की।

भारतीय पुलिस का चेहरा बदलना कोई मुश्किल काम नही है, पर अफ़सोस इस बात का है कि शायद भ्रष्ट राजनीतिज्ञ और नौकरशाह यह चाहते ही नहीं हैं कि इस देश में पुलिस का स्वरूप सेवक या सहयोगी का हो। वे उसे आक्रांता ही बनाए रखना चाहते हैं, क्योंकि उन्हें उनसे अपने हित जो साधने हैं। जो ब्रिटिश हुकूमत करती आई, वही स्वाधीनता के बाद की सरकारें कर रही हैं। इस बाबत कुछ सुझाव नीचे दिए जा रहे हैं–

1. पुलिस में ढाँचागत बदलाव की आवश्यकता है। बदलाव ऐसा होना चाहिए कि उसमें ब्रिटिश काल की बू न आये। विशुध्द लोकतांत्रिक परम्पराओं के अनुरूप सब कुछ होना चाहिए।

2. पुलिस निरंकुशता पर अंकुश लगाने के लिए नए सिरे से क़ानूनों की समीक्षा व उनका पुनरीक्षण किए जाने की आवश्यकता है।

3. कानूनी स्तर पर ही कुछ ऐसे प्रयास भी होने चाहिए, जिनसे पुलिस पर राजनीतिक दबाव को रोका जा सके।
4. पुलिस के लिए आचार संहिता, आवश्यकता बना देनी चाहिए और उसका उल्लंघन होने पर कठोर दंड का प्रावधान होने चाहिए।
5. पुलिसबल की नियुक्तियाँ राजनीतिक इशारों व नेताओं की अनुशंसा पर न हों।
6. समय–समय पर होने वाले पुलिस के शोध कार्यों, समितियों व न्यायालयों आदि की टिप्पणियों पर गंभीरता से विचार करना चाहिए और उन्हें अमल में लाने के भरसक प्रयास भी होने चाहिए।
7. मानवाधिकारों का हनन न हो, इस दिशा में मज़बूत कदम उठाए जाने चाहिए। इससे जुड़े क़ानून–कायदों को अधिक प्रभावी बनाने की ज़रूरत है। ज़रूरत इस बात की भी है कि मानवाधिकार आयोग को और अधिक शक्तिसंपन्न बनाया जाए। इसके निर्णयों को बाध्यकारी बनाया जाए।

• • •

ykdrkf=d eY;k d vkbu e Hkkjrh; ify l

Nk;k 'kek•

लोकतांत्रिक पुलिसिंग की अवधारणा को समझने के लिए नितांत आवश्यक है कि भारत में लोकतंत्र की व्यवस्था को समझा जाए क्योंकि अगर देश में लोकतंत्र की नींव कमज़ोर रहेगी तो उसका असर देश की पुलिस–व्यवस्था पर पड़ना स्वाभाविक है। लोकतंत्र का शाब्दिक तात्पर्य है– 'जनता का शासन'। लोकतंत्र की परिभाषा के अनुसार इसको 'जनता द्वारा, जनता के लिए, जनता का शासन' कह सकते हैं। लोकतंत्र में लोक–कल्याण को ध्यान में रखकर शासन की नीतियों का निर्माण किया जाता है। अतः लोकतंत्र में जनमानस एवं जन–भावनाओं का सम्मान किया जाता है।

लोकतंत्र में क़ानून–व्यवस्था को बनाए रखने में पुलिस–प्रशासन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। एक अध्ययन के अनुसार, "एक लोकतांत्रिक समाज में पुलिस के निम्नलिखित लक्ष्य तथा उद्देश्य हैं:

1. अपराधों की रोकथाम तथा उनका पता लगाना
2. सार्वजनिक व्यवस्था को बनाए रखना
3. कानून के शासन का सम्मान
4. मानव की गरिमा का सम्मान, तथा
5. नागरिकों की आज़ादी, स्वतंत्रता और अधिकारों का सम्मान

पुलिस अनिवार्यतः एक सार्वजनिक सेवा है और लोकतंत्र में जनता के प्रति जवाबदेह होती है। यह ऐसी सार्वजनिक संस्था है जो सरकार की किसी भी अन्य एजेन्सी की तुलना में जनसंख्या के बड़े हिस्से को उनके रोज़मर्रा के जीवन में व्यापक रूप से प्रभावित करती है। वास्तव में पुलिस जन आलोचना का सर्वाधिक निशाना बनने वाली संस्था भी है इसलिए पुलिस द्वारा मानवाधिकारों का उल्लंघन अथवा दुर्व्यवहार तुरंत ही मीडिया तथा मानवाधिकार संस्थाओं की आलोचनात्मक निगाह में आ जाता है।"[1]

भारत में वर्तमान में कार्यरत पुलिस व्यवस्था का गठन ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों के दमन और अपने शासन को मज़बूत करने के लिए किया था। तत्कालीन पुलिस की कार्य–प्रणाली 1861 के भारतीय पुलिस अधिनियम पर आधारित थी। 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद शासन–व्यवस्था, जनता की सोच और मानसिकता आदि में काफ़ी परिवर्तन हुआ। भारत में लोकतांत्रिक शासन–व्यवस्था को अपनाया गया, किन्तु राजनैतिक और सामाजिक बदलाव के साथ पुलिस के चरित्र में कोई बहुत बड़ा परिर्वतन नहीं आया।

• उप–महानिरीक्षक, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, भारत

लोकतंत्र की स्थापना के बावजूद, एक ओर राजनीति का अपराधीकरण, अपराधियों के अपराध करने के तौर–तरीकों में बदलाव और अपराधों की संख्या में वृद्वि हुई। दूसरी ओर 1861 के पुलिस अधिनियम पर आधारित पुलिस की अपराधियों से मिली–भगत, अपराध को छुपाना, सत्तापक्ष के प्रति वफादारी और चाटुकारिता, जन–सामान्य के मानवाधिकारों का हनन, मनमानी और भ्रष्टाचार वाली ही छवि बनी रही।

समय–समय पर पुलिस की इस नकारात्मक और लोक–संवेदनहीन छवि को सुधारने के प्रयास भी किए गए। वर्ष 2006 में देश के सर्वोच्च न्यायालय ने पुलिस–सुधार की दिशा में महत्त्वपूर्ण निर्णय दिया और वर्ष 1977–81 के पुलिस आयोग की सिफारिशों के अनुरूप पुलिस को राजनीतिक और कार्यकारी दबावों से मुक्त करने और उसको कार्यात्मक स्वतंत्रता प्रदान करने का आदेश दिया। पुलिस सुधार सम्बन्धी सर्वोच्च न्यायालय का यह निर्णय मुख्यतः पुलिस को पारदर्शी कार्य प्रणाली अपनाने, जवाबदेह और लोकान्मुख बनाने हेतु था। इसके तहत हर राज्य को नए 'पुलिस अधिनियम' निर्माण करने को कहा गया। इसके अतिरिक्त पुलिसकर्मियों को बेहतर प्रशिक्षण, उनको संवेदनशील बनाना, उनकी शिक्षा का स्तर सुधारना, पुलिस कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि आदि बातों पर ज़ोर दिया गया; तथापि, कुछ हद तक केरल को छोड़ कर, अन्य राज्य और केन्द्र शासित प्रदेशों ने सामान्यतः इन निर्देशों का 'कागज़' पर ही अनुपालन किया।

यहाँ पर प्रश्न उठता है कि भारत में लोकतांत्रिक पुलिस की स्थापना की आवश्यकता क्यों है? राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के एक अध्ययन के अनुसार "जब पुलिस द्वारा मानवाधिकारों का उल्लंघन सामने आता है, तब इसके कारण नागरिकों के अधिकारों के रक्षक और स्थापक के रूप में उसकी छवि से लोगों का विश्वास समाप्त होता है। रोज़मर्रा की पुलिस कार्यवाही में मानवाधिकारों के प्रति सम्मान में विफलता पुलिस से जनसहानुभूति और समर्थन को दूर कर देती है। इससे पुलिस में जनता का विश्वास कम हो जाता है। पुलिस द्वारा मानवाधिकारों का उल्लंघन कई रूपों में हो सकता है। इसमें अवैध हिरासत / गिरफ़्तारी से लेकर मिथ्या आरोपण और प्रताड़ना शामिल हैं, जिससे पुलिस अथवा न्यायिक हिरासत में मौत तक हो सकती है। पुलिस हिरासत में बलात्कार और लापता होने के केस भी सामने आए हैं।"[2]

ऐसी स्थिति में भारत में पुलिस द्वारा मानवाधिकार हनन के बारे में मानवाधिकार संगठनों की राय पर विवेचन करना भी उचित होगा। इस विषय पर एक आलेख के अनुसार, "राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग और दूसरे मानवाधिकार संगठनों के आंकड़ों के मुताबिक 2007 से 2012 के दौरान 12 हजार व्यक्तियों की हिरासत के दौरान मौत हुई थी जबकि इस दौरान हिरासत में यातना देने के 3,500 से अधिक मामले सामने आए थे। मानवाधिकार आयोग के पास 2007 से 2012 के दौरान न्यायिक और पुलिस हिरासत में बलात्कार के 39 मामले भी आए थे।"[3]

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग द्वारा वर्ष 2016 में प्रकाशित पुस्तक 'क्राइम इन इंडिया, 2015' में दिए गए आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2015 में पुलिस हिरासत में 97 लोगों की मौत हुई। इनमें से 30 मामलों में व्यक्ति को न्यायालय द्वारा पुलिस अभिरक्षा में भेजा गया था और पुलिस हिरासत / लॉक–अप में उसकी मौत हुई। शेष 67 मामलों में व्यक्ति को न्यायालय द्वारा पुलिस अभिरक्षा में नहीं भेजा गया, तथापि पुलिस हिरासत/लॉक–अप में उसकी मौत हुई। इन 97 मामलों की कारणवार प्रस्तुति निम्न प्रकार हैः

कारण	वर्ष 2015 में मौतों की संख्या
पुलिस हिरासत में चोटें	6
पुलिस हिरासत से पूर्व चोटें	6
भीड़ का आक्रमण / दंगा	1
अन्य दोषियों द्वारा चोट	3
सुसाइड	34
पुलिस हिरासत से भागते हुए	5
बीमारी	11
प्राकृतिक मौत	9
कोर्ट स्थानांतरण के दौरान सड़क दुर्घटना	1
अस्पताल में मौत	12
अन्य	9
कुल	97

स्रोतः– क्राइम इन इंडिया 2015, राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो।

इन आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2015 में 34 लोगों की मौत पुलिस हिरासत में आत्महत्या करने से, 6 लोगों की मौत पुलिस हिरासत में चोटों से और 5 लोगों की मौत पुलिस हिरासत से भागते हुए हुई। यह स्पष्टतः भारतीय पुलिस की कार्य प्रणाली पर तीखा आक्षेप करता है और पुलिस द्वारा मानवाधिकार उल्लंघन की ओर इंगित करता है। इसी प्रकार वर्ष 2015 में पुलिस द्वारा गोली चलाने / लाठी चार्ज द्वारा मृत/घायल व्यक्तियों के आंकड़े निम्न प्रकार हैंः–

पुलिस द्वारा गोली चलाना		पुलिस द्वारा लाठी चार्ज	
मृत	घायल	मृत	घायल
42	39	07	298

राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2015 में राज्य पुलिस द्वारा मानवाधिकार उल्लंघन की 94 शिकायतें राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को प्राप्त हुईं जिनमें से 12 शिकायतें गलत पाई गईं। अतः कह सकते हैं कि वर्ष 2015 में राज्यों की पुलिस द्वारा मानवाधिकार उल्लंघन की कुल 82 शिकायतें प्राप्त हुईं।[4]

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की 21 अक्टूबर, 2016 की प्रैस रिलीज़ के आंकड़ों के अनुसार अक्टूबर, 2015 से सितम्बर, 2016 तक पुलिस के खिलाफ 32,498 शिकायतें दर्ज़ की गईं, जिनमें पुलिस एनकाउन्टर के 206 मामले थे। छत्तीसगढ़ में पुलिस एनकाउन्टर के सर्वाधिक 66 मामले, असम में 43, झारखंड में 15, ओड़िशा में 10, महाराष्ट्र और मेघालय प्रत्येक में 7 और उत्तर प्रदेश तथा मणिपुर प्रत्येक में 5 मामले दर्ज़ किए गए। पुलिस अभिरक्षा में मौत के 192 और न्यायिक अभिरक्षा में मौत के 1,757 मामले दर्ज़ किए गए। उत्तर प्रदेश में पुलिस और न्यायिक हिरासत में सर्वाधिक मौतें दर्ज़ की गईं– पुलिस हिरासत में कुल 192 मामलों में 27 और न्यायिक हिरासत में कुल 1,757 में 401 मौतें। अतः स्पष्ट है कि अभी भी पुलिस द्वारा मानवाधिकार हनन की काफ़ी शिकायतें प्राप्त होती हैं और भारत में पुलिस अभी भी लोकतांत्रिक कार्य प्रणाली से काफ़ी दूर है।

ऐसी स्थिति में सवाल उठता है कि भारतीय पुलिस की समस्याओं को कैसे दूर किया जाए और उसे कैसे लोकतांत्रिक पुलिस बनाया जाए? यह यक्ष–प्रश्न हमें पुनः इस लेख के पहले अनुच्छेद पर ले जाएगा जहाँ हमने कहा था कि अगर देश में लोकतंत्र कमज़ोर है तो उसका प्रभाव देश की पुलिस–व्यवस्था पर भी पड़ेगा। मान लिया कि देश में पुलिस–व्यवस्था पूर्णतः लोकतांत्रिक हो गई, पुलिस ने भीड़ पर लाठी–चार्ज/गोली चलाना बंद कर दिया, एनकाउन्टर बंद कर दिया, बेहतर प्रशिक्षण मिल गया और सभी पुलिस कर्मचारी संयत, शालीन और जिम्मेदारीपूर्ण व्यवहार करने लगे तो क्या इस देश की जनता क़ानून का पूर्णतः पालन करने लगेगी, क्या जनता अनियन्त्रित भीड़ का रूप लेकर सरकारी सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाना और क़ानून को अपने हाथ में लेना बंद कर देगी, क्या समाज में महिलाओं और बच्चों को आदर–सम्मान मिलने लगेगा और महिलाओं, बच्चों के प्रति अपराध और अन्य जघन्य अपराध बंद हो जाएंगे। वस्तुतः अगर पुलिस लोकतांत्रिक हो भी जाए तो भी ऐसा उपरिलिखित कुछ भी नहीं होगा क्योंकि हमारे देश में सामाजिक और नैतिक मूल्यों का पूर्णतः ह्रास हो चुका है। इनको ठीक करने के लिए पूरी व्यवस्था में परिवर्तन लाना आवश्यक है। जब तक सम्पूर्ण व्यवस्था में परिवर्तन आता है, तब तक पुलिस को लोकतांत्रिक बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव हैं –

1. आज आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय पुलिस–व्यवस्था को मानव–मात्र के प्रति संवेदनशील बनाया जाए, विशेषकर महिलाओं, बच्चों, बुजुर्ग़ों आदि के प्रति।

2. उनके काम–काज का तरीक़ा बदला जाए। पुलिस की संख्या में वृद्धि की जाए,

जिससे इस देश में पुलिस का प्रति हजार व्यक्ति अनुपात बढ़ सके और पुलिस को अनियन्त्रित भीड़ को काबू करने के लिए लाठी–चार्ज/गोली चलाना जैसे उपाय न अपनाकर बातचीत और लोकतांत्रिक प्रक्रिया से ही भीड़ पर नियंत्रण किया जा सके। पुलिस के निचले–वर्ग के कर्मचारियों के लिए काम–काज की अवधि निर्धारित होनी चाहिए। उनको अवकाश मिलना चाहिए और परिवार की देख–भाल के लिए वक्त मिलना चाहिए। ऐसा करने से पुलिस के काम–काज के तनावपूर्ण वातावरण में कमी आएगी जो कि उनके व्यवहार में परिलक्षित होगी।

3. पुलिस के प्रशिक्षण में मानवीय–व्यवहार संम्बन्धी मुद्दे शामिल किए जाने चाहिए। पुलिस को मानवीय–व्यवहार समझाना चाहिए जिससे कि वे परिस्थिति के अनुरुप लोकतांत्रिक मूल्यों के अंतर्गत कार्यवाही कर सकें। हर परिस्थिति को एक ही प्रकार से देखने की पुलिस की मानसिकता को बदलना होगा।

4. भारतीय पुलिस को कार्यात्मक स्वतंत्रता देने के साथ–साथ जवाबदेही सुनिश्चित की जाए और पुलिस में सामाजिक संतुलन स्थापित करके उसे लोकतांत्रिक मापदंडों के अनुरुप बनाया जाए।

इन सुझावों पर अमल करने से मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि पुलिस के काम–काज में परिवर्तन आएगा और भारत में लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षक मानवीय पुलिस व्यवस्था की स्थापना हो सकेगी।

lnHk%&

1. http:èènhrc.nic.inèignouèUnit3HèHUnit_3.pdf
2. http:èènhrc.nic.inèignouèUnit3HèHUnit_3.pdf
3. http:èèmeresampadakiy.blogspot.inè2014è12èblog-post_7.html
4. Crime in India 2015, National Crime Records Bureau

• • •

U;k; djuk lHkh ufrd drZO;ksa ds ikyu ds leku gS

– Anonymous

lonu'khy] tokcng ,o ukxfjdkUe[kh ifyl

tkye flg•

एक सुव्यवस्थित लोकतंत्र एवं कल्याणकारी राज्य में पुलिस को एक प्रशिक्षित एवं क़ानून प्रवर्तन लोकतांत्रिक संस्था के रूप में माना जाता है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य एवं यहाँ के नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अवसर की समता के अधिकारों की गारंटी दी गई है। मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम की धारा 2 (1) घ, मानव अधिकारों को संविधान द्वारा प्रत्याभूत या अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं में सम्मिलित और भारत के न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय, व्यक्ति के जीवन, आज़ादी, समानता और गरिमा से संबंधित अधिकारों के रूप में परिभाषित करती है। भारत मे पुलिस प्रशासन ब्रिटिश विरासत के रूप में अपनी पहचान रखती है। 1861 का पुलिस एक्ट पुलिस को एक *lok* के बजाय एक *cy* के रूप में मानता है। भारत में स्वतंत्रता के बाद पुलिस को संविधान की सातवीं अनुसूची में सूची 2 राज्य सूची की प्रविष्टि 2 में स्थान दिया गया है। और इसमें परिकल्पना की गई है कि पुलिस प्रशासन तथा सार्वजनिक व्यवस्था और स्वास्थ्य राज्य द्वारा रक्षित होनी चाहिए। पुलिस का उत्तरदायित्व क़ानून एवं व्यवस्था बनाए रखना है। नागरिकों के मानवाधिकारों के संरक्षण में पुलिस की भूमिका एवं जवाबदेही लोकतंत्र में महत्त्वपूर्ण है। आज भारत में लोकतंत्र उन्मुखी पुलिस तंत्र की मानवाधिकारों के संरक्षण में सुधारात्मक भूमिका रही है। लोकतांत्रिक पुलिस के आधार स्तंभ जिसमें ifrfufèr, mÙkjnk;h एवं tokcng पुलिस व्यवस्था का समावेश है। f}rh; i'kklfud lèkkj vk;kx ने lkoltfud 0;oLFkk ij viuh ikpoh fjikVl में इन आधार स्तंभों को आज की पुलिस की बदलती भूमिका एवं परिदृश्य के महत्त्वपूर्ण पहलू बताए है। ifrfufèk ifyl का अर्थ यह है कि पुलिस समाज के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व करती जिसमें वे अपनी सेवाएँ दे रहे है। mÙkjnk;h Ikfyl का अर्थ है कि पुलिस का प्रत्येक सिपाही से लेकर डी.जी.पी. तक अपने कार्य, क़ानून एवं लोकतांत्रिक संस्थाओं के प्रति उत्तरदायी है। Tkokcng का अर्थ है कि पुलिस समाज के नागरिको के संविधान में प्रदत्त मौलिक अधिकारों, भारतीय दंड संहिता एवं दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों की पालना हेतु जवाबदेह है।

भारत में पुलिस द्वारा मानवधिकारों के संरक्षण के संबंध में कई आयोगों एवं समितियों ने अपने अपने ढंग से रिपोर्ट्स पेश की है। जिनमें राष्ट्रीय पुलिस आयोग 1977—1981, वोहरा कमेटी 1993, रिबेरो कमेटी 1998, पद्मनाभैया कमेटी 2000 एवं मानवाधिकार आयोग प्रमुख है।

• हैड कांस्टेबल, राजस्थान पुलिस एवं शोध छात्र, लोक प्रशासन, इग्नू, नई दिल्ली

हालांकि, मानवाधिकारों की अवधारणा जो अमरीकी स्वतंत्रता की घोषणा 1776 के पश्चात् वैश्विक स्तर पर प्रविष्ट हुई, साथ ही सार्वभौमिक मानवाधिकारों की घोषणा 10 दिसम्बर, 1948 को अंगीकृत की गई है। इन सब प्रयासों के आलोक में पुलिस की कार्यप्रणाली का भारतीय लोकतंत्र के परिप्रेक्ष्य में पुलिस की मानवाधिकारों के संरक्षण में भूमिका का विवरण निम्न प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है।

Hkkjrh; lafoèkku esa inÙk ekfyd vfèkdkj ,oa fxj¶rkj 0;fä dk ekuo vfèkdkj

भारत के संविधान की प्रस्तावना में दर्शाए गए न्याययुक्त आदर्शो का प्रतिरूप हमें सविंधान के भाग–3 में लोगों के मौलिक अधिकारों के रूप में दिखाई देता है। हमें संविधान द्वारा 7 मौलिक अधिकार प्रदान किए गए थे, किन्तु 44वें संवैधानिक संशोधन (1978) द्वारा संपत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकार के रूप में समाप्त कर दिया गया है। अब संपत्ति का अधिकार केवल एक क़ानूनी अधिकार के रूप में है। इस प्रकार अब भारतीय नागरिकों को निम्न 6 अधिकार प्राप्त है

1- lekurk dk vfèkdkj ¼vuqPNsn 14&18½

2- Lora=rk dk vfèkdkj ¼vuqPNsn 19 &22½

3- 'kks"k.k ds fo#) vfèkdkj ¼vuqPNsn 23&24½

4- èkkfeZd Lora=rk dk vfèkdkj ¼vuqPNsn 25&28½

5- 'kSf{kd ,oa lkaL—frd vfèkdkj ¼vuqPNsn 29&30½

6- laoSèkkfud mipkjksa dk vfèkdkj ¼vuqPNsn 32½

संविधान के कुछ सिद्धान्त जो क़ानून के शासन एवं पुलिस के दिन–प्रतिदिन के कामकाज में प्रयोज्य हैं, जो पुलिस की मनमानी शक्तियों पर रोक लगाते है जैसे संविधान का अनुच्छेद 14 जिसमें विधि के समक्ष समता की बात कही गई है कि राज्य, भारत के राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा। सभी व्यक्तियों को समानता का अधिकार दिया गया है जिसमें पुलिस क़ानून लागू कराते समय अमीर या गरीब के आधार पर भेदभाव नहीं कर सकती। इसमें मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा में अंतर्निहित इस सिद्धान्त को समाविष्ट किया गया है कि 'विधि के समक्ष सभी समान है और बिना किसी विभेद के विधि के समान संरक्षण के हकदार है।' अनुच्छेद 21 जीवन और वैयक्तिक स्वतंत्रता का संरक्षण प्रदान करता है। गिरफ़्तारी के संबंध में संविधान के अनुच्छेद 21 के अनुसार किसी भी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं। पुलिस को इस उपबंध का पालन

करना अनिवार्य है। अनुच्छेद 22 (1) में किसी व्यक्ति जिसे गिरफ़्तार किया गया है, को गिरफ़्तारी के कारणों से यथाशीघ्र अवगत कराये बिना अभिरक्षा में निरुद्ध नहीं रक्षा जाएगा या अपनी रूचि के वकील से परामर्श करने एवं प्रतिरक्षा कराने के अधिकार से वंचित नहीं किया जाएगा। अनुच्छेद 22 (2) व्यक्ति जिसे गिरफ़्तार किया गया है, गिरफ़्तारी के स्थान से मजिस्ट्रेट के न्यायालय तक यात्रा के लिए आवश्यक समय को छोड़कर ऐसी गिरफ़्तारी से चौबीस घंटे की अवधि में निकटतम मजिस्ट्रेट के न्यायालय के समक्ष पेश किया जाएगा। अनुच्छेद 32 जिसमें संवैधानिक उपचारों का अधिकार दिया गया है के अंतगर्त रिट याचिका का प्रावधान किया गया है। जिसमें पहला cnh iR;{khdj.k जो अवैध गिरफ़्तारी की रोकथाम हेतु न्यायालय द्वारा जारी किया जाता है। इसमें यदि पुलिस किसी व्यक्ति को अवैध हिरासत में रखती है तो कोई भी नागरिक हाईकोर्ट में अपनी अवैध गिरफ़्तारी से मुक्ति हेतु यह रिट याचिका दायर कर सकता है। अनुच्छेद 32 के अंतगर्त सुप्रीम कोर्ट एवं अनुच्छेद 226 के अंतर्गत हाईकोर्ट को इन पर सुनवाई का अधिकार है।

Hkkjrh; nM ifØ;k lafgrk esa fxj¶rkj 0;fä ds ekuo vfèkdkj

भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में गिरफ़्तार व्यक्ति के मानव अधिकार हैं जिनका पालन पुलिस को करना पड़ता है वे निम्न प्रकार है–

efgykvksa ds fy, fo'ks"k vfèkdkj दं.प्र.सं 46¼4½ & विशेष परिस्थितियों को छोड़कर किसी भी महिला को सूर्यास्त एवं सूर्योदय के बीच गिरफ़्तार नहीं किया जा सकता है; यदि इस अवधि के दौरान गिरफ़्तारी की जानी है तो महिला पुलिस अधिकारी को मजिस्ट्रेट की पूर्व अनुमति अवश्य लेनी चाहिए।

,sls lKs; vijkèk ftlesa lkr o"kZ rd ds nM dk ikoèkku gS ds fy, fo'ks"k ifØ;k – इस प्रकार के अपराधों में धारा 41 (क) दं. प्र. सं. के तहत पुलिस अधिकारी द्वारा अभियुक्त को गिरफ़्तार करने के बजाय नोटिस जारी करना पड़ता है। यदि अभियुक्त पुलिस अधिकारी द्वारा दी गई नियत अवधि में उस पर लगाए गए आरोपो का जवाब देने के लिए नियत अवधि में उपस्थित होता है एवं नोटिस में दी गई शर्तों का पालन करता है तो उसे गिरफ़्तार नहीं किया जाकर संबंधित न्यायालय द्वारा बुलाने पर अपनी उपस्थिति देने का निर्देश देकर छोड़ दिया जाता है। यदि पुलिस अधिकारी के पास गिरफ़्तारी के कारणों के पर्याप्त आधार मौजूद हो तो इन कारणों को रिकॉर्ड में लेकर अभियुक्त को गिरफ़्तार किया जा सकता है एवं जाँच अधिकारी को लिखित में न्यायालय को कारण बताने होंगे।

धारा 50 दं.प्र.सं.– गिरफ़्तार किए गए व्यक्ति को गिरफ़्तारी के आधारों एवं जमानत के प्रावधानों की जानकारी देना अनिवार्य है।

धारा 51 दं.प्र.सं.– गिरफ़्तार किए गए व्यक्ति की तलाशी में प्राप्त सामानों की रसीद

दी जाएगी एवं 51(2) दं.प्र.स. के अनुसार स्त्री की तलाशी लेते समय उसकी शिष्टता का ध्यान रखते हुए किसी स्त्री द्वारा ली जाएगी ।

धारा 53 दं.प्र.सं.– पुलिस अधिकारी की प्रार्थना पर अभियुक्त का चिकित्सा परीक्षण ।

धारा 54 दं.प्र.सं.– गिरफ़्तार व्यक्ति की स्वंय की प्रार्थना पर मजिस्ट्रेट के आदेश से चिकित्सक से चिकित्सा परीक्षण।

धारा 57 दं.प्र.सं– गिरफ़्तार किए गए व्यक्ति को 24 घंटे सें अधिक निरूद्ध नहीं किया जाएगा।

ekuokfèkdkj ,oa iqfyflax% mPpre U;k;ky; ds ,frgkfld fu.k; ,oa iqfyl ds fy, fn'kk&funsZ'k ,oa ekuokfèkdkj xkbM ykbu

मानवाधिकार एवं पुलिसिंग के संबंध में उच्चतम न्यायालय ने अपने 16 ऐतिहासिक निर्णयों में पुलिस के लिए दिशा–निर्देश जारी किए हैं साथ ही, मानवाधिकार आयोग ने इस संबंध में 4 महत्त्वपूर्ण गाइड लाइन जारी की है। जिसमें मुख्य रूप से उच्चतम न्यायालय की हथकड़ी के संबंध में Áse 'kadj 'kqDyk dsl में एवं गिरफ़्तारी की प्रक्रिया, हिरासतीय हिंसा एवं सहायता के संबंध में Mh- ds- clq cuke if'pe caxky jkT; केस में पुलिस के संबंध में जो दिशानिर्देश जारी किए है उनका उल्लेख किया जा रहा है।

हथकड़ी के संबंध में Áse 'kadj 'kqDyk dsl में उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित दिशा–निर्देश जारी किए हैः

1. gFkdMh dk iz;ksx RkHkh fd;k tk, tc dksbZ O;fä%
   - गंभीर असंज्ञेय अपराधों में शामिल हो, पहले किसी अपराध के लिए दोशी पाया गया हो
   - उग्र स्वभाव का, हिंसक, उपद्रवी या विघ्नकारी हो
   - उसके भागने की कोशिश करने की संभावना हो
2. जिस कारण से हथकड़ी लगाई है उसका उल्लेख साफ–साफ *jkst ukepk vke* में होना चाहिए। उसे न्यायालय में भी अवश्य दिखाना चाहिए।
3. न्यायालय में पेश करते समय अगर कैदी को हथकड़ी लगाने की ज़रूरत हो तो पुलिस को न्यायालय की अनुमति लेनी जरूरी है।

उच्चतम न्यायालय ने इस संबंध में कुछ कठोर टिप्पणियाँ की है। न्यायालय ने कहा है कि कैदियों पर हथकडियों और बेड़ियों के उपयोग से मानव सम्मान की आधारभूत

गारंटी का उल्लंघन होता है जो कि हमारे संविधान के मौलिक अधिकारों का हिस्सा है और अनुच्छेद 14 (कानून के समक्ष समानता), 19 (मौलिक स्वतंत्रता) और 21(व्यक्तिगत स्वतंत्रता और जीवन जीने के अधिकार) के अनुरूप नहीं है।

गिरफ़्तारी एवं निरोध के संबंध में Mh-d- cl| cuke if'pe cxky jkT; केस में उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित दिशा–निर्देश जारी किए हैः

1. जानकारी निकालने के लिए थर्ड डिग्री तरीकों या यातना के किसी भी रूप का उपयोग करने की अनुमति नहीं है।
2. गिरफ़्तारी करने वाले पुलिस अधिकारी को अपनी पहचान एवं नाम की दृष्यमान पट्टी एवं पदनाम स्पष्ट एवं सटीक रूप से धारण करनी चाहिए।
3. गिरफ्तार व्यक्ति से पूछताछ के दौरान पूछताछ करने वाले पुलिस कार्मिकों का ब्यौरा इस हेतु निर्धारित रजिस्टर या रोजनामचा आम में अवश्य अंकित किया जावे।
4. गिरफ़्तार करने वाले पुलिस अधिकारी को गिरफ़्तारी का एक मेमो तैयार करना चाहिए जिसमें गिरफ़्तार व्यक्ति का नाम और गिरफ़्तारी की तारीख और क्षेत्र के किसी सम्मानजनक व्यक्ति एवं गिरफ़्तार व्यक्ति के हस्ताक्षर होने चाहिए।
5. गिरफ्तार या रोके गए व्यक्ति के परिवार, मित्र या अन्य व्यक्ति जो उसमें रूचि या उसके कल्याण के संबंध में रुचि रखने वाला हो, को गिरफ़्तारी या रोके गए स्थान की जितनी जल्दी हो सके सूचना दी जाकर गिरफ़्तार व्यक्ति को उसके अधिकारों के बारे में बताया जाना चाहिए।
6. गिरफ्तार व्यक्ति को पूछताछ के दौरान अपने वकील से मिलने की अनुमति दी जावे किन्तु संपूर्ण पूछताछ के दौरान नहीं।
7. गिरफ्तार व्यक्ति की गिरफ्तारी का समय, स्थान एवं हिरासत की सूचना टेलीग्राफ द्वारा मित्र/संबंधी को 8–12 घंटे के भीतर–भीतर दी जानी चाहिए तथा यदि गिरफ्तार व्यक्ति दूसरे शहर या थाने का रहने वाला है तो सूचना संबंधित जिला विधिक संगठन एवं पुलिस थाने द्वारा दी जानी चाहिए।
8. गिरफ़्तारी के संबंध में गिरफ़्तारी के स्थान की प्रविष्टि रोजनामचा आम में करनी चाहिए। गिरफ़्तार व्यक्ति की गिरफ्तारी की सूचना किन सगे संबंधियों को दी गई, उनके नाम पते एवं उसे किस पुलिस अधिकारी की हिरासत में रखा गया है, की प्रविष्टि रोजनामचा आम में की जानी चाहिए।

9. गिरफ़्तार व्यक्ति यदि अपनी चिकित्सा परीक्षा हेतु निवेदन करता है तो ऐसी चिकित्सा परीक्षा किसी चिकित्सक द्वारा अवश्य कराई जानी चाहिए। तथा निरीक्षण मिमो में शरीर पर आई सभी चोटों का उल्लेख किया जाना चाहिए एवं जिस पर गिरफ़्तार व्यक्ति एवं गिरफ़्तार करने वाले पुलिस अधिकारी के हस्ताक्षर होने चाहिए। मेमो की प्रति गिरफ़्तार व्यक्ति को उपलब्ध करवाई जानी चाहिए।

10. गिरफ़्तार व्यक्ति की चिकित्सा परीक्षा प्रत्येक 48 घंटे में राज्य स्वास्थ्य विभाग द्व ारा अनुमोदित प्रशिक्षित चिकित्सक से अवश्य करवाई जानी चाहिए।

11. गिरफ़्तारी के संबंध में सूचना जिला/राज्य स्तर के पुलिस कंट्रोल रूम में प्रदर्शित की जानी चाहिए। गिरफ़्तारी करने वाले पुलिस अधिकारी को गिरफ़्तारी की सूचना 12 घंटे के भीतर अवश्य दी जानी चाहिए।

12. उपर्युक्त वर्णित निर्देशों का पालन नहीं करने वाले या इनकी अनुपालना में विफल रहने वाले पुलिस अधिकारी के विरुद्ध विभागीय एवं न्यायालय अवमानना की कार्यवाही प्रारम्भ की जानी चाहिए।

i|fy l }kjk ekuokfèkdkjk d guu d d|N : i

- प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज़ करने से इन्कार करना
- एफ.आई.आर. की प्रति देने से इन्कार करना व रोज़नामचा आम में प्रविष्टि नहीं करना
- रिश्वत की माँग करना
- घटनास्थल पर समय पर नहीं पहुँचना
- जामा तलाशी में लिए गए व जब्त किए गए सामानों की सूची नहीं बनाना व तलाशी के दौरान मिली नकदी व कीमती वस्तुएँ फ़र्द बरामदगी में न बताकर उसे हड़प लेना
- सही ढंग से अनुसंधान नहीं करना अर्थात् तथ्यों के साथ छेड़छाड़ करना व अनुसंधान के दौरान FkMZ fMxzh eSFkM l का प्रयोग करना
- पुलिस हिरासत में अमानवीय यातनाएँ देना
- फर्जी मुठभेड़ बताकर अपराधियों को मार देना
- गैर क़ानूनी रूप से व्यक्तियों को रोके रखना जिसकी प्रविष्टि रोज़नामचा आम नहीं करना

Hkkjr e i|fy l }kjk ekuokfèkdkj guu d dkj.k

मानवाधिकार उल्लंघन की घटनाओं पर नजर रखने वाली संस्थाओं जैसे मानवाधिकार आयोग, ऐमनेस्टी इंटरनेशनल ,ह्यूमन राइट्स वाच एवं कॉमन वेल्थ ह्यूमन राइट्स इनिशिएटिव ने अपने–अपने ढ़ंग से भारतीय पुलिस द्वारा मानवाधिकार हनन के कारण बताए है जो निम्न प्रकार है –

- पुलिस द्वारा अपने को क़ानून से ऊपर मानना
- पुलिस के पेशेवर मानदंड अच्छे नहीं होना
- पुलिस कांस्टेबुलरी की कार्यदशाएँ अच्छी नहीं होना
- पुलिस कांस्टेबुलरी के कैरियर विकास की कोई गुंजाइश नहीं
- पुलिस कार्यों में राजनीतिक हस्तक्षेप
- पुलिस कार्यों में व्याप्त भ्रष्टाचार

l|>ko

भारतीय लोकतंत्र के परिप्रेक्ष्य में पुलिस की मानवाधिकारों के संरक्षण में भूमिका को प्रभावी बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं–

- वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों को अपने दिन प्रतिदिन के कामकाज में अधीनस्थ पुलिस अधिकारियों के लिए रोल मॉडल के रूप में काम करना चाहिए; साथ ही, उन्हे पुलिस आचार संहिता एवं पुलिस के मानदंडों का अनुपालन करना चाहिए। पुलिस कार्यों में मूल्य एवं नैतिकता को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
- पुलिस हिरासत में मौतों की रोकथाम हेतु पुलिस थाने के समस्त कमरों, अनुसंधान कक्षों एवं हवालातों में सी.सी.टी.वी. कैमरे लगाए जाने चाहिए।
- पुलिस कर्मचारियों को मानवाधिकारों के प्रति संवेदनशील बनाने के लिए पुलिस प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में मानवाधिकार के पीड़ितों के साथ मानवीय व्यवहार एवं विधिक सहायता और आर्थिक पुनर्वास प्रदान करने के तरीकों का समावेश किया जाना चाहिए।
- पुलिस द्वारा अपराध पीड़ितों को भेदभाव रहित आवश्यक सहायता उपलब्ध कराई जानी चाहिए एवं उन्हे विधिक सहायता एवं राज्य द्वारा देय अन्य आर्थिक सहायता के उपबंधों बारे में बताया जाना चाहिए।
- पुलिस कांस्टेबल को मानवाधिकारों से संबंधित एक पुस्तिका उपलब्ध करवाई जानी चाहिए जिसमें मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं का समावेश होना चाहिए। साथ नागरिक चार्टर का समावेश होना चाहिए।
- पुलिस प्रशिक्षण केन्द्रों को चाहिए कि पुलिस कर्मियों को प्रशिक्षण के दौरान राष्ट्रीय / राज्य मानवाधिकार आयोग की वेबसाइट्स पर मानवधिकारों से संबंधित अध्ययन सामग्री का पठन –पाठन कराना चाहिए एवं पुलिसकर्मियों को इन मुद्दों से संबंधित सेमीनार, वर्कशॉप, वाद –विवाद एवं इग्नू के मानवाधिकार से संबंधित पाठ्यक्रमों में भाग लेने हेतु प्रेरित किया जाना चाहिए।
- पुलिस कांस्टेबल के पदों पर होने वाली भर्ती के लिए शैक्षणिक योग्यता दसवीं से बढ़ाकर स्नातक करना ताकि मानवाधिकारों की समझ रखने वाले समझदार

व्यक्ति पुलिस में भर्ती हो सके।

- पुलिस थानों में सुधार के लिए एफ आई आर का निर्बाध रजिस्ट्रेशन अनिवार्य किया जाना चाहिए। पुलिस, लोक अभियोजक एवं अपराधियों के गठजोड़ को निष्प्रभावी किया जाना चाहिए।
- पुलिस को अन्वेषण के लिए वैज्ञानिक विधि का प्रयोग करना चाहिए।
- पुलिस आयोग (धर्मवीर आयोग) की सिफारिशें तुरंत लागू की जानी चाहिए।
- पुलिसकर्मियों को पदोन्नति के अविलम्ब अवसर प्रदान किए जाने चाहिए।
- सामुदायिक पुलिस योजनाओं का प्रभावी कार्यान्वयन किया जाना चाहिए।
- पुलिस में सूचना का अधिकार एवं पुलिस आसूचना तंत्र को सुदृढ़ किया जाना चाहिए।
- स्मार्ट पुलिसिंग का मॉडल अविलंब लागू किया जाना चाहिए।
- पुलिस द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज़ करने की प्रक्रिया, अनुसंधान की प्रगति को ऑनलाइन किया जाना चाहिए एवं इनकी प्रति आमजन के लिए पुलिस विभाग की वेबसाइट पर सर्वसुलभ होनी चाहिए।
- पुलिस कार्यों में राजनीतिक हस्तक्षेप को निष्प्रभावी किया जाना चाहिए एवं पुलिस– कर्मियों के विरूद्व शिकायतों की जाँच के लिए पुलिस शिकायत प्राधिकरण का गठन किया जाना चाहिए।

fu"d"k

भारतवर्ष में यह एक चिंता का विषय है कि लोकतांत्रिक स्वतंत्रता के 70 वर्षों बाद आज भी आमजन एवं पुलिस के बीच अविश्वास का भाव है। लोग सोचते है कि पुलिस एक सत्तायुक्त संगठन है जो आमजन के मानवाधिकारों का न तो आदर करती है न ही सुरक्षा। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में पुलिस के प्रति लोगो का विश्वास नहीं है। यहाँ पुलिस के कांस्टेबल की भर्ती दोषपूर्ण है। भारत में पुलिस में निचले स्तर की जितनी भर्ती होती है वह राजनीतिक हस्तक्षेप से निरपेक्ष नहीं होती है तथा उसमें भ्रष्टाचार की बू आती है। Vkalijsalh bVjus'kuy की वर्ष 2017 की रिपोर्ट के अनुसार भारत में सबसे भ्रष्ट पुलिस को माना गया है। 85 प्रतिशत जनता के अनुसार पुलिस डिपार्टमेंट सबसे ज़्यादा भ्रष्ट है। जैसा कि वर्ष 2016 में l;qä jkT; vesfjdk dk fMikVZesaV vkWQ LVsV~l द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट में यह उल्लेख किया गया है कि भारत के कुछ क़ानून प्रवर्तन अधिकारी मानव तस्करों एवं वेश्यालयों के मालिकों का बचाव करते है एवं उनसे रिश्वत लेते है। पुलिस में अधिकतर भर्तियों के परीक्षा पेपर परीक्षा से पहले आउट हो जाते हैं तथा कांस्टेबल की शैक्षणिक योग्यता भी दसवीं तक ही है। जिससे हम आज इस विज्ञान के युग में कैसे पेशेवर पुलिसिंग की कामना कर सकते है। उसकी वेतनमान भी स्तरीय नहीं है। अधिकतर पुलिस के अधिकारी राजनीतिक रूप से अपना निर्णय करते है। जहाँ तक मेरी सोच है कि यदि समय पर राष्ट्रीय पुलिस

आयोग की सिफारिशें सरकारों द्वारा मान ली जाती तो पुलिस को यह दिन नहीं देखने पड़ते। राजनेता एवं नौकरशाह पुलिस में सुधार होना देखना नहीं चाहते। यहाँ पर दो उदाहरण मैं भारतीय पुलिस से इतर व्यक्त करना चाहता हूँ जिसमें igyk mnkgj.k ब्रिटेन में स्थानीय पुलिस अधिकारी का है जिसे ब्रिटेन में बॉबी कहा जाता है उसकी समाज में इतनी इज़्ज़त है कि वह वहाँ की जनता में वहाँ के सांसद से भी अधिक विश्वस्त माना जाता है। वहाँ की जनता बॉबी में 82 प्रतिशत विश्वास करती है और वहाँ के सांसद में 44 प्रतिशत विश्वास करती है। nl jk mnkgj.k वर्ष 2003 में कनाडा सरकार की पुलिस में जनता के विश्वास के सर्वे का है जिसमें पाया गया कि वहाँ 82 प्रतिशत लोग पुलिस में विश्वास करते हैं एवं 43 प्रतिशत लोग वहाँ की संघीय संसद में विश्वास करते है। इसमें फर्क यह है कि भारत में पुलिस को कार्य में स्वायत्तता नहीं है। यहाँ के बीट कांस्टेबल को केवल चरित्र, पासपोर्ट , लाइसेंस सत्यापन पर अपनी टिप्पणी अंकित करने से ज़्यादा कोई शक्ति नहीं है उसे अपराध विवेचना का काम भी नही दिया जाता है तो वह समाज में अपनी पहचान कैसे बनाएगा?

हालांकि, हम आज एक लोकतांत्रिक देश में रहते है। आज पुलिस राज्य के एक महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में उभर कर सामने आई है एवं लोकतांत्रिक मानदंडों के अनुसार कार्य कर रही है। फिर भी आज पुलिस पर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज़ नहीं करना ,दुर्भावनापूर्ण जाँच करना, अवैध रूप से हिरासत में रोके रखना (जिसमें अभियुक्तों के परिवारों को भी), गैर क़ानूनी गिरफ़्तारी, पुलिस अभिरक्षा में मृत्यु एवं अत्यधिक बल का प्रयोग जैसे मुद्दों से संबंधित आरोप लगाये जा रहे है, जो लोकतांत्रिक पुलिसन के मूलभूत सिद्वान्तों के प्रतिकूल है। वर्तमान में समाजों में बढ़ती जटिलताएँ पुलिस कांस्टेबुलरी से कई अपेक्षाएँ कर रही है। आज पुलिस को लोगों की सेवा करनी है । ekuuh; iekkue=h Jh ujUn eknh का LekV ifyfl x dk ekMy पुलिस से संवेदनशील, जवाबदेह एवं नागरिकों –उन्मुखी एवं टेक्नोसेवी पुलिसिंग की माँग करता है। साथ ही संयुक्त राष्ट्र संघ की सत्त विकास लक्ष्यों की अवधारणा का सरकारों द्वारा अनुसमर्थन किया है। इन सभी अवधारणाओं के प्रकाश में समूची पुलिस बिरादरी को संयुक्त रूप से यह प्रयास करना होगा कि मानव अधिकारों के हनन के सभी रूपों को यथा संभव समाप्त किया जा सके।

lnHk xFk lPkh

- सुभाष कश्यप, हमारा संविधान भारत का संविधान और संवैधानिक विधि, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली, 2012
- लोक पुलिस सी.एच.आर.आई., नई दिल्ली, अक्टूबर, 2010
- सुश्री आभा जोशी (2006), मौलिक अधिकार पर हिन्दी पुस्तिका सी.एच.आर. आई, नई दिल्ली एवं मानवाधिकार विभाग गृह मंत्रालय भारत सरकार नई दिल्ली।

- दैनिक भास्कर रसरंग रविवार 25 जून 2017 पृ. सं. 1, इंदौर मध्य प्रदेश
- राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, नई दिल्ली की वार्षिक हिन्दी पत्रिका मानव अधिकार : नई दिशाएँ अंक–1, वर्ष 2004 ।
- मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 {मानव अधिकार संरक्षण (संशोधन) अधिनियम, 2006 (2006 का अधिनियम संख्याक 43) द्वारा संशोधित रूप में} राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, नई दिल्ली।
- मानवाधिकार और गिरफ़्तारी, न्यायमूर्ति नगेन्द्रकुमार जैन, राजस्थान राज्य मानवाधिकार आयोग, Human Rights Legal Literacy And Awareness Series- 11è2006
- द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की सार्वजनिक व्यवस्था पर पाँचवी रिपोर्ट, जून ,2007
- The Indian Police Journal April-June, 2013, BPR&D New Delhi.
- Guide Book On Democratic Policing By The Senior Police Advisor To The Organization For The Security And Co-Operation In Europe(OSCE) , Vienna May 2008, 2nd Edition.
- PROFESSIONAL TRAINING SERIES No. 5èAdd.2, Human Rights and Law Enforcement A Trainer's Guide on Human Rights for the Police, UNITED NATIONS New York and Geneva, 2002

oc lkbVl ,o oc fyDl

1. http:èènhrc.nic.in
2. http:èèwww.bprd.nic.in
3. https:èèwww.state.gov
4. http:èèwww.rshrc.rajasthan.gov.inèincludesèHumanRightsAct1993-Hindi.pdf
5. http:èèwww.humanrightsinitiative.orgèpublicationsèhrcèhumanrights_policing.pdf
6. https:èèwww.state.govèjèdrlèrlsèhÙkptèhumanrightsreportèindex.htm#wrapper
7. http:èèwww.nipsa.inèuploadsècountry_resources_fileè1231_judgment.pdf
8. http:èèhumanrightsinitiative.orgèoldèpublicationsèchogmèchogm_2005èchogm_2005_full_report.pdf
9. http:èèwww.ohchr.orgèDocumentsèPublicationsètraining5Add2en.pdf

• • •

ikd&foLFkkfirksa ds ekuo vfèkdkj

uehpUn•

स्थूल रूप से मानव अधिकार वह मौलिक तथा अपरिक्राम्य अधिकार है जो मनुष्यों के जीवन के लिए आवश्यक है। मानव अधिकार वह अधिकार है जो प्रत्येक मानव के है क्योंकि वह मानव है चाहे वह किसी भी राष्ट्रीयता, प्रजाति या नस्ल, धर्म, लिंग का हो। अतः मानव अधिकार वह अधिकार है जो हमारी प्रकृति में अन्तर्निहित है तथा जिनके बिना हम मानवों की भांति जीवित नही रह सकते है। मानवीय अधिकार तथा मौलिक स्वतंत्रताएँ हमें अपने गुणो, ज्ञान, प्रतिभा तथा अन्तर्विवेक का विकास करने में सहायक होते है जिससे हम अपनी भौतिक, आध्यात्मिक तथा अन्य आवश्यकताओ की संतुष्टि कर सकें। मानव अधिकार मनुष्य की एक ऐसे जीवन के लिए बढ़ती हुई मांग पर आधारित है जिसमें मानव में अन्तर्निहित गरिमा तथा गुण का सम्मान हो तथा उसे संरक्षण प्रदान किया जाय।[1] पाक विस्थापित भी मानव है, अतः मनुष्य हाने के नाते उनके भी अधिकारो का संरक्षण करना हमारा दायित्व है। पाक विस्थापितो के लिए रोटी, कपडा–मकान व ज़रूरत की आवश्यक चीजों की व्यवस्था करना ही मानवता है। यह सही है कि संयुक्त राष्ट्र के मानव–अधिकारो की सुरक्षा से संबंधित चार्टर में प्रत्येक व्यक्ति या समूह को एक देश से दूसरे देश में जाने, घूमने, फिरने अथवा रोजग़ार करने की स्वतंत्रता दी गई है। लेकिन इसके लिए कुछ विविध–विधान हैं, कुछ कायदे–कानून है। ऐसा नही हो सकता कि आप किसी देश की अनुमति के बिना उसकी सीमा में प्रवेष कर जाएँ। इस भ्रमण के लिए आपके पास वैध पासपोर्ट और उस देश का वीसा होना आवश्यक है। इसी के साथ दूसरे देश मे रहते समय वहां के विधि–विधान का कडाई से साथ पालन भी आवश्यक है। अन्यथा आप आवागमन की स्वतंत्रता के स्वीकृत मानदंडो का उल्लंघन करने के दोषी होंगे। यह प्रतिबंध इसलिए लगाया गया है कि ताकि किसी एक देश का नागरिक किसी दूसरे देश के नागरिको के मूल अधिकारो का हनन न कर सके तथा उस देश की क़ानून–व्यवस्था के लिए समस्या न खडी कर सके। वस्तुतः हर अधिकार के साथ काई–न–कोई कर्तव्य भी जुडा रहता है, हर स्वतंत्रता अपने साथ कुछ प्रतिबंध भी लेकर आती है।[2] उदार चरितानाम् – "वसुधैव कुटुम्बकम" व "बुद्धम् शरणम् गच्छामि" भारतीय संस्कृति कें अंग रहे है। स्वामी विवेकानंद के अनुसार "हमें गर्व है उस राष्ट्र का होने का जिसने पृथ्वी के सभी देशो के सभी धर्मो के पीडित और शरणार्थियो को आश्रय दिया है। हमे यह बताने में गर्व है कि हम समेटे हुए है अपने वक्ष स्थल में पवित्र इजराईली अवशिष्ट को जो दक्षिण भारत से आए और आश्रय लिया, ठीक उसी वर्ष जब उनके पवित्र मन्दिर को

• अतिथि शिक्षक, विधि संकाय, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

1 डॉ. एस. के. कपूर, मानव अधिकार, पंचम संस्करण 2015 पृष्ठ संख्या 3

2 रमेश चन्द्र दीक्षित, डॉ. गिरिराज शाह निश्तर खानकाही व डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल, मानवाधिकार दशा और दिशा डायमंड बुक्स, नई दिल्ली (2003) पृष्ठ संख्या 55–56

रोमन नादिरशाह ने टुकडे–टुकडे कर दिया। हमें गर्व है उस धर्म का होने का जिसने आश्रय प्रदान किया है और अब भी संजोये हुए है महान राष्ट्र को। [3]

foLFkkfirk dk vFk %

विस्थापितों के संबंध में निर्देषित सिद्धांत 1998 के अनुसार "ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों का समुह जो अपने निवास जहां वे लोग सामान्यतः निवास कर रहे हैं, उन्हें अपना निवास स्थल आन्तरिक अशांति, विप्लव, प्राकृतिक आपदा, हिंसा या अन्य कारण ाो से छोडना पड़ता है।" संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में व्यक्तियों और समूहों को कुछ प्रतिबंधो एवं शर्तो के साथ एक देश से दूसरे देश में जाने का अधिकार दिया गया है, साथ ही उन्हें यह भी अधिकार दिया गया है कि वे तर्कसंगत एवं वैध कारणों से अपने देश से पलायन करने की स्थिति में किसी अन्य देश में राजनीतिक शरण प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन चार्टर किसी को भी अवैध रूप से किसी देश की सीमा के भीतर प्रवेश करने का अधिकार नहीं देता और न ही सरकारों को यह अधिकार देता है कि वे अपने द्वारा या अपने देश के कुछ समूहों, संगठनों द्वारा किए जा रहे अमानवीय अत्याचारों के कारण लोगों को अपना देश, अपना घरबार छोड़कर पलायन करने पर विवश करे। यह उनके अधिकारों का ही हनन नहीं है, वरन् उस देश के लोगों के अधिकारों पर भी कुठाराघात है। आश्चर्य है कि संयुक्त राष्ट्र संघ इस विषय में मौन क्यों है? वह न तो उन देशों की सरकारों पर अंकुश लगा रहा है, जिनकी कुव्यवस्था के कारण वहां के नागरिकों को अपने–अपने देशों से पलायन करना पड रहा है और न ही वह उन सरकारों से विस्थापितों के पालन–पोषण तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उचित मुआवज़ा ही दिलाने की व्यवस्था कर रहा है। परिणामतः एक और विस्थापित जनसमूहों के अधिकारों का घोर अतिक्रमण हो रहा है, तो वही अतिरिक्त खर्च के कारण उस देश के निवासियों के अधिकार प्रभावित हो रहे हैं, जहां ये जनसमूह पडाव डाले हूए हैं। विश्व–भर में ऐसे स्थान अब एक–दो नही हैं, अनेक हैं, जहां हजारों–लाखों की संख्या में विस्थापित डेरा डाले हुए हैं।[4] भारत सहित समूचे विश्व के परिदृश्य पर 1960 और 1970 के दशक विकास और पुनर्निर्माण के दशक माने जाते हैं (यद्यपि उस दौरान कुछ विस्थापन जरूर हुआ) जबकि 1970 का दशक तेल संकट (1973 एवं 1979 में) का दशक 2 माना जाता है। किन्तु उसके तुरंत बाद का काल अर्थात् 1980 का दशक 'खोये दशक' के साथ–साथ 'विस्थापन का दशक' माना जा सकता है विश्व बैंक के समाजशास्त्री माइकेल सर्निया के अनुसार विस्थापित व्यक्तियों/समुदायों को आठ प्रकार की वंचनाएं झेलनी पड़ती हैं : (क) भूमिविहीनता (लैंडलेसनेस) (ख) रोजग़ारविहीनता (जॉबलेसनेस) (ग) गृहविहीनता (होमलेसनेस) (घ)

3 दी कम्पलीट वर्क्स ऑफ़ स्वामी विवेकानन्द्, वाल्यूम् 1 पृ. 63– जे. यन. सक्सेना प्रपोजल फार ए रिफयुजी लेजिसलेशन इन इण्डिया" बुलेटिन आन आई.यच.यल.एण्ड रिफ्युजी लॉ, वाल्यूम 2 नं. 2(ऐ), 1997 पृ. 369 पर उद्धृत

4 रमेश चन्द्र दीक्षित, नोट 2 पृष्ठ संख्या 55–56

हाशियाकरण (मार्जिनलाइजेशन) (ड़) रुग्णावस्था (मोर्बिडिटी) (च) खाद्य असुरक्षा (फूड इनसिक्योरिटी) (छ) सामुदायिक/साझी सम्पत्ति के संसाधनों की उपलब्धता से महरूम होना। (ज) सामाजिक जुड़ाव का छिन्न–भिन्न होना। उपर्युक्त वंचनाएं भारतीय संदर्भ में भी सही हैं और इस विस्थापन का लैंगिक आयाम भी होता है।[5]

Hkkjr&ikfdLRkku dh Lor=rk ,o foLFkkfirk dh leL;k %

विभाजन के परिणाम स्वरूप विस्थापितों की भयंकर समस्या देश के सामने उपस्थित हो गई, देश की आज़ादी को अभी अड़तालीस घण्टे भी नही बीते थे कि पूर्वी पंजाब और पश्चिमी पंजाब से भयंकर सांप्रदायिक दंगों के समाचार प्राप्त होने लगे और फिर दिल्ली अथवा कराची कोई भी इसकी आग से अछूता नहीं रहा। सेना के विभाजन के परिणामस्वरूप सैनिक भी सांप्रदायिकता के रंग में रंग गए और हंगामों को शांत करने के स्थान पर स्वयं उनमें भागीदार बन गए। सेना और प्रशासन के अंग्रेज़ अधिकारियों ने भी इन दंगो को शांत करने के प्रयास नहीं किये। परिणामस्वरूप लाखों हिन्दू और सिख पाकिस्तान को छोडकर भारत आने को विवश हो गए उनकी सम्पत्ति, घर, दुकानें, ज़मीन, रोजी–रोटी के साधन सभी पाकिस्तान में छूट गए। इन बेघर शरणार्थीयों के पास न पेट भरने को पर्याप्त अन्न था और न तन ढकने को पर्याप्त वस्त्र। स्वतंत्र भारत की सरकार के सामने इन लाखों विस्थापितों को पुनस्थापित करने की समस्या एक भयंकर समस्या के रूप में विद्यमान थी। इस समस्या के समाधान के लिए एक विशेष पुनर्निवेशन विभाग की स्थापना की गई, जिसके द्वारा शरणार्थीयों को हर संभव सहायता प्रदान की गई। उन्हें योग्यतानुसार रोजग़ार देने की व्यवस्था की गई। स्थान–स्थान पर शरणार्थी कैम्प खोले गए। पाकिस्तान में रह गई उनकी सम्पति के बदले उन्हें देश में विभिन्न भागों में ज़मीनें, दुकानें और मकान प्रदान किए गए। 1956 तक देश मुख्यतः इसी समस्या से जुझता रहा।[6]

आज़ादी के साथ ही रातों रात लाखों भारतीय अपने ही घर में शरणार्थी बन गए। देश के बंटवारे में लगभग 1 करोड 50 लाख लोग इधर–उधर हो गए। लगभग 85 लाख लोग भारत से पाकिस्तान गए और लगभग 65 लाख लोग पाकिस्तान से भारत आये। इन विस्थापित लोगो की समस्या से निपटने के लिए भारत सरकार ने विधायी और प्रशासकीय कदम उठाये। विधायी कदमो में पुनर्वास वित्त प्रशासन अधिनियम, 1948 और विस्थापित व्यक्ति (प्रतिकर और पुनर्वास) अधिनियम 1954 तथा विस्थापित व्यक्ति (दावे) अनुपुरक अधिनियम, 1954 आदि हैं। प्रशासकीय स्तर पर भारत सरकार में एक विशेष मन्त्रालय की स्थापना की गई (जिसकी शाखायें राज्यों में भी थी)। इस मंत्रालय का काम था शरणार्थियों की विषम समस्याओं का निदान ढूंढना जैसे उनके

5 भारत में विकास–जनित विस्थापन : समाजशास्त्रीय विवेचन, डॉ0 सुभाष शर्मा मानव अधिकार : नई दिशाएं वार्षिक अंक – 12, 2015, पृष्ठ सं. 1–3

6 इतिहास, भारतीय इतिहास के प्रमुख पहलू – डॉ. मालती मलिक, न्यू सरस्वती हाउस, नई दिल्ली (2016) पेज संख्या 442

लिए, परिवहन, दूर संचार, जीविका और भूमि का आवण्टन आदि की व्यवस्था करना। उपर्युक्त भारतीय अधिनियम ने ऐसे शरणार्थियों को शरणार्थी न मानकर "विस्थापित लोग" माना।[7] विभाजन के पश्चात लाखों विस्थापितों को कैम्पों में रखा गया था, जहां पर भारी अव्यवस्थाऐं थीं। इन कैम्पों में भुखमरी, गरीबी, बेरोजग़ारी, बीमारी तथा भय का वातावरण व्याप्त था। देश के विभाजन के समय लोगों के मानवाधिकारों का भयंकर उल्लंघन हुआ था तथा तत्कालीन स्थिति सरकार के नियंत्रण में नहीं थी। मृत्यु के डर से हजारों लोगों ने अपने धर्म परिवर्तन कर लिए, प्रभावशाली व्यक्तियों ने हजारों स्त्रियों को अपने कब्जे में कर लिया तथा ज़बरदस्ती उनका धर्म परिवर्तन करवाया।

iwohZ ikfdLRkku dh Lora=rk ,oa foLFkkfirksa dh leL;k%

1971 में कोई एक करोड़ शरणार्थी युद्धग्रस्त तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान से भागकर भारत आये। इन शरणार्थियों के लिए संयुक्त राष्ट्र की सभी सहायता के लिए संयुक्त राष्ट्र शरणार्थी उच्चायुक्त को धुरी बनाया गया। अब तक की सबसे बडी शरणार्थी कार्यवाही में सहायता के लिए भारत सरकार की 12 करोड अमेरिकी डालर से ज़्यादा की राशि दी गई। इसके बावजूद इन शरणार्थियों के नाते भारत पर बहुत बडा आर्थिक भार पड़ा क्योंकि वे लगभग सालभर तक भारत में रहे। भारत सरकार ने इनके लिए शरणार्थी शिविरों की स्थापना की तथा इनके भोजन और चिकित्सीय सुविधा आदि की व्यवस्था अपनी क्षमता के अनुसार किया। ये शरण ाार्थी 1972 में (बंग्लादेश बनने के पश्चात्) अपने देश वापस लौट गए। 1979 में, बंग्लादेश के चिटगांव पहाड़ी क्षेत्र में भारत मे लगभग 18000 शरणार्थी सजाति विषयक उत्पीड़न के शिकार होकर आये। जून, 1986 तक बढकर इनकी संख्या लगभग 24000 हो गई, इनकी संख्या बढती गई और लगभग 56000 चकमा शरणार्थी भारत में आये। भारत और बंग्लादेश के करार के अनुसार कुछ चकमा शरणार्थी वापस बंग्लादेश चले गए हैं, किन्तु अब भी पचासों हजार की संख्या में वे भारत कें पूर्वान्चल क्षेत्र में रह रहे हैं। भारत सरकार इन्हें भी संरक्षण और सहायता दे रही है।[8] इन शरणार्थियों के आने से भारत के संसाधनों पर भारी बोझ पड़ा, उन्हें लोगों की विकास की मूल आवश्यकता से हटाकर दूसरी तरफ लगाना पडा, पर्यावरण को क्षति पहुंची, संसाधनों का क्षय हुआ, अर्थव्यवस्था बाधित हुई, विधि और व्यवस्था संकट में पड़ी और कभी–कभी तो हमारी आतिथ्य सत्कार का दुरूपयोग किया गया।[9]

---

7 डॉ. टी. पी. त्रिपाठी, मानव अधिकार, इलाहाबाद लॉ एजन्सी पब्लिकेशन्स, चतुर्थ संस्करण 2011 पृष्ठ सं. 354–355

8 वही पृष्ठ सं. 354–355

9 न्यायमूर्ति पी. एन. भगवती, अध्यक्षीय उद्‌बोधन, सेमीनार रिपोर्ट रिफयुजी इन सार्क रीजन – बिल्डिंग ए लिगल फ्रेमवल्ली (2–3 मई 1997) नई दिल्ली, पृ.19

ikd& foLFkkfirksa dk laoSèkkfud ,oa fofèkd vfèkdkj %

भारतीय संविधान के अन्तर्गत कुछ मौलिक अधिकार सभी व्यक्तियों को प्रदान किए हैं तथा कुछ मौलिक अधिकार केवल नागरिकों को उपलब्ध है। जो मौलिक अधिकार सभी व्यक्तियों को उपलब्ध हैं वह शरणाथियों को भी उपलब्ध है। अनुच्छेद 14 में समानता का मौलिक अधिकार उल्लेखित हैं। इसके अनुसार, राज्य किसी भी व्यक्ति को विधि के सम्मुख समानता एवं भारतीय क्षेत्र के भीतर विधि का समान संरक्षण मना नहीं करेगा। इसी प्रकार, अनुच्छेद 21 के अनुसार, सिवाय विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के किसी भी व्यक्ति को उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंन्त्रता से वंचित नही किया जाएगा। इससे अतिरिक्त, अनुच्छेद 22 में कुछ मामालों में गिरफ़्तारी एवं निरुद्धि के विरुद्ध सभी व्यक्तियों को संरक्षण प्रदान किए गए है। धारा 25 में प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म को मानने, अभ्यास करने एवं प्रचार करने के मामले में स्वतन्त्रता होगी।[10]

भारत में विस्थापितों की रक्षा के लिए अलग से कोई विधि का निर्माण नहीं किया गया है तथा शरणार्थियों की प्रस्थिति से संबंधित अभिसमय 1951 तथा नयाचार (प्रोटोकोल) 1967 की भी पुष्टि भारत ने नहीं की है। पाक–विस्थापितों पर निम्नांकित विधियां लागू होती है। उनके हितों के लिए निम्न विधियां वर्तमान में हैः– विदेशियों विषयक अधिनियम, 1946 की धारा 2 (क) विदेशियों को परिभाषित करती है। इसके अनुसार विदेशी वह है जो भारत का नागरिक नहीं है। इस अधिनियम के अन्तर्गत कार्यपालिका को व्यापक अधिकार प्रदान किए गए हैं। इसके अन्तर्गत कार्यपालिका भारत में विदेशियों के सतत् उपस्थित प्रतिषेध, विनियमन और प्रतिबन्धित कर सकती है। एक विदेशी को एक स्थान विशेष में रहने के लिए कहा जा सकता है और उसके संचरण पर प्रतिबन्ध लगाये जा सकते है। उसे एक विहित गतिविधि या विशिष्ट विवरण की गतिविधि में लगाने से रोका जा सकता है, उसे देश छोडने के लिए भी कहा जा सकता है। उसके अतिरिक्त भारत सरकार किसी विदेशी को बन्दी बनाये जाने और निरोध तथा कैद करने के लिए आदेश पारित कर सकती हैं। अधिनियम के प्रावधानो के अधीन विदेशियों का निरोध में रखा गया है। इस तरह प्रशासकीय विवेक का प्रयोग विदेशी विषयक अधिनियम के ढांचे में किया जाता है और शरण ाार्थी नीति देश में अनिवार्य रूप से प्रशासकीय आदेशों के माध्यम से विकसित हुई है जिन्हें कथित अधिनियम की धारा 3 के अधीन पारित किया गया है। भारत में शरणार्थियों को लेकर कोई विशेष संविधि नही हैं, अतः सभी ”अन्य देशीय” या विदेशी” की सामान्य श्रेणी में आते हैं, जिनके साथ विदेशियों विषयक अधिनियम, (Foreign Act), 1946 तथा पासपोर्ट अधिनियम 1967 के अनुसार व्यवहार होता है। शब्द ”अन्यदेशीय” का प्रयोग कतिपय संविधियों एवं संविधान में हुआ है किन्तु इसकी परिभाषा नही की गई है।[11]

10 डॉ. एस. के. कपुर नोट 1 पृष्ठ सं. 151

11 डॉ. टी. पी. त्रिपाठी, नोट 7 पृष्ठ सं. 356

विदेशी विषयक अधिनियम 1946 के अतिरिक्त भी कतिपय अन्य अधिनियम है जो विदेशियों से सम्बन्ध रखते हैं, जैसे विदेशियों का पंजीकरण अधिनियम, 1939, पासपोर्ट अधिनियम, 1967, पासपोर्ट (भारत में प्रवेश) अधिनियम 1920 विदेशी विषयक (लागू होना और संशोधन) विधेयक, 1962 आदि। इसी क्रम में प्रत्यर्पण अधिनियम, 1962 और नागरिकता अधिनियम, 1955 का भी नाम लिया जा सकता है। उपर्युक्त के अतिरिक्त भी कतिपय शरणार्थियों सम्बन्धित विशिष्ट अधिनियम हैं, जैसे : शरणार्थी (रजिस्ट्रीकरण एवं भूमि दावा) अधिनियम, 1948; विस्थापित व्यक्ति (दावा) अधिनियम, 1950; विस्थापित व्यक्ति (दावा) अनुपूरक अधिनियम, 1954; पटियाला शरणार्थी (भूमि दावों का विनियमन) अध्यादेश, 1948; भारत की संक्रान्ति जनित नीति से निपटने के लिए या विशिष्ट समस्या से निपटने के लिए ये कुछ विशेष विधायी उपाय है।[12]

मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 द्वारा स्थापित राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग भी शरणार्थियों के मानवीय अधिकारों का संरक्षण करने में सक्रिय भूमिका अदा करता रहा है। आयोग स्वप्रेरणा से या याचिका के आधार पर किसी व्यक्ति के मानव अधिकारों के उल्लंघन का अन्वेषण करने के लिए समर्थ है। आयोग द्वारा चकमा शरणार्थियों के, जो भारत के उत्तर–पूर्वी राज्यों और त्रिपुरा में शरण की ईप्सा करते है, संरक्षण के सम्बन्ध में विनिर्दिष्ट हस्तक्षेप किए हैं।[13]

राष्ट्रीय मानवधिकार आयोग ने सन् 2000–01 की रिपोर्ट में अपनी राय अभिव्यक्त की थी कि शरणार्थियों की समस्या से निपटने के लिए एक व्यापक राष्ट्रीय क़ानून की आवश्यकता है तथा यह क़ानून सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों एवं साथ ही साथ 1951 के शरणार्थी अभिसमय की प्रासंगिक शर्तो एवं 1967 के नयाचार को ध्यान में रख कर बनाया जाना चाहिए। भारत सरकार ने, उत्तर में, आयोग को सूचित किया कि विदेश मंत्रालय ने राष्ट्रीय क़ानून लागू करने के लिए विभिन्न संभावना के अन्तर्गत शरणार्थियो के व्यवहार के सम्बन्ध में प्रश्न पूछकर परीक्षण की प्रक्रिया प्रारम्भ कर दी है तथा सरकार के सम्बन्धित मंत्रालयों/विभागों के साथ सम्पर्क करके शरणार्थियों के अभिसमय एवं नयाचार पर अनुसमर्थन किया जाएगा। सरकार ने आयोग से कहा कि इस प्रक्रिया में समय लगेगा। सरकार द्वारा प्रारम्भ की गई कार्यवाही एस समय–सीमा के अन्तर्गत समाप्त होनी चाहिए क्योंकि वर्तमान समय में शरणार्थियो से संबंधित क़ानून, नियम एवं प्रथाएँ अपर्याप्त हैं। इस क्षेत्र को विशेष प्राथमिकता दिया जाना आवश्यक है ताकि शरणार्थियों से संबंधित मामलों को मानवाधिकारों को अपेक्षित तरीके से लागू किया जा सके जिससे शरणार्थी समझौता 1951 एवं इसके नयाचार 1967 तथा सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों एवं संविधान में अभिकथित प्रासंगिक बातों को लागू किया जा सके।[14]

---

12 वही

13 डॉ. एच. ओ. अग्रवाल, मानव अधिकार, सेन्ट्रल ला पब्लिकेशनस पृष्ठ संस्करण 2016 पृष्ठ सं. 135–136

14 वही पृष्ठ सं. 135–136

ikd& foLFkkfirk d l cèk e fo'k"k ikoèkku %

वर्तमान में पाक विस्थापितों को जम्मू व कश्मीर में विशेष प्रावधान किया गया है जिसके अन्तर्गत पाकिस्तान जाने वाले को नागरिक अधिकार के निषेध संबंधी भाग–2 का प्रावधान जम्मू कश्मीर में स्थायी रूप से रहने वाले उन लोगों पर लागू नहीं होता है जो पाकिस्तान जाकर पुनः राज्य में विस्थापित हुए हैं। ऐसे सभी व्यक्तियों को भारत का नागरिक माना जाता है। जम्मू कश्मीर राज्य के संविधान के अनुसार भारत के उस नागरिक को राज्य का स्थायी निवासी माना जाएगा जो 14 मई 1954 को यदि (अ) वह I या II श्रेणी के राज्य के अधीन या (ब) राज्य में विधिवत रूप से अपनी सम्पति रखता हो और उस तारीख से पूर्व 10 वर्ष तक राज्य का सामान्य निवासी हो (स) वह व्यक्ति जो 14 मई 1954 से पूर्ण श्रेणी I या श्रेणी II के रूप में राज्य विषय हो और वह 1 मार्च 1947 के बाद पाकिस्तान से विस्थापित होकर राज्य में पुनःविस्थापित के लिए लौटा हो।[15]

ikd &foLFkkfirk dk ukxfjdrk nu l cèkh ikoèkku %

वर्तमान में भारत सरकार ने देश के 40 जिला कलेक्टरों को वैध पाकिस्तानी विस्थापितों को भारतीय नागरिकता देने से पूर्व सम्पूर्ण तथ्यों और दस्तावेज़ों का सत्यापन कलेक्टर के पास कराया जाना आवश्यक है। इन प्रावधानों के तहत देश के कई जिला कलेक्टरों ने पाक विस्थापितों को नागरिकता प्रदान की है व कई विस्थापितों की नागरिकता प्रक्रियाधीन है। नागरिकता मिलने पर वे सभी अधिकारों का उपयोग कर सकेंगे जिसके लिए वे कई सालों से इन्तजार कर रहे थे। यहां रहते हुए उनके वीजा अवधि भी ख़त्म हो गई थी एवं वे पुनः पाकिस्तान भी वापस जाने को तैयार नहीं थे क्योंकि वे जानते थे कि वहां के अत्याचारों से तो वे तंग आकर यहां आए हैं।

foLFkkfir O;fDr;k d ekuo vfèkdkj %

विस्थापन कई कारणों से हो सकता है जिसमें विकास परियोजनाओं के लिए भूमि अधिग्रहण करना, दंगे, प्राकृतिक आपदा और बहुसख्यकों द्वारा अत्याचार भी शामिल है। इनके कारण मानवाधिकारों का घोर उल्लंघन होता है, विशेषकर भोजन के अधिकार का उल्लंघन, जीविकोपार्जन के अधिकार का उल्लंघन, आवास के अधिकार का उल्लंघन, स्वास्थ के अधिकार का उल्लंघन, और भेदभाव के खिलाफ के अधिकार का उल्लंघन शामिल हैं।[16] राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने अनेक मामलों में हस्तक्षेप किया है और इसकी सिफारिशों में अनेक विषय कवर हैं, जिसमें राहत सामग्री का समान वितरण, अस्थायी आश्रयों की व्यवस्था, अनाथ बच्चों, विधवाओं और लडकियों की कम्प्यूटीकरण

15 भारत की राजव्यवस्था; एम. लक्ष्मीकांत तृतीय संस्करण टाटा मेकग्रा हिल्स एजुकेशन, पृष्ठ सं. 163

16 भारत में जनजातियों का विस्थापन एवं मानवाधिकार ,भारत में जनजाति समस्याएँ एवं संरक्षण, डॉ.एस.पी. मीना, इशिका पब्लिशिंग हाउस ,जयपुर पृष्ठ 12

सूची तैयार करना शामिल है।[17]

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में सभी व्यक्तियों को प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता का मूल अधिकार प्रदान किया गया है। इस अनुच्छेद को हमारी न्यायपालिका द्वारा विस्तृत रूप से निर्वचन कर मानव को मानव होने के नाते जो अधिकार होने चाहिए वो इस अनुच्छेद में प्राप्त हुए। जैसे भारत में पुनर्वास का अधिकार, भोजन का अधिकार, आश्रय का अधिकार, उचित जीवन जीने का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, सम्मान पूर्वक जीने का अधिकार, प्रतिकर का अधिकार, चिकित्सा सहायता का अधिकार आदि। ये सभी अधिकार अनुच्छेद 21 के अंतर्गत पाक विस्थापितों को भी प्राप्त हैं।

विस्थापन की प्रक्रिया किस प्रकार मानवाधिकारों का हनन करती है, इसे समझने के लिए यह जानना जरूरी होगा कि इस प्रक्रिया के अभी तक क्या परिणाम होते रहे हैं। विस्थापन का परिणाम केवल आर्थिक ही नहीं होता; विस्थापन अपने प्राकृतिक परिवेश, सांस्कृतिक क्रियाशीलता तथा 'धार्मिक विश्वासों पर भी आधारित होता है। यह कहा जाता है कि मुआवज़े और पुनर्वास आदि द्वारा आर्थिक नुकसान की भरपाई कर दी जाती है– यद्यपि व्यावहारिक स्तर पर उसके लिए कितने लम्बे अर्से तक संघर्ष करना पड़ता रहा है, विस्थापन का परिणाम यह भी होता रहा है कि अपने प्राकृतिक निवास से हटा दिए जाने के बाद किसी समुदाय का सामुदायिक जीवन भी समाप्त होने लगता है, जिसका परिणाम उनकी संस्कृति, भाषा और धार्मिक विश्वासों पर आघात के रूप में सामने आया है और इसकी कोई भरपाई होनी भी संभव नहीं होती।[18]

ikd &foLFkkfir rFkk U;k;ikfydk %

भारतीय न्यााियपालिका सदैव ही अन्तर्राष्ट्रीय क़ानूनों को सम्मान देती रही है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51 के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा करने की अभिवृद्धि करने का राज्य प्रयास करेगा। एक नीति निर्देशक तत्व है जिसके अन्तर्गत संगठित लोगो के एक दूसरे से व्यवहारों में अन्तर्राष्ट्रीय विधि और संधि बाध्यताओं के प्रति आदर बढाना भी। इन तत्वों को ध्यान में रखते हुए एवं मानवाधिकारों की रक्षा के लिए न्यायपालिका ने विभिन्न निर्णयों के माध्यम से पाक विस्थापितों की रक्षा की है।

YkqMl dh jhV cuke ;wfu;u vkQ bf.M;k[19] में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्राण और दैहिक स्वतन्त्रता अधिकार, जो संविधान के अनुच्छेद 21 मे दिया है, वह विदेशी को भी उपलब्ध है और इसमें भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का अधिकार (अनुच्छेद 19(1) (ड) सम्मिलित नही है। इसमें मामला निष्कासन से सम्बन्धित था।

17 राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग वार्षिक रिपोर्ट 2007.08, पृष्ठ 125

18 विकास, विस्थापन और मानवाधिकार, नन्द किशोर आचार्य मानव अधिकारः नई दिशाएं वार्षिक, अंक – 12, 2015 पृष्ठ सं. 14–15

19 ए. आई.आर. 1991 सु. को. 1886

gl eyj vkQ U;jeoxl cuke lifjUV.M.V] ilhMUlh tsy] dydÙkk[20] में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि भारत सरकार का एक विदेशी निष्कासित करने का अधिकार आत्यन्तिक (Absolute) और असीमित और संविधान में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है कि जो उसके इस अधिकार को बाधित करता हो। जहां तक एक व्यक्ति को सुने जाने के अधिकार का सम्बन्ध है इस सम्बन्ध में कोई स्थायी नियम नहीं है कि किसी को किस तरीके से सुना जाए।

p;jeu jyo ckM cuke pfUnek nkl[21] में उच्चतम न्यायालय ने एक सही नज़ीर (उदाहरण) प्रस्तुत किया है जब उसने शरणार्थियों के मानव अधिकार का प्रवर्तन करके एक विदेशी नागरिक को 10 लाख रुपये के प्रतिकर दिए जाने का आदेश दिया। इस निर्णय की महत्ता इस बात में भी है कि वह मानव अधिकार विधि शास्त्र को उच्चतम स्तर तक ले गई और मानव गरिमा के संरक्षण की बात भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का निर्वचन करके किया। वाद के तथ्य के अनुसार एक बंग्लादेशी राष्ट्रिक हनूफा खातून का रेल यात्री निवास, हावडा में सामूहिक बलात्कार किया गया। चन्द्रिमादास जो कलकत्ता उच्च न्यायालय की एक पेशेवर एडवोकेट थी, ने उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका दाख़िल करके रेलवे के विरुद्ध प्रतिकर की मांग की। कलकत्ता उच्च न्यायालय ने 10 लाख रुपये प्रतिकर का आदेश इस आधार पर दिया कि बलात्कार रेलयात्री निवास में एक कर्मचाारियों द्वारा किया गया, जो रेल का था। उच्च न्यायालय के निर्णय को रेलवे बोर्ड ने उच्चतम न्यायालय में चुनौती 'सुने जाने के अधिकार' के आधार पर तथा प्रतिकर का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत प्रर्वतनीय नही है, के आधार पर दिया। उच्चतम न्यायालय ने रेलवे बोर्ड को प्रतिविरोध को संविधान के अनुच्छेद 20, 21 और 22 तथा मानव अधिकार की सार्वभौम घोषणा और महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभाव समापन सम्बन्धी अभिसमय का निर्वचन करते हुए खारिज कर दिया। उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय के निर्णय की पुष्टि कर दी।

जहां तक भारतीय न्यायालयों के दृष्टिकोण (शरणार्थियों के प्रति) का प्रश्न है यह सकारात्मक और मानवीय रहा है। यह तथ्य की हम उन्हें कारागार से बाहर करा सकते है न्यायालयों के सकारात्मक दृष्टिकोण का परिचायक है। इरेने खान, (भारत में संयुक्त राष्ट्र शरणार्थी उच्चायुक्त मिशन के प्रमुख) के अनुसार जहां तक शरणार्थियो के साथ व्यवहार का प्रश्न है, किसी भी स्तर पर उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालय या अधीनस्थ न्यायालयों के स्तर पर, उनका दृष्टिकोण मानवीय रहा है। न्यायालयों ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 (प्राण और दैहिक स्वतंत्रता) के प्रावधानो का निर्वचन इस प्रकार किया है कि उन्हें (शरणार्थियों को) उस देश मे वापस न भेजा जाय जहां उन्हें जीवन (प्राण) का ख़तरा है। इस संबंध में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग बनाम

20 ए. आई.आर. 1955 सु. को. 367

21 2000(2) एस.सी.सी. 465 : ए. आई. आर. 2000 सु. को. 988

अरुणाचल प्रदेश का मामला बहुचर्चित है।[22]

v#.kkpy in'k cuke [kqnhjke pdek[23] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि चकमा शरणार्थी को नागरिकता संशोधन कें अधिनियम, 1985 की धारा 6क का लाभ नही मिल सकता है। इस धारा कें अन्तर्गत केवल असम में निवास करने वाले शरणार्थियों को निश्चित अवधि पूरी करने के बाद नागरिकता प्राप्त की जानी थी लेकिन अपीलार्थी ने अरुणाचल प्रदेश से पलायन किया था। इसलिए उसे इस धारा का लाभ प्राप्त नही हुआ। इसके अतिरिक्त न्यायालय ने यह भी कहा प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार शरणार्थी को भी प्राप्त है।

jk"Vh; ekuo vfèkdkj vk;kx cuke v#.kkpy in'k[24] में उच्चतम न्यायालय का विनिष्चय शरणार्थियो के अधिकारो में से कुछ के संरक्षण के सम्बन्ध में सुसंगत है और उल्लेखनीय है। इस मामले में यह निर्दिष्ट किया गया था कि पूर्वी पाकिस्तान (अब बंग्लादेश) से काफ़ी संख्या में चकमा 1964 में कप्ताई जल विद्युत परियोजना द्वारा विस्थापित किए गए थे। वे असम और त्रिपुरा में शरण लिए थे। इनमें से अधिक्तर इन राज्यो में बस गए और समय के सम्यक अनुक्रम में भारतीय नागरिक हो गए। चूंकि काफ़ी संख्या में शरणार्थी आसाम में शरण लिए हुए है; इसलिए राज्य सरकार ने उनमें से सभी को पुनर्वास प्रदान करने में अपनी असमर्थता व्यक्त की। लेकिन लगभग 4012 चकमा अरुणाचल प्रदेश में बस गए थे और उन्हें स्थानीय आदिवासियों से परामर्श करके कुछ भूमि भी आवंटित की गई थी। भारत सरकार ने भी प्रति परिवार 4200 रू. की दर पर पुनर्वास सहायता स्वीकार की थी। अरुणाचल प्रदेश में चकमाओं की जनसंख्या लगभग 65000 होना प्राक्कलित है। बाद मे अरुणाचल प्रदेश के नागरिकों और चकमाओं के बीच सम्बन्ध खराब हो गए और चकमाओं ने परिवाद किया कि अरुणाचल प्रदेश राज्य से उन्हे बलपूर्वक निकालने के लिए उनके साथ दमनात्मक कार्यवाही की जा रही है।

चकमा नागरिक अधिकार समिति ने चकमाओं के उत्पीड़न का परिवाद करते हुए राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के समक्ष अभ्यावेदन दाख़िल किया। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने सन्देह करने के बाद कि उनका प्रयास चकमाओं को उनके अपने आवास में बनाये रखने के लिए अपर्याप्त होगा, मामले को उच्चतम न्यायालय के समक्ष लाने का विनिश्चय किया। उच्चतम न्यायालय ने सम्परीक्षण किया कि अरुणाचल प्रदेश में काफ़ी संख्या में चकमा लोगो का निवास उसके जातीय सन्तुलन में व्यवधान उत्पन्न करेगा और उसी संस्कृति तथा पहचान को विनष्ट करेगा। संविधान मे किया गया विशेष उपबन्ध व्यर्थ हो जाएगा, यदि राज्य की आदिवासी जनसंख्या पर बाहरी लोगों द्वारा आक्रमण किए जाने की अनुज्ञा दी जाती है। इसलिए आदिवासी चकमा लोगो को

22 सेमिनार रिपोर्ट रिफ्युजी इन सार्क रिजनल बिल्डिंग ए लीगल फ्रेमवर्क पृ. 24

23 ए.आई.आर 1994 सु. को. 1461

24 ए. आई.आर. 1996 सु. को. 1234

उनकी परम्परा और संस्कृति के प्रति भावी ख़तरा समझते है और इसलिए उत्सुक है कि चकमा लोग स्वयं को राज्य में समाहित न करे। लेकिन न्यायालय ने अधिकथित किया कि अरुणाचल प्रदेश राज्य में प्रचलित स्थिति की दृष्टि में चकमा लोगों के जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए स्पष्ट ख़तरा विद्यमान है।

न्यायालय ने अधिकथित किया कि हमारा देश विधि के शासन द्वारा शासित है। हमारा संविधान प्रत्येक मानव को कतिपय अधिकार और नागरिकों को कतिपय अन्य अधिकार प्रदान करता है। प्रत्येक विधि के समक्ष समानता और विधि के समान संरक्षण का हकदार है (अनुच्छेद 14)। इसी तरह विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार के सिवाय अपने प्राण या दैहिक स्वतन्त्रता से वंचित नही किया जा सकता (अनुच्छेद 21)। इसी प्रकार राज्य प्रत्येक मानव के प्राण और स्वतन्त्रता का संरक्षण करने के लिए बाध्य है, चाहे वह नागरिक हो या अन्यथा और वह किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह को चकमा लोगो को राज्य छोडने की धमकी देने की अनुमति नही दे सकता। उच्च न्यायालय ने इस विनिश्चय का स्वागत शरणार्थियों को शामिल करके विदेशियों के मूल संवैधानिक अधिकारों की संरक्षा करने के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण निर्णय के रूप में किया गया है।

fu"d"k o l|>ko %

भारत में पाक –विस्थापितों की समस्याऐं स्वतंत्रता पश्चात् से चली आ रही है। सर्वाधिक विस्थापन भारत में दंगो के कारण हुआ है। तत्पश्चात् पूर्वी पाकिस्तान के बंग्लादेश बनने के पश्चात् भी कई पाक विस्थापित भारत आये। वर्तमान में केन्द्र सरकार द्वारा इनको पुर्नवास व मुआवज़े के लिए किसी भी प्रकार की राष्ट्रीय नीति का निर्माण नहीं किया गया है, न ही इनके लिए विशेष अधिनियम बनाकर नागरिकता देने का प्रावधान किया गया है केवल कलेक्टरों पर यह छोड दिया गया है कि वे इनकी नागरिकता तय करें लेकिन कलेक्टरों की लम्बी–चौड़ी कागज़ी कार्यवाहियों के कारण आज भी हजारों पाक–विस्थापित अपनी नागरिकता का इन्तजार कर रहे हैं। आज भी इन्हे न रोजग़ार मिल रहा है न ज़मीन। मजबूरन इन्हें टेंट लगाकर रहना पड़ रहा है। सरकार को इनके प्रति उदासीन न रहकर इनके पुनर्वास की योजना बनाकर शीघ्र ही इनका पुनर्वास किया जाना चाहिए।

भारत में शरणार्थियों की समस्याओं को समाधान के रूप में भारत सरकार सम्यक विधिक उपबंधों के अभाव में आज्ञापक रूप में कार्य करती हैं, अपितु भारत सरकार का कार्य संस्थागत रूप में नैतिकता के सिद्धांतों पर आधारित होता है। यह कार्य प्रशासनिक नीति के अन्तर्गत केवल अस्थायी अथवा तदर्थ प्रकृति का होता है। यद्यपि इस प्रकार का सहायतार्थ कार्य अंतर्राष्ट्रीय शरणार्थी विधियों के सिद्धांतों पर आधारित होता है तथापि सरकार इन विधियों के अनुपालन के लिए बाध्य नही हैं। भारत शरणार्थियों की समस्या का वास्तविक समाधान उनके वापस जाने को ही मानता है।

भारत का मत है कि जैसे ही शरणार्थी के अपने देश में परिस्थितियां अनुकूल हो जाए शरणार्थी को स्वेच्छा से अपने देश लौट जाना चाहिए। इसी तरह की कार्यवाही चकमा शरणार्थियों को वापस करने के लिए मार्च, 1997 मे भी की गई।[25]

ikd foLFkkfirk d ckj e l>ko%

1. प्रभावित परिवारों का समूह या समूहों में पुर्नविस्थापन किया जाए।
2. ऐसे परिवारों का पुर्नविस्थापन जहां तक हो सके ग्रामीण या शहरी क्षेत्रों के नज़दीक किया जाए।
3. पुनः व्यवस्थापन के पश्चात् उन्हें भारत की नागरिकता प्रदान की जाए जिसके अन्तर्गत शर्तें रखी जा सकती हैं।
4. प्रभावित परिवारों को उनके कौशल के अनुसार रोजग़ार की व्यवस्था की जाए।
5. पुनः व्यवस्थापन एवं पुनर्वास प्रशासक नियुक्त किया जाए जो इनकी निगरानी कर सके।
6. पुनर्वास अधिकारी के माध्यम से उनको प्रतिकर का भुगतान किया जाए।
7. जिलाधिकारियों को पुनर्वास अधिकारी की शक्तियां प्रदान की जाए। जैसे वर्तमान में नागरिकता सम्बन्धी अधिकार प्रदान किए गए हैं।

• • •

25 डॉ. शिवदत्त शर्मा, मानव अधिकार विधि साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006 पृष्ठ संख्या 321

fodkl vk|j foLFkkiu dh çfØ;k

eerk d|ekjh•

विस्थापन से लोग मरते हैं बेजुबान, रातों–रात पुश्तैनी घर–परिवेश को छोड़कर जाना एक कयामत सा मंजर होता है। विकास के नाम पर बांध बनाए गए और लाखों लोग विस्थापित हुए। एक मोटे अनुमान के तौर पर आज़ादी के बाद से लगभग 10 करोड़ नागरिक विस्थापित हुए हैं। भारत में इस समय कोई 3600 बाँध हैं, इनमें से 3300 आज़ादी के बाद ही बनाए गए। अनुमान है कि प्रत्येक बाँध की चपेट में औसतन बीस हजार लोग घर–गाँव, रोटी–रोज़गार से उजाड़े गए। यानी आज़ादी के बाद कोई पौने सात करोड़ लोग तो शहरों के लिए बिजली या खेतों के लिए पानी उगाहने के नाम पर विस्थापित हुए। आख़िर राष्ट्र को लेकर वह कौन–सी अवधारण ा है जो सरकारों को अपने ही देशवासियों को कुचलने की इज़ाजत देती है? 'प्रगति' व 'राष्ट्र–हित' की वह कौन–सी समझ है जो इतने बड़े पैमाने पर लोगों को मरणासन्न ज़िंदगी जीने को विवश कर देता है। क्या यह सच नहीं है कि बाँधों के अधिकांश प्रोजेक्ट अनुसूचित जातियों के इलाकों में हुए इसीलिए तो विस्थापित लोगों में 40 प्रतिशत आदिवासी और 20 प्रतिशत अनुसूचित जाति के लोग हैं।

40 वर्षीय विधवा रामाबाई फफक–फफक कर रो पड़ी और कहती हैं कि हमारी सारी ज़मीन–ज़ायदाद स्वाहा हो गई, बांध की भेंट चढ़ गई। सरकार ने हमसे कहा था पक्का मकान मिलेगा और बेटे को नौकरी भी। आज हमारे पास न घर बचा, न अन्न उपजाने के लिए ज़मीन, सबकुछ डूब गया। मुआवज़ा नहीं मिला, पति सोच–सोच कर पागल होकर मर गए। बेटी सयानी हो गई, ब्याह कैसे करवाऊँ। बच्चों को भूख से तड़पते देखा नहीं जाता और मेरा तो मन करता है कि आत्महत्या कर लूँ।

यह दर्द भरी व्यथा केवल रामाबाई की अकेली नहीं है बल्कि उन करोड़ों लोगों की है जिन्होंने विस्थापन के दंश को झेला है। 1947 और 2004 के बीच लगभग 6 करोड़ लोग विस्थापित हुए जिनमें 40 फीसदी आदिवासी और 20 फीसदी अनुसूचित जातियों के थे। इन विस्थापित लोगों में से 18 से भी कम फीसदी का पुनर्वास हुआ। विस्थापन ने लाखों स्वतंत्र उत्पादकों को धनविहीन श्रमिकों में बदल दिया। पुश्तैनी घर–द्वार को उजड़ते देखना कितना भयावह होता है? सत्ताधीशों का कहना है कि हम विस्थापितों को पुनर्बसित कर रहे हैं पर उन्हें क्या पता कि, जिस घर–आंगन में पेड़–पौधों को पुत्र के जैसा पाला–पोसा है उसका क्या, जिन पक्षियों की चहचहाहट से सुबह–शाम होती, क्या पुनर्वास के जगह पर वह मिल पाएगा? क्या भावनाओं को किसी दौलत

• शोध छात्रा, समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म. गां. अं. हिं. वि., वर्धा, (महाराष्ट्र)

की तराजू पर तौला जा सकता है? या यों कहें कि विकास के लिए लोगों के दर्द को क्या किसी रिक्टर पैमाने पर मापा जा सकता है?

मेधा पाटकर कहती हैं कि 'यह दुनिया अगर मर–मिट भी जाए तो क्या है और ये दुनिया जल भी जाए तो क्या है। सकारात्मकता में जीती हूँ, इसलिए यह दुनिया न मरेगी, न मिटेगी। लेकिन जो जिंदा है वह किस दिशा में चलेगी, यह न केवल पूछना है दूसरों से, बल्कि हमीं को तय करना है और यह हमारे समक्ष चुनौती भी है क्योंकि साथ–साथ जीना है। मनुष्य और प्रकृति, जीव–जंतुओं, पशुओं से लेकर पेड़–पौधों, जंगल, नदी झरनों से लेकर पहाड़ तक, पर्यावरण में बदलाव आ रहा है। तापमान में परिवर्तन या कहें कि जलवायु परिवर्तन के साथ–साथ रिश्तों में जो बदलाव आए हैं उसको हम एक प्रकार से चुनौती के रूप में देख सकते हैं कि, कैसे साथ–साथ जीना संभव है और कहां तक संभव है? प्रकृति और मनुष्य को तथा मनुष्य और मनुष्य को सह–अस्तित्व के साथ जीना है।'

आज विस्थापन और अभाव को पैदा करने वाला विकास इन दिनों मानवाधिकार का मुद्दा माना जा रहा है। विस्थापन के दर्द की कहानी को बयां करना आसान काम नहीं है। न केवल अध्ययन बल्कि ज़मीनी अनुभव बताती है कि देश के विकास के नाम पर लोगों को उनकी आजीविका से वंचित किया जा रहा है, वे हाशिए पर धकेले जा रहे हैं और उनकी विपन्नता बढ़ती ही जा रही है। यह मुद्दा पश्चिम बंगाल के सिंगूर व नंदीग्राम, ओड़िशा के नियामगिरि और काशीपुर, उत्तर प्रदेश व हरियाणा में हाइवे के खिलाफ जनांदोलन, मैंगलोर व नवी मुंबई में सेज के खिलाफ आंदोलन व ऐसे ही अन्य जन–संघर्ष राष्ट्रीय स्तर पर उभरा है। ऐसे आंदोलनों ने क़ानूनों, निर्णय प्रक्रिया व ऐसी ही अन्य गलत प्रक्रियाओं पर सवाल खड़े किए हैं जिनकी वजह से लोगों को विस्थापित होना पड़ा या बेहद लचर पुनर्वास झेलना पड़ा। अभाव के होने वाले दुष्प्रभाव का आकलन करना बेहद मुश्किल है। इससे सभी प्रभावित हुए हैं लेकिन हर समूह में महिलाओं ने विकास की सबसे ज़्यादा क़ीमत चुकाई है। यहां तक कि जब कभी किसी परियोजना में पुनर्बसाहट के लिए कोई पैकेज घोषित होता है तो सारा ध्यान केवल पुरुषों पर ही दिया जाता है, महिलाओं की पूरी तरह से उपेक्षा होती है। उदाहरण के तौर पर नौकरी हमेशा परिवार के 'मुखिया' को दी जाती है। अधिकांश परिवारों में पुरुष ही मुखिया होते हैं (गांगुली ठकुराल तथा सिंह 1995)।

आज़ादी के दौरान राजनीतिक कारणों से बड़ी संख्या में लोग विस्थापित हुए लेकिन आज आर्थिक कारणों से लोग खदेड़े जा रहे हैं। इक्कीसवीं सदी के भारत में ज़मीन को लेकर नए तरह के संघर्ष खड़ें हो गए हैं। यह संघर्ष किसानों, कंपनियों और सरकारों के बीच छिड़े है। वर्चस्वशाली ताकतों द्वारा विकास का नारा बुलंद किया जा रहा है। विकास के क्रम में मनुष्य ने जिन उपादानों को विकसित किया था, आधुनिक औद्योगिक विकास ने पिछली तीन शताब्दियों में न सबको समेट कर एक ऐसी दिशा दे दी जिसमें सिर्फ़ शक्तिशाली मनुष्य ही सुकून से रह सकता है। विकास की सीढ़ी चढ़ते मनुष्य ने

अपने सामने आई हर वस्तु को अपना दुश्मन समझा और थोड़े से लोगों के आराम व मनोरंजन के निमित्त उसने जंगलों, पहाड़ों, नदियों को नष्ट किया, जीव–जंतुओं का संहार किया। नैसर्गिक संसाधनों (जल, वायु तक) को इस हद तक प्रदूषित कर डाला है कि अब उनके पूर्व स्थिति में आने की संभावनाएं नित्य प्रतिदिन धूमिल होती जा रही है। विकास का नारा बुलंद करने में हम इस कदर मदहोश हो गए कि अपने ही विनाश में लग गए।

वैश्वीकरण के इस दौर में जैसे–जैसे भारत की राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर का ग्राफ बढ़ा है, वैसे–वैसे ज़मीन अधिग्रहण और ज़मीन संघर्षों की बाढ़ आ गई है। दोनों का सीधा संबंध है। बांध, कारख़ानों, रेल, हवाई जहाज़, औद्योगिक क्षेत्र, सुरक्षित वन, बाघ अभयारण्य, परमाणु एवं ताप विद्युतगृह, खेल स्टेडियम से लेकर श्मशान बनाने, औद्योगिक परियोजनाओं, विशेष आर्थिक क्षेत्रों यानी सेज, खदानों, राजमार्गों व एक्सप्रेस मार्गों, शहरी विस्तार तथा टाउनशिप परियोजनाओं के लिए बड़ी मात्रा में ज़मीन ली जाने लगी है। सरदार सरोवर, नन्दीग्राम, सिंगूर, कलिंगनगर, काशीपुर, पोस्को, नियामगिरी, दादरी, पेन, जैतापुर, टिहरी, श्रीकुलम जैसे लगातार सुर्खियों में रहने वाले विवादों और संघर्षों के केंद्र में ज़मीन है। बस्तर और दंतेवाड़ा के माओवादी उभार के पीछे भी कुछ हद तक टाटा व एस्सार की खनन–औद्योगिक परियोजनाओं तथा इन्द्रावती बोधघाट बांध परियोजना में जाने वाली ज़मीन का सवाल है। 'एक्सप्रेस–वे', 'बिजली परियोजना', 'स्पेशल इकोनॉमिक ज़ोन', 'अभयारण्य' के नाम पर लोगों को अपने ही ज़मीन से बेदखल किए जा रहे हैं। सरकार और मीडिया इसे 'विकास परियोजना' का नाम दे रहे हैं लेकिन यह सवाल है कि दो जून की रोटी की जुगाड़ करने वाले किसान–श्रमिक से ज़मीन लेकर किसका विकास करना चाहते हैं और यह कैसा विकास है? एक्सप्रेस–वे परियोजना को सिर्फ़ सड़क बनाने की योजना तक समझना नासमझी होगी। यह जितनी सड़क परियोजना है, उतनी ही रियल स्टेट जैसी जायदाद वाली टाउनशिप की योजना भी है। गरीबों को उजाड़ना तथा कंपनियों व अमीरों को ज़मीन आबंटन, नए जमाने का यह नियम बन गया है। देश में आज़ादी के बाद जमींदारी प्रथा ख़त्म हुई तो अब टाटा, रिलायन्स, जेपी, डीएलएफ जैसे नए जमींदार बन गए हैं। सीधे सरकार तंत्र के दम पर ली जा रही ज़मीन के अलावा बाज़ार के जरिए भी बड़े पैमाने पर ज़मीन का हस्तांतरण हो रहा है, आम तौर पर जिसकी चर्चा नहीं होती है। खेती के लगातार घाटे का धंधा बने रहने के कारण कई जगह स्वयं स्वेच्छा से या मजबूरी में किसान ज़मीन बेच रहे हैं। अमीरों के दो नंबरी धन को छिपाने और निवेश करने के लिए भी ज़मीन और फ्लैट अच्छा माध्यम है। ज़मीन की एक कृत्रिम मांग पैदा हो गई है। यह बड़ी विचित्र सी बात है कि खेती में घाटा होने तथा किसानों द्वारा आत्महत्या करने के बावजूद ज़मीन के दाम तेज़ी से बढ़ते जा रहे हैं? उधर 'रियल्टी सेक्टर' बढ़ता जा रहा है और राष्ट्रीय आय की वृद्धि में योगदान दे रहा है।

दरअसल, हमारे निर्णयकारी सत्ताधीश एक सीधा–सरल सत्य भूल गए हैं। वह यह कि ज़मीन की आपूर्ति सीमित है। ज़मीन को तो बढ़ाया नहीं जा सकता (जब तक कि हम किसी नए ग्रह को बसने लायक न पा लें), ज़मीन का उत्पादन किसी कारखाने में नहीं हो सकता। हम यह भी भूल गए कि यदि इतने बड़े पैमाने पर ज़मीन खेती से निकल जाएगी, तो हमारी बढ़ती हुई आबादी का पेट कैसे भरेगा? विज्ञान व प्रौद्योगिकी की चमत्कारिक प्रगति के बावजूद अभी तक ऐसा कोई तरीक़ा नहीं खोजा गया है, जिससे बिना खेती के खाद्यानों का उत्पादन कारखानों में होने लगे। भारत में 1990–91 और 2007–08 के बीच खेती के रकबे में 21.4 लाख हेक्टेयर की कमी हुई है। कृषक खेती छोड़ रहे हैं, लोग गांव छोड़कर शहर की ओर पलायन कर रहे हैं। शहर में बसने के लिए वे अपनी ज़मीन को बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बिचौलियों के हाथों बेच रहे हैं। क्या महानगरों की झुग्गियों– झोपड़पट्टियों की संख्या नहीं बढ़ाएगी? ज़मीन के मुआवज़े से बस या जीप खरीदकर या दुकान खोलकर कितने लोगों की जीविका चल पाएगी? नौकरियां अब कहां मिलती हैं? मशीनों व हाईटेक पर आधारित आधुनिक विकास तो वैसे भी 'रोजग़ारहीन विकास' है। 'ग्लोबल विलेज' का नारा देते आर्थिक योजनाकार यह कहते नहीं अघाते कि हम विकास के लिए यह सब कर रहे हैं। दरअसल इसकी जड़ें बहुत गहरी हैं। पश्चिमी देशों द्वारा तथाकथित आधुनिक सुनियोजित विकास ने अपनी परिधि में पूरी दुनिया को समेट लिया। यूरोप को अपने कल–कारख़ानों के लिए कच्चे माल की आवश्यकता थी अतएव सारी दुनिया की खनिज संपदा पर उनकी निगाह पड़ी। इस तरह ज़मीन के नीचे दबे खनिजों को बड़े पैमाने पर निकालने के लिए शक्तिशाली राष्ट्र एक पैर पर खड़ी हो गई है।

आमजनों को प्राकृतिक संसाधनों से अलग करने की कवायद औपनिवेशिक काल से ही शुरू हुई और 1947 के बाद योजनाबद्ध विकास में यह और भी ज़्यादा बढ़ी। आज़ादी के उपरांत होने वाले विस्थापन की जड़ें दरअसल आज़ादी के पहले से जारी प्रक्रिया से जुड़ी हुई है, खासतौर पर भूमि अधिग्रहण क़ानून 1894 राज्य को अधिकार देता है कि वह लोगों से बिना पूछे उन्हें उनकी ज़मीन से विस्थापित कर दे। लेकिन इस क़ानून के लागू होने के सौ साल बाद भी आज तक यह परिभाषित नहीं हो पाया है कि जिस जनहित के नाम पर लोगों को बेदखल किया जाता है वह जनहित आख़िर है क्या? यही वजह है कि विस्थापन की प्रक्रिया आज भी उसी तरह बदस्तूर जारी है जिस तरह 1947 के पूर्व होती थी, इसका सीधा सा कारण यह है कि आज भी विकास के प्रतिमानों में कोई बदलाव नहीं आया है। यही नहीं, विस्थापन और अभाव की प्रकृति में भी बदलाव आया, पहले महज प्रक्रिया आधारित दखल से बढ़कर यह भूमि और उनकी आजीविका के सीधे नुकसान तक पहुंच गई। धीरे–धीरे इसकी तीव्रता बढ़ी लेकिन जागरूकता और पुनर्वास दोनों ही क्षेत्रों में कमी आई। इसकी मुख्य वजह यह है कि विकास के प्रतिमान औपनिवेशिक देशों से लिए गए और स्वतंत्र भारत के निर्णयकारी लोगों द्वारा जस के तस लागू कर दिए गए। योजनाकारों ने सारे अहम

निर्णय 'राष्ट्र–निर्माण' के सिद्धांत के आधार पर लिए। इसमें यह माना गया कि कुछ लोगों को विकास की क़ीमत जरूर चुकानी होगी लेकिन यह इस मायने में लाभप्रद भी होगा कि विकास के फायदे सभी तक पहुंच जाएंगे। जब विकास के फायदे बहुसंख्यक तक पहुंचने में नाकाम रहे तो यह नजरिया बदलकर 'राष्ट्रीय विकास' का हो गया। जवाहरलाल नेहरू तथा पीसी महलनोबिस सरीखे लोग जिन्हें देश की मिश्रित अर्थव्यवस्था के पीछे का मुख्य दिमाग माना जाता है, ने भारत की समस्याओं के निदान के लिए तकनीक को ही मुख्य समाधान के तौर पर लिया। 'भारत एक खोज' में नेहरू इस बात पर बल देते हैं कि औद्योगिकीकरण एक लोकतांत्रिक ढांचे के तहत ही किया जाए। इसमें साम्यवादी तानाशाही और पूंजीवादी शोषण के लिए कोई जगह नहीं होनी चाहिए। ऐसा करने के लिए भारत को उसके अंधविश्वासों और रूढ़िवादी से बाहर निकलना होगा, परंपराएं बदलनी होंगी और खुद को आधुनिक बनाना होगा। इसी विचारधारा ने उन्हें बड़े बांधों और उद्योगों को आधुनिक भारत के तीर्थ घोषित करने के लिए प्रेरित किया। आधुनिकीकरण के नाम पर पूंजीपतियों ने अपना निवेश किया और यहां के प्राकृतिक संसाधनों पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए ज़ोर आजमाइश की। बहुत ही कम लोग, जैसे महात्मा गांधी ने महसूस किया था कि उपनिवेशवादी देश अपने उपनिवेशों का शोषण कर अमीर बनते जा रहे हैं। इसी वजह से महात्मा गांधी ने स्वतंत्र भारत को पश्चिमी राह का अंधानुकरण करने से आगाह किया था। उन्होंने औद्योगिकीकरण का नहीं, उद्योगवाद का विरोध किया था। वे ऐसे विकास के विरोधी थे जो उस तकनीक और उपभोग की राह पर चलता था जो बहुमत की पहुंच से बहुत दूर था। इंग्लैंड सरीखे छोटे से देश ने दुनिया के आधे देशों को महज इसलिए वंचित बना रखा था ताकि उसके नागरिक अमीरों की तरह जी सकें। यहां हमें यह कहने में गुरेज नहीं कि, पूंजीपति तबका गरीबों को धरती पर बोझ के समान समझते हैं और वे मानते हैं कि नैसर्गिक संसाधनों पर उनका मालिकाना हक हो। एक सरकारी अध्ययन के अनुसार भारत की 60 प्रतिशत आबादी का देश की कुल भूमि के 5 प्रतिशत पर अधिकार है जबकि 10 प्रतिशत जनसंख्या का 55 फीसदी ज़मीन पर नियंत्रण है।

आज जल, जंगल, ज़मीन का संकट सर्वज्ञात है। ज़मीन के इस संकट के पीछे आधुनिक सभ्यता की एक बुनियादी ग़लतफ़हमी है। वह यह कि आधुनिक विकास अंतहीन, असीम हो सकता है और इसके लिए महज पूंजी व प्रौद्योगिकी की ज़रूरत है। यदि देश के अंदर ये दोनों उपलब्ध नहीं होंगे तो विष्व बैंक की मदद से, बहुराष्ट्रीय कंपनियों को न्यौता देकर, उन्हें हासिल कर लिया जाएगा। लेकिन इस विकास के लिए जल–जंगल–जमीन– खनिज की भी बड़े पैमाने पर ज़रूरत होगी, उनकी भी बलि चढ़ानी होगी और विकास के रास्ते में उनका स्पीडब्रेकर आ जाएगा या बड़ी दीवार आ जाएगी, यह अहसास धीरे–धीरे अब दर्दीले एवं खूनी तरीके से होने लगा है। ज़मीन की ही तरह पानी को लेकर भी कई जगह द्वन्द्व पैदा हो गए हैं। हर नदी और हर जलाशय का पानी किसानों को मिले, आबादी को पीने का पानी मिले या कंपनियों व कारखानों को मिले, यह झगड़ा हर जगह पैदा हो रहा है। यही टकराव जंगलों के बारे में भी है।

जंगलों के विनाश के कारण आदिवासी या स्थानीय आबादी नहीं, आधुनिक विकास है, जो उन्हें लीलता जा रहा है और आमजनों को उनके मूल आधार से विस्थापित किया जा रहा है।

प्रश्न उठता है कि विस्थापन करते समय उनके जीविकोपार्जन के विकल्प की तलाश क्यों नहीं की जाती? समतामूलक समाज के नाम पर किए जा रहे तथाकथित विकास के मॉडल में आख़िर क्या खामी रह जाती है कि विस्थापित लोग बद् से बद्तर ज़िंदगी गुज़ारने को विवश हो जाते हैं? क्या यह सच नहीं है कि आज से नैसर्गिक संसाधनों को लूटने की होड़ लगी है, 'प्रभु देश' येन–केन–प्रकारेण हमारे संसाधनों पर कब्जा करने की साजिश में लगे हैं। आज विस्थापन ऐसे राज्यों (झारखंड, छत्तीसगढ़, उड़ीसा आदि) से हो रहे हैं, जहां कि नैसर्गिक संसाधन बहुतायत में है। उड़ीसा, छत्तीसगढ़ और झारखंड में देश के कोयला–भंडार का 70 प्रतिशत हिस्सा मौजूद है। देश के लौह– अयस्क का 80 प्रतिशत हिस्सा, बॉक्साइट का 60 प्रतिशत तथा क्रोमाइट का तकरीबन 100 प्रतिशत हिस्सा इन्हीं तीन राज्यों में है। झारखंड खनिजों का भंडार है। वहां भी आदिवासी हैं। वहां भी सरकार 'विकास' कर रही है और माओवादी तो वहां हैं ही। खनिज और कोयले से वहां कंपनियां धन्नासेठ बन रही है, आर्सेलर मित्तल–जिंदल से लेकर कौन है, जो झारखंड में मौजूद नहीं। यानी, खनिज, आदिवासी, माओवाद, धन, विकास, जंगल, ज़मीन, निजी पूंजी, आंतरिक सुरक्षा– ये तमाम शब्द दरअसल एक ही संदर्भ से ताल्लुक रखते हैं, जो एक ही किस्म के भौगोलिक परिक्षेत्रों पर लागू होते हैं। आज़ादी के इतने वर्षों के बाद भी लोककल्याणकारी राज्य में आज भी औपनिवेशिक शक्तियों द्वारा कुटिल नीति के तहत देश में विकास के नाम पर लोगों को उनकी आजीविका से वंचित किया जा रहा है, वे हाशिए पर धकेले जा रहे हैं और उनकी विपन्नता बढ़ती ही जा रही है। यह मुद्दा जल, जंगल, ज़मीन के सवाल पर आंदोलन व ऐसे ही अन्य जन संघर्षों के चलते राष्ट्रीय स्तर पर उभरा है। ऐसे आंदोलनों ने क़ानूनों, निर्णय प्रक्रिया व ऐसी ही अन्य गलत प्रक्रियाओं पर सवाल खड़े किए हैं।

दिक्कत यह है कि पुनर्वास का कोई खाका सरकार के पास नहीं है। वह लोगों को उजाड़ तो देती है पर बसा नहीं पाती। विस्थापन होना चाहिए या नहीं, इस बहस से बचने का इकलौता हल है–व्यवस्थित पुनर्वास। इसके तहत इन प्रावधानों पर सख़्ती से अमल होना चाहिए कि सरकार सुविधायुक्त पुनर्वास स्थल विकसित कर विस्थापितों को दे, जहां तमाम बुनियादी सुविधाएं हों, ज़मीन के बदले ज़मीन दे और रोजग़ार की गारंटी दे। चूंकि यह काम खर्चीला और लंबा है, इसलिए तमाम सरकारें इस जिम्मेदारी से बचती हैं। तय है आंदोलन और आंदोलनकारी न होते तो विस्थापितों की और ज़्यादा दुर्गति होती। एक दफा विकास की शर्त पर विस्थापन भले ही क्रूरता न मानी जाए पर पुनर्वास का न होना किसी क्रूरता से कम नहीं, इस बाबत सरकार कठघरे में है।

विस्थापन की इस पूरी प्रक्रिया को समझाते हुए अरुंधति राय कहती हैं, 'लाखों लाख विस्थापितों का अब कोई वजूद नहीं है। जब इतिहास लिखा जाता है, वे इसमें नहीं होते। आंकड़ों में भी नहीं। उनमें से कुछ लगातार तीन बार और चार–बार विस्थापित हुए हैं। बांध के लिए, चांदमारी के इलाके के लिए, दूसरे बांध के लिए, यूरेनियम की खान के लिए, बिजली परियोजना के लिए। एक बार वे लुढ़कना शुरू करते हैं तो फिर रुकने की कोई जगह नहीं होती। इनमें से बहुत बड़ी संख्या आख़िरकार हमारे बड़े शहरों की परिधि पर झोपड़पट्टियों में खप जाती है, जहां यह सस्ते निर्माण मज़दूरों की बहुत बड़ी भीड़ में बदल जाती है (जो और ज़्यादा परियोजनाओं पर कार्य करती है जिससे और ज़्यादा लोग बेदखल होते हैं)। सही है कि उनका सफाया नहीं किया जा रहा है या उन्हें गैस चैम्बर में नहीं डाला जा रहा है, मगर मैं दावा करती हूं उनकी रिहाइस का स्तर थर्ड राइख (नाजीकैंप) के किसी यातना शिविर से बदतर है। वे कैदी नहीं हैं, लेकिन वे मुक्ति के मतलब की एक दूसरी ही परिभाषा देते हैं।'

ऐसे में हमें सोचने की ज़रूरत है कि क्या तथाकथित विकास विस्थापन के बग़ैर नहीं हो सकता? क्या बड़े उद्योगों से ही विकास और खुशहाली का सूर्योदय होगा? और क्या उन वनवासियों और किसानों की ज़मीन पर ही विकास का पहिया दौड़ेगा, जो सदियों से संपूर्ण आजीविका के साधन रहे हैं? इन सवालों का जवाब जब तक राज्य और केंद्र सरकार के पास नहीं होगा तब तक विस्थापन और तथाकथित विकास, एक–दूसरे के विरोधी बने रहेंगे।

अंत में, किसी भी राष्ट्र–समाज का जो तबका सभ्यता कहें, विकास की दौड़ में पीछे रह गया है, कौन नहीं चाहेगा कि उसे आगे बढ़ाया जाए? लेकिन जब इस प्रयत्न और प्रक्रिया के केंद्र में किसी विकसित और चालाक वर्ग को लाभ पहुँचाने की साजिष की जाती है और पिछड़े तबके के विकास के नाम का ढ़ोल पीटा जाता है तो इसका पुरज़ोर विरोध सभी जागरूक इंसानों को करना चाहिए। ऐसी स्थिति 'विकास के नाम पर विस्थापन' की वजह से पैदा होती है न कि सही अर्थ में विकास के कारण। जब दूरदृष्टि सम्मत विकास के लिए विस्थापन अनिवार्य हो, तो पुनर्वास केंद्रीय लक्ष्य बन जाता है जिसे पुनर्वास नीति के प्रावधानों के तहत पूरा किया जाना चाहिए।

l nHk l ph %

- मेधा पाटकर का आलेख 'शांतिपूर्ण सहअस्तित्व और न्यायपूर्ण विश्व', म.गां.अं. हिं. विश्वविद्यालय, वर्धा की पत्रिका 'बहुवचन' अंक 31
- हरिराम मीणा का आलेख 'विस्थापन की समस्या', म.गां.अं.हिं. विश्वविद्यालय, वर्धा की पत्रिका 'बहुवचन'।
- डॉ. अमित कुमार विश्वास का आलेख 'विकास और विस्थापन', राष्ट्रीय मानव अधिकार की पत्रिका 'मानव अधिकार : नई दिशाएं', अंक 12

- http:èèhindi.indiawaterportal.orgènodeè50380
- http:èèhindi.indiawaterportal.orgènodeè46090
- https:èèsamatavadi.wordpress.comècategoryè%E0%A4%B5%E0%A4%BF%E0%A4%B8%E0%A5%8D%E0%A4%A5%E0%A4%BE%E0%A4%AA%E0%A4%A8è

• • •

Hkkjrh; fdlkuk dk le{k pqukfr;k %
,d foospu

'khyUnz dqekj•

''किसानों की समस्याएं रातों–रात हल नहीं हो सकतीं''

''आपका काम किसानों की आत्महत्याओं को रोकना है न कि आत्महत्या के बाद उनके परिवारों को मुआवज़ा देना है''

यह दो वक्तव्य सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिनांक–07/08.07.2017 की कार्यवाही के दौरान दिए गए। पहला वक्तव्य मुख्य न्यायाधीश की पीठ द्वारा उस समय दिया गया जब महाधिवक्ता वेणु गोपाल द्वारा यह बताया गया कि केन्द्र सरकार किसानों की समस्याओं के लिए हर संभव प्रयास कर रही है और इसका असर जल्दी ही देखने को मिल जाएगा। इस संबंध में उन्होने सर्वोच्च न्यायालय से एक वर्ष का समय मांगा। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उनकी बातों को संज्ञान में लेते हुए केन्द्र सरकार को छः माह का समय प्रदान किया। दूसरा वक्तव्य सर्वोच्च न्यायालय की दूसरी खण्डपीठ द्वारा दिया गया जो तमिलनाडु के किसानों की समस्याओं के संबंध में एक याचिका पर सुनवाई कर रही थी। उल्लेखनीय है कि किसानों की आत्महत्या के संबंध में कई याचिकायें सर्वोच्च न्यायालय में दाख़िल हो चुकी हैं। एक जनहित याचिका में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मध्य प्रदेश के पुलिस मुख्यालय से रिपोर्ट मांगी। इस रिपोर्ट के अनुसार मध्य प्रदेश में वर्ष 2006 से 2015 तक 11,000 से अधिक किसानो ने आत्महत्या की। इसमें से अधिकांश ने क़र्ज़ न चुका पाने के कारण आत्महत्या की। मानवाधिकार के नजरिये से यदि इन किसानों की समस्या को देखा जाए तो इनकी समस्या इनके द्व ारा झेली तो जरूर जा रही है किन्तु उस समस्या के पैदा होने में इनका कोई हाथ नहीं है। वास्तव में यदि प्रत्येक मानव को जीने का अधिकार है तो वह अपने इच्छा के अनुसार अपनी जिन्दगी को चला सकता है। किसानों द्वारा स्वेच्छा से अपने अलावा समाज के अन्य लोगों के लिए अनाज और दूध सब्जियों को उत्पादन किया जाता है। यह सही है कि किसान अपने उत्पाद को बेच कर जो धन पैदा करता है वह एक व्यापार की श्रेणी में आता है किन्तु यह व्यापार किसान द्वारा अपनी मेहनत से अनाज उत्पादन करके किया जाता है। इस व्यापार और अन्य व्यापार में ज़मीन–आसमान का अन्तर है। किसान के अनाज उत्पादन में प्रकृति का सर्वाधिक योगदान रहता है जबकि अन्य किसी भी व्यापार में व्यापार करने वाले के अलावा अन्य शक्तियों का विशेष कर प्रकृति का इतना दखल नहीं होता। कोई भी किसान आत्महत्या नहीं करना चाहता किन्तु परिस्थितिवश उसको कोई दूसरा रास्ता नहीं दिखाई देता और अन्त में वह आत्महत्या द्वारा अपना जीवन समाप्त कर लेता है। इस आत्महत्या के पीछे कौन से

• संयोजक, "आज़ादी बचाओ आन्दोलन", लखनऊ

कारण हैं इनका विश्लेषण करना बहुत आवश्यक है जिससे कि यह स्पष्ट हो सके कि किसान अपने जीने के अधिकार को आख़िरकार ख़त्म क्यों कर रहा है। निम्न तथ्यों और उनके विश्लेषण से मूल कारण और स्वरूप जानने का प्रयास किया जाता है।

भारत सरकार के नेशनल क्राइम ब्यूरो की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार 2013 से 2016 तक विभिन्न वर्षों में किसानों द्वारा की गई कुल आत्महत्याऐं निम्न तालिका में दर्शाई गई हैं:–

वर्ष	संख्या
2013	11772
2014	12360
2015	12602
2016	6667+200 (ये आकड़े 5 राज्यों क्रमशः मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तेलंगाना तथा तमिलनाडु के हैं। अन्य राज्यों से सम्बन्धित आत्महत्याओं की संख्या अभी उपलब्ध नहीं है।)

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि 2013 के मुकाबले 2016 में आत्महत्याओं की संख्या लगातार बढ़ी है। इस विषय में ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि उपर्युक्त आकड़े पूर्ण रूप से सही स्थिति नहीं बता रहे हैं क्योंकि अधिकतर मामलों में राज्य सरकारों द्वारा आत्महत्याओं की संख्या का आंकड़ा कम करके ही बताया जाता है। अभी हाल के वर्षों में किसानों द्वारा सर्वाधिक आत्महत्या महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक और तमिलनाडु में की जा रही है किन्तु अब मध्यप्रदेश में भी इनकी संख्या लगातार बढ़ रही है। ऐसे कई आकलन आए हैं जिससे कि यह पता चलता है कि इन आत्महत्याओं का मूल कारण किसानों द्वारा क़र्ज़ा न चुका पाने या फ़सल नुकसान/बर्बादी की दशा में किया जाता है। यह क़र्ज़ा व्यक्तिगत क़र्ज़ादारों के साथ–साथ बैंकों द्वारा भी लिया जाता है। अधिकतर क़र्ज़ा व्यक्तिगत क़र्ज़दारों द्वारा अधिक ब्याज पर लिया जाता है। क्योंकि बैंकों द्वारा किसानों की ज़मीन गिरवीं रखने के बाद ही क़र्ज़ा दिया जाता है। इस विषय में यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि गांवों में एक तिहाई से आधी जनसंख्या तक किसान भूमि–विहीन होते हैं। चूंकि बैंकों द्वारा क़र्ज़ा लेने पर ऐसे किसान गिरवी के लिए कुछ भी नहीं रख सकते अतः उनके द्वारा गांवों के व्यापारियों/साहूकारों से ही क़र्ज़ा लिया जाता है जो कि अमूमन तौर पर अधिक ब्याज दर पर क़र्ज़ा देते हैं।

किसान आत्महत्या किसी एक प्रांत की ही समस्या नहीं रह गई है। आज महाराष्ट्र, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक एवं मध्य प्रदेश के साथ ही पंजाब जैसे समृद्ध प्रान्त में भी आत्महत्याऐं प्रारम्भ हो गई हैं। अभी हाल में उत्तराखण्ड में 13 जून 2017 को पिथौरागढ़ जिले के बेड़ीनाग ब्लाक के डोरडुगरी गॉव में किसान सुरेन्द्र सिंह की आत्महत्या का समाचार आया। सुरेन्द्र सिंह ने क़र्ज़ से परेशान होकर कीटनाशक

पीकर आत्महत्या कर ली थी। उत्तराखण्ड जिले में संभवतः यह पहली आत्महत्या हुयी है। दूसरी आत्महत्या खटीमा क्षेत्र में किसान रामऔतार ने 24 जून, 2017 को फॉसी लगाकर की। उन्होने ने बैंक से रु.–3,13,000.00 का क़र्ज़ लिया था और बैंको द्वारा उनपर यह दबाव बनाया जा रहा था कि वे अपनी ज़मीन का एक हिस्सा बेंच दें। उल्लेखनीय है कि पहली आत्महत्या पर्वतीय क्षेत्र में हुई है जबकि दूसरी आत्महत्या तराई क्षेत्र में है।[1]

enlkj xkyh dk.M

अभी हाल में मध्य प्रदेश के किसानों द्वारा एक आन्दोलन किया जा रहा था जिसमें कि उनकी प्रमुख मांग क़र्ज़–माफी और फ़सलों के उचित मूल्य को लेकर थी। प्रदेश सरकार के द्वारा प्रारम्भ में इस आन्दोलन को कोई तवज्जो नहीं दी गई वरन् सतही किसान यूनियनों द्वारा समझौता करके यह प्रचारित किया गया कि किसानों का आन्दोलन समाप्त हो गया है। दुखः एवम क्षोभ से उद्वलित किसानों ने मध्य प्रदेश के मंदसौर में मण्डी को बन्द करने का प्रयास किया। इस दौरान आन्दोलन को जानबूझ कर हिंसक रूप करा दिया गया और पुलिस फायरिंग में छः किसानों की मृत्यु हुई। इस गोली कॉण्ड के बाद मध्य प्रदेश के नौ जिलों (मंदसौर, इन्दौर, रतलाम, नीमच, खरगौन, देवास, धार तथा बढ़वानी) में यह आन्दोलन पहुॅच चुका है। लगभग इसी समय महाराष्ट्र के किसानों ने भी अनिश्चित कालीन हड़ताल शुरू कर दी। उन्होने मुबंई को दूध और सब्जियों की आपूर्ति बन्द कर दी। उनका कहना है कि दूध और सब्जियों की उचित क़ीमत नहीं दी जा रही है। अतः प्रदेश सरकार को किसानों का क़र्ज़ मॉफ करे और साथ ही साथ फल और सब्जियों का उचित मूल्य भी दिलाये। उल्लेखनीय है कि महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश में किसानों के आन्दोलन अपेक्षाकृत सम्पन्न किसानों द्वारा किए जा रहे हैं जोकि अनाज, दूध और सब्जियों के उचित मूल्य को लेकर है। यह मांग किसानों द्वारा बहुत समय से की जा रही है। उनका कहना है कि खेती में अनाज की क़ीमत लागत मूल्य से कम मिल रही है जिसके कारण खेती–किसानी करना अब फायदे का सौदा नहीं रह गया है। वास्तव में क़र्ज़ बढ़ने के साथ किसानों द्वारा आत्महत्याऐं भी बढ़ रहीं हैं पिछले 21 वर्षो में 3.18 लाख किसानों ने आत्महत्या की है। इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक 41 मिनट में एक किसान आत्महत्या कर रहा है। दुख का विषय है कि मजबूरी में की गई आत्महत्या को किसानों की कमज़ोरी का संकेत बताया जा रहा है। इन आकड़ो में खेतिहर मज़दूर द्वारा की गई आत्महत्या को नहीं जोड़ा गया है।[2] क़र्ज़े के कारण किसानों की आत्महत्या के संबंध में लोक सभा में पूछे गए एक सवाल के जवाब में नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरों (एन.सी.आर.बी.) के आकड़ों का हवाला देते हुए यह बताया गया कि वर्ष 2014 में 5,650 किसानों ने आत्महत्या की जो वर्ष 2015 में बढ़कर 8007 हो गई। यानी आत्महत्याओं में लगभग 47.7 प्रतिशत की वृद्धि हुयी है। अर्थात् एक दिन में लगभग 21.93 प्रतिशत आत्महत्याएं की गईं। अभी हाल में अमेरिका के एक विश्वविद्यालय द्वारा एक शोध की रिपोर्ट प्रसारित की

गई है जिसके अनुसार अनाज उत्पादन के महीनों में जलवायु में 1 प्रतिशत तापक्रम बढ़ने पर अनाज के उत्पादन में कमी आ जाती है और इसके अनुसार किसानों की आत्महत्या (लगभग 70 आत्महत्याऐं प्रति अनाज उत्पादक सीजन) की दर बढ़ जाती है। उपर्युक्त रिपोर्ट मूलरूप से सामाजिक क़र्ज़–माफी की व्यवसायिक समस्या के बजाय इस समस्या को जलवायु में ताप वृद्धि से जोड़ने का प्रयास कर रही है। इस तरह की रिपोर्ट किसी भी सामाजिक समस्या का मात्र स्वरूप बदलना चाह रही है, जिससे कि यह कहा जा सके कि किसानों की आत्महत्या एक सामाजिक और आर्थिक समस्या न होकर जलवायु में ताप वृद्धि के कारण होती है। यानी कि ताप वृद्धि चूंकि किसी समाज या देश के अकेले के वर्ष की बात नहीं है अतः किसानों की आत्महत्या की समस्या का कोई निदान राज्य द्वारा किया जाना संभव नहीं है। इस तरह की रिपोर्ट की मानसिकता अपने आप जाहिर हो जाती है क्योंकि इसके द्वारा मूल समस्या को बदलने का प्रयास किया जा रहा है और इस प्रकार के प्रयास संदिग्ध प्रतीत होतें तथा इनकी सत्यत्ता और प्रासंगिता पर सवालिया निशान अपने आप लग जाता है।[3]

किसानों की मासिक आय औसतन 6600.00 रु. आंकी गई है इसमें लगभग 3600.00 रूपये की आय दूध और सब्जियों से होती है। दूसरे शब्दों में मात्र तीन हजार रूपये की मासिक आय पर किसान स्वयं और औसतन 5 लोगों के परिवार का भरण–पोषण करता है। इसी कारण उचित मूल्य के लिए लगभग देश के हर प्रान्त के किसानों द्वारा मांग की जा रही है। वस्तुतः उचित मूल्य की मांग के लिए तत्कालीन केन्द्र की यू.पी.ए. सरकार ने वर्ष 2004 में राष्ट्रीय किसान आयोग का गठन किया था, जिसके अध्यक्ष श्री एम.एस. स्वामीनाथन थे। उन्होने 2006 में अपनी रिपोर्ट केन्द्र सरकार को सौंप दी थी। उनके द्वारा अपनी रिपोर्ट में कई सिफ़ारिशें की गई जोकि मुख्यतः निम्न है:–

1. कृषि उत्पादों के लिए लागत से डेढ़ गुना मूल्य देना चाहिए।
2. राज्यों में भूमि सुधार किया जाय और बेकार ज़मीनों को भूमिहीन किसानों में बांट दिया जाय।
3. आत्महत्याओं की समस्या के समाधान हेतु राज्य स्तरीय किसान कमीशन बनाया जाय।
4. किसानों को फ़सलों की सिचाई के लिए पानी की उपलब्धता सुनिश्चित की जाय तथा इसके अनुरूप सरकारी योजनाओं में उचित धन आवंटन किया जाय।
5. कर्ज वसूली को आसान किया जाय।
6. कृषि राहत फण्ड बनाया जाय।
7. कुपोषण के मुकाबले में खाद्य सुरक्षा का ध्यान रखा जाय।
8. किसानों द्वारा लिए गए कर्जों को माफ़ किया जाय इसके साथ ब्याज मुक्त ऋण की योजना बनाई जाय।

9. पुराने बिजली बिलों की माफ़ी होनी चाहिए।
10. 60 वर्ष पूरे होने पर किसानों को पेंशन दिया जाय।
11. दुग्ध उत्पादों के लिए उचित और बेहतर मूल्य दिए जाएं।

दुखः का विषय है कि तत्कालीन यू.पी.ए. सरकार द्वारा इस पर कोई कार्यवाही नहीं की गई। स्वामीनाथन रिपोर्ट 2006 में प्रस्तुत की गई थी और यू.पी.ए. की सरकार केन्द्र में 2014 तक रही। किन्तु उनके द्वारा इस रिपोर्ट पर कोई कार्यवाही नहीं की गई। यह सरकार 2014 में आई किन्तु 3 वर्ष बीत जाने के बाद भी स्वामीनाथन रिपोर्ट पर कोई कार्यवाही अभी तक नहीं की गई। स्पष्ट है कि एक दशक बीत जाने के बाद भी स्वामीनाथन रिपोर्ट पर मौजूदा सरकार भी कोई निर्णय नहीं लेना चाहती है। लागू करना तो दूर अब सरकार के प्रतिनिधियों द्वारा कहा जा रहा है कि कोई भी सरकार यह रिपोर्ट लागू नहीं कर सकती। केन्द्रीय सरकार मौजूदा प्रधान–मंत्री ने 2014 के चुनाव में यह वादा किया था कि सरकार बनने पर किसानों को उनकी उपल के मामले में स्वामीनाथन रिपोर्ट के आधार पर मूल्य दिया जाएगा किन्तु दुःख के विषय है कि अब यही सरकार सर्वोच्च न्यायालय में कह रही है कि स्वामीनाथन रिपोर्ट लागू नहीं की जा सकती। प्रश्न उठता है कि क्या इस वादे के पहले सरकार के मुखिया को यह नहीं मालूम था कि क्या वायदा किया जा रहा है?

किसानों की समस्याओं को समझने के लिए यह जानने की आवश्यकता है कि भारत में लगभग आधी जनसंख्या के पास कोई भूमि नहीं है जिसके कारण वे गांव में रहते जरूर हैं किन्तु उनको किसान कहना उचित नहीं होगा। वास्तव में वे गांव में खेती–किसानी के दौरान मज़दूरी ही करते हैं। मज़दूरी में कभी उनको अनाज मिल जाता है और कभी प्रतिदिन के आधार पर नकदी मिल जाती है। वास्तव में वह खेतिहर–मज़दूर की श्रेणी में आते हैं किन्तु आवश्यकता पड़ने पर बैंक इत्यादि से लोन नहीं ले सकते हैं क्योंकि कोई भी बैंक क़र्ज़ा तभी देता है जबकि क़र्ज़ा लेने वाला बैंक से ली गई धनराशि के एवज में बंधक के रूप में ज़मीन, घर या अन्य कोई जेवरात आदि रेहन पर देता है। इन हालात में खेतिहर मज़दूर अधिकतर गांव के व्यापारी/साहूकार या अन्य सम्पन्न लोगों से क़र्ज़ा लेने के लिए बाध्य है, जो इनको क़र्ज़ा तो दे देते हैं किन्तु क़र्ज़े के बदले ब्याज बहुत ऊंची दर पर लेते है। कभी–कभी यह ब्याज 10 से 12 प्रतिशत प्रतिमाह की दर से होता है। ब्याज न देने की दशा में इन मज़दूरों द्वारा अपने को या अपने किसी परिवार के सदस्य को बन्धक के तौर पर उस व्यक्ति को देना होता है। ऐसे कई उदाहरण हमारे समाज में मिलते हैं जबकि इस प्रथा के कारण बहुत से किसान आजीवन क़र्ज़े की मामूली रकम वापस नहीं कर पाते और जिन्दगी भर एक बंधुआ मज़दूर की तरह काम करते रहते हैं। उनके बाद उनके परिवार के अन्य सदस्य भी उस क़र्ज़े को उतारनें के लिए आजीवन बंधक ही बने रहते हैं।

बचे आधे किसानों में से लगभग आधे के पास एक से दो एकड़ ज़मीन ही होती

है। इन किसानों द्वारा अधिकतर जो अनाज या सब्जियॉ पैदा की जाती है उसके द्वारा वह किसान अपने और अपने परिवार का भरण–पोषण ही कर पाते हैं। लगभग 10 से 15 प्रतिशत किसान इस स्थिति में होते हैं जिनके पास दो एकड़ से अधिक ज़मीन होती है। इनके द्वारा ही बैंकों से या अन्य वित्तीय संस्थाओं से क़र्ज़ा लिया जाता है। इस क़र्ज़े द्वारा यह किसान अनाज या सब्जियां उत्पन्न करते हैं और बाज़ार में बेचते हैं। इन्हीं द्वारा गाय या भैंसे भी पाली जाती है और दुग्ध का उत्पादन किया जाता है। अधिकतर सब्जियों और दूध का खरीद मूल्य और बिक्री मूल्य में ज़मीन आसमान का फर्क होता है, उदाहरण स्वरूप उत्तर प्रदेश में आलू, महाराष्ट्र–मध्य प्रदेश में प्याज और राजस्थान और मध्य प्रदेश–महाराष्ट्र में टमाटर अधिकतर पिछलें कई वर्षों में खरीद मूल्य पॉच रूपये से नीचे ही रहा है जबकि इनके बिक्री का मूल्य कई बार सौ रूपये पार कर चुका है। इसी प्रकार दलहन के मामलें में पिछलें वर्ष अरहर की दाल 8000.00 कु. पार कर गई थी, जबकि इस वर्ष इसका अधिकतम मूल्य दो से तीन हजार रूपया ही रहा। इसी प्रकार चने का मूल्य भी इस वर्ष काफ़ी कम रहा जिससे कि चना पैदा करने वाले किसानों को लागत मूल्य भी नहीं मिल पा रहा है। दूध का खरीद मूल्य 15–20 रूपये से अधिक नहीं होता।

लागत और खरीद मूल्य में काफ़ी अन्तर होने के कारण 23 जिन्सों में भारत सरकार और राज्य सरकारों द्वारा समर्थन मूल्य तय किया जाता है। उल्लेखनीय है कि 23 जिन्सों में समर्थन या खरीद मूल्य तय होने के बाद भी सरकार द्वारा खरीदारी केवल गेहूं और चावल की ही होती है। इस प्रकार 21 जिन्सों में समर्थन मूल्य तय करने का कोई औचित्य दिखाई नहीं देता क्योंकि राज्य और केन्द्र सरकार द्वारा इनको खरीदा नहीं जाता और खुले बाज़ार के दामों को इन समर्थन मूल्य में तय की गई रकम का कोई सीधा संबंध नहीं रहता है। बिचौलियों द्वारा अपनी मनमाफ़िक मूल्य पर इन जिन्सों को खरीदा जाता है। उल्लेखनीय है कि 1970 और 2015 के बीच गेहूं का खरीद मूल्य सिर्फ़ 19 गुना बढ़ा है जबकि इसी अवधि में सरकारी कर्मचारियों की आमदनी 120 से 150 गुना, कालेज अध्यापकों की 150 से 170 गुना और स्कूल अध्यापकों की आमदनी 280 से 320 गुना बढ़ गई है।[4]

गेहूं और चावल के मामले में भी समर्थन मूल्य निर्धारण के बाद तथा राज्य और केन्द्र और सरकार द्वारा खरीद के बाद भी गेहूं और चावल के दाम खुले बाज़ार में समर्थन मूल्य से अधिकतर कम ही होते हैं। वास्तव में छोटे किसान गेहूं और चावल भी सरकारी खरीद केन्द्रों में आसानी से नहीं दे पाते क्योंकि उनके पास इतना समय नहीं होता कि वे सरकारी प्रक्रिया का इन्तजार कर सकें। इसके अलावा इस श्रेणी के अधिकतर किसान अपनी पैदावार का नकद मूल्य तुरंत चाहते हैं जिससे कि उनके रोज़मर्रा के खर्चें निकल सकें। सरकारी खरीद केन्द्रों पर गेहूं और चावल खरीदनें के बाद चेक से भुगतान के कारण इन किसानों को तुरंत नकदी नहीं मिल पाती। अतः इनके द्वारा अपनी पैदावार को कम दामों पर बिचौलिए को बेच देना पड़ता है बिचौलिए इन किसानों को नकद मूल्य देकर उनकी पैदावार खरीद लेते हैं।

इन किसानों को एक अन्य समस्या से गुज़रना होता है उसका कारण सार्वजनिक बैंकों की कम शाखाओं का होना भी है। आज भी देश के बहुत से गांवों में सार्वजनिक बैंक की कोई भी शाखा नहीं है। जिन गांवों में यह शाखा है भी वहां पर उन शाखाओं में एक बार निकालने के लिए धनराशि की सीमा बहुत कम होती है और अधिकतर शाखाओं में धन की उपलब्धता नहीं होती है। कई गांवों में सहकारी बैंकों की शाखाएं अवश्य खुल गई है किन्तु उसमें व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण अधिकतर किसान उसमें अधिक धन रखने से डरते हैं। उल्लेखनीय है कि केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा सहकारी बैंको को भी सार्वजनिक बैंको के बराबर दर्जा नहीं दिया जाता है। अभी हाल में नोट बन्दी के दौरान पुराने नोट केवल सार्वजनिक बैंकों में ही लिए जाते थे। जिन ग्रामीणों ने सहकारी बैंको में अपनी धनराशि जमा कर दी वह काफ़ी मुश्किल में पड़ गए थे क्योंकि रिर्जव बैंक द्वारा सहकारी बैंकों को इस हेतु अधिकृत नहीं किया गया था। सहकारी बैंकों के मामले में जमा धनराशि के लिए माननीय सर्वोच्च न्यायालय को निर्देश देने पड़े थे।

नेशनल सैम्पुल सर्वे आर्गनाईजेशन (एस.एस.ओ. 17 दौर, दिसम्बर, 2014) ने भारत में किसान परिवारों की स्थिति पर एक अध्ययन जारी किया जिसके अनुसार 32.2 प्रतिशत किसानों को धान के समर्थन मूल्य के बारे में और 39.2 प्रतिशत के किसानों को गेहूं के समर्थन मूल्य के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। जुलाई 2012 से जून, 2013 के बीच (दो छमाही में) एक हजार किसान परिवारों ने गेहूं बेचने वाले 368 किसान थे। इनमें से केवल 25 (6.8 प्रतिशत) ने ही सीधे सहकारी संस्था या सरकारी खरीद केन्द्र पर अपना उत्पाद बेचा और 35 प्रतिशत किसानों ने मण्डी में अपनी उपज बेची। दूसरे शब्दों में 50 प्रतिशत किसान स्थानीय व्यापारियों को अपने उपज की फ़सल बेची। इन तथ्यों के विवरण से स्पष्ट है कि भारत सरकार द्वारा जिन दो अनाजों यानी गेहूं और चावल को खरीदा जा रहा है उनकी खरीद और मूल्य के बारे में किसानों को उचित जानकारी नहीं है। ऐसी स्थिति में उनके द्वारा खरीद केन्द्रों पर अपना उत्पाद सरकार द्वारा निश्चित मूल्य पर बेचने की संभावना कम हो जाती है।

घटती जोत और भूमिहीन होते किसान

नीति आयोग के रमेश चन्द्र द्वारा एक पर्चा तैयार किया गया है जो कि ''किसानों की आय को दुगना करना–तर्काधार, कार्य नीति, संभावनाएं और कर्म योजना'' के नाम से है। इसके अनुसार सन् 2005–06 से भारत में जोतदारों की संख्या 16.61 करोड़ से घट कर 14.62 करोड़ हो गई है। इसके अनुसार भारत में हर रोज 6710 जोते कम हुयी हैं। 8 साल में भारत में जोतों की संख्या में 1.99 करोड़ की कमी आ गई है। यदि यही क्रम जारी रहा तो वर्ष 2015–16 से वर्ष 2022–23 के बीच देश में 1.96 करोड़ जोतों (13.4 प्रतिशत) की और कमी आ जाएगी। उपर्युक्त तथ्यों और विवरण से स्पष्ट है कि खेती–किसानी में लगे हुए व्यक्तियों की संख्या लगातार कम हो रही है। स्पष्ट है कि ये लोग खेतिहर मज़दूर की श्रेणी में बढ़ रहे हैं। दूसरे शब्दों में ये किसान अपने

गांवों में अपनी कोई खेती न होने के कारण जीवन यापन के लिए दूसरों की खेती में मज़दूरी करने के लिए बाध्य हो रहे हैं।

leL;k dh tM+ fo'o O;kikj laxBu

60 के दशक के बाद गेहूं और चावल उत्पादन में वृद्धि के कारण भारत सरकार द्व ारा इनका समर्थन मूल्य वार्षिक स्तर पर तय किया जाने लगा। 1995 तक इस समर्थन मूल्य में लगभग 10 से 15 प्रतिशत की वृद्धि हो जाती थी किन्तु 1995 में केन्द्रीय सरकार द्वारा डब्लू.टी.ओ. अर्थात् विश्व व्यापार संगठन में हस्ताक्षर के बाद समर्थन मूल्य में वृद्धि कम होने लगी। वास्तव में विश्व व्यापार संगठन का मानना है कि समर्थन मूल्य एक विकृत सब्सिडी है और सदस्य देशों को यह समाप्त करना चाहिए। इसके अनुसार बीज, खाद, बिजली, सिचाई, कृषि क़र्ज़ और न्यूनतम समर्थन मूल्य विकृत सब्सिडी के अन्तर्गत आते हैं। विश्व व्यापार संगठन में शामिल सदस्य देश को विश्व व्यापार संगठन में सहमत हुए प्रावधानों को अपने देश में लागू करना अनिवार्य होता है। जिस सदस्य देश द्वारा इन प्रावधानों को लागू नहीं किया जाता है उनके विरुद्ध प्रतिबन्धात्मक कार्यवाही अन्य देशों द्वारा किए जाने का प्रावधान भी है। विश्व व्यापार संगठन द्वारा विकासशील और गरीब देशों द्वारा अपने किसानों को दिए जाने वाले समर्थन मूल्य और रियायत (सब्सिडी) को ''डिसटारटेड सब्सिडी'' कहा जाता है और जबकि विकसित और अमीर पश्चिमी देशों द्वारा अपने किसानों को भारी मात्रा में सब्सिडी जा रही है। उदाहरण स्वरूप अमेरिका में वर्ष 2015 में कुल मिलाकर 31.80 लाख लोग खेती कर रहे थे इन्हें अमेरिकी सरकार ने 25,000 मिलीयन डालर की रियायत (सब्सिडी) दी यानी एक किसान को औसतन 5.11 लाख रूपयें (7860 डालर) की रियायत (सब्सिडी) मिली, जबकि भारत सरकार नें 2014 में 9.02 करोड़ किसानों के लिए सब मिलाकर (कीट उपचार, प्रशिक्षण, परामर्श सेवायें, सरकारी खरीद, सिचाई, उर्वरक और बिजली) औसतन 27,100.00 (417 डालर) प्रति किसान की सहायता दी गई, इसमें शोध, विपणन इन्फ्रास्ट्रक्चर पर खर्च की राशि जोड़ दी जाए तो किसानों 456 डालर (41189. 61 मिलियन डालर) की राज सहायता मिली। ब्रिटेन में 23.77 लाख रूपये (28300 पाउण्ड) जापान 9.19 लाख रूपये (14136 डालर) की रियायत (सब्सिडी) दे रहे हैं। हाल के वर्षों में विश्व व्यापार संगठन के दबाव में भारत सरकार द्वारा कृषि और खाद्य सुरक्षा के लिए रियायत में 18918 करोड़ रूपये की कमी की गई।

विश्व व्यापार संगठन द्वारा ऐसा प्रचारित किया जा रहा है कि व्यापार अनुबन्ध में खुला आयात होने पर खाने का तेल, दाल, दूध और इससे बने उत्पाद सस्ते मिलेगें। इस प्रकार यदि सदस्य देश द्वारा कृषि के क्षेत्र में राज्य सहायता कम कर दी गई और अपने बाज़ार को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए खोल दिया गया तो अन्य जिन्सों के दाम भी कम होगें। यह एक फैलाया गया झूठ है। उल्लेखनीय है कि 3 से 6 दिसम्बर, 2013 को बाली (इन्डोनेशिया) में सभी सदस्य देशों को यह तय कराना था कि कृषि और खाद्य सुरक्षा रियायतों का स्वरूप और आकार सीमित किया जाए।

अतः किसी भी सदस्य देश के नागरिकों को सही मूल्य पर उचित अनाज मिलने का उद्देश्य न होकर विश्व व्यापार संगठन द्वारा इस विषय पर चर्चा हुयी कि कृषि और खाद्य सुरक्षा रियायतों को किस प्रकार कम किया जाय जबकि वस्तुस्थिति यह है कि विकासशील और गरीब देशों के अधिकतर नागरिक गरीबी के कारण देश में उपलब्ध रियायती अनाज को भी खरीद नहीं पा रहे हैं। ऐसे में विश्व व्यापार संगठन के सदस्य देशों द्वारा संबंधित रियायतों को कम कर देने का मतलब इन नागरिकों को भुखमरी के कगार पर ला देना ही है। इसके कारण भारत, ब्राजील, दक्षिण अफ्रीका जैसे देशों ने विश्व व्यापार संगठन के इस प्रस्ताव का विरोध किया। जबकि अमेरिका और अन्य देशों द्वारा इस प्रस्ताव का समर्थन किया गया। इन अमीर देशों द्वारा भारत को एक ''बाधक इकाई'' के तौर पर उल्लिखित किया गया। इस विषय में विश्व व्यापार संगठन के नियमों के अनुसार कोई भी समझौता तभी लागू होता है जबकि सभी देश इसमें सहमत हों। बाली में इस प्रकरण के बाद एक सुलह वाक्यांश (पीस क्लाज) पर सहमति बनी जिसमें यह उल्लेख किया गया कि जब तक कृषि और खाद्य सुरक्षा से संबंधित समझौते पर अन्तिम निर्णय नहीं हो जाता तब तक कोई भी देश खाद्य सुरक्षा के लिए दी जा रही रियायतों के संदर्भ किसी अन्य देश पर क़ानूनी या प्रतिबन्धात्मक कार्यवाही नहीं करेगें। इसी तरह नैरोबी (दिसम्बर, 2015) की बैठक में विशेष सुरक्षा तंत्र (स्पेशल सेफ गार्ड मेकिनिज्म) पर प्रतिबद्धता जताई गई, जिसके कारण यह निर्धारित किया गया कि कीमतों की उथल–पुथल के कारण आयात बढ़ने की स्थिति में घरेलू उद्योगों और खेती को बचाने के लिए पहल कदमी का विकल्प मौजूद रहे। यह सहमत भी बनी कि कोई सदस्य देश अपने देश में मौजूदा रियायतों को नहीं बढ़ायेगा।

अगली बैठक 10 से 13 दिसम्बर, 2017 को अर्जेन्टीना की राजधानी ब्यूनर्स आयर्स में होगी यह बैठक 11 मंत्रीय–स्तरीय बैठक है। जिसमें 2001 में कतर की राजधानी दोहा में तय किए गए विकास के एजेंडे के मुताबिक खाद्य सुरक्षा और किसानों के हितों के संबंध में अन्तिम निर्णय लिया जाएगा।[5]

उपर्युक्त घटनाक्रम से स्पष्ट है कि भारत सरकार विश्व व्यापार संगठन में कृषि एवं खाद्य सुरक्षा के क्षेत्र में किसानों तथा नागरिकों के हितों के विपरीत रियातों में कमी करने के प्रस्ताव पर बातचीत कर रही है। संभवतः इसी कारण पिछले 5 वर्षों में कृषि रियातों में लगातार वृद्धि का प्रतिशत कम होता जा रहा है। ऐसे में भारत के किसानों द्वारा कृषि रियातों में वृद्धि की मांग को भारत सरकार द्वारा पूरा किया जाना संभव प्रतीत नहीं होता। दुःख की बात यह है कि भारत सरकार द्वारा आज तक इस बात का कोई उल्लेख नहीं किया गया है कि विश्व व्यापार संगठन के किए गए समझौता के कारण वह खाद्य सुरक्षा और अनाजों की कीमतों में वृद्धि करने की स्थिति में नहीं हैं। वस्तुतः विश्व व्यापार संगठन के देशों द्वारा अपने देशों की बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हितों को ध्यान में रखते हुए समझौते किए जा रहे है। इन समझौतों के माध्यम से बीज से लेकर अनाज तक खुले बाज़ार का नियंत्रण ही एक लक्ष्य है। इस बाज़ार

में कीमतों पर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा है न ही इस पर कोई चर्चा हो रही है। वस्तुतः बाज़ार के स्वाभाव के अनुसार इन कीमतों का निर्धारण भी बाज़ार स्वयं करेगा। ऐसी स्थिति में नागरिकों और किसानों के पास अपनी जिन्दगी बिताने के लिए उचित मात्रा में अनाज मिलने की संभावना लगातार कम होती जा रही है।

किसानों द्वारा क़र्ज़–माफी की मांग वर्ष–विशेष के लिए की जा रही है। प्रधानमंत्री मोदी द्वारा उत्तर प्रदेश चुनाव के दौरान किसानों को बैंकों द्वारा क़र्ज़– माफ़ी का आश्वासन दिया गया और यहां तक कहा गया कि इस विषय में प्रदेश में भारतीय जनता पार्टी की सरकार बनने पर सरकार की पहली बैठक में ही निर्णय लिया जाएगा। इस विषय में उ0प्र0 में योगी सरकार ने एक निर्णय लिया भी है कि प्रदेश के किसानों का रु. 36356.00 करोड़ का क़र्ज़ा माफ़ किया जाय। किन्तु उसके लागू करने के लिए प्रदेश सरकार भारत सरकार से बातचीत कर रही है। जबकि भारत सरकार पहले यह कह चुकी है कि उसके द्वारा किसानों को कोई भी क़र्ज़ माफ़ी नहीं की जायगी। दूसरी ओर रिजर्व बैंक ऑफ़ इण्डिया और स्टेट बैंक ऑफ़ इण्डिया के शीर्ष अधिकारियों द्वारा किसानों की क़र्ज़ माफ़ी को गलत परम्परा बताया जा रहा है। उनका यह भी कहना है कि इस प्रकार की क़र्ज़–माफी से वित्तीय अनुशासनहीनता फैलेगी। इस विषय में उल्लेखनीय है कि बड़े उद्योगपतियों की क़र्ज़ माफ़ी के संबंध में इन अर्थशास्त्रियों और शीर्ष अधिकारी द्वारा इस तरह की कोई बात नहीं कही जाती। अभी कुछ दिन हुए टेलीकाम कम्पनियों को 4 लाख करोड़ के क़र्ज़े को समायोजित करने पर इस तरह के प्रश्न नहीं उठे थे। वास्तव में समायोजन द्वारा इन उद्योगपतियों के क़र्ज़ को भविष्य के लिए देनदारियों में समायोजित कर लिया जाता है। भविष्य में इन उद्योगपतियों द्वारा कई मामलों में क़र्ज़ा न देने की दशा में इस धनराशि को ''डूबा धन/क़र्ज़ा'' (बैड डेब्ट) मान लिया जाता है। आज की तारीख में इसको एन.पी.ए. के नाम से जाना जाता है। प्रत्येक बैंक के एन.पी.ए. को मिलाकर स्पष्ट है कि लाखों करोड़ो रूपये उद्योगपतियों द्वारा नहीं दिए गए जिनके विरुद्ध बैंक भी कार्यवाही करने से हिचकिचा रहा है। दुख की बात यह है कि एन.पी.ए. में डूबा धन वास्तव में जनता का पैसा होता है जबकि किसानों द्वारा लिया गया क़र्ज़ा अनाज पैदा करने में लगाया जाता है। स्थिति यहां तक पहुंच गई है कि कुछ दिन पूर्व सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ''क़र्ज़ा न दे सकने'' वालों के नाम बैंकों से मांगे तो उसको बताने में और सार्वजनिक करने में बैंकों द्वारा अनाकानी की गई। यह कहा गया कि नाम उजागर करने से बैंको द्वारा किए गए करारनामों को उल्लघंन हो जाएगा। हलॉकि बाद में बैंकों द्वारा इन व्यक्तियों/औद्योगिक प्रतिष्ठानों के नाम बन्द लिफाफे में सर्वोच्च न्यायालय को दिए गए।

खेती–किसानी के नाम पर उद्योगों और कम्पनियों को सस्ता क़र्ज़ा देने का प्रकरण भी काफ़ी उल्लेखनीय है। भारत सरकार द्वारा 2013 में बजट पेश करने के दौरान तत्कालीन वित्त मंत्री पी. चिदम्बरम ने घोषणा की थी कि उस वर्ष 7.00 करोड़ रूपये का प्रावधान कृषि के लिए रखा गया है। गहराई से अध्ययन पर यह ज्ञात होता है कि

कुल 7 लाख करोड़ में 50 हजार करोड़ रूपये ज़रूरतमन्द किसानों के लिए निश्चित किए गए जबकि शेष 6.50 लाख करोड़ रूपये कृषि व्यापार कम्पनियों, भण्डारण निगमों और राज्य बिजली बोर्डों को मात्र 4 प्रतिशत ब्याज पर देने का प्रावधान था। सन् 2000 से भारत सरकार ने कृषि क़र्ज़ों में ड्रिप सिंचाई उपकरण निर्माण कम्पनियों तथा अन्य कृषि व्यापार कम्पनियों के साथ ग्रामीण विद्युत कम्पनियों, कृषि क्लीनिक, भण्डारण निगम, कोल्ड स्टोरेज और मण्डी के शेड निर्माण में निवेश करने वाली कम्पनियों को कृषि से संबंधित क़र्ज़ की सूची में सम्मलित कर लिया गया। उल्लेखनीय है कि इनको कम ब्याज पर सरकार द्वारा धन उपलब्ध कराया जाता है। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत सरकार द्वारा जान–बूझ कर उद्योपतियों और प्रदेश सरकार को कम ब्याज पर धन उपलब्ध कराया जा रहा है जबकि किसानों को बैंकों द्वारा यही धन अत्यधिक ब्याज पर मिलता है। इस प्रकार खेती–किसानी के नाम पर उद्योगपतियों और पूंजीपतियों को सरकार द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से फायदा पहुंचाया जा रहा है।[6]

इसी प्रकार भारत सरकार द्वारा प्रधानमंत्री फ़सल बीमा योजना के अन्तर्गत उपलब्ध आकड़ों के आधार पर स्पष्ट होता है कि किसानों को फ़सल बीमा के नाम पर केवल कुछ धन ही मिल रहा है जबकि फ़सल बीमा कम्पनियों को लाखों करोड़ रूपये केन्द्र सरकार द्वारा अग्रिम रूप में दिए जा चुके है। इस बीमा योजना से किसानों को नगण्य किन्तु बीमा कम्पनियों को सर्वाधिक लाभ हो रहा है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि किसानों की आत्महत्या में केन्द्र सरकार और विश्व व्यापार संगठन के अलावा उद्योगपतियों और पूंजीपतियों का हाथ भी स्पष्ट है। वस्तुतः बीमा कम्पनियॉ इन्हीं पूंजीपतियों और उद्योगपतियों द्वारा ही बनायी गई हैं। भले ही किसान को अनाज उत्पादन में कमी आए या सूखा पड़े किन्तु किसी भी हाल में इन बीमा कम्पनियों को फायदा ही होगा क्योंकि भारत सरकार द्वारा फ़सल बीमा योजना के अन्तर्गत एक बड़ी धनराशि इन कम्पनियों को अग्रिम रूप में दे दी जाती है। ऐसी स्थिति में किसानों की आत्महत्या को रोकने के संबंध में भारत सरकार द्वारा किए गए प्रयासों पर अपने आप प्रश्न चिन्ह लग जाता है इसके विपरीत स्थिति से स्पष्ट हो रहा है कि किसानों की आत्महत्या में कमी होने की संभावना बहुत कम होती जा रही है। इन आत्महत्याओं में समाज, राज्य और व्यापारिक संस्थाओं का सर्वाधिक योगदान है और इनसे स्पष्ट हो रहा है कि भारतीय किसान के मानवाधिकारों की ओर सबसे पहले ध्यान देने की आवश्यकता है जिससे कि वह अपनी समस्याओं का निदान कर जीवित रह सके।

1. ''एक आत्महत्या के बहाने'' – प्रेम पुनेठा, समयांतर, जुलाई, 2017
2. किसानों को मासिक आय ही समस्या का हल– देविंदर शर्मा, नई आज़ादी उद्घोष/जून, 2017

3. ''राइजिंग टेम्प्रेचरर्स ड्राईव–अप फार्मर सुसाइड इन इण्डिया'' – द हिन्दू, 2 अगस्त, 2017
4. किसानों को मासिक आय ही समस्या का हल– देविंदर शर्मा, नई आज़ादी उद्घोष/जून, 2017
5. नीति बनाने वाले किसान और उपभोक्ता को एक दूसरे का दुश्मन बना रहे हैं – सचिन कुमार जैन, 07.08.2017, द वायर
6. ''किसानों का पैसा कम्पनियों की जेब में'' – देवेन्द्र शर्मा, ''नयी आज़ादी उदघोष''–दिसम्बर, 2013

• • •

fd lku vkRegR;k vkj lkekftd ifjç{;

'kHk tk'kh•

lkjk'k

यह आलेख भारत में किसान आत्महत्या को लेकर होने वाले विमर्श की पृष्ठभूमि और वैचारिक बहसों को सामने लाने का प्रयास करता है। भारत की अर्थव्यवस्था में लिए गए निर्णयों ने कृषि क्षेत्र को गैर मुनाफे के कार्य में तब्दील कर किसान आत्महत्या को बढ़ावा दिया है। इस आलेख में वैश्वीकरण और किसान आत्महत्या के बीच के संबंधों को जानने का प्रयास किया गया है। सामाजिक पूँजी की अवधारणा तेज़ी से समाज विज्ञान में स्वीकृत हो रही है। सामाजिक पूँजी एक तरह से व्यक्ति के सामाजिक सरोकारों या कहना चाहिए कि सामुदायिक जीवन के अधिकारों और कर्तव्यों का योग है। किसान आत्महत्या के कारणों को समझने और दूर करने में सामाजिक पूँजी काफ़ी मदद कर सकती है। इस नजरिए से सामाजिक पूँजी की अवधारणा एक सामुदायिक मानवाधिकार का स्वरूप भी ग्रहण करती है।

मुख्य शब्द : किसान आत्महत्या, सामाजिक पूँजी, वैश्वीकरण।

भारत में औसतन हर 30 मिनट में एक किसान आत्महत्या करता है

– Centre for Human Right and Global Justice (2011).

'फसल चौपट हुई, वाघोडा के किसान गांव बेचने को तैयार – सामूहिक इच्छामृत्यु की मांग को लेकर तहसीलदार को सौंपा ज्ञापन' (वर्धा जिले की कारंजा तहसील का वाघोडा गांव)

– दैनिक भास्कर नागपुर संस्करण (18 जुलाई 2015)

वैश्वीकरण की शुरुआत (1991) के बाद भारत में किसान आत्महत्या एक बडी प्रवृत्ति के रूप में उभरी है। 1997 में पहली बार व्यापक तौर पर किसान आत्महत्या की ख़बरें आईं, किसान आत्महत्याएं 14,000 हजार प्रतिवर्ष रही जो 2005 तक आते–आते 17,000 प्रतिवर्ष तक पहुँच गई। (Sainath, 2007)

1990 के दशक में कृषि क्षेत्र में निवेश लगातार कम होता गया। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) एवं विश्व बैंक (World Bank) की सलाह अनुसार भारतीय सरकार का कृषि पर कुल जीडीपी का खर्च 1985–1990 के 14.5 % से घटकर 2000–01 में 5.9 % हो गया (Gyanmudra,2007)। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि सरकारी निवेश का लगातार कम होना कृषिगत आधारभूत संरचनाओं (Infrastructural Facilities) में कमी को इंगित

• सहायक आचार्य, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)

करता है (Mishra,2008)

यह देखना महत्त्वपूर्ण है कि एक ओर सरकार की ओर से कृषि क्षेत्र में निवेश कम किया जा रहा था, दूसरी ओर किसानों को महंगी कृषिगत आदानों (Inputs), मंहगाई वृद्धि, अपर्याप्त न्यूनतम समर्थन मूल्य इत्यादि का सामना करना पड़ रहा था। अर्थव्यवस्था के खुलेपन के कारण आयातित कृषिगत उत्पाद स्थानीय फ़सलों की तुलना में सस्ते थे। अतः आयातित कृषि उत्पादों की ज़्यादा खरीद हुई, स्थानीय किसान अपनी उपज को कौड़ियों के दामों पर बेचने को मजबूर होने लगे। यह एक परिपाटी ही बन गई। किसी साल ज़्यादा फ़सल होने पर भी किसान को उपज का मूल्य नहीं मिलता था। समर्थन मूल्य उनकी कृषिगत लागतों को बमुश्किल ही निकाल पाता था। एक अध्ययन के मुताबिक 5–6 सदस्यों के एक कृषक परिवार के लिए प्रत्येक कृषक परिवार की खेती की औसत आय 8 रूपये प्रतिदिन आंकी गई (Mishra, 2008)

यह कृषिगत संकट की शुरुआत थी जिसकी परिणति किसान आत्महत्या के रूप में होनी ही थी। National Crime Records Bureau (NCRB) द्वारा हर वर्ष जारी वार्षिक रिपोर्ट में किसान आत्महत्या के आँकडें इस भयावहता को प्रदर्शित करते हैं। NCRB की रिपोर्ट Accidental Deaths and suicide in India 2014 (NCRB:2015) में स्पष्ट किया गया है कि वर्ष 2014 में 5650 किसानों ने आत्महत्या की जिसमें से महाराष्ट्र में 2568 आत्महत्याएं हुई।

किसान आत्महत्या के कई आयाम है। प्रमुखतः चार आयामों को रेखांकित किया जा सकता है:

– अंतरराष्ट्रीय (वैश्वीकरण, बहुराष्ट्रीय कंपनियां, गैट समझौता आदि)

– राष्ट्रीय (सरकारी नीतियां, स्वास्थ्य सेवाएं, बैंकिग और भूमिसुधार आदि)

– स्थानीय (मानसून, सिंचाई एवं विद्युत सेवाएं आदि)

– व्यक्तिगत एवं पारिवारिक (अवसाद, तनाव, दुश्चिंता, स्वास्थ्य समस्याएं, जाति एवं वर्गगत समस्याएं आदि)

इन चारों ही आयामों को ध्यान में रखकर इस समस्या को देखा जाना चाहिए ।

किसान आत्महत्या के मुद्दे को मुख्य तौर पर वैश्वीकरण के साथ जोड़ कर देखा जाता है। अर्थव्यवस्था के निजीकरण और खुलेपन ने औद्योगीकरण का रास्ता तेज़ किया मगर कृषि क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण एवं गंभीर बदलाव को जन्म दिया। वंदना शिवा एवं अन्य विद्वानों के अध्ययन बताते हैं कि अर्थव्यवस्था का वैश्वीकरण किसानों के हितों में न जाकर बीज और रासायनिक फर्मों (बहुराष्ट्रीय कंपनियों) के हितों में जा रहा है (Fernando et al] 2009)। किसान – विशेष रूप से लघु किसान– इस प्रक्रिया में सबसे

गंभीर ख़तरा उठा रहे हैं। इसके अतिरिक्त इन कंपनियों द्वारा उत्पादित रासायनिक उत्पाद किसानों के स्वास्थ्य को भी प्रभावित कर रहे हैं। कुछ अन्य स्रोत (Anderson, 2000; Deshpande, 2010; Fernando et al, 2009) भी इस बात की पुष्टि करते हैं कि वैश्वीकरण पूँजीवाद को बढ़ावा देता है और किसानों के विरोध में कार्य करता है। पी. सांईनाथ ने भी वैश्वीकरण के नकारात्मक प्रभाव को रेखांकित किया। उनका बल किसानों की पूँजी और ऋणग्रस्तता पर अधिक रहा है। अपने लेखन में उन्होंने इस बात को तार्किक रूप से प्रस्तुत किया है (Sainath, 2006; 2007a; 2007b; 2011)। वंदना शिवा के जैविक/नैसर्गिक खेती (organic farming) के सुझाव के साथ–साथ वह बैंकिग एवं लघुवित्त के क्षेत्र में शीघ्र एवं आमूलचूल परिवर्तन को भी महत्त्वपूर्ण मानते हैं। वंदना शिवा का लेखन जहां भारतीय खेती एवं किसान के पारिस्थितिकीय, तकनीकी एवं नीतिगत परिवर्तनों को बताता है तो पी. साईनाथ का लेखन किसान आत्महत्या के अर्थशास्त्र एवं उसकी राजनीति को प्रस्तुत करता है।

विद्वानों का एक अन्य पक्ष भी है जो मानता है कि किसान आत्महत्या वैश्वीकरण का अनिवार्य परिणाम नहीं है। इतना अवश्य है कि वैश्वीकरण के दुष्परिणाम अवश्य हुए हैं परंतु वैश्विक बाज़ार में अपनी भागीदारी बढ़ाते हुए आर्थिक वृद्धि की गति तेज़ कर सभी लोगों की ज़िंदगी बेहतर बनाई जा सकती है। इन विद्वानों का मानना है कि कृषि विकास दर में कमी, बीटी कॉटन का प्रयोग आदि किसान आत्महत्या के लिए जिम्मेदार नहीं है बल्कि भारतीय कृषि परिदृश्य में बीटी कॉटन एवं अन्य तकनीकी परिवर्तन बहुत महत्त्वपूर्ण है जिनका लाभ किसानों को मिलेगा (Gruère et al, 2011)। येल विश्वविद्यालय के प्रो.टी.वी. श्रीनिवास (2007) ने बताया कि वैश्वीकरण नहीं बल्कि आज़ादी के बाद से लंबे समय से चली आ रही *'राज्य निर्देशित, राज्य नियंत्रित एवं राज्य आधिपत्य वाली रणनीति'* और *'विश्व अर्थव्यवस्था से दूरी'* इस कृषि संकट का कारण है। आर.एस.देशपांडे एवं अन्य (2010) विद्वानों ने माना कि क़र्ज़, जो कि किसान आत्महत्या का प्रमुख कारण रहा है, वैश्वीकरण का परिणाम नहीं है। वर्तमान में नीति (NITI) आयोग के उपाध्यक्ष प्रो. अरविंद पनगडिया (2008)ने यह माना कि वैश्वीकरण ने किसानों को नुकसान पहुँचाया मगर आर्थिक वृद्धि ही वह कुँजी है जिससे गरीबी उन्मूलन हो सकता है अत: वैश्वीकरण एवं औद्योगीकरण होना ही चाहिए। Tata Institute of Social Sciences (TISS) ने किसान आत्महत्या की अपनी रिपोर्ट (2005) में लगातार फ़सल बर्बादी, ऋणग्रस्तता एवं कृषिगत आदानों (Inputs) के निरंतर महंगे होने आदि कारण बताए। इसी रिपोर्ट में परिवार को मुआवज़ा, किसान बीमा, किसानों के लिए सूचना तंत्र विकसित करने और कृषि नीतियों पर पुनर्विचार करने का प्रस्ताव भी दिया।

राष्ट्रीय किसान आयोग की रिपोर्ट (2006) (जिसे स्वामीनाथन रिपोर्ट भी कहा जाता है) ने अपने सुझावों में किसान आत्महत्या की रोकथाम के लिए सस्ती स्वास्थ्य सुविधाएं एवं बीमा, राज्य स्तरीय कृषक समिति की स्थापना (किसानों के प्रतिनिधित्व सहित),

फ़सल बीमा, सामाजिक सुरक्षा सेवाओं में वृद्धि, जल–संरक्षण, बीज उपलब्धता, तकनीकी सुधार, विपणन प्रबंध की बात कही। महाराष्ट्र सरकार द्वारा इंदिरा गांधी इंस्टीट्यूट ऑफ डेवलपमेंट रिसर्च (आईजीडीआर) के अंतर्गत मीता और राजीव लोचन (2006) द्वारा प्रस्तुत अध्ययन– *फार्मस् स्यूसाइड– फैक्ट एंड पॉसिबल पॉलिसी इन्टरवेंशनस्* किसानों की आत्महत्या पर एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ है। इसमें कतिपय पूर्ववर्ती अध्ययनों मसलन (मिश्र और दांडेकर तथा अन्य) का जायजा लिया गया है और उनकी खामियों की रोशनी में कहीं ज़्यादा समग्र अध्ययन प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है। इस शोध में किसानों की आत्महत्या का संबंध सरकार या उसकी नीतियों से नहीं जोड़ा गया है। आईजीडीआर की शोध रपट में कहा गया है कि सरकार को ग्रामीण विकास योजनाओं के जरिये गांवों में ज़्यादा हस्तक्षेप करना चाहिए और वहां गैर खेतिहर कामों का विस्तार करना चाहिए। इस अध्ययन में यह स्थिति सामने आई कि किसान आत्महत्या के कारणों में ऋणग्रस्तता एक प्रमुख कारण है जिसके कारण आत्माहत्याएं नहीं रूक पा रही है ।

बी.बी.मोहंती (2007) ने महाराष्ट्र में किसान आत्महत्या के सामाजिक कारणों को तलाश करने का प्रयास किया। जिसमें उन्होंने स्पष्ट किया कि सर्वाधिक प्रभावित विदर्भ के 6 जिलों में किसान परिवार बहुत तनाव में हैं। यहां भी ऋणग्रस्तता एक महत्त्वपूर्ण कारण के रूप में मौजूद था। प्रो. नरेंद्र जाधव (2008) ने अपनी रिपोर्ट में महाराष्ट्र की स्थिति को किसान आत्महत्या के संदर्भ में अन्य राज्यों की तुलना में बेहतर बताया। इसे लेकर उनकी आलोचना भी की गई। उन्होंने केंद्रीय और राज्य क़र्ज़ वितरण को बेहतर बनाने हेतु सुझाव दिए। प्रो. नागराज (2008) ने अपने महत्त्वपूर्ण शोध में तीन महत्त्वपूर्ण स्थितियों की ओर संकेत किया है एक– किसान आत्महत्या वाले क्षेत्रों में आधारभूत संरचनाएं अपर्याप्त है;

दूसरी– इन क्षेत्रों में कृषिगत संकट काफ़ी गहराया हुआ है और

तीसरी– इन क्षेत्रों में वैकल्पिक आय अर्जन की संभावनाएं नहीं के बराबर हैं ।

प्रो. अमोल डोंगरे एवं प्रो. प्रदीप देशमुख (2010) ने अपने शोध आलेख *Farmers' suicides in the Vidarbha region of Maharashtra, India: A qualitative exploration of their causes* में वर्धा जिले की आर्वी तहसील में किसान आत्महत्या के कारणों एवं समाधानों का गुणात्मक अध्ययन किया और चिकित्सीय नजरिए से स्वास्थ्य सेवाओं के बेहतर क्रियान्वयन पर ज़ोर दिया। इसी तरह से पूर्व में भी ऐसे अध्ययन हुए हैं जिसने किसान आत्महत्या के संदर्भ में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को सामने रखा। इस पक्ष के विद्वानों ने किसान आत्महत्या को एक स्वास्थ्य समस्या के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने यह तथ्य सामने रखा कि 'अधिकांश आत्महत्या करने वाले किसान उपचार योग्य मनोवैज्ञानिक अस्वस्थता / असंतुलन (*Diagnosable Psychiatric IllnessèDisorder*) से प्रभावित थे (*Mishra,* 2006)। स्थानीय स्तर पर इन समस्याओं के समाधान के रूप में कोई आधारभूत संरचना एवं मानव संसाधन उपलब्ध नहीं थे। यह भी पाया गया कि

शहरी/कस्बा क्षेत्रों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में आत्महत्या की दर ज़्यादा पायी गई क्योंकि वहां मानसिक स्वास्थ्य सुविधाओं (*Mental Health Facilites*) की उपलब्धता का अभाव था (*Gyanmudra*] 2007)।

एवरी थर्टी मिनट्स – फार्मर स्यूसाइड, ह्यूमन राइटस् एंड द एगरेरियन क्राइसिस इन इंडिया (2011) नामक इस दस्तावेज़ में कहा गया है कि किसानों की आत्महत्या का एक पहलू जातिगत और लैंगिक भेदभाव से जुड़ा हुआ है। भारत में उदारीकरण की नीतियों के बाद खेती (खासकर नकदी खेती) का पैटर्न बदल चुका है। सामाजिक–आर्थिक बाधाओं के कारण "नीची जाति" के किसानों के पास नकदी फ़सल उगाने लायक तकनीकी जानकारी का अक्सर अभाव होता है और बहुत संभव है कि ऐसे किसानों पर बीटी–कॉटन आधारित कपास या फिर अन्य पूंजी–प्रधान नकदी फ़सलों की खेती से जुड़ी क़र्ज़दारी का असर बाकियों की तुलना में कहीं ज़्यादा होता हो। जेनिफर गुहा (2012) ने अपने अध्ययन में महाराष्ट्र में किसान आत्महत्या के कारण ों की बहुआयामी पड़ताल की और यह प्रस्ताव दिया कि वैश्वीकरण, अपर्याप्त सरकारी नीतियों, पारिस्थितिकीय कारण और सामाजिक मुद्दे – इन सभी मोर्चों पर एक साथ काम करने की ज़रूरत है ।

सीएसडीएस (लोकनीति) द्वारा प्रस्तुत *स्टेट ऑफ इंडियन फार्मर्सः ए रिपोर्ट* (2014) नामक अध्ययन देश के 18 राज्यों में दिसंबर, 2013 से जनवरी, 2014 के बीच 137 जिलों के 274 गांवों में कराए गए सर्वेक्षण पर आधारित है। इस अध्ययन ने कृषि संकट एवं किसान आत्महत्या संबंधी प्रवृत्तियों के आंकड़े प्रदर्शित किए हैं। इस अध्ययन ने इस बात को प्रमुखता से बताया कि किसानों की एक बड़ी संख्या खेती से दूर होना चाहती है ।

उपर्युक्त अध्ययन यह स्पष्ट करते हैं कि भारतीय परिदृश्य में खेती एक महंगा सौदा होती जा रही है जो विभिन्न आयामों से न केवल कृषकों अपितु सम्पूर्ण कृषक व्यवस्था को भी समाप्त करने को उतारू है। यह स्पष्ट है कि किसान आत्महत्या केवल किसी एक किसान की आत्महत्या नहीं है बल्कि वह एक सामाजिक सोच एवं संस्कृति की आत्महत्या भी है। यह अध्ययन स्पष्ट करते हैं कि वैश्वीकरण के बाद बहुत ही व्यवस्थित तरीके से कृषि की नीतियों में बदलाव इस तरह लाया गया कि यह मुनाफ़ा पैदा न कर सके और इसमें लगे किसान कस्बों और शहरों में दैनिक मज़दूरों के रूप में उपलब्ध हो जाएं। सबसे बड़ी विडम्बना समाज की चुप्पी है जो किसान आत्महत्या को केवल अखबार के समाचार के तौर पर या रस्मी बयानों को सहन करती जा रही है। यह समाज की चुप्पी ही उन ताकतों को लगातार शक्ति दे रही है कि वह किसानों के मानवाधिकारों के साथ खिलवाड़ कर सके। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि समाज की ताकत बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। किसान आत्महत्या के मामले में तो समाज की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण हो गई है। आज किसान को समाज के सहारे की आवश्यकता है।

विगत कुछ वर्षों से सामाजिक पूँजी की अवधारणा काफ़ी महत्त्वपूर्ण हो गई है। सामाजिक पूँजी का केंद्रीय तत्व मानता है कि सामाजिक ताना–बाना बहुत महत्त्वपूर्ण है और उसमें मूल्य निहित है (social networks have value)। यह 'सामाजिक ताने–बाने'(social networks) की सामूहिक महत्ता है।

सामाजिक पूँजी एक–दूसरे के साथ सहानुभूति रखने मात्र से ही नहीं बल्कि सामाजिक ताने–बाने के अंतर्गत आपसी विश्वास, सूचना एवं सहयोग से प्राप्त होती है। यह सामाजिक पूँजी न केवल इसमें सहयोग करने वालों को अपितु इस प्रक्रिया का हिस्सा न होने वाले व्यक्ति भी इससे लाभान्वित होते है।

सामाजिक पूँजी को बताते हुए बोदर्यू (1986) में लिखा कि the aggregate of the actual or potential resources which are linked to possession of a durable network of more or less institutionalized relationships of mutual acquaintance and recognition--or in other words, to membership in a group which provides each of its members with the backing of the collectivity-owned capital, a 'credential' which entitles them to credit, in the various senses of the word.

इसी बात को स्पष्ट करते हुए पुतनैम (2000) ने सामाजिक पूँजी को refers to the collective value of all 'social networks' and the inclinations that arise from these networks to do things for each other की तरह बताया है। पुतनैम और उनके साथियों ने सामाजिक पूँजी को लोकतंत्र निर्माण एवं बनाए रखने की महत्त्वपूर्ण कुंजी बताया। उनके अनुसार सरकार में जितना कम विश्वास होता है उतनी ही कम भागीदारी होती है। सामाजिक पूँजी की अवधारणा को व्यावहारिक उद्देश्य प्राप्ति हेतु पाँच उप–श्रेणियों में विभाजित किया जाता है जो सामाजिक पूँजी की संरचनात्मक एवं संज्ञानात्मक रूपों को अपने में समाहित करती हैं–

1. समूह और ताने–बाने
2. विश्वास और एकजुटता
3. सामूहिक क्रिया और सहयोग
4. सामाजिक सुसंगत्ता और समावेशीकरण
5. सूचना और सम्प्रेषण

lkekftd ith d lkr fuEufyf[kr g&

1. परिवार
2. समुदाय
3. संस्थान
4. नागरिक समुदाय

5. सार्वजनिक क्षेत्र
6. नस्लीयता
7. जेंडर

सामाजिक पूँजी और स्वास्थ्य में भी गहरा संबंध है। इसकी शुरुआत इमाइल दुर्खीम के आत्महत्या संबंधी अध्ययनों से हुई। इस क्षेत्र में हुए अध्ययन यह स्पष्ट करते हैं कि उच्चतर सामाजिक पूँजी और सामाजिक संगत्ता स्वास्थ्य दशाओं में उन्नति का मार्ग प्रशस्त करता है। सामाजिक पूँजी का मूल आधार विश्वास (ट्रस्ट) विभिन्न औपचारिक एवं अनौपचारिक सामाजिक ताने–बाने के साथ मिलकर निम्नलिखित कार्य करने में सहयोग करता है –

- स्वास्थ्य शिक्षा और सूचना तक पहुँच
- स्वास्थ्य सेवा प्रदाय व्यवस्था की बेहतर प्रक्रिया
- आधारभूत संरचना के निर्माण एवं सुधार में सामूहिक क्रिया
- उन्नत रोकथाम प्रयास
- स्वास्थ्य को नुकसान पहुँचाने वाली सांस्कृतिक रीतियों पर पुनर्विचार

विगत कुछ वर्षों से सामाजिक पूँजी अवधारणा और आत्महत्या के बीच के संबंध को समझने का काफ़ी प्रयास किया जा रहा है। सामाजिक पूँजी के पुरोधाओं में पियरे बोदर्यू (1986), पुतनैम (2000) महत्त्वपूर्ण है। पुतनैम (2000:23) ने सामाजिक पूँजी को 'जीवन के विभिन्न आयामों पर गणनीय महत्त्वपूर्ण प्रभावों' के रूप में बताया और यह समुदाय में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। इन गणनीय प्रभावों में अपराधों में कमी (Halpern 1999, Putnam 2000), बेहतर स्वास्थ्य (Wilkinson, 1996),दीर्घायुपन (Putnam, 2000), बेहतर शिक्षा उपलब्धि (Coleman, 1988), आय समानता की बेहतर स्थिति (Wilkinson 1996, Kawachi et al- 1997), बेहतर बाल कल्याण एवं बाल शोषण में कमी (Cote and Healy, 2001), कम भ्रष्टाचारी एवं ज़्यादा प्रभावशाली सरकार (Putnam, 1995) एवं कम लागतों और आपसी विश्वास के जरिए अधिक आर्थिक उपलब्धि शामिल है।

फील्ड (2010) का मानना है कि सामाजिक पूंजी की अवधारणा बहुत सरल अवधारणा है। इसके मूल में दो शब्द हैं– संबंध और पदार्थ/सार। यह समाज विज्ञानों में बेहद विचरणशील अवधारणा है जिसका आरंभ नीति–नियमावली से होकर जनसंचार तक संचरित हुआ है। सामाजिक पूंजी एक बहु अनुशासनिक अवधारणा है। इसका विमर्श समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र और बड़ी मात्रा में अर्थशास्त्र में छिड़ा ही रहता है। बोर्डियू (1986) का काम मुख्यतः दो अवधारणाओं से दृष्टिगोचर होता है– 'सांस्कृतिक पूंजी' और 'हैबिटस'। बोर्डियू का सांस्कृतिक पूंजी का सिद्धांत मार्क्सवाद से प्रभावित है जो कि शिक्षा पद्धति पर आधारित है। वे यह स्वीकार नहीं करते कि उच्च वर्गों की संस्कृति किसी भी अर्थ में निम्न वर्गों की संस्कृति से ऊंची होती है। उनका तर्क यह है

कि वास्तविकता यह है कि इसमें निम्न वर्गों का कोई दोष नहीं है। यह दोष शिक्षा पद्ध ति का है जो उच्च वर्गों के लिए ही बनी हुई है जिससे उच्च और मध्यम वर्ग के लोग ऊंची संस्कृति को प्राप्त कर लेते हैं। मतलब हुआ उच्च शिक्षा से उच्च संस्कृति और उच्च संस्कृति से अधिक धन या पूंजी। हैबिट्स भी इसी से मिलती–जुलती अवधारण ा है। हैबिटस का संबंध जीवन पद्धति से है। इसके अंतर्गत किसी विशिष्ट सामाजिक मूल्य और आकांक्षाएँ आती हैं। जैसे– गुज़रातियों के खाने–पीने के शौक। वे दुनिया के किसी भी क्षेत्र में हों अपने शौक, अपनी भाषा को नही भूलना चाहेंगे। यह उनका हैबिटस है।

रोबर्ट पुतनैम की मशहूर पुस्तक 'बॉलिंग एलोन'(2000) के प्रकाशित होते ही वे सामाजिक पूंजी सिद्धांत से जुड़े मूर्धन्य विचारकों में शामिल हो गए। जहां बोर्डियू और कोलेमन की सीमा सामाजिक पूंजी और सामाजिक सिद्धांत तक ही थी वहीं पुतनैम ने इन सीमाओं के परे इसके क्षेत्र को राजनैतिक विज्ञानों तक बढ़ाया है। पुतमान ने दो प्रकार की सामाजिक पूंजी का वर्णन किया है–

संबंध पूंजी (बॉडिंग कैपिटल) और

सेतु पूंजी (ब्रिजिंग कैपिटल)।

संबंध पूंजी तब होता है जब आप उन लोगों के साथ समाजीकरण कर रहे हैं जो की आप की तरह ही हैं– एक ही उम्र के, एक ही जाति के, एक ही धर्म के...। लेकिन एक विविध बहुजातीय देश में सेतु पूंजी काम करती है। आप उनके साथ संबंध बनाते हैं जो कि आप की तरह बिल्कुल नहीं हैं। पुतनैम का तर्क है कि ये दोनों प्रकार की सामाजिक पूंजी एक–दूसरे को मज़बूती प्रदान करती हैं। संबंध पूंजी में गिरावट के साथ ही साथ सेतु पूंजी में भी गिरावट होती है जिससे कि जातीय तनावो में वृद्धि होती है।

सामाजिक पूँजी के अतिरिक्त भी कई और तरह की पूँजी भी होती है जो लोगों की ज़िंदगी में बदलाव लाती हैं। पोर्टेस् (1998:7) ने तीन तरह की पूँजियां बताई हैं :

'आर्थिक पूँजी लोगों के बैंक खाते में;

मानवीय पूँजी (ह्यूमन कैपिटल) उनके हाथों में और

सामाजिक पूँजी उनके रिश्तों की संरचनाओं में निहित होती है'।

कुछ आलोचकों ने इसकी आलोचना करते हुए यह बताया कि सामाजिक पूँजी को मुख्य बताना इसलिए विवादित है, क्योंकि सामाजिक ताने–बाने इतने जटिल होते है कि उनका एक साथ आना कठिन होता है।

फिर भी सामाजिक पूँजी के बारे में अधिकांश विद्वानों ने इसे समाज में बदलाव का

महत्त्वपूर्ण जरिया माना है (Balatti et al, 2006)। विश्वास, सामाजिक ताने–बाने और सामूहिक प्रयासों से ऐसी व्यक्तिगत और सामूहिक क्षमता का विकास होता है जिससे लोगों की ज़िंदगी बेहतर बनती है (McKenzie and Harpham, 2006)।

सामाजिक पूँजी के मुख्यतः दो प्रकार से निरूपित किया जा सकता है –

समान विचार वाले लोगों के बीच संयोजन (bonding) एवं

समान समूहों के बीच संबंध निर्माण (building of connections between heterogeneous groups) (Baron, et al, 2000:10)।

इन दोनों के एक साथ होने से समाज में एक बेहतर स्थिति का निर्माण होता है। सामाजिक पूँजी यह अवसर देती है कि लोग आपस में एक दूसरे के साथ मेलजोल बढ़ाए ताकि आपसी अन्तर्क्रिया उन्हें एक साथ काम करने और लाभान्वित होने के ज़्यादा अवसर दे सके ।

मिग्नौनी एवं ओ' नील (Mignone & O*Neil : 2005) ने 11 विकसित देशों में सामाजिक पूँजी और आत्महत्या के बीच के संबंध पर अपने अध्ययन में पाया कि जिस समाज में सामाजिक पूँजी का स्तर उच्च था वहां आत्महत्या का स्तर कम और सामाजिक पूँजी का स्तर निम्न होने पर आत्महत्या का स्तर उच्च था। इन्होंने अपने अध्ययन के परिणाम में यह स्पष्ट किया कि सामुदायिक स्वास्थ्य के लिए बहुस्तरीय और बहुआयामी रणनीति की ज़रूरत होती है और सामाजिक पूँजी के प्रति किए जाने वाले प्रयास इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। सामाजिक पूँजी की स्थिति को बेहतर तरीके से समझ कर बनने वाली नीतियां ज़्यादा कारगर और प्रभावी होती है।

भारत के संदर्भ में यह बात और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है कि कृषि क्षेत्र में सामाजिक पूँजी को बनाए रखने और विकसित करने की बहुत ज़्यादा आवश्यकता है। जिस परम्परा में कृषि होती रही है और आज भी अधिकांश सामाजिक वातावरण में वह है, वहां उसे एक विश्वास और भरोसे की ज़रूरत है। कृषि क्षेत्र सबसे ज़्यादा पलायन वाला क्षेत्र बन कर उभर रहा है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय संदर्भों में सामाजिक पूँजी के देशज स्रोतों की चर्चा हो तथा यह वर्तमान की हमारी सबसे बड़ी विफलताओं में से एक किसान आत्महत्या को दूर करने में सहयोग दे सके।

lnHk lph

- Balatti, J., Black, S., Falk, I. (2006) *Reframing adult literacy and numeracy course outcomes: a social capital perspective*, Adelaide, SA Australia: NCVER.
- Baron, S., Field, J. & Schuller, T. (Eds) (2000) *Social Capital: Critical*

Perspectives, Oxford University Press.

- Behere PB, Bhise MC(2009). Farmers' suicide: Across culture. Indian J Psychiatry. Oct;51(4):242–3
- Behere PB, Behere AP. Farmers' suicide in Vidarbha region of Maharashtra state: A myth or reality? Indian J Psychiatry. 2008 Apr;50(2):124–7
- Bourdieu, P. (1986) The Forms of Capital in Baron, S. Field, J. Schuller, T. (eds.) (2000) *Social Capital - Critical Perspectives*. Oxford University Press.
- *Causes of Farmer Suicides in Maharashtra: An Enquiry*.(2005). Tata Institute of Social Sciences. http:èèwww.tiss.eduèCauses%20of%20 Farmer%20Suici des %20in%20Maharashtra. pdf .
- Center for Human Rights and Global Justice(2011). *Every Thirty Minutes: Farmer Suicides,*
- *Human Rights, and the Agrarian Crisis in India* .New York: NYU School of Law. https:èèsap.einaudi.cornell.eduèsitesèsap.einaudi. cornell.eduèfilesèNYU%20suicide%20report%20Bt%20cotton%20 every30min.pdf
- Coleman, J. (1988) Social Capital in the Creation of Human Capital American Journal of Sociology 94 Supplement S95-S120. University of Chicago.
- Cote S, Healy, T. (2001) The Well-being of Nations. The role of human and social capital. Paris : Organisation for Economic Co-operation and Development.
- Deshpande, R. S. & Arora , Saroj(2010). *Agrarian crisis and farmer suicides*. Thousand Oaks, Calif.: SAGE Publications.
- Dongre, A. R., Deshmukh, P. R. (2010). Farmers' Suicides in the Vidarbha region of Maharashtra India: A qualitative exploration of their causes. *J Inj Violence Res*. Jan; 4(1): 2-6.
- Fernando, Nixon, Arun Kumar, and MIT School of Government (Pune, India)(2009). *The tragedy of farmers' suicides in Vidarbha: A lesson and a ray of hope*. New Delhi :Rupa & Co..
- Field, J. (2010). *Social Capital*. London: Routledge.

- Fitzpatrick KM, Irwin J, Lagory M, Ritchey F (2007) Just thinking about it: social capital and suicide ideation amonghomeless persons. J Health Psychol 12:750–760
- Fraser CE, Smith KB, Judd F, Humphreys JS, Fragar LJ, Henderson A. Farming and mental health problems and mental illness. *Int J Soc Psychiatry*. 2005 Dec;51(4):340–9.
- Government of India(2005). *Agriculture*. National Portal of India. http:èèindia.gov.inècitizenèagricultureèindex.php).
- Government of India (2006). *National Commission on Farmers*. Ministry of Agriculture. http:èèagricoop.nic.inè
- Gruère, Guillaume, and Debdatta Sengupta. 2011. Bt Cotton and Farmer Suicides in India: An Evidence-Based Assessment. Journal of Development Studies 47 (2):316-37. http:èèwww.ifpri.orgèpublicationèbt-cotton-and-farmer-suicidesindia.
- Guha, Jennifer, "Farmer Suicides in Maharashtra, India: Facts, Factors, and Possible Fixes" (2012). *Honors Scholar Theses.* Paper 235. http:èèdigitalcommons.uconn.eduèsrhonors_thesesè235
- Gyanmudra(2007). *Farmers suicide in India: dynamics and strategies of prevention*.Michigan: Deep & Deep Publications.
- Halpern, D. (1999) Social capital: the new golden goose. Faculty of Social and Political Sciences, Cambridge University. Unpublished review.
- Jadhav, Dr. Narendra(2008).*Farmers' Suicide and Debt Waiver An Action Plan for Agricultural Development Of Maharashtra*. http:èèwww.drnarendrajadhav.infoèFarmers'SuicideReport(English).pdf
- Kawachi, I. Kennedy, B. Lochner, K. Prothrow-Stith, D. (1997) Social Capital, Income Inequality, and Mortality American Journal of Public Health 87 (9) 1491-1498.
- Kushner HI, Sterk CE (2005) The limits of social capital:Durkheim, suicide, and social cohesion. Am J Public Health,95:1139–1143.
- Lokniti (2014). State of Indian Farmers : A Report. New Delhi : CSDS
- http:èèwww.lokniti.orgèpdfèFarmers_Report_Final.pdf

- McKenzie K, Whitley R, Weich S (2002) Social capital andmental health. Br J Psychiatry 181:280–283
- Meeta & Rajivlochan (2006). *Farmers Suicides – Facts and possible policy intervention*(2006). Pune:Yashwantrao Chavan Academy Development Adminstration. http:èèwww.yashada.orgèorganisationèFarmersSuicideExcerpts.pdf.
- Mignone,J., O'Neil, J., Social Capital and Youth Suicide Risk Factors in First Nations Communities, *Canadian Journal of Public Health*, JanuaryèFebruary 2005. Pp. S51-S54
- Mishra, Srijit(2006). *Suicide of farmers in Maharashtra*. Mumbai: Indira Gandhi Institute of Development Research.
- Mishra, Srijit(2008). Risks, Farmers' Suicides and Agrarian Crisis in India: Is there a Way Out?. *Indian Journal of Agricultural Economics*.63(1): 38, 38-54.
- Mohanty, B.B. (2005). We are like the living dead: Farmer suicides in Maharashtra, Western India.*The Journal of Peasant Studies,*32(2),243-276.
- Mohanty,B.B. (2007), *Social Roots of farmers suicide in Maharashtra*. Pune : Gokhale institute of Politics and Economics. http:èèwww.unipune.ac.inèsncècsshèEGPè6%20Unpublished%20materials%20on%20EGSè14.pdf
- Muzaffar, Assadi (1998). Farmers' suicides: Signs of Distress in Rural Economy. *Economic and Political Weekly*. Vol. 3, No.13
- Nagaraj, K.,(2008). *Farmers' Suicides in India : Magnitudes, Trends and Spatial Patterns.* Macroscan : Madras Institute of Development Studies. http:èèwww.macroscan.orgèanlèmar08èpdfèfarmers_suicides.pdf
- Panagariya, Arvind (2008) *India: The emerging giant*. New York, N.Y.: Oxford University Press.
- National Crime Records Bureau (NCRB) (2015). *Accidental Deaths and suicide in India 2014.New* Delhi: Ministry of Home Affairs. http:èèncrb.gov.inèADSI2014èadsi-2014%20full%20report.pdf
- Putnam, R (1995). Bowling Alone: America's Declining Social Capital, *Journal of Democracy* 6 (1) 65-78.

- --------- (2000) *Bowling Alone - The Collapse and Revival of American Community*. New York: Simon & Schuster.
- Portes A. (1998: 7) 'Social capital: its origins and applications in modern sociology', *Annual Review of Sociology*, 24 (1) 1-24.
- Sainath, P. (2006). A Final Note on Credit. *The Hindu*, August 27. http:èèwww.indiatogether.orgè2006èaugèpsa-finalnote.htm.
- Sainath, P.(2007a) Farm Suicides Rising, most Intense in 4 States, *The Hindu*, November 12. http:èèwww.hindu.comè2007è11è12èstoriesè2007111253911100.htm
- Sainath, P. (2007b). One farmer's suicide every 30 minutes. *The Hindu*, November, 15.
- Sainath, P. (2011). Corporate socialism's 2G orgy. *The Hindu*, March, 7.
- http:èèwww.thehindu omèopinionècolumnsèsainathèarticle1514987.htm
- Shiva,Vandana, Ashok Emani, and Afsar H. Jafri (1999). Globalisation and Threat to Seed
- Security: Case of Transgenic Cotton Trials in India. *Economic and Political Weekly*, 34 (10è11) (Mar. 6-19): pp. 601-613.
- Shiva, Vandana. (2002). *Water Wars: Privatization, Pollution and Profit*. Cambridge, MA: South End Press.
- Shiva, Vandana. (2005). *Earth Democracy: Justice, Sustainability, and Peace*. Cambridge, MA: South End Press.
- Shiva, Vandana(2006). *Seeds of Suicide: The Ecological and Human Costs of Seed Monopolies and Globalization of Agriculture.* New Delhi: Navadanya.
- Shiva, Vandana and Kunwar, Jalees (2006). *Farmers' Suicide in India*. New Delhi:Research Foundation for Science, Technology and Ecology.
- Sridhar, A., R. Arthur, D. Goenka, B. Jairaj, T. Mohan, S. Rodriguez and K. Shanker (2006). *Review of the Swaminathan Committee Report on the CRZ Notification*.New Delhi: UNDP. http:èèwww.prsindia.orgèparliamenttrackèreport-summariesèswaminathan-report-national-commission-on-farmers--662è

- Srinivasan, T. N. (2007).*Development Strategy: the State and Agriculture since Independence*. http:èèwww.isid.ac.inè
- Tamil Nadu Agricultural University. (2008). *Cost of Cultivation: Cotton*. TNAU Agritech Portal. http:èèagritech.tnau.ac.inèagricultureèagri_costofcultivation_cotton.html
- Vandana Shiva, Afsar H. Jafri and Kunwar Jalees (2003). *The Mirage of Market Access: How Globalization is Destroying Farmers Lives and Livelihood*. New Delhi: RFSTE.
- Vidarbha Jan Andolan Samiti. http:èèvidarbhajanandolansamiti.blogspot.comè
- Wilkinson, R. (1996) Unhealthy Societies: the afflictions of inequality. London: Routledge.

• • •

vkfnoklh fdlku% Hk[kejh cuke vkRegR;k

'kehe eksnh•

वैश्वीकरण के दौर की 1995 में हुई शुरुआत के साथ ही किसानों की आत्महत्या का दौर भी शुरू हो गया। अब तक 3 लाख से ऊपर किसान आत्महत्या कर चुके है– इसलिए महाराष्ट्र, म.प्र., तमिलनाडु सहित पूरे प्रदेश में किसान आंदोलन की राह पर है। अब तक आदिवासी किसान इस दौर में नहीं फँसे थे, मगर पिछले 2 सालों से आदिवासी किसानों की आत्महत्या की ख़बरें आ रही है। म.प्र., उड़ीसा, महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश जैसे आदिवासी बाहुल्य राज्यों में 2015 से ये ख़बरें प्रमुखता से आने लगी हैं।

आज किसानों की अनेक समस्याएं है– जिसमें फ़सल की कीमत, लागत का बढ़ना, सरकारी मदद का नदारद होना आदि लेकिन जब हम आदिवासी किसान की बात करेंगे, तब हमें इस समस्या को एक अलग दृष्टिकोण से देखना होगा।

Hk[kejh ls ekSr ;k vkRegR;k%

इस विषय पर हम आगे बात करें, उसके पहले मैं आपको एक सच्ची घटना बताता हूँ इस घटना का मैं खुद गवाह हूं। यह घटना हमें आदिवासी किसान की भुखमरी में आत्महत्या को दावत देने के कारणों से कुछ हद तक अवगत कराएगी।

छिंदवाड़ा जिले के जमई ब्लॉक के बखारी गांव में जुगरलाल के परिवार के लिए कैसे भुखमरी में खाई रोटी मौत का कारण बन गई। घटना यूं है : 19 नवम्बर, 2011 को जुगरलाल के परिवार ने सुबह काम पर जाने के पहले रात की बची रोटियां खाई और कुछ ही घंटों में उसके परिवार के 6 लोगों, जिन्होंने रोटियां खाई थी, की मौत हो गई। मरने वालों में, पत्नी रसिया, उम्र 40 वर्ष ; लडका जयसिंग, 27 साल; दूसरा लडका कालू, 18 वर्ष; तीसरा लडका चकलू, 15 वर्ष; चौथा लडका पलेसिंह , 12 वर्ष; और लडकी सरस्वती, 10वर्ष। अब सवाल यह है कि जुगारलाल के परिवार के लिए यह रोटी मौत का कारण क्यों बनी?

असल में, वो रोटियां आम की गुठली के आटे से बनाई गई थीं; वो रात की बासी होने के कारण विषैली हो गई थी। इस इलाके में कोरकू आदिवासियों के परिवार में जब फ़सल सही नहीं होती है, तो वो आम की गुठली को फोड़ते है, उसे चूरा करते है और फिर कपड़े में लपेटकर एक बड़े से पत्थर के नीचे दबाकर बहते झरने में रख देते है। उस पर रात भर पानी बहने से, उसका कड़वापन का बुरा असर काफ़ी हद तक कम हो जाता है। अब किन्हीं कारणों से उस दिन यह प्रक्रिया सही ढंग से नहीं

• सहायक प्राध्यापक, टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, मुम्बई

हुई होगी इसलिए बासी होने पर वो रोटियां विषैली हो गई। अब दूसरा सवाल यह है कि जुगरलाल को अन्य सरकारी मदद क्यों नहीं मिली? जब हमने जुगरलाल के गांव जाकर उसका जॉब कार्ड देखा, तो उसमें उसके द्वारा मनरेगा के अंतर्गत कोई काम करना नहीं दर्शाया गया था; लेकिन वहीं मनरेगा वेबसाइट पर उसे वर्ष 2008–09 और 2009–10 में क्रमशः 7549 रुपए और 6596 रुपए भुगतान करना बताया गया था। जहां तक सस्ते सरकारी राशन का सवाल है? उसका कहना थाः पहाड़ी रास्तों से होकर 20–25 किलोमीटर दूर स्थित राशन दुकान जाने पर, वो अक्सर बंद मिलती है; इसलिए वहां जाना छोड़ दिया।

आम की गुठली के आटे की रोटी या जंगली जहरीले कंदमूल फल खाकर मरने वाला जुगरलाल का परिवार अकेला नहीं था। देश के आदिवासी इलाक़ों में यह घटना होती रहती है। हर आदिवासी परिवार यह जानता है, कि अगर इसमें जहर सही ढंग से कम नहीं हुआ, या भूख मारने के लिए इसे लगातार ज़्यादा समय तक खाया, तो यह भोजन मौत का सबब बन सकता है; फिर भी वो यह ख़तरा लेता है। बहुत से विशेषज्ञ इस बात से इत्तेफाक न रखे; लेकिन, मेरी राय में एक आदिवासी किसान परिवार द्वारा भुखमरी में विषैली रोटी खाने का ख़तरा मोल लेना एक तरह की आत्महत्या ही है। इन मौतों पर आमतौर पर हमारी संसद में चर्चा नहीं होती। लेकिन जब इस तरह की मौत उडीसा के कालाहांडी जिले में हुई, तो इस मुद्दे को संसद मे सबसे पहले, 1962 में, संसद में सबसे युवा सांसद, संबलपुर, उडीसा के किशन पटनायक ने उठाया था। लेकिन, तब भी सरकार ने इसे स्वीकार नहीं किया और बहस को एक हद के आगे नहीं बढ़ने दिया। आज भी कालाहांडी सहित देश के आदिवासी इलाकों में कुपोषण से मौत की ख़बरे, बारिश के दौर में आम है। इससे देश की आर्थिक राजधानी मुंबई से सटा ठाणे और पालघर जिला भी वंचित नहीं है।

udnh Qly d ykyp e Qlk vkfnoklh fdlku

भुखमरी और कुपोषण से जूझता आदिवासी किसान भी पिछले कुछ समय से तेज़ी से नकदी फ़सल की ओर बढ़ रहा है। अपनी परंपरागत मुख्यतः भोजन के लिए उगाई जाने वाली फ़सलें छोडकर अब सोयाबीन, कपास, मिर्ची जैसी अनेक नकदी फसलों के फेर में फंस गया है। वो भी आम किसान की तरह किसान क्रेडिट कार्ड के जरिए बैंकों से और साहूकारों से क़र्ज़ लेकर इन फ़सलों को लगाने लगा है; वो भी उस दौर में इन फ़सलों के चंगुल में फंस रहा है, जब मैदानी इलाकों में सामान्य किसान इसके जाल से बाहर निकलने के लिए तड़प रहा है। आदिवासी किसान क़र्ज़ा लेकर इन नकदी फ़सलों को लगा तो लेता है। लेकिन न तो उसकी ज़मीन उस लायक है, और न सिंचाई के साधन। उसकी इन फ़सलों की समझ और इन फ़सलों को उगाने का उत्साह भी आम किसान जैसा नहीं है, वो कभी फ़सलों को लेकर उस तरह चिंतित रहने वाला किसान ही रहा है।

अगर हम इस घटना को एक उदाहरण से समझे तो ज़्यादा ठीक रहेगा। म.प्र. के बैतूल जिले के भीमपुर ब्लाक के बाशिंदा गांव के मूरत आदिवासी ने सोयाबीन की फ़सल के लिए सेंट्रल बैंक भीमपुर की शाखा से 50,000 (पचास हजार) रूपये का ऋण लिया था। पानी न मिलने से फ़सल फेल हो गई। ईंट का भट्टा लगाया वो तेज़ बारिश में बैठ गया। उसने अपने तीन में से दो बेटों "सतीश और सुनील" को काम के लिए अहमदाबाद भेजा लेकिन उन्हें भी मज़दूरी समय पर नहीं मिलती थी। आख़िर क़र्ज़ से हार कर उसने आत्महत्या कर ली। 2015 में इस जिले में पहली बार 6 आदिवासी किसानों ने कर्जे में फंसकर आत्महत्या की।

बाप के कर्ज का बोझ बेटे पर

आत्महत्या करने से किसान का क़र्ज़ ख़त्म हो जाता है, या माफ़ हो जाता है– ऐसा नहीं है। किसानों का मामला किसी हजारों करोड़ का ऋण बैंकों से लेकर उसे न चुकाने वाली कंपनी के जैसा नहीं होता है। जहां कंपनी के ऋण में उसके प्रोमेटर की कोई निजी जवाबदारी नहीं होती है, वहीं किसानों के मामले में एकदम उलट है। बाशिंदा गांव के मूरत आदिवासी का परिवार मूरत की आत्महत्या से कर्जे से नहीं बचा। उसके लड़के सतीश को अभी 2017 में मुख्यमंत्री आवास योजना से 1 लाख रुपए का ऋण मंजूर हुआ। लेकिन सेंट्रल बैंक की भीमपुर शाखा यह कहकर पैसे देने से इंकार कर रही है, कि उसके पिता का किसान क्रेडिट कार्ड के ऋण का भुगतान अभी बाकी है। जब सरकारी बैंकों का यह हाल है, तो हम साहूकारों द्वारा ऋण वसूली के लिए की जा रही सख़्ती का आसानी से अंदाज़ा लगा सकते है।

समस्या के ऐतिहासिक कारण

पूरी दुनिया में जहां–जहां उपनिवेशीकरण हुआ, वहां–वहां आदिवासी ज़मीन से वंचित हो गए। अगर हम इसे अन्य देशों के उदाहरण से देखें तो संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में कोलबंस के वहां की धरती पर पांव रखने से शुरू हुआ दौर–1492 से 1887 के बीच, उनकी दो तिहाई ज़मीन वहां की गोरों की सरकार के हाथ में चली गई।

अब हम भारत के संदर्भ में देखे। आज देश के 25 प्रतिशत भू–भाग पर वन विभाग की मालकियत है; वहीं उसी जंगल में रहने वाला अधिकांश आदिवासी अतिक्रमक की श्रेणी में आता है। असल में 1857 की क्रांति के बाद सेना और अधिकारियों को तेज़ी से एक जगह से दूसरी जगह ले जाने के लिए अंग्रेजों को भारत में रेलवे लाईन डालने की ज़रूरत महसूस हुई; दूसरी तरफ यूरोप के युद्ध में, युद्ध पोतों की दरकार थी। इसलिए उन्होंने अपनी सत्ता को टिकाने और बढाने के लिए भारत में जंगलों को आरक्षित करने की शुरुआत की; इसका पहला शिकार बना मध्यप्रदेश के पचमढ़ी के जंगल में हर्राकोर्ट का आदिवासी जागीरदार भभूतसिंग कोरकू। 1857 की क्रांति विफल होने पर, जब तात्या टोपे सभी आदिवासी और अन्य छोटे–छोटे सरदारों को दोबारा जोड़ रहे

थे, क्योंकि सभी बड़े राजा तो अंग्रेज़ो से संधि कर चुके थे, तब वो भभूतसिंग के पास भी पहुंचे। भभूतसिंग ने, 1859 में, अंग्रेज़ों के खिलाफ विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह के परिणाम स्वरूप, 1861 में उसे धोखे से पकड़कर, 1862 में जबलपुर जेल में फांसी दे दी गई, और तब उसकी जागीर पर, देश का पहला आरक्षित वन cuk&ßckjhÞ। 1865 में वन विभाग बना और, 1878 में बने पहले वन क़ानून में, आरक्षित वन के प्रावधान को क़ानूनी जामा पहनाया गया। इसका परिणाम यह हुआ किए धीरे–धीरे पूरे देश में आदिवासी इलाकों की ज़मीन बहुतायत मे आरक्षित वन में बदल गई। उदाहरण के लिए, 1876 में मध्यप्रदेश के मंडला जिले में, मात्र 2.39 क्षेत्र ही आरक्षित वन था। 1878 में, आरक्षित वन का क़ानूनी प्रावधान आने के बाद, 1891–92 तक मंडला जिले का आधा भू–भाग आरक्षित वन में बदल गया था। इतना ही नहीं, प्रसिद्ध इतिहास शास्त्री महेश रंगराजन ने अपने रिसर्च पब्लिकेशन, फेसिंग द फारेस्ट, जो 1996 में प्रकाशित हुई थी, मे यह बताया है, कि किस तरह से जो खेती करने लायक मैदानी ज़मीन थी, उससे भी आदिवासी वंचित रह गए। उन ज़मीनों पर मालगुजारों को अधिकार मिल गए। असल में, खेती पर अधिकार देने के लिए अंग्रेज़ों ने बंगाल टेनन्सी एक्ट के प्रावधानों को लागू किया। इसके अनुसार, 12 साल तक लगातार जिनके कब्जे में ज़मीन थी, उन्हें ही ज़मीन पर अधिकार दिए जा सकते थे। चूंकि आदिवासी झूम खेती (शिफ्टिंग कल्टीवेशन) करते थे, इसलिए राजस्व क्षेत्र में भी अपने अधिकार उन्हें नहीं मिले।

vkx: dk jkLrk

चूंकि आदिवासी किसान किसान प्रकृति से जुड़ा है वो जंगल से मिलने वाले भोजन से जिंदा रहना और प्रकृति से सामंजस्य बनाना हजारों साल से जानता है। प्रकृति और आदिवासी के इस रिश्ते में ही आगे का रास्ता छुपा है। लेकिन अंग्रेज़ो से लेकर आज तक इस रिश्ते को तोड़ने का काम ही हुआ है। आदिवासियों का जंगल पर जो स्वाभाविक अधिकार है, उसे मान्यता देने को लेकर अंग्रेज़ों के समय से लेकर आज़ादी के बाद तक ऐतिहासिक अन्याय हुआ है। यह स्वीकारोक्ति भारत सरकार द्वारा 2006 में आदिवासियों एवं उसके साथ अन्य परंपरागत वन निवासियों को जंगल और उसकी ज़मीन पर अधिकारों को मान्यता देने के लिए लाए गए, "अनुसूचित जनजाति एवं परंपरागत निवासी (वन अधिकार) क़ानून, 2006" की प्रस्तावना में दर्ज़ है। इस क़ानून में आदिवासियों एवं अन्य परंपरागत वन निवासियों को निजी एवं सामुदायिक अधिकार देने की कार्यवाही की ग्रामसभा को करना है। इस क़ानून को प्रभाव में आए 10 साल पूरे हो गए है, लेकिन फिर भी कुछ प्रतिशत आदिवासियों को ज़मीनों के पट्टे मिलने से ज़्यादा आगे बात नहीं बढ़ी। क्योंकि हमारा वन विभाग जो है, वो आज भी वन क़ानून, 1927 से संचालित है। हमारी सारी प्रशासन व्यवस्था भी अंग्रेज़ों के दौर की है और सबसे बड़ी बात है, आदिवासी किसानों की राजनैतिक आवाज़ नगण्य है।

आज सबसे पहले ज़रूरत है, जिस ऐतिहासिक अन्याय का उल्लेख इस (वन अधिकार) क़ानून, 2006 में है, अंग्रेज़ों के दस्तावेज़ों में जाकर खुले दिमाग से उसे समझना होगा और फिर, जंगल और आदिवासी के रिश्तों को वापस कायम करना होगा। यह न सिर्फ़ आदिवासी किसान की आत्महत्या या भूख से मौत का ईलाज करेगा, बल्कि यह व्यापक हित में होगा।

आज दुनिया में सबसे बड़ी समस्या है रोजग़ार और दूसरी पर्यावरण। जब हम रोजग़ार की बातें करते है, तो सीधे उद्योगों की बात दिमाग में आती है, जिससे पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इसलिए आज ज़रूरत इस बात की है, कि हम ऐसी कोई योजना बनाए जहां यह एक दूसरे के पूरक बने। और इसका हल छुपा है, आदिवासी और जंगल के संबंधों में। वन विभाग का जंगल से संबंध व्यापारिक है। उसकी रुचि फलदार पेड़ों में नहीं है; इसलिए जंगल से फलदार पेड़ मिट गए, और उसके साथ ही जैव विविधता। अब अगर सरकार वन अधिकार क़ानून, 2006 के तहत जंगल की बेकार खाली ज़मीन पर आदिवासियों के परम्परागत अधिकार को मान्यता दे और क़ानून के अनुसार, हर गाँव की ग्रामसभा को अपने जंगल के सुधार के अधिकार को क्रियान्वित करने में मदद दे, अडंगा न लगाए; रोजग़ार गारंटी के अंतर्गत हर आदिवासी गाँव ग्रामसभा के माध्यम सें फलदार पौधों की नर्सरी बनाए, इसमें आदिवासी जनसहयोग भी करें। जब यह पौधे तैयार हो जाए, तो बारिश के मौसम में ग्रामसभा कीं खाली पड़ी ज़मीन पर आदिवासी इन पौधों को लगाएंगे।

कल्पना कीजिए! इस प्रयास से, जब हर आदिवासी गाँव में फलदार पेड़ों का एक बड़ा सा बगीचा होगा। तब, उससे न सिर्फ़ फल पर आधारित रस, मुरब्बे आदि के छोटे–छोटी उद्योग स्थापित किए जा सकेंगे। उसमें युवाओं को रोजग़ार मिलोगा। इससे जहां आदिवासियों को एक बार फिर पोषण मिलेगा, वहीं उसे बेचकर आर्थिक लाभ भी। इससे जैव विविधता आएगीं, ज़मीन का कटाव रूकेगा और बारिश में सुधार होगा। इस सबका फायदा आम किसानों को भी होगा। भारत देश की बेरोजग़ारी का इलाज़ पौधे लगाने में है; उद्योगों में नहीं। यह बात अमेरिका के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री ई. एफ.शूमाकर ने, अपनी किताब "स्माल इज ब्यूटीफूल" में, 1970 के दशक में लिखा था।

इज़्ज़त से जीने का अधिकार, यह सबसे पहला मानवीय अधिकार है। अगर किसान इज़्ज़त से जीने की बजाए आत्महत्या करें, या भुखमरी में विषैली रोटी खाने का ख़तरा ले तब उसे यह अधिकार कैसे मिलेगा?

क़र्ज़ माफ़ी से किसानों को यह अधिकार नहीं मिलेगा; थोड़ी फौरी राहत ज़रूरत मिलेगी। अगर हमें किसानों की समस्या का स्थायी हल ढूंढना है, तो हमें पर्यावरण की समस्या का हल भी ढूंढ़ना होगा। वो तभी होगा, जब हम आदिवासी को उसके जंगल पर परंपरागत अधिकार को समझेंगे। आदिवासी किसान का जंगल से वापस रिश्ता जुड़ेगा, तभी वो बचेगा और इज़्ज़त से जी पाएगा और तभी, पर्यावरण सुधार से आम

किसान भी आत्महत्या के फेर से बच पाएगा। वरना कालांतर में पर्यावरण हादसे से किसान की आत्महत्या और बढ़ेगी।

Û Û Û

fdlku vkRegR;k % ekuokfèkdkjksa dk ,d pqukSrh

lqn'kZu oekZ•

fur'k dqekj prqosZnh••

मनुष्य एक स्वतन्त्र प्रकृति का सामाजिक प्राणी है, जिसे अपने समग्र विकास, स्वतन्त्र रूप से जीवनयापन करने तथा अपने विचारों को प्रकट करने के लिए अधिकारों की आवश्यकता पड़ती है। अधिकार ही मनुष्य के व्यक्तिव को प्रबलता प्रदान करते है। यह एक सामान्य नियम है कि मानव सर्वत्र विधिक मूल्यों की प्राप्ति की मांग करता रहता है जो उनके व्यक्तिगत एवं सामूहिक हित को सुनिश्चित कर सके। व्यक्तियों को अधिकार विधि द्वारा प्रदत्त किया जाता है, क्योंकि विधि निर्माण का कार्य सम्प्रभु संविधान निर्माण के माध्यम से या विधि निर्माण करके व्यक्तियों के हितों को संरक्षा प्राप्त कराने हेतु अधिकार प्रदान करते है। मानवाधिकार अब किसी एकांकी राज्य का अनन्य विषय नही रहा, मानवाधिकार का महत्त्व उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है क्योंकि अन्तराष्ट्रीय समुदाय के लोगों में ऐसी जागरूकता बलवती होती जा रही है कि उन्हें एक ऐसी जीवन पद्धति चाहिए जो मानव गरिमा के अनुरूप हो।

मानवाधिकार तुलनात्मक रूप से नया पद है जो द्वितीय विश्वयुद्ध और संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के साथ प्रचलित हुआ। आज इसे हम मूल अधिकार आधारभूत अधिकार या प्राकृतिक अधिकार के रूप में भी जानते है मनुष्य के लिए जहां रोटी, कपड़ा और मकान अपरिहार्य है वही उसके साथ कतिपय ऐसी अन्य चीजें है जो आधुनिक मानव समाज के लिए अत्यन्त आवश्यक है और इसमें मानवाधिकार भी शामिल है। अतः मोटे तौर पर मानवाधिकार को हम वे अधिकार कह सकते है जो एक मानव को मानव होने के नाते मिलने चाहिए, वे अधिकार जो एक मानव व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए आवश्यक है। इस प्रकार हम देखते है कि मानव को स्वयं के सम्पूर्ण व्यक्तिव के विकास एवं सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक समानता प्राप्त करने हेतु विधि निर्मात्री संस्थाएं विधियों का निर्माण कर अधिकार प्राप्त कराती है।

भारतीय संविधान की सातवीं अनुसूची में कृषि राज्य सूची का विषय हैं। अतः कृषि सम्बन्धित सभी प्रकार की प्रोन्नति एवं विकास का कार्य राज्य सरकारों की जिम्मेदारी है। भारत सरकार का कृषि मन्त्रालय राज्य एवं केन्द्र शासित प्रदेशों के कृषि से सम्बन्धित कार्य एवं किसानों के विकास एवं हित का अधीक्षण करता है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में जहां आज भी 48.9 प्रतिशत आबादी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर आधारित है। भारत के सभी राज्यों में किसानों की आत्महत्या की समस्या ने राज्य सरकारों का ध्यान आकृष्ट किया है। आत्महत्या की इस समस्या से निजात की

• आचार्य, विभागाध्यक्ष, विधि अध्ययन विद्यापीठ, बी.बी.ए.यू., लखनऊ

•• विधि विभाग, विधि अध्ययन विद्यापीठ, बी.बी.ए.यू., लखनऊ

कोई व्यवस्था दिख नही रही है। मध्य प्रदेश राज्य की कृषि विकास दर 10 प्रतिशत है लेकिन इसके बावजूद वहां किसानों की आत्महत्या रुक नही रही है। मंदसौर की घटना ने पूरे भारतीय जनमानस में किसानों की आत्महत्या एवं किसानों पर चली गोली से स्तब्ध कर दिया हैं हालांकि की किसानों की आत्महत्या एवं उनमें पनपे तात्कालिक असंतोष का कारण उत्तर प्रदेश में किसान क़र्ज़ माफ़ी का भाजपा का चुनावी वादा भी हैं महाराष्ट्र, पंजाब, मध्यप्रदेश आदि राज्यों के किसान क़र्ज़ माफ़ी न होने से किसान आन्दोलित है।

किसानों की समस्या को पिछले कई दशकों से गहराई से समझा ही नही गया सत्ता चाहे अंग्रेज़ों की रही हो या किसान हितैशी कही जाने वाले हमारे अपने राजनीतिक दलों की। किसी किसानों को आत्मनिर्भर बनाने की कोशिश ही नहीं की। किसानों की बेचैनी के मामलें में यह भी समझने की ज़रूरत है कि किस तरह एक बड़ी आबादी की हालत जस–की–तस बनी हुई है। दूसरी तरफ अभिजात्य वर्ग की समृद्धि बढ़ती गई। वर्ष 2000 में एक प्रतिशत अभिजात्य वर्ग के पास देश की 37 प्रतिशत पूंजी थी, जबकि मात्र 63 प्रतिशत पूंजी 99 प्रतिशत लोगों, अर्थात् किसान, मज़दूर, मध्यम वर्ग के पास थी। वर्ष 2005 में यह पूंजी बढ़कर 42 प्रतिशत हो गई, 2010 में 48 प्रतिशत और 2012 में 52 प्रतिशत हो गया। 2017 में यह पूंजी बढ़कर 59 प्रतिशत हो गई है। इस देश में गरीब और गरीब, अमीर और अमीर होता जा रहा है। अमीरी गरीबी की बढ़ती खाई भी किसानों की आत्महत्या एवं आन्दोलन की मुख्य वजह के रूप में नज़र आती है।

आज भी कृषि क्षेत्र में कुल श्रम का लगभग 50 प्रतिशत का प्रयोग होता है जबकि सकल घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र की भागीदारी मात्र 14 प्रतिशत है। इनसे प्रतीत होता है कि कृषि कार्य में श्रम ज़्यादा और लाभ कम है।

fd lkuk d vkRegR;k d dkj.k

- कृषि की मानसून पर निर्भरता
- उचित मूल्य पर खाद बीज आदि का उपलब्ध न होना।
- फ़सलों का उचित मूल्य न प्राप्त होना।
- अपर्याप्त शीतगृहों का होना।
- कृषि सम्बन्धित योजनाओं की सही जानकारी न होना।
- कृषि क्षेत्र में बिचौलियों का वर्चस्व।
- सरकारी योजनाओं की सही जानकारी न होना।
- अन्य अतिरिक्त कारण–जैसे पारिवारिक कलह एवं अशान्ति, निम्न सामाजिक एवं आर्थिक–स्तर का होना, मदिरापन आदि का सेवन किन्तु ये समस्त कारण किसी न किसी रूप में कृषि व्यवसाय में हाने वाले घाटे/नुकसान का ही परिणाम होते है। क्योंकि कहा जाता है कि भारत का किसान तभी खुशहाल होगा जब वह सामाजिक एवं आर्थिक रूप से सबल होगा।

fd lku vkRegR;k % thou d! vfèkdkj dk mYYk?ku %&

आत्महत्या करने को मजबूर किसानों को भी पता है कि जीवन प्रकृति प्रदत्त अधिकार है। अर्थात् जीवन का अधिकार एक नैसर्गिक अधिकार है। जिसकी गारन्टी भारत का संविधान देता है। अर्थात् विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही व्यक्ति को उसको जीवन के अधिकार से निवारित किया जा सकता है।

जीवन का अधिकार का तात्पर्य पशुवत जीवन से नही होना चाहिए, जैसा कि मन बनाम इलिनायस के वाद में अमेरिकन सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था। अनु. 21 में प्रयुक्त जीवन शब्द का अर्थ उन सभी सीमाओं और सुविधाओं तक विस्तृत है, जिसके द्वारा जीवन का उपभोग किया जा सकता है।

जीवन के अधिकार में जीविकापार्जन का भी अधिकार सम्मिलित है, क्योंकि आज भारत का किसान अथक परिश्रम करने के बाद भी आत्महत्या करने को मजबूर है।

ओलगा तेलीस बनाम बॉम्बे म्यूनिसिपल, कारपोरेशन के वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि जीवन के अधिकार में जीविकोपार्जन का अधिकार भी सम्मिलित है। इस प्रकार हम देखते है कि किसान आज आत्महत्या करने को मजबूर है, क्योंकि उसके सामने सबसे बड़ा यक्ष प्रश्न उसका स्वयं का जीविकोपार्जन ही है। मजबूर होकर किसान आत्महत्या करता है। जबकि ऐसा करना अपराध होगा, साथ ही यदि व्यक्ति स्वयं की भी जान लेना चाहता है तो वह भी एक अपराध है। वे कौन–सी परिस्थितियां हैं जिनके कारण आज किसान स्वयं अपने प्राणों की आहूति दे रहे हैं।

महाराष्ट्र राज्य बनाम मारूति श्रीपति दूबल के वाद में सर्वप्रथम बॉम्बे हाइकोर्ट ने कहा था कि अनु0 21 के अधीन जीवन के अधिकार में मरने का अधिकार भी सम्मिलित हैं, अतः आत्महत्या अपराध नही है। इस प्रकार भारतीय दण्ड संहिता की धारा 309 इस अधिकार को न्यून करती है। लेकिन ज्ञान कौर बनाम पंजाब राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अनु.21 के अन्तर्गत जीवन के अधिकार में मरने का अधिकार नही सम्मिलित है। अतः आत्महत्या एक अपराध है जो कि दण्डनीय है।कहते है कि दण्ड का भय व्यक्तियों को अपराध करने से निवारित करता है। जबकि आत्महत्या के अपराध में असफलता की परिस्थिति में दण्ड का प्रावधान है जो कि न्यूनतम है।

कृषि क्षेत्र में कार्यरत् किसान ग्रामीण परिवेश में रहते है उनके लिए सामाजिक मूल्यों का बहुत महत्त्व होता है। अतः उनके द्वारा लिए गए कृषि ऋणों की पूर्ति न कर पाना, उनके सम्मान एवं प्रतिष्ठा पर आघात पहुंचाते हैं। कई बार जेल जाने एवं सम्पत्ति कुर्क आदि होने के भय के कारण भी भारत का किसान आत्महत्या करने को मजबूर हो जाता है जबकि जाली जार्ज बर्गीज बनाम कोचीन बैंक, के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि एक निर्धन किन्तु ईमानदार ऋणी को

इस आधार पर गिरफ़्तार करना एवं जेल में विरुद्ध करना कि वह अपनी निर्धनता के कारण डिग्री प्रदान की गई ऋण का रकम चुकाने में असमर्थ था। ऐसा करना भारतीय संविधान के अनु. 21 एवं इन्टरनेशनल कवनेन्ट ऑफ सिविल एण्ड पोलिटिकल राइट्स की अनु. 11 का अतिक्रमण करना होगा। अन्तर्राष्ट्रीय अधिकारों की अनु. 11 यह उपबंधित करता है किसी व्यक्ति को अपने संविदात्मक दायित्व को पूरा करने में असमर्थ होने मात्र के आधार पर बन्दी नही बनाया जाएगा।

जहां एक तरफ किसान आत्महत्या की दर में वृद्धि हो रही है वही दूसरी तरफ भारत सरकार की विधि आयोग ने 2008 में ही इस अपराध को समाप्त करने की सिफारिश अपनी रिपोर्ट संख्या–210 में की है।

jktuhfrd nyksa ds ?kks"k.kki=ksa esa —f"k ,oa fdlkuksa ls lEcfU/kr uhfr;ksa ,oa ;kstuk,a%&

हमने शासन व्यवस्था के लिए संसदीय लोकतन्त्र प्रणाली को अंगीकार किया है जो लोक कल्याण की मूलभूत अवधारणा पर आधारित है। लोक कल्याण की वोट के प्रभाव से हम निरन्तर मुफ्त बनाते गए, नतीजा कई प्रकार से घातक हो रहा है। वास्तव में वोट बैंक की राजनीति ने मुफ्त की योजनाओं एवं क़र्ज़माफी को मुख्य चुनावी मुद्दा बना दिया है। इस मुफ्त की योजनाओं एवं क़र्ज़माफी का प्रभाव सबसे ज़्यादा आम आदमी पर पड़ता है। भारत में इस मुफ्त एवं माफ़ी की संस्कृति ने नयी समस्याओं को जन्म दे दिया।

जिसको हम किसान आन्दोलन या क़र्ज़माफी न होने या क़र्ज़माफी करवाने के लिए किसानों द्वारा की जा रही आत्महत्या के रूप में देख सकते है घोषणापत्र आकांक्षाओं का प्रतीक है, लेकिन अव्यावहारिक होकर उसे लागू करना अराजकता को जन्म देना है। बात सन् 1967 की है जब चौधरी चरण सिंह के नेतृत्व में उत्तर प्रदेश में गैर कांग्रेसी सरकार बनी थी। लखनऊ में आयोजित एक प्रेस वार्ता में पत्रकारों ने पं0 दीनदयाल उपाध्याय से पूछा कि जनसंघ के घोषणापत्र में किसानों से लेवी और लगान माफ़ी का वादा किया गया है। तब पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी का उत्तर था घोषणा पत्र हमारी आकांक्षाओं की धरातलीय तथ्य के आधार पर समीक्षा करते है। उनमें जो अव्यावहारिक हो उन्हे छोड़ देना चाहिए तथा अन्य आकांक्षाओं की प्राथमिकता संसाधनों के आधार पर निर्धारित करनी चाहिए। सरकारें किसानों के नाम पर वोट बैंक की राजनीति करना छोड़कर उनके कल्याण की योजनाओं पर सही तरह अमल करे तो किसानों की हालत काफ़ी हद तक बदली जा सकती है, चाहे केन्द्र सरकार हो राज्य सरकारें दोनों को यह समझना होगा कि किसानों को उनकी उपज की लागत मूल्य ही नही बल्कि उसमें कुछ अधिक मिलना चाहिए। जिससे कि किसानों की आर्थिक स्थिति मज़बूत हो तब उन्हें न तो क़र्ज़े लेने की ज़रूरत पड़ेगी और न ही चुनावों के समय राजनीतिक पार्टियों द्वारा अपने घोषणापत्रों में क़र्ज़माफी की कार्य योजना का जिक्र करना पड़ेगा।

तब न तो किसानों को आत्महत्या करने पर मजबूर होना पड़ेगा, क्योंकि जीवन का अधिकार नैसर्गिक अधिकार या अप्रतिदेय अधिकार है जिसको मानव स्वयं से छीन रहा है। अर्थात् आज भारत का किसान आत्महत्या करने पर मजबूर हो रहा है।

जब बीमारी पता हो और इसका इलाज भी हो, फिर भी बीमारी बनी रहे तो क्या कहेंगे? अपने देश में किसानों और खेती बाड़ी के साथ यही हो रहा पिछले सात दशक से किसान को इंतजार है ऐसी सरकार का जो उसके मर्ज का इलाज करे लक्षण का नहीं। समस्या इतनी सी है कि किसान फ़सल उपजाने के लिए जितना खर्च करता है और उसे बेचकर उतना ही कमा पाता है। सरकारों का आलम यह है कि सिर ढकती है जो पैर निकल जाता है। हरित क्रान्ति आई तो देश अनाज के मामलें में आत्मनिर्भर हो गया, अब दूसरी हरितक्रान्ति की बात चल रही हैं, वह भी आ जाएगी, पर किसान भूखा रहे, आत्महत्या करे या गोली खाये यही उसका प्रारब्ध बन गया है।

खेती घाटे का सौदा बन गई है, किसान खेती छोड़ना चाहता है पर छूट नही रही है क्योंकि उसके पास और कोई विकल्प नही है। देश में 77 प्रतिशत किसानों के पास दो हेक्टेयर से कम ज़मीन है, सात दशकों में मात्र अब तक 45 प्रतिशत ज़मीन पर ही सिंचाई की व्यवस्था है, जबकि 55 प्रतिशत खेती अभी भी मानसून यानी भगवान के भरोसे होती है।

देश की आज़ादी के समय सकल घरेलू उत्पाद में कृषि की भागीदारी एक तिहाई थी जो घटकर मात्र 14 प्रतिशत रह गई हैं जबकि खाद्यान्न उत्पादन में प्रत्येक वर्ष अभिवृद्धि हो रही है। 9 मई, 2017 को कृषि मन्त्रालय द्वारा जारी किए गए रिपोर्ट के अनुसार तीसरे अग्रिम अनुमान के अनुसार देश में खाद्यान्न का कुल उत्पादन 273. 38 मिलियन टन रहा, जो रिकॉर्ड उत्पादन है। जबकि उत्पादन का लक्ष्य 270.010 मिलियन टन था। गेहूं, चावल के साथ अन्य फ़सलों जैसे दलहन एवं तिलहन का उत्पादन भी अच्छा हुआ हैं वर्ष 2013–14 के दौरान 265.04 मिलियन टन खाद्यान्न उत्पादन रिकॉर्ड किया गया था। वर्ष 2015–16 में कुल अनाज का उत्पादन 251.57 मिलियन टन रहा हैं। वर्ष 2016–17 में रिकॉर्ड 109.15 मिलियन टन चावल एवं 97.44 मि0 टन गेहूं का रिकॉर्ड उत्पादन हुआ है। इस उत्पादन के बावजूद किसान आत्महत्या करने को मजबूर है। इससे पता चलता है कि खेती किसान आज के दौर में घाटे का सौदा साबित हो रहा है।

jk"Vh; vijkèk fjdkM C;jk dh fjikV

विगत कई वर्षों से भारत अन्य अनेक सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक चुनौतियों के साथ–ही–साथ किसान आत्महत्या के बढ़तें आकड़ों की चुनौती से भी जूझ रहा है। विगत वर्षों में किसान आत्महत्या के मुख्य आंकड़ें इस प्रकार हैं।

भारत में आत्महत्या के आंकड़ों का एक मात्र विश्वस्त स्त्रोत राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड

ब्यूरो पूरी कहानी बताते है। यह प्रकोष्ठ तो देश भर में स्थानीय पुलिस के मार्फ़त मिले आंकड़ों को सूचीवार दर्ज़ करता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार दुनिया में हर साल की जा रही आत्महत्याओं में 30 प्रतिशत भारत में होती है। क़र्ज़ के बोझ में दबकर आत्महत्या करने वालों में भारत विश्व में प्रथम स्थान पर पहुॅच गया है। क़र्ज़ के बोझ में दबकर आत्महत्या ज़्यादातर किसान ही करते है।

30 दिसम्बर, 2015 को जारी राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो द्वारा जारी रिपोर्ट एक्सीडेन्टल डेथ्स एण्ड सुसाइड इन इण्डिया 2015 के मुताबिक 2015 में 12602 किसानों और खेती से जुड़े मज़दूरों ने आत्महत्या की है। जबकि सन् 2013 में 11712, 2014 में 12360, 2016 में 11458 किसानों ने आत्महत्याएं की है। इस प्रकार हम देखते है कि सन् 2014 एवं 2015 के बीच किसानों की आत्महत्या की दर से 2 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। 2015 के रिपोर्ट के अनुसार भारत में कुल 133623 लोगों ने आत्महत्या की है जिसमें 12602 लोग कृषि क्षेत्र से सम्बन्धित क्षेत्र है। 12602 आत्महत्या करने वाले व्यक्तियों में 8007 किसान है जबकि 4595 व्यक्ति कृषि से सम्बन्धित मज़दूर है। राज्यों के अनुसार सबसे अधिक आत्महत्या महाराष्ट्र 4291, कर्नाटक से 1559, तेलगांना मे 1400, म0प्र0 में 1290 छत्तीसगढ़ में 954 आन्ध्रप्रदेश में 916, तमिलनाडु में 606 किसानों ने आत्महत्या की है राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो की 2014 के रिपोर्ट के अनुसार 44.5 प्रतिशत किसानों ने आत्महत्या की है जो कि छोटे किसान को अर्थात् जिनके पास 2 हेक्टेयर से कम भूमि है तथा 27.9 प्रतिशत ऐसे किसान है जिनके पास 1 हेक्टेयर से कम भूमि है। इस प्रकार अकेले लगभग 75 प्रतिशत ऐसे किसान आत्महत्या करने वाले है जिनकी भूमि का रकबा छोटा है। महाराष्ट्र में 53.1 प्रतिशत ऐसे किसानों ने आत्महत्या की है जिनके पास 2 हेक्टेयर से भी कम भूमि है।

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने छोटी सी उम्र में एक किताब लिखी थी जिसका शीर्षक था स्माल होल्डिंग्स इन इण्डिया, आज हम किसानों की जिन–जिन समस्याओं से रूबरू हो रहे हैं, उसकी इस पुस्तक में बाबासाहेब ने 100 साल पहले ही दे दी थी। उन्होंने ज़ोर देकर कहा था कि अगर हम संजीदा हों तो छोटे रकबे भी फायेदमंद हो सकते हैं। उन्होंने किसानों को आधुनिक बनाने और इसके लिए किसानों को प्रशिक्षित करने की बात भी कही थी। उनका कहना था कि हमारा अंतिम उद्देश्य होना चाहिए किसान की क्षमता बढ़ाना उनकी नजर में किसान कमी भी पूंजीपति नही हो सकता। वह एक के बाद दूसरी और फिर तीसरी फ़सल उपजाता है। चूंकि उसके पास पूंजी नही होती है या तो वह क़र्ज़ लेकर नही तो फ़सल बेचकर दूसरी फ़सल उपजाने की तैयारी करता है। इसके बाद सरकारें उचित मूल्यों पर फ़सल खरीदती भी नही हैं बाबासाहेब ने किसानों को बिचौलिओं से बचाने की बात भी कही थी। मगर दुर्भाग्य यह है कि सौ साल पहले भविष्य का खाका खींच दिए जाने के बाद भी आज हम इस दिशा में सक्रिय नहीं रहे। परिणामस्वरूप किसान आज सड़क से संसद तक आन्दोलन एवं आत्महत्या करने को मजबूर है।

एक्सीडेन्टल डेथ्स एण्ड सुसाइड इन इण्डिया 2015 के रिपोर्ट के अनुसार ऋण दिवालियापन एवं कृषि सम्बन्धी समस्या आत्महत्या की मुख्य समस्या है। 38 प्रतिशत किसानों ने आत्महत्या कृषि ऋण एवं दिवालियापन के कारण अर्थात् 8007 किसानों में से 3097 किसानों ने आत्महत्या किया है, तथा 19.5 प्रतिशत किसानों ने कृषि सम्बन्धित समस्याओं के कारण आत्महत्या की है। जबकि 2014 के रिपोर्ट के अनुसार कृषि ऋण एवं दिवालियापन एवं पारिवारिक समस्याओं को लेकर 21.5 एवं 20 प्रतिशत किसानों ने आत्महत्या की हैं।

उपर्युक्त वर्णित आंकड़े यह दर्शाते है कि भारतीय कृषक राजनैतिक कारणों से सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं का सामना कर रहे हैं।

—f"k _.k ekQh ;kstuk leL;k dk lek/kku ugh

भारत में प्रसंस्करण के लिए भी कोई पर्याप्त नीति एवं व्यवस्था उपलब्ध नहीं है। देश में शीतगृहों की हालात अच्छी नहीं है, 2007 में केन्द्र सरकार ने कोल्ड चैन के विकास की स्थिति और सुधार के उपाय सुझाने के लिए टाम्क फोर्स का गठन किया था। टास्क फोर्स द्वारा सम्मिलित की गई रिपोर्ट के अनुसार देश के 80 प्रतिशत कुल उपलब्ध शीतगृहों में सिर्फ़ आलू रखने के काम आता है कुल उपलब्ध शीतगृहों में 90 प्रतिशत शीतगृह अमोनिया रेफ्रिजेशन की पुरानी तकनीक से चलती है।

एक रिपोर्ट के अनुसार डिब्बा बन्द खाद्य पदार्थ का उपभोग सलाना प्रति व्यक्ति केवल 24 किग्रा है जबकि विकसित देशों में कुल कृषि उपज का 90 प्रतिशत पैकेज होता है। भारत में यह अनुमान मात्र 6 प्रतिशत है। एक आकलन के मुताबिक यदि देश की कुल कृषि उपज का 60 प्रतिशत डिब्बा बन्द होने लगे तो किसानों की आय दुगुनी हो जाएगी। किसानों की समस्या के फौरी हल में सरकारें हमेशा किसान की बजाय उपभोक्ता के हितों को तरजीह देती है। किसी कृषि उपज का दाम बढ़ जाता है तो देश भर में हल्ला हो जाता है। और सरकार भी सक्रिय हो जाती है। जबकि किसान की उपज का दाम गिर जाए तो उससे किसान को ही निपटना पड़ता है। अभी देश में प्याज एवं टमाटर की स्थिति देखने लायक हैं भारत का किसान भी चाहता है कि सरकार उसे इस अनिश्चित्ता एवं असुरक्षा से मुक्ति दिलाए।

क़र्ज़माफ़ी से किसानों की समस्या का कोई स्थायी समाधान होता नही, उल्टे बैकिंग व्यवस्था पर बुरी मार पड़ती है जिसका खामियाज़ा पूरी अर्थव्यवस्था को भुगतना पड़ सकता है। वित्तमंत्री अरूण जेटली ने लोकसभा में प्रस्तुत आर्थिक सर्वे 2016–2017 पेश करते हुए उन्होंने कहा कि यदि सभी राज्यों में कृषि ऋण माफ़ी का यूपी मॉडल लागू किया गया तो इससे 2.2 से 2.7 लाख करोड़ रूपये का बोझ पड़ेगा। सर्वें में कहा गया है कि देश भर में कृषि ऋण माफ़ी होने से मांग में सकल घरेलू उत्पाद में कुल 0.7 प्रतिशत के बराबर की कमी आ सकती है। किसानों की स्थिति सुधारना है तो सरकार

को एग्रो इडस्ट्री क्षेत्र में कुछ बड़े कदम उठाने होंगे। 2016–17 के केन्द्रीय बजट में सरकार ने इस क्षेत्र में आटोमेटिक कट से 100 प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) की इजाजत दे ही है। लेकिन जब तक सरकारी एवं निजी निवेश नहीं बढ़ता, स्थिति में कोई बड़ा बदलाव होना मुश्किल हैं इसलिए बड़े पैमाने पर किसानों को वैकल्पिक रोजग़ार एवं कृषि क्षेत्र में सुधार की आवश्यकता है। जिसमें किसानों को आत्महत्या पर रोक लगायी जा सके।

खाद्य प्रसंस्करण के सम्बन्ध में हाल ही में भारत सरकार की केन्द्रीय मत्रिमण डल ने प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में 3 मई 2017 को एक नई क्षेत्रीय योजना। ''सम्पदा (SAMPADA)= योजना फॉर एगरो मैरीन प्रोसेसिंग एण्ड डेवलपमेंट ऑफ एगरो प्रोसेसिगं क्लस्टर) को मंजूरी दी है। जो कि स्वागत योग्य कदम है। जिसमें कृषि क्षेत्र में खाद्य प्रसंस्करण को और मज़बूती मिलेगी कृषि समुद्री प्रसंस्करण (Agro Marine Processing) व कृषि प्रसंस्करण (Agro Processing) के विकास के उद्देश्य से शुरू की जाने वाले इस योजना के लिए 14वें वित्त आयोग के चक्र के साथ ही 2016–2020 की अवधि के लिए मंजूरी दी गई है। इस योजनाका उद्देश्य कृषि को पूरक बनाना, प्रसंस्करण का आधुनिकीकरण करना तथा कृषि अपशिष्ट को कम करना है। रूपया 600 करोड़ के आवंटन की साथ शुरू की जाने वाली इस योजना से रूपया 31400 करोड़ का निवेश आकर्षित होने की सम्भावना है, जिसमें रूपया 104125 करोड़ के 334 लाख टन कृषिगत उत्पादों का निपटान हो सकेगा तथा 2019–2020 तक लगभग 20 लाख किसान इससे लाभान्वित होंगे तथा रोजग़ार के 5.30 लाख अवसर अप्रत्यक्षत/ प्रत्यक्षत इससे सृजित हो सकेंगे। बीते तीन वर्षों में केन्द्र की मौजूदा सरकार ने कृषि एवं किसानों की दशा सुधारने के लिए कई कदम उठाए है। जैसे कि फ़सल बीमा योजना मृदा स्वास्थ्य कार्ड, नीम लेपित यूरिया तथा बैंक खातों में बीज उर्वरक आदि की सब्सिडी मुहैया कराना।

इन कार्यो के अतिरिक्त केन्द्र सरकार एवं राज्य दोनों सरकारों को मिलकर कृषि एवं किसानों के लिए मिलकर ऐसे उपाय करने होंगे जिसमें किसान समृद्ध हो।

mi lgkj

अपने देश की अर्थव्यवस्था में तरह–तरह के विरोधाभास है। किसान अपनी उपज बढ़ाता है तो सूखे या किसी प्राकृतिक आपदा के समय से भी ज़्यादा दुर्गति को प्राप्त होता है। ज़्यादा उपज से निपटने की न तो उसके पास कोई उपाय है और न ही सरकार के पास सरकार समर्थन मूल्य बढ़ा देती है पर किसान की पूरी उपज खरीदने का उसके पास साधन नहीं है। ज़्यादा उपज के निर्यात पर प्रतिबंध और स्टाक की सीमा हटने में समय लगता है। स्टाक की सीमा बनी रहने से निजी व्यापारी ज़्यादा खरीद नहीं पाता और सरकार के पास भण्डारण की क्षमता नहीं है। अन्त में मारा किसान ही जाता है उदाहरण के तौर पर दालों की स्थिति देखने योग्य है। एक तरफ

भारत सरकार म्यांमार, तंजानिया, मोजाम्बिक आदि देशों से दाल का आयात कर रहा है तो दूसरी तरफ भारत में दाल का रिकॉर्ड उत्पादन हुआ है जिसमें किसानों को फ़सल, का न्यूनतम समर्थन मूल्य भी नही मिल रहा है।

किसानों का क़र्ज़ माफ़ करना कैंसर के मरीज को दर्द की गोली देने से अधिक कुछ भी नही हैं। मूल कारण पर जाना होगा और वह यह है कि खेती अलाभकर बनी हुयी है, किसानों की क्षमता बढ़ाने फ़सलों का सही मूल्य दिलाने, सस्ते दर पर क़र्ज़ मुहैया कराने, कृषि उत्पादों का उचित निर्यात नीति बनाने, कृषि को आधुनिक बनाने एवं फ़सलों की बीमा योजनाओं का सही क्रियान्वयन करना होगा, ताकि भारत का किसान अमानवीय जीवन जीने एवं आत्महत्या करने को मजबूर न हो सके।

अतः अन्त में यह कहा जा सकता है कि अब तक जितना पैसा क़र्ज़माफी में गया है। उतना कृषि क्षेत्र में बुनियादी ढांचा खड़ा करने में लगता तो आज किसान की हालात बेहतर होती है। अतः किसानों की आत्महत्या रोकने के लिए क़र्ज़ माफ़ी न करके, उन्हें इस योग्य बनाना होगा जिसमें वे क़र्ज़ लौटा सकने योग्य बन सकें। सही अर्थों में भारत तभी समृद्ध होगा जब भारत का किसान समृद्ध होगा।

l UnHk l ph

[1]डॉ.टी.पी. त्रिपाठी, मानवाधिकार इलाहाबाद लॉ एजेन्सी पब्लिकेशन पृष्ठ संख्या 1

[2] भारतीय संविधान राज्यसूची का प्रविष्टि संख्या–14

[3] एन.के.सिंह, लोक लुभावन वादो के बुरे नतीजे दैनिक जागरण।

[4] एक्सीडेन्टल डेथ्स एण्ड सुसाइड इन इण्डिया 2015 पृ.264

[5] 1876 यू.एस. 113

[6] AIR 1986 S.C. 180

[7] 1987 Cr.L.J. 743

[8] (1996) 2 S.C.C. 649

[9] AIR 1980 S.C. 470

[10] राजनाथ सूर्य, मुफ्तखोरी की बढ़ती परिपाटी दैनिक जागरण।

[11] प्रदीप सिंह, क़र्ज़ के बजाय लक्षण का उपचार, दैनिक जागरण।

[12] एक्सीडेन्टल डेथ्स एण्ड सुसाइड इन इण्डिया 2015 पृ.268

[13] कृषि मंत्रालय द्वारा जारी रिपोर्ट के अनुसार।09–05–2017

[14] एक्सीडेन्टल डेथ्स एण्ड सुसाइड इन इण्डिया 2015 पृ. 268

[15] कृषि मंत्रालय द्वारा जारी रिपोर्ट के अनुसार–09–05–2017

[16] एक्सीडेन्टल डेथ्स एण्ड सुसाइड इन इण्डिया 2015

[17] एक्सीडेन्टल डेथ्स एण्ड सुसाइड इन इण्डिया 2013

[18] एक्सीडेन्टल डेथ्स एण्ड सुसाइड इन इण्डिया 2014

[19] एक्सीडेन्टल डेथ्स एण्ड सुसाइड इन इण्डिया 2014 अध्याय–2ए, कृषि क्षेत्र में आत्महत्या

[21] प्रकाश अम्बेडकर, किसानों के भी हमर्दद थे अम्बेडकर, हिन्दुस्तान 14–4–2017

[22] एक्सीडेन्टल डेथ्स एण्ड सुसाइड इन इण्डिया 2015

[23] लोकसभा में प्रस्तुत आर्थिक सर्वे 2016–2017

[24] लोकसभा में प्रस्तुत आर्थिक सर्वे 2016–2017

Û Û Û

fdlkuksa dh vkRegR;k % ,d fo'ys"k.k

,l- ,e- >joky•

मानव अधिकार मनुष्य के समग्र विकास के लिए एक आवश्यक अस्त्र है। मानव अधिकारों की प्रासंगिकता आज इसलिए भी बढ गई है कि अनेक कारणों से व्यक्ति के जीवन में असुरक्षा की भावना बढ गई है। यही कारण है कि पिछले कुछ वर्षो में अप्राकृतिक मौतें बड़े पैमाने पर होने लगी हैं। भारत में मानव अधिकारों के प्रति प्रतिबद्धता स्पष्ट रूप से दिखती है। संविधान निर्माताओं की निगाह में बुनियादी मानव अधिकारों के बिना स्वतन्त्रता का कोई अर्थ नही था। इसीलिए व्यक्ति के मूल अधिकारों को वैघानिक दर्जा दिया गया। लेकिन दुर्भाग्य से भारत आज भी मानव अधिकारों की दृष्टि से पिछड़ा हुआ है।

1. ekuo vf/kdkj o fdlku

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर, 10 दिसम्बर, 1948 को यूनाइटेड नेशन्स की जनरल असेम्बली ने मानव अधिकारों को स्वीकृति व घोषित किया। इस घोषणा में यद्यपि किसानों का विशेष रूप से जिक्र नहीं है लेकिन बहुत से अनुच्छेदों में मानव अधिकारों का जो उल्लेख किया गया है वे किसानों पर लागू होते हैं। जिस तरह से भारत के विभिन्न राज्यों में किसान आत्महत्या कर कर रहे हैं वो यह दर्शाता है कि उनके जीवन व वैयक्तिक सुरक्षा के अधिकार का हनन हो रहा है। (अनुच्छेद–3) जिन किसानों ने बैंको से या सरकारी संस्थाओं या प्राईवेट व्यक्तियों से ऋण लिया है और चुकाने में असमर्थ होते हैं तो ऐसे किसानों को अमानुषिक व अपमानजनक व्यवहार का सामना करना पड़ता है। (अनुच्छेद–5) ऐसे किसानों को उनके सम्मान व ख्याति पर आक्षेप का डर सताने लगता है। (अनुच्छेद–12) इस घोषणा–पत्र के अनुच्छेद–25 में यह भी स्पष्ट रूप से बताया गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को ऐसे जीवन–स्तर को प्राप्त करने का अधिकार है जो उसे व उस के परिवार के स्वास्थ्य एवं कल्याण के लिए पर्याप्त हो। इस के अन्तर्गत खाना, कपड़ा, मकान, चिकित्सा सम्बन्धी सुविधायें और आवश्यक सामाजिक सेवाएं सम्मिलित हैं। सभी को बेकारी, बीमारी, असमर्थता, वैधव्य, बुढापे या अन्य किसी परिस्थिति में आजीविका का साधन होने पर जो उसके काबू के बाहर हो, सुरक्षा का अधिकार प्राप्त है। यह सारे किसान परिवारों के लिए भी लागू है।

भारत सरकार की ओर से मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 में बना। इसके तहत राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग मानव अधिकार हनन के मामलों को लगातार देखता है, उनका संज्ञान लेकर समय–समय पर कार्यवाही भी करता है। उदाहरण के लिए अप्रैल व मार्च, 2017 के ''ह्यूमन राइट्स'' समाचार पत्रों के अनुसार ज़्यादातर मामले पुलिस हिरासत में मौत, क़ानूनी कार्यवाही करने में विफलता, केन्द्र व राज्य

• कुलाधिपति, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म.प्र.)

सरकार के अधिकारियों द्वारा निष्क्रियता, अवैध गिरफ़्तारी, सत्ता का दुरूपयोग, अपहरण व बलात्कार व एससी व एसटी व्यक्तियों पर अत्याचार, तथा सरकारी अस्पतालों व प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों में अनयमितताओं से सम्बन्धित हैं। लेकिन देश में जिस तरह से किसान आत्महत्या कर रहे हैं वह भी मानव अधिकारों के हनन का एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा है उसका संज्ञान या तो लिया ही नहीं गया है या इसको बहुत ही कम महत्त्व दिया गया है।

2. vkRegR;kvksa dh fLFkfr

किसानों द्वारा आत्महत्या के मामले बहुत ही विभत्स रूप धारण कर रहे है और ऐसे मामलों का संज्ञान राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को केन्द्र स्तर पर व राज्य मानव अधिकार आयोगों को राज्य–स्तर पर प्राथमिकता के आधार पर लेने की ज़रूरत है। कैसी विकट परिस्थिति है, इसका अनुमान निम्न विवरण से लगाया जा सकता है। राष्ट्रीय अभिलेख अपराध ब्यूरों (NCRB) प्रतिवर्ष दुर्घटना से होने वाली मौतें व आत्महत्याओं के आंकड़े प्रलेखित करता है। इस के अनुसार कृषि क्षेत्र में स्वरोजग़ार में लगे लोगों में से 2015 तक आत्महत्याओं का विवरण निम्न सारिणी में दिया हैः

lkfj.kh & 1 & 2001 ls 2005 rd vkRegR;k djus okyksa dh la[;k

o"kZ	vkRegR;k djus okys O;fDr;ksa dh la[;k ¼fdlku o —f"k etnwj½
2001	16415
2002	17971
2003	17164
2004	18241
2005	17131
2006	17060
2007	16632
2008	16196
2009	17368
2010	15964
2011	14027
2012	13754
2013	11772
2014	12360
2015	12602

NCRB की सन् 2014 की रिपोर्ट के अनुसार देश में 12360 किसानों व कृषि श्रमिकों ने आत्महत्या की जिनमें से 5650 किसान थे। इन में से 89 प्रतिशत आत्महत्यायें केवल 9 राज्यों में हुयी। ये राज्य है : महाराष्ट्र (4004), तेलंगाना (1347), मध्य प्रदेश (1198), तमिलनाडू (895), केरल (807), कर्नाटक (768), छत्तीसगढ़ (755), आन्ध्रप्रेदश (632) व गुज़रात (600)। इसी तरह सन् 2015 की रिपोर्ट के अनुसार देश में 12602 किसान व कृषि श्रमिकों ने आत्महत्या की जिनमें से 92.4 प्रतिशत आत्महत्याएं केवल 9 राज्यों में हुयी। ये राज्य है : महाराष्ट्र (4291), कर्नाटक (1569), तेलंगाना (1400), मध्य प्रदेश (1290), छत्तीसगढ़ (954), आन्ध्रप्रेदश (916) तमिलनाडु (606), उत्तर प्रदेश (324), व गुज़रात (301)। इन राज्यों में किसानों द्वारा आत्महत्याओं की तुलनात्मक स्थिति निम्न सारिणी में दी गई है। इस संदर्भ में किसानों द्वारा तथा कृषि श्रमिकों द्व ारा की गई आत्महत्याओं की राज्यवार स्थिति में दी गई है। (Annex-I)

lkfj.kh & 2 & eq[; jkT;ksa esa fdlkuksa }kjk vkRegR;kvksa dh fLFkfr

jkT;	2014	2015
महाराष्ट्र	2568	3030
तेलंगाना	898	1358
मध्य प्रदेश	826	581
छत्तीसगढ़	443	854
कर्नाटक	321	1197
आन्ध्रप्रेदश	160	516
तमिलनाडु	68	2
केरल	107	3
गुजरात	45	57
उत्तर प्रदेश	63	145
कुल	5499 (97.32 %)	7743 (96.70 %)
देश में किसानों द्वारा कुल आत्महत्याएं	5650	8007

3. fdlkuksa }kjk vkRegR;kvksa ds dkj.k

राष्ट्रीय अभिलेख अपराध ब्यूरों (NCRB) की 2015 की रिपोर्ट के अनुसार किसानों द्वारा आत्महत्या का मुख्य कारण उनका दिवालिया होना व ऋणग्रस्तता है। इस के अतिरिक्त कृषि सम्बन्धित मामले भी एक अन्य मुख्य कारण हैं। निम्न सारिणी में इन कारणों को संक्षिप्त रूप से दिखाया गया है।

lkfj.kh & 3 & fdlkuksa }kjk vkRegR;k ds eq[; dkj.k &2015

Ø-l-	dkj.k	vkRegR;kvksa dh la[;k
1	गरीबी	92 (1.1 %)
2	सम्पत्ति का झगड़ा	86 (1.1 %)
3	शादी सम्बन्धित मामले	157 (2.0 %)
4	पारिवारिक समस्या	933 (11.7 %)
5	कृषि सम्बन्धित समस्या	1562 (19.5 %)
6	बीमारी	842 (10.5 %)
7	शराब की लत	330 (4.1 %)
8	समाज में इज़्ज़त में कमी	11 (0.1 %)
9	दिवालिया व ऋणग्रस्तता	3097 (38.7 %)
10	कारण पता नहीं	334 (4.2 %)
11	अन्य कारण	563 (7.0 %)
	कुल	8007 (100 %)

उक्त सारिणी में दिए तथ्यों से स्पष्ट है कि करीब 70 प्रतिशत आत्महत्याएं मानव अधिकारों के हनन के दायरे में आती है। NCRB के इन आंकड़ों के अतिरिक्त, कृषि व ग्रामीण विकास के लिए राष्ट्रीय बैंक (NABARD) ने भी महाराष्ट्र के मराठवाड़ा व विदर्भ क्षेत्र, जहाँ किसानों द्वारा आत्महत्याएं काफ़ी संख्या में होती हैं, के लिए एक अध्ययन किया। यह अध्ययन वित्त पर संसदीय स्थायी समिति ने करवाया था जिसमें मराठवाड़ा के पांच जिले (परभनी, बीड़, उस्मानाबाद, नांदेड़ व औरंगाबाद) तथा विदर्भ क्षेत्र के पांच जिले (अकोला, अमरावती, बुल्डाना, वर्धा तथा यवतमाल) लिए गए थे। इन जिलों से 213 कृषि परिवारों (108 मराठवाड़ा से व 105 परिवार विदर्भ क्षेत्र से) को जिन में आत्महत्या हुयी थी लिया गया व 48 दूसरे परिवार, जिनकी सामाजिक व आर्थिक परिस्थिति समान थी, लिए गए। साथ ही ग्राम व जिला स्तर के कर्मचारियों से भी बात की गई। निष्कर्ष यह निकाला गया कि इन परिवारों की कृषि से प्रति परिवार वार्षिक आय बाकी परिवारों से कम थी (41335 रू. प्रतिवर्ष) तथा गैर कृषि कार्यों से आय तो और भी कम थी (16000 रू. प्रतिवर्ष) इस तरह से प्रतिमाह आय केवल 4777 रू. ही थी। इन परिवारों का औसत प्रति परिवार ऋण 1,18,625 रू. था। मुख्य समस्या फ़सल में नुकसान (90 प्रतिशत), ऋण चुकाने में असमर्थता (65 प्रतिशत), स्वास्थ्य सेवाओं पर खर्चा (70 प्रतिशत) व अन्य आए के स्त्रोतों की कमी (57 प्रतिशत) बताया गया। इनके साथ फ़सल बीमा की राशि न मिलना व कुछ परिवारों को अपना गहना, ज़मीन व पशु भी बेचने पड़े। अध्ययन के तीन वर्षों में वर्षा की कमी भी रही जिससे उन की कपास की

फ़सल को काफ़ी नुकसान हुआ। इसलिए ऐसी आत्महत्याओं का संज्ञान राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को लेना चाहिए जिससे राज्य सरकारों एवं अन्य सम्बन्धित संस्थानों द्वारा उपयुक्त कदम उठाए जाय और उनको प्रभावी ढंग से लागू किया जाय।

4. jkT; ljdkjk }kjk mBk, x, dne

ऐसा नहीं है कि सरकार ऐसे मामलों में मूक दर्शक बनी रही है। कृषि व कृषि ऋणग्रस्तता राज्य का विषय हैं। इस के अतिरिक्त केन्द्र सरकार उचित नीति व बजट प्रावधानों द्वारा राज्यों की मदद करती है। उपलब्ध सूचना के आधार पर कई राज्यों ने इस दिशा में विभिन्न कदम उठाए हैं। जिनका ब्यौरा इस तरह से है।

(4.1) महाराष्ट्र सरकार मृत किसान के परिवार को एक लाख रूपये एक्स–ग्रेसिया मदद के रूप में देती है। यह मदद फ़सल खराब होने की स्थिति में या ऋणग्रस्तता या कृषि सम्बन्धी ऋण न चुका पाने की स्थिति में दी जाती है।

(4.2) पंजाब सरकार ने ऐसी मदद देने के लिए एक समिति का गठन किया है जो कि पीड़ित परिवार को तीन लाख रूपये की मदद उपलब्ध कराती है। साथ ही ऋण से मुक्ति दिलाने के लिए सरकार ने ''पंजाब कृषि ऋण–ग्रस्तता बिल'' भी तैयार किया है जिससे किसानों को ऋण से मुक्ति दिलाई जा सके।

(4.3) आन्ध्रप्रदेश में पीड़ित परिवार को पांच लाख रूपये की मदद देने का प्रावधान किया गया है। इसमें से 1.50 लाख रूपये ऋण चुकाने के लिए तथा 3.50 लाख रूपये परिवार पुनर्वास के लिए दिए जाते हैं।

(4.4) तेलंगाना सरकार ने भी वित्तीय मदद की राशि को एक लाख रूपये से बढ़ा कर पांच लाख रूपये कर दिया है। यह राशि पीड़ित परिवार के पुनर्वास के लिए दी जाती है। इसके अतिरिक्त एक मुश्त ऋण चुकाने के लिए पीड़ित परिवार को 50 हजार रूपये से बढ़ाकर एक लाख रूपये दिया जाता है।

(4.5) कर्नाटक में सन् 2003–04 से 2014–15 तक पीड़ित परिवारों को एक लाख रूपये दिए जाते थे। इसे बढ़ाकर 01.04.2015 से पाँच लाख रूपये कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त पीड़ित परिवार के बच्चों को पोस्ट–ग्रेज्यूएट स्तर तक निःशुल्क शिक्षा का भी प्रावधान करने के अतिरिक्त होस्टल सुविधायें भी उपलब्ध कराई जाती हैं।

बाकी राज्यों में जैसे मधप्रदेश, छत्तीसगढ़, तमिलनाडू, केरल, गुज़रात, उत्तर प्रदेश जहाँ के किसानों द्वारा आत्महत्याओं की संख्या ज़्यादा है, क्या मदद दी जाती है, उसका ब्योरा उपलब्ध नहीं है। इसलिए यह आवश्यक है कि भारत सरकार का कृषि मंत्रालय इस तरह का ब्योरा एकत्रित करे एवं राज्यों को आवश्यक दिशा–निर्देश दे। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग भी ऐसे मामलों पर समय–समय पर संज्ञान लेकर आवश्यक कार्यवाही करे तो इस तरह की परिस्थिति से प्रभावी ढंग से निपटने में मदद मिल सकती है।

5. dUn ljdkj }kjk mBk, x, dne

जहाँ तक इस दिशा में केन्द्र सरकार द्वारा प्रयासों का प्रश्न है, सरकार ने कई कदम उठाए हैं। यह माना गया है कि कृषि व्यवसाय को लाभदायी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि कृषि लागतों में कमी लायी जाए, प्रति इकाई उपज बढ़ाई जाय तथा किसानों को उनके उत्पाद के लिए उचित क़ीमत मिले। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कृषि मंत्रालय बहुत–सी योजनाएं चला रहा है। राष्ट्रीय किसान नीति (2007) को लागू किया जा रहा है जिसका मुख्य उद्देश्य किसानों की आय में वृद्धि करना है। किसानों की वार्षिक आय को दुगना करने के लिए एक व्यूह रचना बनाई जा रही है। इसके अतिरिक्त प्रतिवर्ष कृषि–ऋण की उपलब्धता में वृद्धि की गई है सन् 2014–15 में 8.45 लाख करोड़ रूपये का ऋण उपलब्ध कराया गया जो 2015–16 के लिए 9 लाख करोड़ रूपये के ऋण का लक्ष्य रखा गया। 2017–18 के बजट में इस लक्ष्य को 10 लाख करोड़ रूपये किया गया है। इसी के साथ ही किसानों को ब्याज दर में छूट का प्रावधान भी किया गया है। सामान्य तौर से किसानों से 3 लाख रूपये तक के ऋण पर 7 प्रतिशत व्याज लिया जाता है लेकिन जो किसान ऋण का भुगतान समय पर करते है उन को 3 प्रतिशत की छूट दी जाती है और इस तरह से प्रभावी ब्याज दर ऐसे किसानों के लिए 4 प्रतिशत है। इस तरह की ब्याज में छूट छोटे व मध्यम किसानों के लिए फ़सल कटने के बाद तक भी दी जाती है जिससे वे अपनी फ़सल ठीक क़ीमत मिलने पर ही बेचें। प्राकृतिक आपदा की स्थिति में अगले एक वर्ष के लिए भी 7 प्रतिशत ब्याज दर ही ली जाती है। साथ ही किसनों को मृदा स्वास्थ्य कार्ड देना, नीम–कोटेड यूरिया उपलब्ध कराना, परम्परागत कृषि विकास योजना को लागू करना, प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना, राष्ट्रीय कृषि बाज़ार योजना आदि प्रारम्भ की गई है। इस के अतिरिक्त चुनी हुई फ़सलों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य उपलब्ध कराना, कुछ कृषि उत्पादों के लिए प्राइस सपोर्ट योजना चलाई जा रही है। बागवानी व प्लांटेशन फ़सलों के लिए ''मार्केट इंटरवेंशन स्कीम'' चलाई जा रही है। जहाँ तक उत्पादकता बढ़ाने का प्रश्न है, सरकार ने ''नेशनल फूड सीक्योरिटी मिशन'' कुछ चुनी हुयी फ़सलों के लिए चला रखा है। इसी तरह से तिलहन, आइल–पाम तथा बागवानी फ़सलों के लिए भी विशेष कार्यक्रम चलाये जा रहे है। एक राष्ट्रीय कृषि मंडी योजना (e-NAM) जुलाई 2015 में स्वीकृत की गई है। इसको 2015–16 से 2017–18 तक लागू कर दिया जाएगा। इस योजना को 14 अप्रेल, 2016 के दिन आठ राज्यों में प्रारम्भ किया गया है। ये राज्य हैं–गुजरात, तेलंगाना, राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश व झारखण्ड। इस के तहत देश में 585 मंडियों में ई–मार्केटिंग की सुविधा दी जाएगी। इस के तहत राज्य भर में एकल लाइसेंस वैध करना, मंडी शुल्क का एकल प्राप्ति केन्द्र स्थापित करना तथा मूल्य प्राप्ति प्रक्रिया के रूप में इलैक्ट्रॉनिक नीलामी का प्रावधान रखा गया है। इस योजना से यह अपेक्षा की गई है कि किसान को उपज का अच्छा दाम मिलेगा और उस को अपना उत्पाद बेचने के लिए भटकना नहीं पड़ेगा। इन कार्यक्रमों के अतिरिक्त बारिस की अधिकता या कमी के कारण जो नुकसान होता है उसकी भरपायी

के लिए ''प्रधानमंत्री फ़सल बीमा योजना'' लागू की गई है। इसके साथ ही कृषि के लिए आधारभूत ढाँचे को बनाने के लिए ''राष्ट्रीय कृषि विकास योजना'' चलाई जा रही है।

6. foeqnhdj.k d ckn e mBk, x, dne

8 नवम्बर, 2016 को भारत सरकार ने 500 रू. व 1000 रू. के नोट बन्द कर दिए। इससे इनका चलन बन्द हो गया। इससे पहले किसान नकद में ही अपनी आवश्यकता की वस्तुएं जैसे बीज, खाद व दैनिक उपभोग की वस्तुएं खरीदता था। किसानों को मंडी में व्यापारी भी नकदी में ही भुगतान करते थे। नवम्बर–दिसम्बर, के महीनों में ही रबी की फ़सलों की बुआई का वक्त था। निश्चित तौर पर इस नोट बन्दी से किसानों को काफ़ी परेशानी हुई। खाद, बीज व अन्य आवश्यक इनपुट्स उधार में लाना पड़ा जिससे किसानों पर ब्याज का भार भी बढ़ा। इस तरह की समस्या रबी की फ़सलों की कटाई के समय भी देखी गई। उनकी फ़सलों के दाम भी या तो उधार रहे या कम मिले। इससे निश्चित रूप से किसानों की आमदनी में कमी हुयी और उनको ऋण भुगतान में भी परेशानी हुई। इन सब समस्याओं को ध्यान में रखते हुए सरकार ने निम्न कदम उठाए :

किसानों को दो महीने (नवम्बर व दिसम्बर) के लिए सहकारी बैंकों से ऋण लेने पर ब्याज से छूट दी गई। इसके लिए 660.50 करोड़ रूपये का अतिरिक्त प्रावधान किया गया। 2017–18 के लिए NABARD को ब्याज में छूट देने के लिए 400 करोड़ रूपये का प्रावधान किया गया। जिसके आधार पर सहकारी बैंकों को 20,000 करोड़ रूपये का ऋण NABARD को 4.5 प्रतिशत ब्याज दर पर उपलब्ध करायेगा।

7. lkjk'k

उपर्युक्त सारी योजनाओं, कार्यक्रमों व अन्य उपायों के बावजूद किसानों द्वारा आत्महत्या का दौर रूक नहीं रहा। निःसन्देह इन्हें रोकने की आवश्यकता है जिसके लिए इन कार्यक्रमों व उपायों को प्रभावी रूप से लागू करने की आवश्यकता है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग आत्महत्याओं पर प्रभावी ढंग से नजर रखे व केन्द्र व राज्य सरकारों से समय–समय पर पूछताछ करे तथा उनकी निष्क्रियता के लिए उनको आवश्यक दिशा निर्देश देने के अलावा ऐसे परिवारों को समय पर आर्थिक मदद सुनिश्चित करवाएं।

इसके साथ ही इन आठ–नौ राज्यों में खास कर जहाँ आत्महत्याएं काफ़ी संख्या में होती हैं, यह सुनिश्चित करवाएं कि इन राज्यों में जो प्रति–परिवार मदद देने की नीति के अनुसार क्या पर्याप्त धन–राशि का प्रावधान किया गया है? ऐसा करने से यह सुनिश्चत करने में मदद मिलेगी कि प्रत्येक प्रभावित परिवार की समय पर सहायता की जा सके। आत्म हत्याओं की संख्या के अनुसार मोटे तौर पर यदि वित्तीय आवश्यकता का आकलन किया जाय तो राज्य सरकारों को पाँच लाख रूपयें प्रति परिवार के हिसाब

से अपने बजट में करीब 350 करोड़ रूपये का प्रावधान करना पड़ेगा। साथ ही इस के अतिरिक्त यदि कृषि मज़दूरों को भी मदद करनी है तो उपयुक्त प्रावधान करने की आवश्यकता है।

Annex-I

2014 o 2015 esa jkT;okj vkRe gR;kvksa dh fLFkfr

	2014			2015		
jkT;@ dsUnz 'kkflr izns'k	fdlku	—f"k	dqy	fdlku	—f"k	dqy
आन्ध्र प्रदेश	160	472	632	516	400	916
अरुणाचल प्रदेश	0	3	3	7	3	10
आसाम	21	38	59	84	54	138
बिहार	0	10	10	0	7	7
छत्तीसगढ़	443	312	755	854	100	954
गोवा	0	0	0	0	0	0
गुजरात	45	555	600	57	244	301
हरियाणा	14	105	119	28	134	162
हिमाचल प्रदेश	32	31	63	0	46	46
जम्मू और कश्मीर	12	25	37	0	21	21
झारखण्ड	0	4	4	0	21	21
कनार्टक	321	447	768	1197	372	1569
केरल	7	700	707	3	207	210
मध्य प्रदेश	826	372	1198	581	709	1290
महाराष्ट्र	2568	1436	4004	3030	1261	4291
मणिपुर	0	0	0	1	0	1
मेघालय	0	2	2	2	1	3
मिज़ोरम	0	5	5	0	1	1
नागालैण्ड	0	0	0	0	0	0
ओड़िशा	5	97	102	23	27	50

	2014			2015		
jkT;@ dsUnz 'kkflr izns'k	fdlku	—f"k	dqy	fdlku	—f"k	dqy
पंजाब	24	40	64	100	24	124
राजस्थान	0	373	373	3	73	76
सिक्किम	35	0	35	15	3	18
तमिलनाडु	68	827	895	2	604	606
तेलंगाना	898	449	1347	1358	42	1400
त्रिपुरा	0	32	32	1	48	49
उत्तर प्रदेश	63	129	192	145	179	324
उत्तराखण्ड	0	0	0	0	2	2
पश्चिम बंगाल	0	230	230	0	0	0
dqy ¼jkT;½	5642	6694	12336	8007	4583	**12590**
अण्डमान निकोबार द्वीप समूह	8	0	8	0	0	0
चण्डीगढ़	0	0	0	0	0	0
दादर नगर हेवली	0	0	0	0	0	0
दमन और दीव	0	0	0	0	0	0
दिल्ली	0	0	0	0	0	0
लक्ष्यद्वीप	0	0	0	0	0	0
पुद्दुचेरी	0	16	16	0	12	12
dqy ¼dsUnz 'kkflr izns'k½	8	16	24	0	12	**12**
dqy ¼leLr Hkkjr½	5650	6710	12360	8007	4595	**12602**

स्त्रोत : भारत में दुर्घटना मृत्यु और आत्महत्या रिपोर्ट, एनसीआरबी, गृह मंत्रालय

• • •

हर एक अधिकार का मतलब एक जिम्मेदारी है; हर एक अवसर एक उपकार और हर एक परिग्रह एक कर्तव्य है

– John D. Rockefeller

thou vfLrRo vkSj —"kd vkRegR;k

vfer dqekj fo'okl•

मुख्य शब्द – आत्महत्या, बैंक क़र्ज़, किसान, खेतिहर, सरकारी योजनाएं।

समकालीन परिदृश्य में सरकार व समाज के सामने यक्ष–प्रश्न है कि आख़िर कब तक मजबूर होकर, अन्नदाता किसान, सल्फास का जहर खाकर या फंदे से लटक कर आत्महत्या करता रहेगा? खेती को घाटे का सौदा मानकर लोग इससे विमुख होते रहेंगे। खेती किसी भी मुल्क के जिंदा रहने की बुनियाद होती है। जब बुनियाद ही नहीं बचेगी, तो ढांचा बिखर जाएगा। हम चाहे जितनी भी तरक्की कर लें, लेकिन किसानों की तरक्की किए बग़ैर सही मायने में देश खुशहाल नहीं हो सकता। हम यह सोचने को विवश हैं कि भारत में विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता के बावजूद भी किसान आत्महत्या कर रहे हैं? आख़िर कौन से कारक हैं जिससे कि कृषि करने में लागत और उत्पादन में अंतर का ग्राफ बड़ा हो गया? वर्तमान सरकार की योजनाएं किसानों के अनुकूल है या नहीं? किसानों की आत्महत्या के संदर्भ में इन प्रश्नों से रू+ब+रू होना जरूरी है।

प्रायः सभी उत्पादन का आधार कृषक है और कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। सभी व्यवस्थाएँ अर्थव्यवस्था से जुड़ी हैं। हालात यह है कि सभी व्यवस्थाएँ मज़बूत होती जा रही हैं और वैश्विक अर्थव्यवस्था के इस दौर में किसानी व्यवस्था ही हाशिए पर धकेल दी गई है। वर्तमान में करीब 70 फीसदी से ज़्यादा कृषि आधारित व्यवस्था मुनाफ़ा कमा रहे हैं लेकिन इस खाद्य श्रृंखला में किसान ही है जिसकी स्थिति अत्यंत दयनीय है। खेती मौत की फ़सल में बदल चुकी है, आंकड़े भयावह हैं। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) के ताजा आंकड़ों के अनुसार, किसानों की आत्महत्या के मामलों में 42 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है। लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाने वाला मीडिया भी किसान आत्महत्या को आम मानकर ख़बर नहीं बनाता, यह आज सफलता व लाभ के भँवर में ऐसा फँसा है कि उसे किसानों की आत्महत्या की ख़बरें महज एक हेडलाइन से ज़्यादा कुछ नहीं लगती। किसान, मज़दूर, कभी ख़बर के केंद्र में नहीं हैं। केंद्र में है तो राजनीति, नेता, कलाकार आदि की ख़बरें।

भारत में किसान आत्महत्या सन् 1990 के बाद पैदा हुई स्थिति है जिसमें प्रतिवर्ष दस हज़ार से अधिक किसान आत्महत्या की रपटें दर्ज़ की गई। मानसून की विफलता, सूखा, कीमतों में वृद्धि, ऋण का बोझ, बैंकों, महाजनों, बिचौलियों आदि के चक्र में फँसकर भारतीय किसानों ने आत्महत्याएँ की हैं। 1990 ई. में अंग्रेज़ी अखबार 'द हिंदू' के ग्रामीण मामलों के संवाददाता पी.साईंनाथ ने किसानों द्वारा नियमित आत्महत्याओं

• सहायक संपादक, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

की सूचना दी। आरंभ में ये ख़बरें महाराष्ट्र से आईं फिर आंध्रप्रदेश से शुरुआत में लगा कि अधिकांश आत्महत्याएँ महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र के कपास उत्पादक किसानों ने की है लेकिन महाराष्ट्र राज्य अपराध लेखा कार्यालय के अनुसार, यहाँ कपास सहित अन्य नकदी फ़सलों के किसानों की आत्महत्याओं की दर बहुत अधिक रही है। आत्महत्या करने वाले केवल छोटी जोत वाले किसान नहीं अपितु मध्यम और बड़े जोत वाले किसान भी थे। बाद के वर्षों में कृषि संकट के कारण महाराष्ट्र, कर्नाटक, केरल, आंध्रप्रदेश, पंजाब, मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ में भी किसानों ने आत्महत्याएँ की। आत्महत्या के सबसे ज़्यादा मामले महाराष्ट्र में सामने आए। 30 दिसंबर, 2016 को जारी एनसीआरबी की रिपोर्ट 'एक्सिडेंटल डेथ्स एंड सुसाइड इन इंडिया 2015 के मुताबिक वर्ष 2015 में कृषि क्षेत्र से जुड़े 12,602 लोगों ने आत्महत्या की (औसतन हर 41 मिनट में हमारे देश में कहीं न कहीं एक किसान आत्महत्या करता है), इनमें 8,007 किसान–उत्पादक थे जबकि 4,595 लोग कृषि संबंधी मज़दूर थे। 2015 में सबसे ज़्यादा 4,291 किसानों ने महाराष्ट्र में आत्महत्या की जबकि 1,569 आत्महत्याओं के साथ कर्नाटक इस मामले में दूसरे स्थान पर है। इसके बाद तेलंगाना (1400), मध्य प्रदेश (1,290), छत्तीसगढ़ (954), आंध्र प्रदेश (916) और तमिलनाडु (606) का स्थान आता है। वर्ष 1995 से 2015 के बीच के 21 वर्षों में देश के कुल 3,18,528 किसानों ने आत्महत्या की है। 2014 में आत्महत्या करने वाले किसानों की संख्या 12,360 और 2013 में 11,772 थी। मुख्य न्यायाधीश जस्टिस जेएस खेहर की अध्यक्षता में तीन जजों वाली एक बेंच किसानों की स्थिति और उसमें सुधार की कोशिशों से जुड़ी एक याचिका पर सुनवाई कर रही है। इसी के तहत सरकार ने ये आंकड़े पेश किए हैं। यह याचिका सिटीजन रिसोर्स एंड एक्शन इनीशिएटिव की तरफ से दायर की गई है। आम आदमी पार्टी की रैली के दौरान दिल्ली में सरेआम पेड़ से लटक कर अपनी जान देने वाले राजस्थान के एक किसान की मौत के बाद देश में किसानों की आत्महत्या का मामला सुर्खियों में आया और संसद में भी गूंजा। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कहा कि किसानों की समस्या की जड़ें बेहद गहरी हैं और इनके समाधान के लिए सामूहिक प्रयास जरूरी है।

वर्ष 1995 के बाद सर्वाधिक कृषक आत्महत्याएं सन् 2004 में हुई हैं। इस दौरान 18,241 किसानों ने आत्महत्याएं कीं। गौरतलब है कि भारत में यह उदारीकरण का चरम था। इसी से अतिप्रसन्न होकर एनडीए सरकार ने 'शाइनिंग इंडिया' का नारा दिया था और समय से पहले ही चुनाव मैदान में उतरने का फैसला कर लिया था। आज 1995 से अब तक देश भर में आत्महत्या करने वाले किसानों की कुल तादाद का सिलसिला रुक नहीं रहा है। विडम्बनापूर्ण बात यह है कि 29 राज्यों पर आधारित किसान आत्महत्या की संख्या में 61.52 प्रतिशत सिर्फ़ पांच राज्यों से हैं। इनमें अगर बीमारू राज्यों की श्रेणी में रखे जाने वाले मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़ को निकाल दिया जाए तो महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश (आज तेलंगाना और आंध्र प्रदेश) और कर्नाटक राज्य आगे बढ़े हुए राज्य माने जाते हैं। यहाँ यह गौर करने की बात है कि क्या किसान

आत्महत्या करने वाले राज्य में ही गरीबी है, अन्य राज्यों में नहीं है। जवाब सरल है कि संचार क्रांति की लहर समृद्ध प्रांतों में अधिक प्रभावकारी ढ़ंग से पहुँची है, यहाँ के लोगों की जीवन–शैली उपभोक्ता संस्कृति के ज़्यादा करीब है।

fdlku vkRegR;k ls lcls T;knk çHkkfor ikp jkT; %

वर्ष		आंध्र प्रदेश	कर्नाटक	मध्य प्रदेश एवं	इन राज्यों में कुल	भारत में प्रतिवर्ष किसानों की	पांच राज्यों में
1995	1083	1196	2490	1239	6008	10720	56.04
1996	1981	1706	2011	1809	7507	13729	54.68
1997	1917	1097	1832	2390	7236	13622	53.12
1998	2409	1813	1883	2278	8383	16015	52.34
1999	2423	1974	2379	2654	9430	16082	58.64
2000	3022	1525	2630	2660	9837	16603	59.25
2001	3536	1509	2505	2824	10374	16415	63.20
2002	3695	1896	2340	2578	10509	17971	58.48
2003	3836	1800	2678	2511	10825	17164	63.07
2004	4147	2666	1963	3033	11809	18241	64.74
2005	3926	2490	1883	2660	10959	17131	63.97
2006	4453	2607	1720	2858	11638	17060	68.22
2007	4238	1797	2135	2856	11026	16632	66.29
2008	3802	2105	1737	3152	10795	16196	66.66
2009	2872	2414	2282	3197	10765	17368	61.98
2010	3141	2525	2585	2363	10614	15964	66.49
2011	3337	2206	2100	1326	8969	14027	63.98
कुल	33752	20610	19083	23956	97401	149783	65.03
d|y 1995 &2011	53818	33326	37153	42388	166685	270940	61.52

स्रोत – राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) रिपोर्ट 1995–2011

भारत के पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र के बदहाल किसानों को राहत पैकेज देने की घोषणा करते हुए पत्रकारों से कहा था, 'विदर्भ के किसानों की समस्या हमारे लिए काफ़ी गंभीर विषय है। इसीलिए इस योजना के लागू होने की निगरानी मेरा कार्यालय खुद करेगा। हम इस बात का ध्यान रखेंगे कि जो वादे किए गए हैं, उन्हें पूरा किया जाए।' उन्होंने कहा था कि इस पैकेज से क्षेत्र के किसानों की आर्थिक स्थिति में तो सुधार होगा ही, साथ ही कर्ज़ का बोझ भी हल्का होगा किंतु विदर्भ में आत्महत्या के आकड़ें सरकारी योजनाओं और उनके क्रियान्वयन की पोल खोल के रख दे रहे हैं। महाराष्ट्र सरकार आत्महत्या करने वाले किसान के परिवार को 1 लाख का मुआवज़ा देती है। यह मुआवज़ा तीन शर्तों पर दिया जाता है। पहली, किसान के पास अपनी मिल्कियत की ज़मीन हो, दूसरी, आत्महत्या करते वक्त किसान क़र्ज़दार रहा हो और तीसरा, क़र्ज़दारी ही उसकी आत्महत्या का प्रधान कारण हो। इन तीन कारणों से आत्महत्या करने वाले कई किसानों के परिवार मुआवज़े से वंचित हुए। पितृसत्तात्मक समाज में अक्सर महिलाओं की गणना किसान आत्महत्या के आंकड़ों में नहीं की जाती क्योंकि उनके नाम से ज़मीन की मिल्कियत नहीं होती जबकि ज़मीन की मिल्कियत का होना किसान कहलाने के लिए सरकारी नीतियों और आंकड़ों में जरुरी है। ठीक इसी तरह आत्महत्या करने वाले दलित और आदिवासी किसानों के आंकड़े भी सरकारी आकलन में ठीक–ठीक पता नहीं किए जा सकते क्योंकि उनमें से ज़्यादातर के पास ज़मीन का स्वामित्व साबित करने वाले सक्षम दस्तावेज़ नहीं होते। नीची जाति के किसान और उनका परिवार ज़मीन की मिल्कियत के मामले में भी भेदभाव भरी नीतियों का शिकार होता है। जिन किसानों के पास अपनी ज़मीन की मिल्कियत नहीं होती उन्हें आधिकारिक तौर पर किसान नहीं माना जाता और परिवार के मुखिया की आत्महत्या की दशा में उसका परिवार किसान न माने जाने के कारण सरकारी मुआवज़े और राहत से वंचित हो जाता है।

इसके अतिरिक्त, किसान परिवार का मुखिया अगर आत्महत्या करता है तो इसका असर पूरे परिवार पर पड़ता है। क़र्ज़ की विरासत ढो रहे उसके परिवार का कोई अन्य सदस्य अगर आर्थिक तंगहाली की सूरत में आत्महत्या करे तो भी इसकी गणना सरकारी आंकड़े में नहीं होती। ठीक इसी तरह, एनसीआरबी के आंकड़े में बंटाईदारी पर खेती करने वाले किसानों की आत्महत्या, कृषक–आत्महत्या के रूप में दर्ज़ नहीं की जाती। आत्महत्या करने के उपरांत पुलिस विभाग द्वारा प्राथमिकी दर्ज़ की जाती है। पुलिस की परिभाषा के अनुसार किसान होने के लिए स्वयं की ज़मीन होना आवश्यक है और जो लोग दूसरे की खेती को किराए में लेकर करते हैं उन्हें किसानों की श्रेणी में नहीं रखा जाता है। यहाँ तक कि इसमें उन लोगों को भी शामिल नहीं किया गया है जो अपनी घर के खेतों को संभालते हैं लेकिन जिनके नाम में ज़मीन नहीं है। अगर किसी घर में पिताजी के नाम में सारी ज़मीन है लेकिन खेती की देखभाल उसका पुत्र करता है तो पिता को तो किसान का दर्जा मिलेगा लेकिन बेटे को पुलिस विभाग किसान की श्रेणी में नहीं रखता। पुलिस

विभाग द्वारा जिस तरह से मापदंड अपनाया गया है उस हिसाब से वास्तविक किसान द्वारा आत्महत्या की संख्या एनसीआरबी की संख्या से और भी ज़्यादा होगी।

कहा जा सकता है कि 'फार्मर स्यूसाइड, ह्यूमन राइटस् एंड द एग्रेरियन क्राइसिस इन इंडिया' के अनुसार, किसानों की आत्महत्या का एक पहलू जातिगत और लैंगिक भेदभाव से जुड़ा हुआ है। भारत में उदारीकरण की नीतियों के बाद खेती (खासकर नकदी खेती) का पैटर्न बदल चुका है। सामाजिक–आर्थिक बाधाओं के कारण 'नीची जाति' के किसानों के पास नकदी फ़सल उगाने लायक तकनीकी जानकारी का अक्सर अभाव होता है। संभवतः ऐसे किसानों पर बीटी–कॉटन आधारित कपास या फिर अन्य पूंजी–प्रधान नकदी फ़सलों की खेती से जुड़ी क़र्ज़दारी का असर बाकियों की तुलना में कहीं ज़्यादा होता हो और आत्महत्या करने के सिवाय उनके पास कोई चारा न बचता हो। भारत में सरकारी तौर पर मिल्कियत से वंचित किसानों की एक बड़ी तादाद (यथा महिला, दलित और आदिवासी) की है और भारत सरकार के एनसीआरबी के आंकड़े किसान–आत्महत्या की सामाजिक सच्चाइयों को छुपाते हैं, किसान–आत्महत्या से जुड़े जातिगत–लिंगगत भेदभाव के पहलू की तरफ ध्यान दिलाते हुए भारत सरकार से अपील की गई है कि वह अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार संधियों का हस्ताक्षरी होने के नाते इस मामले में रोकथाम, जांच और समाधान के लिए समुचित कदम उठाए।

यह निर्विवाद सत्य है कि करोड़ों भूमिपुत्र का जीविकोपार्जन खेती पर ही निर्भर है। विडंबना यह है कि सुबह से शाम खेती के लिए अपना जीवन होम करने वाले किसानों को पेट भरने के लिए दो जून की रोटी भी नसीब नहीं होती। कृषि उनके गले की फाँस बन गई है– जिसे अपनी प्रवृत्ति और मजबूरी के कारण न छोड़ पाते हैं न ही उसमें खुश रह पाते हैं। सरकार जनता को लुभाने के लिए ढ़ेर सारी योजनाएं बनाती है पर सच्चाई तो यह है कि न तो वह ज़मीनी हकीकत से जुड़ी है न ही किसानों की बुनियादी समस्याओं से। प्रश्न तो यह है कि संपूर्ण ग्रामीण रोजग़ार योजना, स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजग़ार योजना, मनरेगा, प्रधानमंत्री ग्रामोदय जैसी किसानोन्मुखी योजनाओं के बावजूद किसान क्यों आत्महत्या करने पर विवश हैं? इसका सीधा जवाब यह है कि ये योजनाएँ किसानों को ध्यान में रखकर बनाए ही नहीं गए। इसका सीधा लाभ बिचौलियों को मिलता है जिसमें कृषि के नाम पर ऋण देने वाला बैंक, सेठ, साहूकार, महाजन यहाँ तक कि पुलिस अधिकारी सभी शामिल हैं। सरकारी नीतियाँ, बैकों का रवैया, उद्योगपतियों की स्वार्थभावना, मौसम की प्रतिकूलता आदि कई ऐसे कारण हैं जिनकी वजह से किसानों के जीवन में दुखों का अंबार टूट पड़ता है और वे आत्महत्या करने के लिए विवश हो जाते हैं। 'गाँवों में मूलभूत सुविधाएँ आज़ादी के इतने वर्षों बाद भी नहीं पहुँची। भूमि, जो जीवन का एक मूलभूत संसाधन है आज भी, उस पर मूलतः सवर्णों और सामाजिक ढाँचे में तेज़ी से आगे बढ़ती कुछ पिछड़ी जातियों का कब्जा है। जिन राज्यों में जमींदारी प्रथा का उन्मूलन सही दिशा में हुआ, उनको छोड़ अधिकतर राज्यों में ज़मीन के बड़े हिस्से पर मुट्ठी भर किसानों का कब्जा है और

उनके नीचे हैं बेहद विपन्न या छोटे रकबे वाले किसान और फिर विशाल भूमिहीन मज़दूरों की फौज। विनोबा का भूदान हो या भूमिहीनों को ज़मीन का पट्टा देने का सरकारी प्रयास, अब तक विफल ही रहा है।

हाल में जो आंकड़े आए हैं उनमें इस बात का खुलासा भी हुआ है। तीस फीसद ग्रामीण आबादी भूमिहीन है। कभी ज़ोर–शोर से यह नारा लगाया जाता था कि 'जो ज़मीन को जोते बोए, वह ज़मीन का मालिक होए।' लेकिन यह नारा कभी ज़मीन पर उतर नहीं पाया। यह भी हकीकत है कि आदिवासियों को छोड़ छोटी जोत के मालिक अधिकतर किसान कब के खेती छोड़ दिहाड़ी मज़दूर बन चुके हैं क्योंकि खेती करना उनके बस का नहीं। उससे उनका पेट ही नहीं भरता। इसके अलावा वह अब महंगी भी हो चुकी है। खेती तो अब वैसे ही किसान करते हैं जिनके पास ज़मीन का अपेक्षाकृत बड़ा रकबा है और जो मज़दूर रखने और बीज, खाद, पानी, डीजल, बिजली आदि के खर्च उठा सकें। इसी सामाजिक–आर्थिक ढांचे में अवतरित होता है यह दर्शन कि कृषि तो अलाभकारी है और उसे लाभकारी बनाने के लिए उसका व्यवसायीकरण जरूरी है और यह होगा कैसे? ज़मीन की क्षमता का अधिकतम दोहन कर परंपरागत बीजों की जगह बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा आयातित बीज और रासायनिक खादों के इस्तेमाल से कीटनाशकों के बड़े पैमाने पर इस्तेमाल से। यह एक वास्तविकता है कि नए किस्म के बीजों और रासायनिक खादों, खासकर यूरिया के प्रयोग से उपज बढ़ी लेकिन खेती बेहद महंगी हो गई।

देश के बड़े भू–भाग में धान की खेती होती है। अपने देश में धान के बीजों के विविध प्रकार थे, किसान फ़सल का बीज अपने घर में बचा कर रखता था। लेकिन बाज़ार में उपलब्ध बीजों का प्रचलन होते ही पुराने बीजों का प्रचलन ख़त्म हो गया। घरेलू बीज और बाज़ार के बीज की क़ीमत में अंतर क्या है? बिहार, यूपी और झारखंड में धान दस रूपये किलो बिकता है जबकि बाज़ार का बीज 270–280 रूपये किलो। देशी बीज गोबर की खाद और अपेक्षाकृत कम पानी में भी फ़सल देते हैं जबकि बाज़ार के बीजों के लिए रासायनिक खाद, भरपूर पानी और कीटनाशक जरूरी है। फलस्वरूप उपज तो बढ़ी लेकिन बाज़ार पर निर्भरता भी। हुआ यह भी कि नकदी फ़सलों का प्रचलन बढ़ा और खाद्यान्न कम उगाने लगे। कपास, गन्ना जैसी नकदी फ़सलों की ओर किसान आकर्षित हुए। उसका परिणाम क्या हुआ, कपास के मामले में हम देख सकते हैं जिसे उपजाने वाले किसानों ने सर्वाधिक आत्महत्याएं कीं। कपास की उपज में वृद्धि के लिए बीटी कॉटन के नाम से एक नया बीज बाज़ार में उतारा गया। प्रचारित किया गया कि परंपरागत बीजों की तुलना में इससे तिगुनी फ़सल होती है। लेकिन ये बीज सामान्य बीजों से काफ़ी महंगे मूल्य पर उपलब्ध होते हैं। महंगे बीज के लिए महाजन से क़र्ज़ लिया। एक जांच समिति ने अपनी रिपोर्ट में 2012 में हुई अत्यधिक आत्महत्याओं की वजह नए बीटी बीजों को बताया। इसकी पुष्टि इस तथ्य से होती है कि पिछले कई वर्षों से विदर्भ और मराठवाड़ा से सर्वाधिक आत्महत्या की ख़बरें आ रही हैं, जहाँ के किसान कपास उगा रहे हैं।

सवाल यह है कि किसानों को कपास उगाने के लिए कहता कौन है? यह बाज़ार कहता है। बाज़ारवादी व्यवस्था अपने हिसाब से किसानों को फ़सल उगाने के लिए कहती है। उसके लिए तरह—तरह के प्रलोभन और क़र्ज़ देती है और किसान उनके झांसे में आ जाते हैं। फिर उनके हाथों में खेलने लगते हैं। क्योंकि उपज की क़ीमत भी बाज़ार तय करता है, फिर शुरू होती है सरकारी हस्तक्षेप की मांग। सरकार क़ीमत तय करे, समर्थन मूल्य घोषित करे, क़र्ज़ माफ़ करे, वगैरह। लेकिन समस्या जस की तस बनी रहती है। भारतीय किसान सदियों से बाढ़, सुखाड़, अनावृष्टि, अतिवृष्टि आदि से जूझता रहा है, लेकिन जिस तरह किसानों की आत्महत्याओं की ख़बर नब्बे के दशक से बड़े पैमाने पर आने लगी हैं, वैसा पहले नहीं था। तबाही पहले भी मचती थी। लेकिन आत्महत्या पर उतारू हो जाए किसान, यह हमारे दौर की एक परिघटना है। हम याद करें भारत में ब्रिटिशकाल के दौरान बंगाल में दो दशक के अंतराल पर पड़े अकाल को। लाखों लोग भूख से मर गए लेकिन आत्महत्या की घटनाएं उस वक्त भी विरल थीं। इसी देश में करीब अठारह—बीस करोड़ भूमिहीन दलित, अति पिछड़े मज़दूर हैं। उनके जीवन में यह मौका ही नहीं आता कि वे बैंक से क़र्ज़ लें, खेती करें, उनकी फ़सल नष्ट हो और वे आत्महत्या कर लें। इसका अर्थ यह नहीं कि हम किसानों की आत्महत्या से पीड़ा का अनुभव नहीं करते लेकिन इस बात को समझना तो होगा कि एक भूमिहीन किसान या मज़दूर आत्महत्या न कर जीवन से जद्दोजहद क्यों करता है और दस—बीस लाख की अचल संपत्ति का मालिक किसान एक खास मनोदशा में आत्महत्या क्यों कर लेता है? आत्महत्या के बजाय वह एक काम तो कर ही सकता है कि किसानी छोड़ कोई दूसरा काम कर ले या फिर भूमिहीन मज़दूर की तरह खट—खा लें। दरअसल आत्महत्याओं का कारण आर्थिक, समाजशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक है।

क्या यह महज इत्तफ़ाक है कि नरसिंह राव के जमाने में नई औद्योगिक नीति, उदारीकरण और निजीकरण के दौर के साथ किसानों की आत्महत्या की ख़बरें आनी शुरू हो गईं। शुरुआती दौर में तो इसे किसी ने तवज्जो नहीं दी, लेकिन धीरे—धीरे इन मौतों से आंख चुराना समाज के प्रभुत्वशाली वर्ग के लिए मुश्किल हो गया। दरअसल, नई आर्थिक नीति घोषित रूप से न सिर्फ़ उद्योगोन्मुख विकास की वकालत करती है, बल्कि ऐसा वातावरण भी बनाती है जिसमें मुनाफ़ा ही सब कुछ होता है। नब्बे के दशक में नई आर्थिक नीति लागू होने के बाद से ही लोगों ने खेती की तरफ से मुंह मोड़ लिया। गाँव छोड़कर शहर की ओर रुख किया। यह बात उभर कर आई कि देश में खुशहाली वित्तीय पूंजी और औद्योगिक विकास के जरिए ही संभव है। राजनीतिक पार्टियों के लिए भी कृषक एक बड़ा वोट बैंक है, इसलिए चुनावी मौकों पर उनकी बातें होती हैं। कभी—कभार उनके लिए नीतियां भी बनती हैं, पर सरकारों का फोकस उनसे दूर जा चुका है। कृषि संकट दूर करने के नाम पर किए जाने वाले उपायों का लाभ मुट्ठी भर बड़े किसानों को मिलता है। दिन पर दिन खस्ताहाल हो रहे छोटे किसानों की कहीं कोई सुनवाई नहीं है। इधर षासक वर्ग यह प्रचारित करने में जुट गया है

कि खेती फायदे का धंधा नहीं है, लिहाजा किसान थोड़ा–बहुत मुआवज़ा पकड़ें और अपनी ज़मीन छोड़ दें। इस क्रम में लाखों किसान दूसरे काम–धंधे में लग गए और जिन्हें कोई काम नहीं मिला, वे या तो बर्बाद हो गए या अपराध के रास्ते पर बढ़ चले। अभी बदलते मौसमों के रुझान और बड़ी ताकतों में ज़मीन हड़पने की ललक पर गौर करें तो खेती का यह संकट आगे कहीं ज़्यादा रफ्तार से बढ़ता दिखाई देता है।

आज कॉरपोरेट सेक्टर और सरकारों के बीच संबंध पहले से ज़्यादा मज़बूत हुए हैं। 1990 के आसपास से ही बाज़ारवादी शक्तियों को खुली छूट मिलने लगी। इन शक्तियों का एकमात्र उद्देश्य है–लाभ कमाना। हम उपभोक्तावादी सभ्यता के कदमताल में विदेशी पूंजी के आगे झुकते हैं, सब अमेरिकी छाता के नीचे नतमस्तक हैं, आख़िर क्यों? आज किसान को मज़दूर बनने और उन्हें निगल जाने के लिए कई अदृश्य ताकतें संगठित व एकजुट हैं। भारतीय किसान प्राकृतिक विपत्तियों व सामाजिक आत्तायी शक्तियों को सदैव झेलता रहता है। किसानों को मारने का सिलसिला केवल बढ़ा ही नहीं है अपितु स्थिति इतनी भयावह हो चुकी है कि वे सपरिवार आत्महत्या करने को विवश हो रहे हैं। सरकार किसानों के विकास के लिए कई योजनाएँ बनाकर उनके विकास के बारे में सोच रही है पर यहाँ यह कहना समीचीन होगा कि सरकार किसानों के लिए योजना तो बनाती है पर इसका लाभ खेतिहर उठा रहे हैं। आज खेतिहर से तात्पर्य है–बाज़ार के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उत्पादन करना। अर्थशास्त्र में दो शब्द हैं– 'किसान' (पेजेंट) और 'खेतिहर' (फॉर्मर)। यद्यपि आम बोलचाल में उनमें फर्क नहीं किया जाता फिर भी वे एक–दूसरे के उसी तरह पर्यायवाची नहीं हैं जैसे 'मूल्य' और 'कीमत'। किसी भी गंभीर और वैज्ञानिक विमर्श में इनमें अंतर करना बेहद जरूरी है। किसान मानव सभ्यता के साथ तब से जुड़ा है जबकि खेतिहर का आगमन पूँजीवादी उत्पादन अर्थात् बाज़ार में उत्पाद बेचकर मुनाफ़ा कमाने की प्रवृत्ति के हावी होने के साथ हुआ। साधारणतः किसान का अपनी जोत पर अधिकार होता है और वह अपने परिवार के सदस्यों या रिश्तेदारों के श्रम के आधार पर कृषि कार्य संपन्न करता है। उसके उत्पादन का उद्देश्य अपने परिवार की उपभोग–संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ मवेशियों का पालन व अगली बुवाई के लिए बीज का प्रबंध करना होता है जबकि उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशकों में पैसेवालों ने कृषि भूमि खरीदकर भाड़े के मज़दूरों के आधार पर बाज़ार के लिए उत्पादन करना शुरू किया। भ्रष्टाचारी ब्यूरोक्रेट्स, नौकरीपेशा व अन्य लोग अचल संपत्ति के रूप में ज़मीन खरीदकर जमींदार के रूप में समाज के समक्ष उभरे। आज़ादी के बाद भूमि सुधार क़ानूनों में छोड़े गए चोर–दरवाजों का इस्तेमाल कर अनेक पूर्व जमींदारों, ताल्लुकेदारों और जागीरदारों ने अपने को बड़े खेतिहरों में बदल दिया। छोटे, विशेषकर सीमांत किसानों ने खेती से गुज़ारा न होने की स्थिति में शहर का रुख किया और उनकी ज़मीन ले दूसरे खेतिहर बन गए। इन सब परिवर्तनों के फलस्वरूप किसान तेज़ी से लुप्त होने लगे और उनकी जगह खेतिहर आने लगे। प्रख्यात इतिहासकार एरिक हॉब्सबॉम ने अपनी पुस्तक 'ग्लोबलाइजशन, डेमोक्रेसी एंड टेररिज्म' में किसान के लुप्त होने और उसकी जगह

खेतिहर के आने की परिघटना का विश्लेषण करते हुए बतलाया है कि इंडोनेशिया में किसानों का अनुपात 67 प्रतिशत से 44, पाकिस्तान में 50 प्रतिशत से कम, तुर्की में 75 प्रतिशत से घटकर 33, फिलीपींस में 53 प्रतिशत से घटकर 37, थाईलैण्ड में 82 प्रतिशत से 46 और मलेशिया में 51 प्रतिशत से 18 प्रतिशत रह गया है। चीन की कुल आबादी में किसान 1950 में 86 प्रतिशत थे, जो 2006 में 50 प्रतिशत हो गए। बांग्लादेश, म्यानमार आदि में 60 प्रतिशत जनसंख्या किसानों की है। भारत में यह संख्या काफ़ी घट गई है जो कभी 80 प्रतिशत से अधिक थी। किसानगिरी की प्रतिशत्ता में कमी क्या सोचनीय प्रश्न नहीं है। यह हवाला दिया जाता रहा है कि हरित क्रांति के बाद किसानों ने फ़सलों की पैदावार कर खाद्यान्न में देश को आत्मानिर्भर बनाया है। हरित क्रांति ने हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, पंजाब, महाराष्ट्र, गुज़रात, आंध्रप्रदेश और कर्नाटक में किसानों को अपदस्थ कर खेतिहरों को बिठा दिया।

पिछले कुछ वर्षों से 'कॉंट्रेक्ट फॉर्मिंग' या ठेके पर खेती का धंधा शुरू हुआ है। जिसके तहत बड़ी कंपनियाँ कृषि क्षेत्र में आ गई हैं जो उत्पादन कर अपना प्रोसेसिंग का कारोबार कर अधिकांशतया डिब्बाबंद उत्पाद बाज़ार में लाते हैं। उत्तर प्रदेश व बिहार के गन्ना उत्पादक और विदर्भ के कपास उगाने वाले किसान नहीं खेतिहर हैं। यह तो सच है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों के मालिकान खेतिहरों को पूँजी व उपकरण मुहैया कराकर उत्पादन पर भी कब्जा करने में जुट गए हैं। वे उत्पाद माल पर अपना रैपर डाल कर बाज़ार में उतारती है और मोटे दामों में बेचती है। वालस्ट्रीट जर्नल (10 जून 2009) में छपी एक रिपोर्ट के अनुसार, बहुराष्ट्रीय निगमों ने अपने माल बेचने के लिए दूरदराज के ऐसे गाँवों में घुसना शुरू किया है जहां सड़क खस्ता हाल है, बिजली नदारद है और टेलीविजन एवं इंटरनेट की सुविधा का सवाल ही नहीं उठता। अखबार देर–सबेर आ जाता है। इस स्थिति को देखते हुए उन्होंने पुराने तरीकों का सहारा लिया है। गायक और कथावाचक युवकों को काम पर लगाया है जो गायन–वादन और किस्से–कहानियों के सहारे भीड़ जमा करते हैं और आधुनिक उपभोक्ता उत्पादों के बारे में बतलाते हैं, उनके गुणों का बखान करते और ग्रामवासियों को उनके फायदे बतला उन्हें खरीदने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। गाँवों के स्कूलों में जा वे छात्रों को नेस्ले के नूडल खिलाने के लिए प्रेरित करते हैं। यूनिलीवर के साबुन और क्रीम के साथ ही दंतमंजन और कंडोम का प्रचार करते और उनके नमूने मुफ्त बाँटते हैं। 'वालस्ट्रीट जर्नल' के एरिक बैल्लऔमैन के शब्दों में 'भयंकर भूमंडलीय मंदी से अछूते भारत के ग्रामीण उपभोक्ता अभूतपूर्व रूप से खर्च कर रहे हैं। अन्यत्र सिकुड़ते हुए बाज़ार के कारण होने वाली क्षति से बचने के उपाय ढूँढ़ने की उत्सुक अंतरराष्ट्रीय कंपनियाँ–विक्रेताओं की पूरी फौज भेज रही हैं। उत्पाद कंपनियाँ अपने माल को बाज़ार में खपाना जानती हैं और उसे पता है कि कैसे इनके पॉकेट से पैसा निकाला जा सकता है।

fu"d"k% आर्थिक उदारीकरण के बाद या यों कहें कि नब्बे के दशक के बाद से ही किसानों की आत्महत्या की दरें बढ़ती जा रही है। कृषक परिवार अपने परिजन को

खोने के बाद खेती से तौबा कर लेते हैं। उनके द्वारा की गई आत्महत्या स्विट्जरलैंड की मर्सी किलिंग नहीं बल्कि उन पर लादी गई व्यवस्था का बोझ है जो आत्महत्या के नाम पर उनकी हत्या कर रही है। तथाकथित विकास के नाम पर वैश्विकरण, हमारी कृषि नीति पर, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक ढाँचें पर सवाल खड़ा करता है, बाज़ार में कृषि उत्पादों की दलाली करने वाले मालामाल हैं, जबकि किसानों के हाथ खाली हैं। ये सामाजिक दस्तावेज़ एक चेतावनी है जिससे पता चलता है कि यदि हालात न बदले तो ऐसा समय भी आएगा जब दुनिया का हर आदमी उपभोक्ता होगा, वह अपने मनपसंद उत्पाद को खरीदने की कोई भी क़ीमत देने को तैयार होगा, पर पैदा करने, उपजाने वाला कोई न होगा। खेती को आर्थिक रूप से व्यावहारिक और टिकाऊ बनाने की चुनौती आज हमारे समक्ष है लेकिन 1995 के बाद आने वाली सभी सरकारें संकटग्रस्त कृषि क्षेत्र को मुश्किलों में राहत देने में विफल रही हैं। कृषि को बचाना है तो सिंचाई सुविधाओं को प्राथमिकता के आधार पर बढ़ाना होगा। पर्यावरण को बिगड़ने से बचाना होगा। विदेशी बीज, खाद, कीटनाशक की जगह थोड़ी पुरानी नजर आने वाली परंपरागत आत्मनिर्भर खेती की ओर लौटना होगा और इस तथ्य को समझना होगा कि खेती व्यवसाय के लिए नहीं, अपना और दूसरों का पेट भरने के लिए है, जीने की एक पद्धति है। खेती ही जीवन अस्तित्व का आधार है। अतएव जीवन अस्तित्व को बचाने के लिए किसानों की आत्महत्या को रोकना जरूरी है।

l nHk :

1. बहुवचन, संपादक : ए.अरविंदाक्षन, अंक 26–27 (संयुक्तांक), महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
2. https:èèhi.wikipedia.orgèwikiè
3. http:èèhindi.indiawaterportal.orgènodeè34289
4. http:èèhindi.cobrapost.comèindian-national-news-hindiència-report-on-farmers-suicideè50146
5. http:èèwww.mediafoÙkights.orgèpovertyèhindi-articlesè221
6. http:èèwww.allrights.co.inèmanavadhikar-sanghathan-ki-report-kisanè
7. http:èèwww.jansatta.comèpoliticsèfarmer-suicides-karnataka-police-karnataka-state-financiersè35675è
8. https:èèvishwahindijan.blogspot.inè2017è02èblog-post_27.html
9. http:èèjankritipatrika.inèread.php?artID=236

• • •

jktuhfr dk f'kdkj % Hkkjrh; fdlku

fnudj dqekj•

भारत में किसानों की आत्महत्याएं कितना संगीन मामला बन चुकी हैं, यह सरकार की तरफ से सुप्रीम कोर्ट को दिए गए आंकड़ों से साफ होता है. सरकार ने बताया है कि हर साल 12 हजार किसान आत्महत्या कर रहे हैं.सरकार 2013 से किसानों की आत्महत्या के आंकड़े जमा कर रही है. इसके मुताबिक हर साल 12 हजार किसान अपनी ज़िंदगी ख़त्म कर रहे हैं. क़र्ज़ में डूबे और खेती में हो रहे घाटे को किसान बर्दाश्त नहीं कर पा रहे हैं.

सरकार के अनुसार 2015 में कृषि क्षेत्र से जुड़े कुल 12,602 लोगों ने आत्महत्या की. इनमें 8,007 किसान–उत्पादक थे जबकि 4,595 लोग कृषि संबंधी श्रमिक के तौर पर काम कर रहे थे. 2015 में भारत में कुल 1,33,623 आत्महत्याओं में से अपनी जान लेने वाले 9.4 प्रतिशत किसान थे.

2015 में सबसे ज़्यादा 4,291 किसानों ने महाराष्ट्र में आत्महत्या की जबकि 1,569 आत्महत्याओं के साथ कर्नाटक इस मामले में दूसरे स्थान पर है. इसके बाद तेलंगाना (1400), मध्य प्रदेश (1,290), छत्तीसगढ़ (954), आंध्र प्रदेश (916) और तमिलनाडु (606) का स्थान आता है. 2014 में आत्महत्या करने वाले किसानों की संख्या 12,360 और 2013 में 11,772 थी. पिछले एक दशक के दौरान किसानों की आत्महत्या के हजारों मामले सामने आए हैं. अधिकतर किसानों ने कीटनाशक पीकर तो कुछ ने फांसी लगाकर अपनी जान दे दी. किसानों पर सबसे अधिक मार बेमौसम बारिश और सूखे से पड़ती है और कई बार दाम गिरने से भी इनकी कमाई पर असर पड़ता है.

किसानों की बदहाली की एक तस्वीर पिछले दिनों दिल्ली में भी दिखाई दी तमिलनाडु से आए किसानों ने अपने विरोध प्रदर्शन से तरीकों से सबका ध्यान खींचा.

सेंटर फॉर ह्यूमन राइटस् एंड ग्लोबल जस्टिस (सीएचआरजीजे) द्वारा जारी एक रिपोर्ट में आशंका व्यक्त की गई है कि खेतिहर संकट से जूझ रहे भारत में किसानों की आत्महत्या की समस्या को जातिगत और लैंगिक भेदभाव की सामाजिक सच्चाई और गंभीर बनाएगी क्योंकि भारत सरकार ने इस दिशा में समाधान के लिए ढांचागत बदलाव के कदम न उठाकर सिर्फ़ आर्थिक राहत देने की नीति अपनायी है जो अपर्याप्त साबित हो रही है.

एवरी थर्टी मिनट दृ फार्मर स्यूसाइड, ह्यूमन राइटस् एंड द एगरेरियान क्राइसिस इन इंडिया नामक इस दस्तावेज़ में कहा गया है कि किसानों की आत्महत्या का एक पहलू जातिगत और लैंगिक भेदभाव से जुड़ा हुआ है. भारत में उदारीकरण की नीतियों के बाद खेती (खासकर नकदी खेती) का पैटर्न बदल चुका है. सामाजिक–आर्थिक बाधाओं के कारण नीची जाति के किसानों के पास नकदी फ़सल उगाने लायक

• वरिष्ठ पत्रकार एवं लेखक, गुवाहाटी

तकनीकी जानकारी का अक्सर अभाव होता है और बहुत संभव है कि ऐसे किसानों पर बीटी–कॉटन आधारित कपास या फिर अन्य पूंजी–प्रधान नकदी फ़सलों की खेती से जुड़ी क़र्ज़दारी का असर बाकियों की तुलना में कहीं ज़्यादा होता हो.

रिपोर्ट के अनुसार नीची जाति के किसान और उनका परिवार ज़मीन की मिल्कियत के मामले में भी भेदभाव भरी नीतियों का शिकार होता है. जिन किसानों के पास अपनी ज़मीन की मिल्कियत नहीं होती उन्हें आधिकारिक आकलन में किसान नहीं माना जाता और परिवार के मुखिया की आत्महत्या की दशा में उसका परिवार किसान न माने जाने के कारण सरकारी मुआवज़े और राहत से वंचित हो जाता है. रिपोर्ट में यह कहते हुए कि भारत में तकनीकी तौर पर मिल्कियत से वंचित किसानों की एक बड़ी तादाद(मसलन महिला, दलित और आदिवासी) रहती है और भारत सरकार के नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो के आंकड़े किसान–आत्महत्या की सामाजिक सच्चाइयों को छुपाते हैं, किसान–आत्महत्या से जुड़े जातिगत–लिंगगत भेदभाव के पहलू की तरफ ध्यान दिलाते हुए भारत सरकार से अपील की गई है कि वह अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार संधियों का हस्ताक्षरी होने के नाते इस मामले में रोकथाम, जांच और समाधान के लिए समुचित कदम उठाये.

खेती–किसानी के संकट के बीच क़र्ज़दारी के कारण आत्महत्या करने वाले किसानों के परिवारों को सामाजिक भेदभाव के कारण सरकारी राहत योजनाओं का फायदा नहीं पहुंच पाता– इस तथ्य को रेखांकित करने के लिए रिपोर्ट में कई मिसालें दी गई हैं. इन्हीं मिसालों में एक है कलावती की कहानी. महिलाओं को भारत का पितृ प्रधान समाज ज़मीन का मालिक स्वीकार करने में भेदभाव से काम लेता है, और खेतिहर संकट के बीच इस भेदभाव के असर बड़े मारक हो सकते हैं, इस तथ्य की पुष्टि में रिपोर्ट में कहा गया है कि महाराष्ट्र सरकार आत्महत्या करने वाले किसान के परिवार को 1 लाख का मुआवज़ा देती है. यह मुआवज़ा तीन शर्तों के अधीन दिया जाता है. पहली शर्त यह कि किसान के पास अपनी मिल्कियत की ज़मीन हो, दूसरे कि आत्महत्या करते वक्त किसान क़र्ज़दार रहा हो और तीसरे कि क़र्ज़दारी ही उसकी आत्महत्या का प्रधान कारण हो. इन तीन कारणों से आत्महत्या करने वाले कई किसानों के परिवार मुआवज़े से वंचित हुए. कलावती बंदारकर की कहानी कुछ ऐसी ही है. साल 2007 में उसके किसान पति ने आत्महत्या की. कलावती नौ बच्चों की मां और पाँच बच्चों की दादी है. दूसरों के खेतों में मज़दूरी करने के अतिरिक्त वह 9 एकड़ की एक ज़मीन पर खेती–बाड़ी भी करती है. पति की मृत्यु के बाद कलावती को महाराष्ट्र सरकार ने मुआवज़ा नहीं दिया क्योंकि जिस 9 एकड़ ज़मीन पर यह परिवार खेती करता है, वह उनका अपना नहीं बल्कि पट्टे (लीज) पर लिया हुआ है.

fjikV d dN egÙoi.k v'k

1. आधिकारिक आकलन के अनुसार साल 2009 में कुल 17,638 किसानों ने आत्महत्या की यानी हर 30 मिनट पर एक किसान–आत्महत्या। यह आंकड़ा सच्चाई से थोड़ा दूर हो सकता है. अक्सर महिलाओं की गणना किसान–आत्महत्या के आंकड़ों में नहीं की जाती क्योंकि उनके नाम से ज़मीन की मिल्कियत नहीं होती जबकि

ज़मीन की मिल्कियत का होना किसान कहलाने के लिए सरकारी नीतियों और आंकड़ों में जरूरी है.

2. ठीक इसी तरह आत्महत्या करने वाले दलित और आदिवासी किसानों के आंकड़े भी सरकारी आकलन में ठीक–ठीक पता नहीं किए जा सकते क्योंकि उनमें से ज़्यादातर के पास ज़मीन की मिल्कियत साबित करने वाले सक्षम दस्तावेज़ नहीं होते. इसके अतिरिक्त किसान–परिवार का मुखिया अगर आत्महत्या करता है तो इसका असर पूरे परिवार पर पड़ता है. क़र्ज़ की विरासत ढो रहे उसके परिवार का कोई अन्य सदस्य अगर आर्थिक तंगहाली की सूरत में आत्महत्या करे तो भी इसकी गणना सरकारी आंकड़े में नहीं होती. ठीक इसी तरह नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो के आंकड़े में बंटाईदारी पर खेती करने वाले किसानों की आत्महत्या कृषक–आत्महत्या के रूप में दर्ज़ नहीं की जाती.

3. भारत सरकार ने इस संकट के समाधान के लिए क़र्ज़ से सीमित छुटकारा दिलाने की नीति अपनायी है. यह नीति संकट की व्यापकता और उसके अंतर्निहित कारण ों के समाधान में असफल रही है.

4. बरसों की निष्क्रियता के बाद किसान–आत्महत्या को लेकर समाधान की दिशा में राजनीतिक कदम केंद्र और राज्य स्तर पर उठाए गए. ये समाधान क़र्ज़माफी और मुआवज़े की रकम के रूप में थे. इन समाधानों का लक्ष्य था किसानों की आत्महत्या के सर्वाधिक संभावित कारण यानी क़र्ज़दारी से उन्हें छुटकारा दिलाना. लेकिन, चूंकि किसानी के संकट से जूझ रहे कई परिवार किसान की सरकारी परिभाषा से बाहर पड़ते हैं, इसलिए वे सरकार की राहत–योजना का लाभ पाने से वंचित रहे. जो सरकारी परिभाषा के अनुसार किसान थे, उनके लिए सरकारी मदद पर्याप्त साबित नहीं हो रही क्योंकि एक तो उनका क़र्ज़ सरकारी मदद से ज़्यादा है, दूसरे पारिवारिक सदस्य की आत्महत्या के बाद की स्थितियों में यह मदद खास कारगर नहीं हो पा रही.

5. सरकार की राहत नीति कारगर नहीं हो रही. किसान इस आशा में कि उनकी दुर्दशा देखकर सरकार नीतियाँ बदलेगी प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति तक को अपने सुसाइड नोट में इसका आग्रह कर रहे हैं. साल 2010 में महाराष्ट्र के विदर्भ इलाके में आत्महत्या करने वाले किसान रामचंद्र राऊत ने बड़ी क़ीमत चुकाकर सरकारी स्टांप पेपर खरीदा और लिखा कि दो साल लगातार फ़सल मारी गई तो भी बैंक के अधिकारी क़र्ज़ चुकाने के लिए बार–बार तंग कर रहे हैं, इसलिए मैं आत्महत्या कर रहा हूं.

6. भारत में खेती उदारीकरण की नीतियों के बाद गुज़रे दो दशक से वैश्विक बाज़ार की शक्तियों के असर में है. खेती का खर्चा बढ़ा है लेकिन किसान की आमदनी कम हुई है. छोटे किसान आर्थिक तंगहाली की सूरत में क़र्ज़ में पड़े हैं. जिस साल फ़सल मारी जाती है, उस साल उन्हें खेती की लागत भी वसूल नहीं हो पाती, क़र्ज़ चुका पाना मुश्किल होता है.

7. हर किसान आत्महत्या की अलग–अलग कहानी है. किसान की आत्महत्या के बाद पूरा परिवार उसके असर में आ जाता है. बच्चे स्कूल छोड़कर खेती–बाड़ी के कामों में हाथ बंटाने लगते हैं, परिवार को क़र्ज़ की विरासत मिलती है और इस बात की आशंका बढ़ जाती है कि बढ़े हुए पारिवारिक दबाव के बीच परिवार के कुछ अन्य सदस्य कहीं आत्महत्या न कर बैठें..

क्या किसान मजबूर हैं और खेती मजबूरी? यह प्रश्न आनेवाले दिनों में बहुत अहम होगा. फिलहाल पूरे देश में किसान उपहास के विषय से ज़्यादा कुछ नहीं हैं. समय के साथ बदले सामाजिक परिवेश में किसानों की हैसियत जहां बहुत दयनीय होती जा रही है, वहीं सरकारी नजरअंदाजी के चलते वे खुद को खेती से अलग करते जा रहे हैं. जहां खेती का घटता रकबा भी बड़ा सवाल है, वहीं बढ़ती लागत और घटते दाम से बदहाल किसान परेशान है. हालात कुछ यूं हैं कि खुद को खतरे में देख आत्महत्या तक को अंजाम दे रहे हैं!

लगता है किसान कहीं राजनीति का शिकार हैं, तो कहीं सरकारी लापरवाही के चलते आत्महत्या जैसे घातक फैसले लेने को मजबूर हैं. लेकिन, सवाल यही कि दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी आबादी वाला मुल्क खेती से मुंह मोड़ेगा, तो इसका पेट भरेगा कौन? हमें नहीं भूलना चाहिए कि यह वही मुल्क है जहां ''उत्तम खेती मध्यम बान, निषिद चाकरी भीख निदान'' का मुहावरा बोला जाता था और किसानों की बानगी ही कुछ अलग थी. समय के साथ सब कुछ बदल गया है. जहां नयी पीढ़ी खेती के बजाय शहरों का रुख कर मज़दूरी को बेहतर मानने लगी है, तो ज़मीन के मोह में गांव में पड़ा अकेला असहाय किसान कभी बारिश, तो कभी सूखे की मार झेल रहा है. वह कभी भरपूर फ़सल होने पर उचित दाम न मिलने और पुराने क़र्ज़ को न चुका पाने से घबरा कर आत्महत्या को ही आसान रास्ता बनाता जा रहा है. भारतीय किसान की यही बड़ी बदकिस्मती है.

किसानों के नाम पर सियासी रोटी और प्रायोजित आयोजनों से जख्मों पर मरहम के बजाय नमक लगाने से आहत असली किसान बेहद मजबूर दिख रहा है. नौकरशाहों और कर्मचारियों को महंगाई भत्ता देकर सरकारें अपने चेहरे पर शिकन तक नहीं आने देती हैं. लेकिन, किसान क़र्ज़ और ब्याज माफ़ी के लिए सड़क पर भोजन खाने, तपते आसमान के नीचे खुले बदन आंदोलन, पानी में गले तक डूब कर जल–सत्याग्रह जैसे कठिन फैसलों तले जीने को मजबूर है. मध्य प्रदेश का हालिया मंदसौर का उदाहरण इनकी दशा–दिशा के लिए काफ़ी है. राजनीति का कमाल देखिये, गोलियों से मृत किसानों के परिवारों को अपनी धार्मिक रीतियों को तिलांजलि देकर मुख्यमंत्री के चंद घंटों का उपवास तुड़वाने के चलते बिना तेरहवीं हुए भोपाल जाने को विवश होना पड़ता है. वहीं मृतकों के परिवार, मुसीबतों के बाद भी हुक्मरानों के हाथों की कठपुतली बनने को मजबूर हैं.

क्या किसान झुनझुना बन गया है? क्या वह राजनीति का अस्त्र बन गया है? या फिर केवल वह औजार रह गया है, जो खेत में हल चलाये, भरपूर फ़सल उगाये तथा उसे बेचने, सहेजने और सही दाम पाने के लिए सीने पर गोली भी खाये?

• • •

किसानों की आत्महत्या तथा जीवन का अधिकार

विवेक किशोर•

भारत एक कृषि प्रधान देश है और आज भी देश की अधिकतर जनसंख्या कृषि और उससे संबधित कार्यों पर आश्रित है। आँकड़ों के अनुसार, देश की लगभग 52 प्रतिशत जनसंख्या प्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। गाँव एवं भूमि ही प्रकृति के पुजारी कृषकों की कर्मभूमि होती है। किसानों के अन्न उत्पादन करने से समाज, देश तथा राष्ट्र का पालन पोषण होता है, देश आत्मनिर्भर बनता है और देश की मान–मर्यादा की रक्षा होती है। तथापि हम देखते हैं कि जो किसान दिन–रात दूसरों के लिए पसीना बहाते हैं, अपने जीवन का उत्सर्ग तक करने को तैयार हो जाते हैं, उन किसानों के मानवाधिकारों का आज के भारतवर्ष में कोई महत्त्व नहीं है।

यह विडम्बना है कि आजकल कृषक हेय दृष्टि से देखे जाते हैं। राष्ट्र के निर्माण और देश की रक्षा में उनके महत्त्व को आँका नहीं जा रहा। दुर्दशा का आलम यह है कि आज भारतवर्ष में किसान आत्महत्या करने को मजबूर हैं, क्योंकि वह क़र्ज़ के बोझ तले दबा है, वर्षा की अनियमितता और सिंचाई के साधनों का अभाव उसकी कमर तोड़ रहा है। अशिक्षा और जागृति के अभाव में आज भी किसान का महाजनों, बिचौलियों एंव सरकारी तंत्र द्वारा शोषण हो रहा है और फलस्वरुप उसके मानवाधिकारों का हनन होता है। भारत में किसानों की आत्महत्या वर्ष 1990 के बाद एक बड़ी समस्या के रूप में दृष्टिगत हुई है। यद्यपि इससे पहले भी कुछ किसानों द्वारा आत्महत्या किए जाने के मामले हुए होंगे, तथापि समाचार पत्रों में सबसे पहले इस प्रकार की ख़बर प्रमुखता से 1990 में प्रकाशित हुई। महाराष्ट्र राज्य में विदर्भ क्षेत्र के कपास उत्पादक किसानों से षुरु होकर कुछ वर्षो में यह स्थिति अन्य राज्यों, जैसे आंध्र प्रदेश, पंजाब, मध्य प्रदेश, कर्नाटक तथा छत्तीसगढ आदि में भी किसानों की आत्महत्या की समस्या के रूप में उभर कर सामने आई।

अतः 'किसानों की आत्महत्या' की दुखद समस्या पर विचार करने के लिए आवश्यक है कि भारत में कृषि क्षेत्र का समुचित अध्ययन किया जाए। स्वतंत्रता के पश्चात् 60 के दशक में हरित क्रांति के आने के साथ बेहतर उच्च उपज बीज (HYV सीड्स) खाद और उन्नत तकनीक के द्वारा पैदावार में काफ़ी वृद्दि हुई। किन्तु 90 के दशक के प्रारम्भ से ही कृषि क्षेत्र के विकास में अवरोध सा आने लगा। कृषि की इस स्थिति के लिए कई कारण थे, जैसे– सिंचाई सुविधाओं का सीमित विकास, उचित दर पर ऋण का उपलब्ध न होना, कृषि में निवेश की कमी, घटिया किस्म के बीजों का प्रयोग और फ़सलों की गुणवत्ता में कमी आदि। यद्यपि भारत में स्वतंत्रता के पश्चात सिंचाई के साधनों में काफ़ी बढ़ोत्तरी हुई है, तथापि अभी भी भारतीय कृषि देश के अधिकांश भागों में वर्षा पर आधारित है। भारत में आज भी निबल बुवाई क्षेत्र (Net sown area)

• संयुक्त निदेशक, वन्य जीव अपराध नियंत्रण ब्यूरो, दिल्ली

लगभग 142 मिलियन हेक्टेयर है, जिसमें से लगभग 44 प्रतिशत क्षेत्र (लगभग 62.31 मिलियन हेक्टेयर) पर ही सिंचाई सुविधाएँ उपलब्ध हैं।[1] अतः एक तरफ सिंचाई के साधन सीमित हैं तो दूसरी तरफ अधिकांशतः छोटे किसान ऋण लेकर खेती करते हैं। यदि मानसून के कमज़ोर रहने से, देश के कुछ भागों में कम वर्षा हो तो किसान का परिश्रम व्यर्थ जाता है और फ़सल ठीक नहीं होती। ऐसी स्थिति में फ़सल बीमा की सुविधा न होने और ऋण नहीं चुका पाने के कारण किसान आत्महत्या कर लेते हैं।

राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो की भारत में आत्महत्याओं पर वर्ष 2016 में जारी रिपोर्ट में किसानों की आत्महत्या से सम्बंधित वर्ष 2015 के आंकड़े प्रस्तुत किए गए हैं। रिपोर्ट के अनुसार, वर्ष 2015 में कृषि क्षेत्र में कुल 12,602 लोगों (किसान+कृषि श्रमिक) ने आत्महत्या की, जबकि वर्ष 2014 में कृषि क्षेत्र में कुल 12,360 लोगों ने आत्महत्या की थी। यह वर्ष 2015 में वर्ष 2014 की तुलना में दो प्रतिशत की वृद्धि को दर्शाता है। अगर सिर्फ़ किसानों की आत्महत्या का आँकड़ा देखें तो वर्ष 2014 में यह संख्या 5,650 थी जो कि वर्ष 2015 में बढ़कर 8,007 हो गई। यह लगभग 42 प्रतिशत की वृद्धि है और अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण होने के साथ–साथ चिन्ताजनक भी है।

किसानों की आत्महत्या के सर्वाधिक मामले महाराष्ट्र में दर्ज़ किए गए, जहाँ वर्ष 2015 में 3,030 किसानों ने आत्महत्या की थी। तेलंगाना और कर्नाटक में क्रमशः 1,358 और 1,197 किसानों ने आत्महत्या की। इसके अतिरिक्त मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और आंध्र प्रदेश में भी बड़ी संख्या में किसानों ने आत्महत्या की। करीब 94.1 प्रतिशत किसान आत्महत्या इन छः राज्यों में हुई। इन आंकड़ों की सारणीवार प्रस्तुति इस प्रकार है :–

2014&2015 d nkjku Ñf"k {k= e vkRegR;k

o"k J.kh	2014	2015	% ifjorlu
किसान	5,650	8,007	(+) 41.7
कृषि श्रमिक	6,710	4,595	(-) 31.7
कुल	12,360	12,602	(+) 2.0

o"k 2015 e lokfèkd fdlku vkRegR;k okys jkT;

jkT;	vkRegR;k dh l[;k	dy dk ifr'kr (%)
महाराष्ट्र	3,030	37.8
तेलंगाना	1,358	17.0
कर्नाटक	1,197	14.9
छत्तीसगढ़	854	10.7

मध्य प्रदेश	581	7.3
आंध्र प्रदेश	516	6.4
कुल (छः राज्य)	7,536	94.1
d|y vkRegR;k	8,007	100

स्रोतः— ऐक्सीडेन्टल डेथ्स एंड सुसाइड इन इंडिया, 2014 एवं 2015, राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो।

o"k 2015 e fdlkuk dh vkRegR;k d dkj.k

राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के आँकड़ों के अनुसार 'दीवालियापन या बढ़ती ऋणग्रस्तता' के कारण किसानों की आत्महत्या में वर्ष 2014 में 1,163 की तुलना में वर्ष 2015 में 3,097 मामले समाने आए जो कि वर्ष 2014 की तुलना में लगभग तीन गुना वृद्धि है।[2] अर्थात आर्थिक संकट, भारत में किसानों की आत्महत्या के मुख्य कारण ाों में से एक है। कृषि—विषयक कारणों द्वारा भी आत्महत्या में 61 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। वर्ष 2014 में फ़सल—क्षति और अन्य कृषि—विषयक कारणों से 969 किसानों ने आत्महत्या की, जो कि वर्ष 2015 में बढ़कर 1,562 हो गई।[3] यहाँ यह उल्लेखनीय है कि वर्ष 2014 एंव 2015 में देश के अनेक राज्यों में ज़बरदस्त सूखा रहा, जिसके कारण किसानों को परेशानी आई और उन्हें आत्महत्या के लिए बाध्य होना पडा। इन आँकड़ो को पाई—चार्ट के माध्यम से निम्न प्रकार दर्शाया गया है।

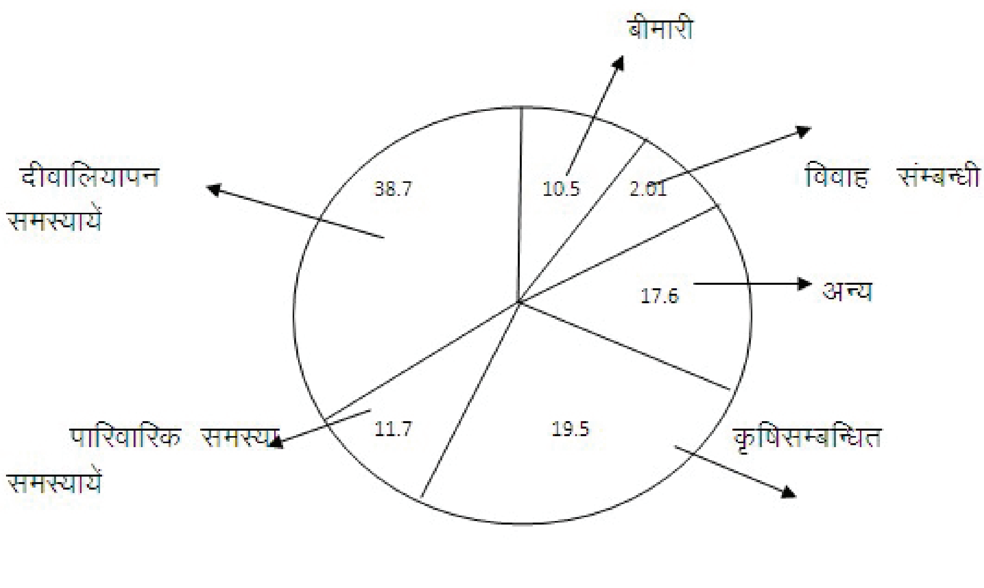

स्रोतः— ऐक्सीडेन्टल डेथ्स एंड सुसाइड़ इन इंडिया, 2015, राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो।

tkr d vuqlkj o"k 2015 e fdlkuk dh vkRegR;k

रिपोर्ट के अनुसार, आत्महत्या करने वाले किसानों में अधिकांशतः वे किसान हैं जिनके पास 1–2 हेक्टेयर ज़मीन है। रिपोर्ट में दिए आंकड़ो के अनुसार, आत्महत्या करने वाले किसानों में 72 प्रतिशत छोटे और सीमांत किसान है, जिनके पास दो हेक्टेयर से कम भूमि है, 25.4 प्रतिशत मझले किसान हैं जिनके पास 2–10 हेक्टेयर भूमि है और 2 प्रतिशत ऐसे किसान हैं जिनके पास 10 हेक्टेयर से अधिक ज़मीन है। आत्महत्या करने वाले छोटे और सीमांत किसानों में 45.2 प्रतिशत छोटे किसान हैं जिनके पास 1–2 हेक्टेयर भूमि है और 27.4 प्रतिशत सीमांत किसान हैं जिनके पास एक हेक्टेयर से भी कम ज़मीन है। इन आंकड़ों की सारणीवार प्रस्तुति इस प्रकार हैः–

o"k J.kh	2015	dqy dk Áfr'kr (%)
lhekr fdlku ¼,d gDV;j l de Hkfe½	2,195	27.4
NkV fdlku ¼,d l nk gDV;j rd Hkfe ½	3,618	45.2
Ek>y fdlku ¼nk l nl gDV;j rd Hkfe½	2,034	25.4
cM fdlku ¼nl gDV;j l vfèkd Hkfe½	160	2.0
dqy	8,007	100

स्रोतः– ऐक्सीडेन्टल डेथ्स एंड सुसाइड इन इंडिया, 2015,
राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो।

अतः आज आवश्यकता ऐसे वातावरण के निर्माण करने की है जहाँ किसानों के मानवाधिकारों का संरक्षण हो सके और उन्हें आत्महत्या करने के लिए मज़बूर न होना पड़े। इसके लिए निम्नलिखित उपायों पर ध्यान दिया जा सकता हैः

1. **fdlku dh vkfFkd fLFkfr e lèkkj dh vko';drk&** आज भारत में कृषि कार्य घाटे का व्यवसाय हो गया है। देश में मौजूदा आर्थिक नीतियों और विशेषकर कृषि–क्षेत्र की आर्थिक नीतियों ने किसान की कमर तोड़ रखी है। किसानों को कृषि क्षेत्र से विस्थापित होकर शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन करने से रोकने हेतु कारगर कदम उठाने होंगे। किसान को आर्थिक रूप से सुदृढ़ करने के लिए उसे उसकी फ़सल का सही दाम देना होगा। इसके साथ ही किसान को गेहूँ और धान के अलावा अन्य फ़सलों की खेती के प्रति प्रेरित करना होगा। इसके लिए बागवानी की ओर ध्यान दिया जाना अभिप्रेत है, जिसमें फल, फूल, सब्जी आदि की खेती की जाती है। यह ग्रामीण क्षेत्र के लोगों को रोजग़ार उपलब्ध कराने और किसानों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए एक बेहतर तरीक़ा हो सकता है।

2. **Ñf"k {k= e l|ekkj** – भारतीय किसान को आत्महत्या करने से रोकने हेतु कृषि क्षेत्र की अव्यवस्थाओं को दूर करना होगा। किसानों को सस्ता और नियमों में लचीला ऋण सुलभ कराना होगा। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो की रिपोर्ट के अनुसार, क़र्ज़ के कारण किसान प्रमुखतः आत्महत्या के लिए उन्मुख होते हैं। आंकड़ों के विश्लेषण से यह भी लक्षित होता है कि महाजनों के क़र्ज़ की तुलना में बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थाओं से क़र्ज़ लेना किसान के लिए अधिक दुखदाई बन रहा है। इसका कारण यह है कि वित्तीय संस्थाएँ क़र्ज़ की वसूली के लिए कड़े कदम उठाती हैं, जबकि महाजन से क़र्ज़ की शर्तें आसान होती हैं। 'दिवालियापन या ऋणग्रस्तता' से वर्ष 2015 में 3,097 किसानों ने आत्महत्या की। उनमें से 2,474 (लगभग 80 प्रतिशत) किसानों ने वित्तीय संस्थाओं जैसे बैंक / सूक्ष्म वित्तीय संस्थाओं (Micro Financial Institutions) से ऋण लिया था, जबकि 302 किसानों (लगभग 10 प्रतिशत) ने महाजनों से ऋण लिया था।[4] अतः किसानों को सस्ता ऋण और फ़सल बीमा योजना का लाभ उपलब्ध कराना अत्यन्त आवश्यक है।

3. **cgrj Ñf"k icekku** – कृषि क्षेत्र में आत्महत्याओं को रोकने का एक अन्य कारगर तरीक़ा हो सकता है – बेहतर कृषि प्रबंधन। आत्महत्या का मूल कारण, किसान की गरीबी ही है। अतः सरकार को चाहिए कि वह ऐसी योजनाओं को लागू करे जिनका उचित लाभ छोटे और मझले किसानों को मिल सके। उदाहरणार्थ सूखाग्रस्त क्षेत्रों में सिंचाई के साधनों की उपलब्धता, वैज्ञानिक तरीकों से फ़सलों की उपज में वृद्धि, कृषि–उपजों का उचित मूल्य–निर्धारण, किसान को भंडारण का हक, नई तकनीक और उत्तम किस्म के सस्ते बीज उपलब्ध कराना आदि पर गम्भीरता से विचार कर इन्हें शीघ्रातिशीघ्र लागू करना होगा।

माननीय उच्चतम न्यायालय ने भी इस गंभीर विषय में संज्ञान लिया है। वर्ष 2014 में 'सिटीजन्स रिसोर्स एंड एक्शन इनिशिएटिव' नामक एक गैर सरकारी संस्था द्वारा गुज़रात के किसानों की समस्याओं पर दाख़िल याचिका की सुनवाई करते हुए, शीर्ष न्यायालय ने इसका दायरा बढ़ाकर सम्पूर्ण देश कर दिया। इस विषय में नवभारत टाइम्स दैनिक के ई–संस्करण में दिनांक 27 मार्च 2017 को लिखा है कि आज सुनवाई करते हुए उच्चतम न्यायालय ने आदेश दिया, ''यह बेहद गंभीर मुद्दा है और केन्द्र को किसानों की आत्महत्या के संदर्भ में राज्यों द्वारा उठाए जाने वाले प्रस्तावित कदमों की जानकारी शीर्ष न्यायालय के पंजीयक के पास चार सप्ताह के भीतर जमा करवानी चाहिए। ....सरकार को एक ऐसी नीति लेकर आना चाहिए, जो किसानों द्वारा उठाए जाने वाले इस बड़े कदम के पीछे के मूल कारण को हल करती हो।"[5]

अतः उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि किसानों की आत्महत्या से जुड़ा मुद्दा उनके 'जीने के मानवाधिकार' हनन से जुड़ा है और अत्यंत दुखद एंव गंभीर है। इसको हल करने के लिए केन्द्र एंव राज्य सरकारों द्वारा तुरंत आवश्यक कदम उठाने चाहिए,

जिससे कि किसानों को स्वयं अपनी जान देने के लिए बेबस न होना पड़े। अगर इस देश का किसान सुखी रहेगा, तभी देश खाद्यान्नों में आत्म–निर्भर हो सकेगा और देश में खुशहाली लाना सम्भव होगा।

lnHk

1. http:èèplanningcommission.nic.inèplansèplanrelèfiveyrè11thè11_v3è11v3_ch2.pdf
2. http:èèncrb.nic.inèStatPublicationsèADSIèADSI2015èadsi-2015-full-report.pdf
3. http:èèncrb.nic.inèStatPublicationsèADSIèADSI2015èadsi-2015-full-report.pdf
4. http:èèncrb.nic.inèStatPublicationsèADSIèADSI2015èadsi-2015-full-report.pdf
5. http:èènavbharattimes.indiatimes.comèindiaèsupreme-court-to-deal-with-the-issue-of-the-said-farmer-suicides-from-the-center-of-the-plan-tellèarticleshowè57851934.cms

Û Û Û

vlxfBr {k= e dk;jr efgykvk d vfèkdkj

jkd'k dekj flg•

भारत में 397 मिलियन कर्मकारों में 123.9 मिलियन कर्मकार महिलाएं हैं, जिसमें से 106 मिलियन महिला कर्मकार, गांवों व देहातों में काम करती है तथा शेष 18 मिलियन महिलाएं शहरी क्षेत्रों में कर्मकार हैं। महिलाओं के स्वअर्जित रोजग़ार के राष्ट्रीय आयोग के एक आंकड़े के अनुसार 94 प्रतिशत महिलाएं असंगठित सेक्टर पर कार्य करती है। गांवों एवं देहातों में 87 प्रतिशत महिलाएं खेतों में, मज़दूरी या कटाई के तौर पर कार्य करती है। ऐसी महिलाओं को न्यूनतम मज़दूरी पर उनसे अनेकों कार्य कराये जाते है।

भारत में लगभग 92 प्रतिशत कार्यस्थल असंगठित सेक्टर है। असंगठित सेक्टर से तात्पर्य व्यष्टियों या स्वनियोजित कर्मकारों के स्वामित्वाधीन और किसी प्रकार के माल के उत्पादन या विक्रय में या सेवा प्रदान करने में लगा हुआ उद्यम अभिप्रेत है, और जहां उद्यम कर्मकारों को नियोजित करता है वहां ऐसे कर्मकारों की संख्या दस से कम होता है। असंगठित कर्मकार से तात्पर्य ऐसे कर्मकार से है, जो घरो में, स्वनियोजित रोजग़ार में, दैनिक मज़दूरी वाले असंगठित क्षेत्र के कर्मकार, जिसमें ऐसे संगठित सेक्टरों के कर्मकार भी शामिल है, जिन्हें रोजग़ार सुरक्षा, कार्य सुरक्षा एवं सामाजिक सुरक्षा नहीं प्राप्त है।

मानव सभ्यता के प्रारम्भ के साथ–साथ, महिलाओं के साथ दोयम दर्जे का व्यवहार किया जाने लगा। उसे व्यापार की वस्तु की तरह समझा गया। भारतीय समाज में देह–व्यापार, गुलामी एवं वेश्यावृति बड़े पैमाने पर प्रचलन में रही है। पर्दा–प्रथा, दहेज प्रथा, कामकाजी स्त्री के प्रति दुर्भावना और कम उम्र में विवाह के कारण उसकी स्थिति अत्यन्त दयनीय थी।

महिला कर्मकारों की कठिनाइयां अनेक प्रकार की है, जैसे वेतन–मज़दूरी में असमानता, दैहिक शोषण, अस्वस्थ्य वातारण में काम करने को विवश होना, कार्यों में व वेतन में भेदभाव करना। इन सबके अलावा एक नई प्रकार के दोहन पर बहस हो रही है, जिसे 'सरोगेटेड मदर' के नाम से जाना जा रहा है, साथ ही सरोगेटेड कर्मकार महिलाओं के अधिकारों की बात की जा रही है लेकिन अभी तक इसपर कोई सार्थक प्रयास नहीं किया जा सका है।

औद्योगिकीकरण एवं वैश्विकता के आधुनिक युग में महिलाओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए भी हैं। सामाजिक परिवर्तन एवं आर्थिक उदारीकरण के कारण कामकाजी महिलाओं की तादात में लगातार वृद्धि हुई है। उपर्युक्त के परिपेक्ष्य में प्रस्तुत लेख में

• विभागाध्यक्ष, विधि संकाय, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

महिला कर्मकारों को प्राप्त संवैधानिक अधिकार, विभिन्न प्रकार के विधिक अधिकार एवं उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित निर्णयों एवं दिशा–निर्देशों की संक्षिप्त विवेचना करने का प्रयास किया गया है।

Hkkjrh; lfoèkku e efgyk deldkjk dh fLFkfr

संविधान निर्माताओं ने भारतीय संविधान में महिलाओं की समाजिक स्थिति में सुधार हेतु अनेकों प्रावधान किए है, जिसमें से निम्न प्रमुख है :

mnnf'kdk %

भारतीय संविधान की उद्देशिका में ही सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए, तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और (राष्ट्र की एकता एवं अखंड़ता) सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने की बात की गई है। उक्त प्रावधान से स्पष्ट है कि महिलाओं की गरिमा एवं उसकी सुरक्षा की बात भारतीय संविधान की उद्देशिका में ही उल्लिखित है।

vuPNn 15 ¼1½

राज्य, किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।

vuPNn 15 ¼2½

कोई नागरिक केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर :

(क) दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश, या

(ख) राज्य निधि से पोषित या साधारण जनता के प्रयोग के लिए समर्पित कुओं, तालाबों, स्थानघाटों, सड़कों और सार्वजनिक समागम के स्थानों के उपयोग, के संबंध में किसी भी निर्योग्यता, दायित्व, निर्बंधन या शर्त के अधीन नहीं होगा।

vuPNn 15 ¼3½

यह अनुच्छेद महिलाओं के लिए वरदान के समान है। इसके अन्तर्गत राज्य को यह अधिकार दिया गया है कि वह महिलाओं एवं बच्चों के लिए कोई भी विशिष्ट क़ानून बना सकता है जो भले ही स्त्री एवं पुरूषों के बीच विभेदकारी हो।

vuPNn 16

यह अनुच्छेद लोक नियोजन के विषय में सभी नागरिकों को अवसर की समता का अधिकार देता है, अर्थात सरकारी नौकरियों में पुरूषों के साथ–साथ स्त्रियों को भी समान अधिकार होगा।

vuPNn 21

इस अनुच्छेद के अनुसार, किसी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं।

यह अनुच्छेद प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता जिसमें कि स्त्रियों की गरिमामय जीवन दशा भी शामिल है, का प्रावधान करता है।

vuPNn 23 ¼1½

मानव का दुर्व्यापार और बेगार तथा इसी प्रकार का अन्य बलात्–श्रम निषेध किया जाता है और इस उपबंध का कोई भी उल्लंघन अपराध होगा जो विधि के अनुसार दंडनीय होगा।

vuPNn 24

चौदह वर्ष से कम आयु के किसी बालक/बालिका को किसी कारखाने या खान में काम करने के लिए नियोजित नहीं किया जाएगा या किसी अन्य परिसंकटमय नियोजन में नहीं लगाया जाएगा।

vuPNn 39 ¼d½

पुरुष एवं स्त्री सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार है।

vuPNn 39 ¼?k½

पुरूषों एवं स्त्रियों दोनों का समान कार्य के लिए समान वेतन प्राप्त हो।

vuPNn 39 ¼M½

पुरूष या स्त्री कर्मकारों के स्वास्थ्य और शक्ति का तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरूपयोग न हो और आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजग़ार में न जाना पड़े जो उसकी आयु या शक्ति के अनुरूप न हो।

vuPNn 43

कर्मकारों के लिए निर्वाह मज़दूरी आदि : राज्य उपयुक्त विधान या आर्थिक संगठन द्वारा या किसी अन्य रीति से कृषि के, उद्योग के या अन्य प्रकार के सभी कर्मकारों

को काम, निर्वाह मज़दूरी, शिष्ट जीवनस्तर और अवकाश का संपूर्ण उपभोग सुनिश्चित करने वाली काम की दशाए तथा समाजिक और सांस्कृतिक अवसर प्राप्त कराने का प्रयास करेगा और विशिष्टया ग्रामों में कुटीर उद्योगों को वैयक्तिक या सहकारी आधार पर बढ़ाने का प्रयास करेगा।

vuPNn 43&d

उद्योगों के प्रबंध में कर्मकारों का भाग लेना : राज्य किसी उद्योग में लगे हुए उपक्रमों, स्थापनों या अन्य संगठनों के प्रबंध में कर्मकारों का भाग लेना सुनिश्चित करने के लिए उपयुक्त विधान द्वारा या किसी अन्य रीति से कदम उठाएगा।

vuPNn 45

यह अनुच्छेद राज्यों पर यह कर्त्तव्य डालता है कि वह संविधान के पारित होने के 10 वर्षों तक चौदह वर्ष से कम आयु के बालक/बालिकाओं के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करे।

vuPNn 46

यह अनुच्छेद राज्यों पर यह कर्त्तव्य डालता है कि राज्य, जनता के दुर्बल वर्गों के, विशिष्टतया अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के शिक्षा और आर्थिक हितों संबंधी विशेष सावधानी में अभिवृद्धि करेगा और सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उनकी संरक्षा करेगा।

vuPNn 47

यह अनुच्छेद राज्यों पर यह कर्त्तव्य डालता है कि राज्य, नागरिकों के पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को ऊंचा करने और लोक स्वास्थ्य के सुधार को अपने प्राथमिक कत्तव्यों में मानेगा। यहॉ यह उल्लेखनीय है कि भारत में ज़्यादातर स्त्रियों की मृत्यु खराब पोषाहार की वजह से होती है।

vuPNn 51 d

भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हो।

उपर्युक्त के आधार पर कहा जा सकता है कि भारतीय संविधान में महिला एवं महिला कर्मकारों की सामाजिक, आर्थिक एवं शारीरिक विकास की दिशा में अनेकानेक प्रावधान बनाये गए है। इस सम्बन्ध में संविधान की उद्देशिका से लेकर मौलिक

अधिकार एवं राज्य के नीति के निदेशक तत्वों में इसका उल्लेख किया गया है। उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए समय–समय पर संसद ने अनेकों विधायनों को पारित किया है। कुछ महत्त्वपूर्ण विधायनों का उल्लेख निम्नवत है :

efgyk deZdkjksa dk ikIr fofèkd laj{k.k

dkj[kkuk vfèkfu;e] 1948 ds vUrxZr

- यह कामकाजी महिलाओं हेतु बहुत महत्त्वपूर्ण अधिनियम है। जिसमें महिला कर्मकारों के लिए काम के घंटे, उसकी सुरक्षा, काम के छुट्टी, अत्यधिक काम इत्यादि के सम्बन्ध में प्रावधान बनाये गए है। इसी अधिनियम में यह बाध्यकारी बनाया गया है कि प्रत्येक कारखानों में स्त्रियों हेतु अलग से शौचालय और मूत्रालय बनाये जाए। ऐसे सभी शौचालय और मूत्रालय पूरी तरह से ढके हुए हो साथ ही महिलाओं की प्राइवेसी का पूरा ख्याल रखा जाए। समय–समय पर इसकी सफाई सुनिश्चित किया जाए।
- किसी भी कामकाजी महिलाओं को खतरनाक पेशों में संलग्न नहीं किया जाएगा। इसके अन्तर्गत ऐसे सभी व्यवसाय आते है, जिसमें शारीरिक जख्म, जहरीले एवं खतरनाक रोग इत्यादि की संभावना हो।
- कारखाना अधिनियम में ही कामकाजी स्त्रियों को अलग से नहाने एवं कपड़े धोने की व्यवस्था का अधिकार है।
- शिशुगृह की व्यवस्था : कामकाजी महिलाओं के शिशु के लिए कारखाने में ही अलग से व्यवस्था होनी चाहिए। इस अधिनियम की धारा 48 के अन्तर्गत जिस भी कारखाने में 30 से ज़्यादा कामकाजी महिलाएं हैं, वहां पर ऐसी स्त्रियों के 6 वर्ष से कम आयु के बच्चे को रखने की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। ऐसे कमरों में उचित रोशनी एवं वायु आने–जाने की व्यवस्था होनी चाहिए। साथ ही, कमरे पूरी तरह से साफ–सुथरे होने चाहिए।
- इसी अधिनियम में कामकाजी महिलाओं के लिए काम के 9 घंटे निधारित किए गए है साथ ही महिलाओं के लिए प्रत्येक सप्ताह 48 घण्टे निधारित किए गए है।
- इसी अधिनियम में कामकाजी महिलाओं के लिए अधिकतम लोड़ 55 (एलबीएस) निर्धारित किया गया है।
- इस अधिनियम में स्त्रियों को रात्रि ड्युटी को प्रतिबंधित किया गया है। इसकी धारा 66 (1)(बी) के अनुसार किसी भी स्त्री को कारखानें में सायं 7 बजे के बाद एवं सुबह 6 बजे से पहले नियोजित नहीं किया जाएगा।

उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त तरह के ही मिलते–जुलते प्रावधान माइन्स अधिनियम, 1952, प्लान्टेशन लेबर अधिनियम, 1951, बीड़ी एवं सिगार कर्मकार (रोजग़ार की सेवाशर्तें) अधिनियम, 1966 एवं संविदा श्रम (रेगुलेशन एवं ऐबोलिशन) अधिनियम, 1970 में भी बनाये गए है।

efgykvk d: fy, fo'k"k vfèkfu;e]

ekrRo ykHk vfèkfu;e] 1961

यह अधिनियम महिला कर्मकारों को बच्चे पैदा होने से पहले व बाद में मातृत्व के लाभ के लिए बनाया गया है। इस अधिनियम में 2016 को संशोधन किया गया है। संशोधित अधिनियम (मातृत्व लाभ (संशोधन) अधिनियम, 2016) के अनुसार मातृत्व के दौरान छुट्टी 12 सप्ताह से बढ़ाकर 26 सप्ताह कर दिया गया है। पैतृत्व लाभ की छुट्टी भी 6 सप्ताह से बढ़ाकर 8 सप्ताह कर दिया गया है। यदि महिला के दो या दो से अधिक बच्चे है, तो उसे 12 सप्ताह का मातृत्व लाभ दिया जाएगा, यद्यपि ऐसे मामले में पैतृत्व लाभ 6 सप्ताह ही रहेगा। इस अधिनियम के अन्तर्गत यह भी व्यवस्था है कि मातृत्व लाभ के दौरान महिलाओं के वेतन या मज़दूरी से किसी भी प्रकार की कोई कटौती नहीं की जाएगी।

ऐसे प्रत्येक उपक्रम या कारखाने में, जहां 50 से ज़्यादा कर्मकार कार्य करते है, वहां पर शिशुगृह (creche) का होना अनिवार्य है और महिला कर्मकार को कार्य के दौरान न्यूनतम चार बार जाने की अनुमति होनी चाहिए। उपक्रम या कारखाने के मालिक के ऊपर इस अधिनियम ने यह दायित्व सौपा है कि वह महिला कर्मकार की नियुक्ति के समय उसको उसके अधिकारों के बारे में अवगत कराये। यह सूचना लिखित या डिजिटल फार्म मे होनी चाहिए।

बी. शाह बनाम लेबर कोर्ट, कोयम्बटूर,[1] के वाद में अभिमत किया गया है कि मातृत्व अधिनियम की धारा 5 सब–धारा 1 और 3 के प्रयोजनों में प्रयुक्त शब्द 'सप्ताह' के अन्तर्गत 7 दिन जिसमें रविवार को गिनते हुये, माना जाना चाहिए। म्युनिसिपल कारपोरेशन ऑफ दिल्ली बनाम फिमेल वर्कर,[2] के वाद में उच्चतम न्यायालय ने निर्धारित किया कि मातृत्व अधिनियम का लाभ आकस्मिक कर्मकार एवं दैनिक भोगी महिला कर्मकार पर भी लागू होता है।

deldkj chek vfèkfu;e] 1948 इस अधिनियम के अन्तर्गत महिला कर्मकार को बीमारी के दौरान, मातृत्व के दौरान एवं कार्य के दौरान लगे चोटों के लिए नकद भुगतान की व्यवस्था करता है।

deldkj Hkfo"; fufèk ,o fofoèk ikoèkku vfèkfu;e] 1952

यह अधिनियम एक लोक कल्याणकारी अधिनियम है। इस अधिनियम के अन्तर्गत महिला कर्मकार को सामाजिक सुरक्षा उस समय प्रदान करने की व्यवस्था की गई है जब उसका परिवार विपत्ति मे होता है और दिन–प्रतिदिन की आवश्यकता को पूरा

1 ए.आई.आर. 1978 एस.सी. 12.

2 ए.आई.आर. 2000 एस.सी. 1275.

करने में असमर्थ होता हैं। ऐसे मामले ज़्यादातर उस समय होते है जब कर्मकार की मृत्यु हो जाती है या कार्य के दौरान हादसे में वह कार्य करने में पूर्ण रूप से असमर्थ हो जाता है।

ieUV vkQ xP;Vh ,DV] 1972

यह अधिनियम कर्मकारों को लम्बी सेवा में रहते हुए सेवानिवृत्ति के बाद के सम्बन्ध में प्रावधान करता है। यद्यपि यह अधिनियम ज़्यादातर संगठित सेक्टरों में या सरकारी संस्थानों में ही लागू होता है।

dedkj ifrifr vfèkfu;e] 1923

यह अधिनियम ऐसे समय कर्मकारों की मदद करता है, जब कार्यस्थल के दौरान किसी कर्मकार की दुर्घटना या मृत्यु हो जाती है। ऐसी स्थिति में कर्मकार के परिवार को गंभीर अपूर्णीय क्षति होती है। यह अधिनियम सभी प्रकार के सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थानों के ऊपर लागू होता है। कर्मकार प्रतिपूर्ति (संशोधन) अधिनियम, 2000 के लागू होने के बाद अब सभी प्रकार के कर्मकार चाहे वे आकस्मिक कर्मकार हो या दैनिक भोगी कर्मकार, इस अधिनियम की परिधि में शामिल किए गए है।

U;ure etnjh vfèkfu;e] 1948

इस अधिनियम के अन्तर्गत विशेषतः महिला कर्मकारों के लिए न्यूनतम मज़दूरी का प्रावधान किया गया है। गौरतलब है कि पुरुष कर्मकारों की तुलना में महिला कर्मकार को न्यूनतम दर से मज़दूरी दी जाती थी।

oru Hkxrku vfèkfu;e] 1936

यह अधिनियम कर्मकारों को वेतन भुगतान के सम्बन्ध में अनेकों प्रावधान बनाता है। यह अधिनियम भी लगभग सभी प्रकार के उपक्रमों, संस्थानों एवं कारखानों पर लागू होता है। यद्यपि यह अधिनियम असंगठित सेक्टरों में काम करने वाले कर्मकारों पर लागू नहीं होता है।

leku ikfjJfed vfèkfu;e] 1976

भारतीय संविधान के भाग चार के अनुच्छेद 39 के अन्तर्गत स्त्री व पुरुष दोनों को समान वेतन दिया जाएगा। गौरतलब है कि पुरुष कर्मकारों की तुलना में महिला कर्मकार को अतिन्यूनतम दर से मज़दूरी दी जाती थी। यद्यपि यथार्थ यह है कि आज भी स्त्री की तुलना में पुरुष कर्मकार को ज़्यादा मज़दूरी दी जाती है। कुछ मामलों में तो महिला कर्मकारों ने कम मज़दूरी दिए जाने को उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी। एयर इण्डिया बनाम नरगिस मिर्जा,[3] के वाद में जिसमें केन्द्र सरकार ने नोटिफिकेशन

3 ए.आई.आर. 1981 एस.सी. 1929.

जारी करके कहा कि एयर इण्डियॉ में स्त्री एवं पुरूषों के बीच मज़दूरी में असमानता लिंग के आधार पर नहीं है। इसी वाद में महिला कर्मकारों के सेवा में भी लिंग के आधार पर भेदभाव किया गया था। समान पारिश्रमिक (संशोधन) अधिनियम, 1987 द्वारा महिला कर्मकार एवं पुरुष कर्मकारों के मज़दूरी के भेदभाव को समाप्त कर दिया गया।

v l xfBr deldkj lkekftd lqj{kk vfèkfu;e] 2008

यह अधिनियम, 16 मई, 2009 को प्रवर्तन में आया। इस अधिनियम की मुख्य विशेषताए निम्न है :

1. केन्द्रीय सरकार समय–समय पर असंगठित कर्मकारों के लिए निम्नलिखित विषयों के सम्बन्ध में कल्याणकारी योजनाएं विचरित और अधिसूचित करेगी :

   (अ) जीवन और निःशक्ता सुरक्षा,

   (ब) स्वास्थ्य और प्रसूति लाभ,

   (स) वृद्धावस्था संरक्षण और

   (द) अन्य कोई लाभ जो केन्द्रीय सरकार द्वारा अवधारित किया जाए। (èkkjk 3 ¼1½½

2. राज्य सरकारें समय–समय पर असंगठित कर्मकारों के लिए निम्नलिखित विषयों के सम्बन्ध में कल्याणकारी योजनाएं विचरित और अधिसूचित करेगी :

   (अ) भविष्य निधि,

   (ब) नियोजन क्षति फायदा,

   (स) आवासन

   (द) बालको के लिए शिक्षा संबंधी योजनाएं,

   (च) कर्मकारों के कौशल का उन्नयन,

   (छ) अंत्येष्टि सहायता, और

   (ज) वृद्धाश्रम (èkkjk 3 ¼1½¼4½½

3. केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिसूचित प्रत्येक योजना केन्द्रीय सरकार द्वारा पूर्णतः वित्तपोषित किया जाएगा। (èkkjk 4 ¼1½½

4. केन्द्रीय सरकार द्वारा राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा बोर्ड नामक एक राष्ट्रीय बोर्ड

का गठन किया जाएगा जो उक्त अधिनियम में वर्णित विषयों के क्रियान्वयन सुनिश्चित करेगी। (èkkjk 5 ¼1½½

5. प्रत्येक राज्य सरकार द्वारा राज्य सामाजिक सुरक्षा बोर्ड नामक एक राज बोर्ड का गठन किया जाएगा जो उक्त अधिनियम में वर्णित विषयों के क्रियान्वयन सुनिश्चित करेगी। (èkkjk 6 ¼1½½

6. प्रत्येक असंगठित कर्मकार का जो इस अधिनियम के अन्तर्गत कुछ शर्तें पूरा करते हो, पंजीकरण होगा उसके बाद उसे एक पहचान पत्र जारी किया जाएगा जो एक स्मार्ट कार्ड होगा जिसपर एक विशिष्ट पहचान संख्या होगी जो वह अपने पास रखेगा और ऐसा कर्मकार सामाजिक सुरक्षा का लाभ उठा सकेगा। (èkkjk 10½

ljksxslh % efgykvksa dk ,d u;k vlaxfBr lsDVj

विज्ञान और औद्योगिक विकास के नए–नए तरीकों से व्यक्ति के जीवन में बच्चे पैदा करने की तकनीक की दिशा में अभूतपूर्व वृद्धि की है लेकिन साथ ही नयी–नयी समस्याओं ने भी जन्म लेना शुरू कर दिया है। लिंग परीक्षण, डी.एन.ए. परीक्षण, फिंगरप्रिटिंग तकनीक ने विधिशास्त्र की नयी परिभाषा को जन्म दिया है। अनेको सामाजिक एवं आर्थिक विवादास्पद मुद्‌दों को जन्म देने के बाद भी सरोगेसी दुनिया में पूरी तरह से प्रचलन में आ गया है। भारतीय समाज भी इससे अछूता नहीं है। इसके अर्न्तगत एक महिला के कोख को कुछ पैसे के एवज में खरीदा जाता है। दूसरे शब्दों में एक पति/पत्नी जो किन्ही कारणो से अपने गर्भ से बच्चा पैदा करने में असमर्थ होते हैं, किसी अन्य स्त्री से अपने जीन के माध्यम से उसके गर्भ में अपना बच्चा पैदा करवाने की संविदा करता/करती है।

सरोगेसी दो प्रकार का हो सकता है :

,yVª;fLVd ljksxslh

इसके अन्तर्गत उपर्युक्त स्थिति में बिना किसी संविदा या करार के या बिना पैसों के एवज में महिला दूसरे के लिए अपना गर्भ देती है। ये ज़्यादातर रक्त संबंधी और घनिष्ठता के आधार पर होता है। इसके अन्तर्गत सरोगेट मदर बच्चा जन्म लेने के बाद बच्चे पर अपनी मातृत्व के अधिकार को त्याग देती है और इसमें अस्पताल या बच्चे पैदा करने में हुए खर्चें की ही देनगी होती है।

0;kikfjd ljksxslh

इसके अन्तर्गत उपर्युक्त की स्थिति में किसी संविदा के अन्तर्गत एक मोटी धनराशि के बदले एक स्त्री अपने कोख का सौदा करती है अर्थात अपने गर्भ में बच्चा रखने की भारी रकम वह पति/पत्नी से लेती है।

भारतीय समाज में जहां सदैव स्त्रियों को पर्दा में रहने की वकालत की जाती है ऐसे समाज में इस प्रकार के कार्य शुरू में अनैतिक माने जाते थे, लेकिन बदलते समाज में जब स्त्री/पुरूष की महत्वाकांक्षा में वृद्धि हुई है, मेडिकल कारणों से बच्चा पैदा करने में असमर्थता के कारण इस तरह का व्यापार अब अपनी चरम सीमा पर है। लेकिन उचित विधिक प्रावधान के अभाव में इस प्रकार की तकनीकी ने अनेकों समस्याओं को जन्म देना शुरू कर दिया है। कई–कई मामलों में तो एक स्त्री पैसे के लिए अपने गर्भ को कई बार बेचती है, जिससे उसके शरीर पर बुरा एवं गंभीर असर पड़ता है। पैसे के लेन–देन के विवाद में भी, कई बार गंभीर परिणाम समाज में देखने को मिल रहे है। विदेशों से आकर यहां सरोगेसी के अन्तर्गत बच्चा प्राप्त करने वाले दम्पतियों की संख्या में बेतहाशा वृद्धि हो रही है। आंकड़ों के अनुसार सरोगेसी का व्यापार कई करोड़ गुना पहुंच गया है।

सरोगेसी के विधिक पहलुओं के अन्तर्गत इसमें ज़्यादा आलोचना इस बात की की जाती है कि इसके अन्तर्गत स्त्री की गरिमा और उसकी प्राइवेसी का उल्लंघन होता है और स्त्री को व्यापार की वस्तु ही नहीं बना देता है, अपितु उसके दैहिक शोषण, गुलामी और वेश्यावृत्ति की तरफ़ ले जाता है। इसके अन्तर्गत सरोगेट महिला के अधिकार, जन्म देने वाले बच्चे के प्रति, बच्चे का अधिकार अपने सरोगेट मदर के प्रति एवं अपने होने वाले माता–पिता के प्रति, माता/पिता के अधिकार/कर्त्तव्य बच्चे के प्रति इत्यादि अनछुए पहलूओं को जन्म देता है।

इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि सरोगेसी बिल, 2016 संसद के पटल पर प्रस्तावित है। इस बिल में भारत में व्यापारिक सरोगेसी को पूर्णतः प्रतिबन्धित करने की बात की गई है साथ ही एलट्रयूस्टिक सरोगेसी को मेडीकल मामलों अपनाने की बात की गई है। विदेशी दम्पत्ति को, समलैंगिकता के मामलों में इसकी इजाजत नहीं दी गई है।

vlxfBr lDVj e dkexkj efgykvk d ifr U;kf;d nf"Vdk.k %

उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों ने भी समय–समय पर असंगठित सेक्टरों में कामगार महिलाओं के अधिकारों के संरक्षण के सम्बन्ध में सराहनीय प्रयास किया है। इसमें सर्वप्रथम बधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत सरकार,[4] के वाद में असंगठित क्षेत्रों मे कार्य करने वाले मज़दूरो की मज़दूरी, मज़दूरों की पहचान एवं उसके पुर्नवास इत्यादि के सम्बन्ध में दिशा–निर्देश दिए है। नीरजा चौधरी बनाम मध्य प्रदेश राज्य,[5] के वाद में

4 ए.आई.आर. 1984 एस.सी. 802.

5 (1988) लेब आईसी 1680 (एस.सी.)

निर्णीत किया गया कि संविधान के अनुच्छेद 21 एवं 23 के अन्तर्गत बलात्श्रम में लगे मज़दूरों को तुरंत रिहाई एवं पुर्नवास के उचित प्रबन्ध का निर्देश शामिल है।। पिपुल्स यूनियन फार डेमोक्रेटिक राइट बनाम भारत सरकार,[6] के वाद में उच्चतम न्यायालय ने निर्णीत किया कि अनुच्छेद 24 किसी व्यक्ति के विरुद्ध भी प्रवर्तन कराया जा सकता है और किसी को भी 14 वर्ष से कम आयु के बच्चें को खतरनाक उद्योगों में लगाने से प्रतिबंधित करता है। इसी तरह के मिलते–जुलते मत को उच्चतम न्यायालय ने सलाल हाइड्रो प्रोजेक्ट बनाम जम्मू एवं काश्मीर राज्य,[7] में भी व्यक्त किया है। एम.सी.मेहता बनाम तमिलनाडु राज्य,[8] के वाद में न्यायालय ने माचिस उद्योग में लगे बलात मज़दूरों के सम्बन्ध में दिशा–निर्देश दिए।

विशाखा बनाम भारत सरकार,[9] के वाद में स्त्रियों के कार्यस्थल पर उसके खिलाफ यौन–शोषण रोकने के लिए अनेक दिशा–निर्देश जारी किए एवं उन दिशा–निर्देशों के पालन को सुनिश्चित करने हेतु प्रत्येक कार्यस्थल पर एक विशाखा कमेटी बनाने का निर्देश जारी किया। ऐपारेल एक्पोर्ट प्रोमोशन कांसिल बनाम ए.के.चोपड़ा,[10] के वाद में उच्चतम न्यायालय ने लिंग परीक्षण को यौन–शोषण का प्रकार बताया और उसके आधार पर कार्यस्थल में किए गए भेदभाव को असंवैधानिक घोषित किया। साथ ही कार्यस्थल पर स्त्रियों के लिए उचित वातावरण बनाने का निर्देश जारी किया। मेधा कोटवाल बनाम भारत सरकार,[11] के वाद में उच्चतम न्यायालय ने विशाखा वाद में जारी किए गए अनेकों दिशा–निर्देशों के पालन को सुनिश्चित न करा पाने पर खेद प्रकट किया है और केन्द्र व राज्य सरकारों को कड़ाई से पालन करने की हिदायत दी है।

उच्चतम न्यायालय ने एयर इण्डिया बनाम नरगिस मिर्जा,[12]यूसुफ बनाम बम्बई राज्य,[13]अंजली राय बनाम पश्चिम बंगाल राज्य,[14] इत्यादि वादों में महिलाओं के प्रति भेदभाव किए जाने पर आपत्ति जताई और अनुच्छेद 15 (1) के अन्तर्गत लिंग के आधार पर भेदवाव को असंवैधानिक करार दिया साथ ही ऐसी विधियों को जो अनुच्छेद 15 (3) के अन्तर्गत बनायी गई है, सकारात्मक भेदभाव करने पर भी वैध घोषित किया।

दत्तात्रेय मोरेश्वर पंगारकर बनाम बम्बई राज्य,[15] के वाद में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 42 के अनुपालन में बनाये गए मातृत्व लाभ अधिनियम में दिए गए लाभ को

6 ए.आई.आर. 1982 एस.सी. 1473.
7 ए.आई.आर. 1984 एस.सी. 177.
8 (1996) 9 स्केल 45.
9 ए.आई.आर. 1997 एस.सी. 3011.
10 ए.आई.आर. 1999 एस.सी. 625.
11 (2013)1 एससीसी 297.
12 ए.आई.आर. 1981 एस.सी. 1829.
13 ए.आई.आर. 1954 एस.सी. 321.
14 ए.आई.आर. 1952 कलकत्ता 825.
15 ए.आई.आर. 1952 एस.सी. 181.

अनुच्छेद 15 के अन्तर्गत लिंग के आधार पर भेदभाव मानने से इंकार कर दिया और इसे मौलिक अधिकार का उल्लंघन नहीं माना। दिल्ली म्युनिसिपल कारपोरेशन बनाम महिला कर्मकार,[16] के वाद में मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 के अन्तर्गत के क्षेत्राधिकार को बढ़ाते हुए इसके अन्तर्गत दैनिक मज़दूरी करने वाली महिला कर्मकार को इसके लाभ को देने का निर्देश दिया। बैंक ऑफ़ीसर ऐसोशियेशन बनाम स्टेट बैंक ऑफ़ इण्डिया,[17] के वाद में उच्चतम न्यायालय ने निर्णीत किया कि महिला कर्मकार अपने पुरुष सहयोगी से किसी भी प्रकार से कम नहीं होती है। अतः लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता है। एअर इण्डिया केबिन क्रू ऐसोसिएशन बनाम ऐसएसवनी मरचेन्ट और अन्य,[18]के वाद में कहा गया कि संविधान का अनुच्छेद 15 एवं 16 स्त्री–पुरूष के बीच भेदभाव–पूर्ण आचरण को प्रतिबंधित करता है लेकिन स्त्रियों को वरीयता या विशेष व्यवहार से छूट देने की स्वतंत्रता देता है।

उच्चतम न्यायालय ने अपने कई वादों में स्त्री और पुरूषों के बीच समान मज़दूरी की वकालत की है और निर्णीत किया है कि समान कार्य के लिए समान वेतन भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 व 16 के अन्तर्गत आता है।[19]

उच्चतम न्यायालय ने अपने कई वादों के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि कर्मकारों के विशेषतः महिला कर्मकारों की स्वास्थ्य एवं सेहत भारतीय संविधान में प्रदत्त 'जीने के अधिकार' के मौलिक अधिकार के अन्तर्गत आता है। स्वास्थ्य सेवाए सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्गत आती है और इन्हें हर क़ीमत पर यह महिला कर्मकारों को प्रदान किया जाना चाहिए।[20] उपभोक्ता शैक्षणिक रिसर्च सेंटर बनाम भारत सरकार,[21] के वाद में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कहा कि जीने के अधिकार के अन्तर्गत भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के साथ अनुच्छेद 39(ई), 41, 43, 48–ए के पढ़ने पर आजीविका का अधिकार भी शामिल है और इससे किसी भी कर्मकार को वंचित नहीं किया जा सकता है।

उच्चतम न्यायालय ने महिला कर्मकारों को भी अनेकों वादों के माध्यम से मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 के अन्तर्गत लाभों को ज़्यादा से ज़्यादा महिला कर्मकारों को देने के लिए इसके प्रावधानों के निर्वचन को अत्यन्त उदार बना दिया है। जैसे 7 दिनों के अन्तर्गत रविवार को भी शामिल माना जाएगा।[22] 160 दिनों के मातृत्व लाभ के अन्तर्गत

---

16 (2000) 3 एस.सी.सी. स्केल 224.

17 (1998) 1 एस.सी.सी. स्केल 428.

18 (2003) 6 एस.सी.सी. स्केल 277.

19 पिपुल्स यूनियन फार डेमोक्रेटिक राइटस बनाम भारत सरकार, ए.आई.आर. 1982 एस.सी. 1473; रनबीर सिंह बनाम भारत सरकार, ए.आई.आर. 1982 एस.सी. 879; भगवान दास बनाम स्टेट ऑफ़ हरियाणा, ए.आई.आर. 1987 एस.सी. 2049.

20 कलकत्ता इलेक्ट्रिक सप्लाई कारपोरेशन बनाम सुभाष चन्द्र बोस, ए.आई.आर. 1992 एस.सी. 573

21 ए.आई.आर. 1995 एस.सी. 922.

22 बी.शाह बनाम लेबर कोर्ट, कोयम्बटूर, ए.आई.आर. 1978 एस.सी. 12.

आधे दिन भी शामिल किया जाएगा।[23]

fu"d"k

उपर्युक्त प्रावधानों की विवेचना से स्पष्ट है कि असंगठित सेक्टरों में कामगार महिलाओं की स्थिति काफ़ी दयनीय है यद्यपि वे पुरूष कामगारों की तुलना में ज़्यादा घंटे कार्य करती हैं। उसकी सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक स्थिति में गिरावट के कारण यह स्थिति काफ़ी भयावह हो जाती है। लेकिन संतोष की बात है कि भारतीय विधिक व्यवस्था ने असंगठित सेक्टरों में कामगार महिलाओं के प्रति समय–समय पर कठोर कदम उठाए है। केन्द्र सरकार द्वारा लाया गया अधिनियम, असंगठित कर्मकार सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, 2008 इस दिशा में एक सराहनीय कदम है। स्पष्ट है कि यह अधिनियम असंगठित क्षेत्रों में कामगार महिलाओं की हर ज़रूरतों को पूरा करता है। यह अपने आप में एक पूर्ण अधिनियम है और यदि इसे पूरी ईमानदारी के साथ लागू किया जाता है तो असंगठित क्षेत्र में कार्य कर रही महिला कर्मकारो की सामाजिक, आर्थिक व शारीरिक स्थिति में सुदृढ़ता आएगी। अधिनियम ने केन्द्र व राज्यों पर जिम्मेदारी ड़ाली है कि समय–समय पर विशिष्ट योजनाएं चलाकर असंगठित क्षेत्रों में कार्य कर रही महिलाओं को लाभान्वित किया जाए। इसके अन्तर्गत अब तक अटल पेंशन योजना, उज्जवला योजना इत्यादि चलाई गई है।

उच्च्तम न्यायालय ने भी महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक व उसके शारीरिक स्थिति के प्रति गंभीर दिशा–निर्देश जारी किए है। न्यायालयों ने श्रम क़ानूनों का निर्वचन सदैव महिला कर्मकारों के हित में किया गया और प्रावधानों का उदार निर्वचन कर, महिला कर्मकारों की सामाजिक स्थिति सुधारने का प्रयत्न किया है। विशाखा या अन्य वादों के दिशा–निर्देशों का यदि कड़ाई से पालन सुनिश्चित कराया जाए तो काफ़ी हद तक स्थिति में बदलाव आ सकता है।

यह सही है कि सिर्फ़ अधिनियम या प्रावधान बनाकर या न्यायालय के निर्णय द्वारा इस समस्या से निजात नहीं पाया जा सकता है। अधिकतर असंगठित सेक्टरों में कार्य करने वाली महिलाएं अपना भाग्य और किस्मत समझकर दिन–रात परिश्रम करती रहती है। ज़रूरत इस बात की है कि असंगठित सेक्टर में कार्य कर रही महिला कर्मकारो को उसके अधिकारों के बारे में नित्य दिन अवगत कराया जाय जो समय–समय पर कारखानों या अन्य कार्यस्थलों पर कार्यशालाओं या अन्य माध्यम से कराया जा सकता है। इस सम्बन्ध में युवा पीढ़ी को एवं स्वयंसेवी संगठनों को आगे आकर, ऐसी महिलाओं को संभालने की ज़रूरत है।

• • •

23 राम बहादुर ठाकुर बनाम चीफ इंपेक्टर प्लानटेंशन, (1989) एलएलजे 20.

eu|"; thou vkj i'k| thou e Qd D;k g\ bldk fopkj dju ls gekjh dkQh e|lhcr gy gkrh g

– महात्मा गांधी

v lxfBr {k= d dkexkj rFkk mud vfèkdkj

idt dekj•

इस क्षेत्र में वे सारे संस्थान आते हैं जो 1948 के फैक्टरी एक्ट के अंतर्गत नहीं आते हैं। देश की अर्थव्यवस्था में 50 प्रतिशत से अधिक का योगदान करने वाले असंगठित या अनौपचारिक क्षेत्र के लोगों का कुल कामगार आबादी में हिस्सा 80 प्रतिशत है। भारत का अनौपचारिक क्षेत्र या असंगठित क्षेत्र मूल रूप से ग्रामीण आबादी से बना है। ये वे लोग हैं जो गांव में परंपरागत पेशे में कार्यरत हैं या शहरों और महानगरों में आकर आजीविका तलाशने का प्रयास करते हैं। गांवों में परंपरागत पेशेवर, भूमिहीन किसान और छोटे किसान भी इसी श्रेणी का हिस्सा हैं। शहरों में ये लोग अधिकतर खुदरा कारोबार, थोक कारोबार, विनिर्माण उद्योग, परिवहन, भंडारण और निर्माण उद्योग में काम करते हैं। अधिकतर ऐसे लोग है जो फ़सल की बुआई और कटाई के समय गांवों में चले जाते हैं और बाकी समय शहरों में काम करते हैं।

असंगठित क्षेत्र में काम की प्रकृति अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग होती है, साथ ही ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र में भी इसकी प्रकृति अलग–अलग होती है, जिसमें शामिल हैं दूर–दराज़ के ग्रामीण इलाक़े और सबसे असंवेदनशील शहरी क्षेत्र। ग्रामीण इलाकों में इसके तहत भूमिहीन खेतिहर मज़दूर, छोटे और सीमांत किसान, बटाईदार, पशुपालन और मत्स्य पालन करने वाले, बागवानी करने वाले, मधुमक्खी पालक, ताड़ी उतारने वाले, जंगल में काम करने वाले आदि आते हैं, जबकि शहरी इलाकों में इसमें निर्माण क्षेत्र के मज़दूर, बढ़ई, व्यापारी, परिवहन संचार आदि में लगे लोग आते हैं और साथ ही इनमें सड़क पर सामान बेचने वाले, रेहड़ी लगाने वाले, फेरी वाले, सिर पर बोझा ढोने वाले, मोची, टिन का काम करने वाले, कपड़ा तैयार करने वाले लोग भी आते हैं।

मूल तथ्य यह है कि इन लोगों को कोई सामाजिक सुरक्षा या अन्य सरकारी लाभ नियमित तौर पर प्राप्त नहीं होता है और न ही किसी विशेष संगठन या संस्थान से जुड़ पाते हैं। रोजी रोटी की तलाश में लगातार एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकने वाले इन लोगों के जीवन में स्थायित्व नहीं होता है। इसका परिणाम ये होता है कि इनकी संतान को नियमित शिक्षा दीक्षा या तो मिल नहीं पाती या मामूली होती है और अंत में वे भी असंगठित या अनौपचारिक क्षेत्र का हिस्सा बन जाते हैं। एक सर्वेक्षण में कहा गया है कि अनौपचारिक क्षेत्र में काम करने वाले 80 प्रतिशत लोग किसी मज़दूर या कर्मचारी संगठन या संघ के सदस्य नहीं है। राष्ट्रीय सैम्पल सर्वेक्षण कार्यालय की 68 वीं गणना के अनुसार गैर कृषि क्षेत्र में काम करने वाले चार लोगों में से तीन व्यक्ति अनौपचारिक या असंगठित क्षेत्र में काम करते हैं। इस क्षेत्र में काम करने वाले लोगों

• सामाजिक कार्यकर्ता, दिल्ली

का प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक है और शहरों में अपेक्षाकृत कम हैं। ग्रामीण क्षेत्र में 75 प्रतिशत कामगार अनौपचारिक क्षेत्र में काम करते हैं और शहरों में यह आंकडा 69.1 प्रतिशत का है।

vlxfBr {k= d ykx ey :i l fu;kDrk dh n;k–f"V ij fuHkj g%

अनौपचारिक क्षेत्र में काम करने वाले लोग मूल रूप से नियोक्ता की दया दृष्टि पर ही निर्भर करते हैं। इस क्षेत्र के नियोक्ता और कामगार के बीच कोई लिखित समझौता या अन्य पत्र नहीं होता है। सभी आश्वासन और जिम्मेदारियां मौखिक रूप से बता दी जाती हैं। इसका पालन करना या नहीं करना नियोक्ता पर निर्भर हैं। वास्तविकता यह है कि जिम्मेदारियां या काम अगर नियोक्ता की मर्जी के मुताबिक नहीं हो तो सारे आश्वासन समाप्त हो जाते हैं और कई बार मज़दूरी भी नहीं मिलती हैं। सर्वेक्षण के अनुसार अनौचारिक क्षेत्र में काम कर रहे 80 प्रतिशत लोगों का अपने नियोक्ता के साथ कोई लिखित समझौता नहीं है और 72 प्रतिशत को किसी प्रकार की कोई सामाजिक सुरक्षा लाभ प्राप्त नहीं हो पाती हैं।

Hkkjr e vukSipkfjd {k= vkj dkexkjk dh fLFkfr%

राष्ट्रीय सैम्पल सर्वेक्षण कार्यालय की 68वीं रिपोर्ट 2011–12 के आंकडों के आधार पर तैयार की गई है। असंगठित क्षेत्र में काम करने वाले लोगों को काम मूल रूप से निजी संबंधों, पारिवारिक रिश्तों और सामान्य जानकारी के आधार पर मिलता है। इस क्षेत्र में काम करने वाले लोगों के पास या तो परंपरागत कौशल होता है या संबद्ध कामकाज की मामूली जानकारी होती है। यह कौशल या तो पैतृक रूप से घर परिवार के साथ काम करते हुए सीखा जाता है या कुछ समय किसी अनुभवी कारीगर के साथ रहकर आता है। हालांकि यह किसी भी रूप से प्रमाणिक नहीं होता है।

अनौपचारिक क्षेत्र बहुत विस्तृत क्षेत्र हैं। इसमें वस्त्र उद्योग भी हैं जिसमें सबसे अधिक कामगार हैं तो सूचना प्रौद्योगिक तथा मीडिया जगत भी शामिल हैं जिसमें उच्च कुशल कर्मचारियों की ज़रूरत होती है। कई बेहद औपचारिक या संगठित क्षेत्रों में भी अनौपचारिक कामगार काम करते हैं। ये लोग संबंधित कंपनी के कर्मचारी नहीं होते है लेकिन उस कंपनी के राजस्व और कारोबार में महत्त्वपूर्ण योगदान करते हैं। इनकी नियुक्ति किसी एक ठेकेदार के माध्यम से होती है। कंपनी कर्मचारी को अपने रजिस्टर में नहीं दिखाती और ठेकेदार के पास कोई कंपनी नहीं होती। इस कारण से कर्मचारी किसी भी सामाजिक सुरक्षा लाभ से महरूम होता है।

सरकारी क्षेत्र में भी बडी संख्या में ऐसे कर्मचारी हैं जो अस्थायी हैं और इनकी गिनती भी असंगठित या अनौपचारिक क्षेत्र में होती है। सरकारी क्षेत्र में एक करोड 23 लाख कर्मचारी अस्थायी है जो कि कुल सरकारी श्रम बल का 43 प्रतिशत है। देश में

स्टाफिंग की प्रमुख संस्था इंडियन स्टाफिंग फेडरेशन के एक अध्ययन के मुताबिक कम से कम 69 लाख लोग सरकारी योजनाओं से जुड़ें हैं और इनको न्यूनतम वेतन और सामाजिक सुरक्षा जैसी कोई सुविधा नहीं दी जाती है। सरकार में 43 प्रतिशत कर्मचारी अस्थायी है और इनमें से एक करोड़ पांच लाख के पास कोई अधिकारिक अनुबंध नहीं है। सरकार की कंपनियों में अस्थायी कर्मचारियों की संख्या 75 प्रतिशत और समितियों, न्यासों और सहकारी संस्थाओं में यह आंकड़ा 69 प्रतिशत है।

अध्ययन में कहा गया है कि ज़्यादातर अस्थायी कर्मचारियों को एकमुश्त वेतन मिलता है। तकनीकी तौर पर इन्हें सरकारी कर्मचारी भी नहीं माना जाता है लेकिन ये अपनी आजीविका के लिए सरकार पर निर्भर है। आंकडों के अनुसार अनौपचारिक क्षेत्र में काम करने वाले लोग स्व रोजगार और वेतनभोगी हैं। वेतनभोगी प्रतिदिन या एक नियत अवधि के लिए अनुबंधित होते हैं। वेतनभोगी कामगारों का प्रतिशत 42 और स्वरोजगार के प्रतिशत 58 है। स्व रोजगार करने वाले लोग छोटी इकाईयों में काम करते हैं जिनमें छह से कम लोग काम करते हैं। असंगठित क्षेत्र में सबसे अधिक हिस्सेदारी इसी वर्ग की है।

सर्वेक्षण में कहा गया है कि असंगठित क्षेत्र में मज़दूरी का औसत 225 रुपए प्रतिदिन है जबकि संगठित क्षेत्र में यह आंकडा 401 रुपए प्रति दिन का है। अनौपचारिक क्षेत्र की संरचना भी सामाजिक ढांचे में निहित है। इस क्षेत्र में काम करने वाले लोग समाज के पिछड़े, निचले और वंचित वर्ग से संबंधित है। इन को सामान्य वित्त व्यवस्था के तहत लाभ नहीं मिल पाता है। एक अनुमान के अनुसार अपनी वित्त ज़रूरतों को पूरा करने के लिए इस क्षेत्र को केवल चार प्रतिशत पूंजी बैंकों से मिल पाती है। शेष पूंजी संबंधियों, रिश्तेदारों और सूदखोरों से जुटाई जाती है।

अनौपचारिक या असंगठित क्षेत्र का प्रदर्शन कार्पोरेट या संगठित क्षेत्र से बेहतर रहा है। अनौपचारिक क्षेत्र का अर्थव्यवस्था में योगदान संगठित क्षेत्र से अधिक होता है। यह क्षेत्र रोजगार के अवसर पैदा करने, विदेशी मुद्रा अर्जित करने और औद्योगिक उत्पादन में योगदान देने में संगठित क्षेत्र को काफ़ी पीछे छोड़ देता है। राष्ट्रीय सैम्पल सर्वेक्षण कार्यलय के वर्ष 2011–12 के सर्वेक्षण के अनुसार गैर कृषि असंगठित क्षेत्र की अर्थव्यवस्था में हिस्सेदारी लगभग 50 प्रतिशत थी जबकि रोजगार के 90 प्रतिशत अवसर इसी क्षेत्र में मौजूद थे। एक अनुमान के अनुसार, अनौपचारिक या असंगठित क्षेत्र में 46 करोड़ लोग कार्यरत हैं और इनमें से भी 24 करोड़ 20 लाख स्वरोजगार करते हैं।

असंगठित या अनौपचारिक क्षेत्र की आवश्यकता और महत्ता को रेखांकित करते हुए केंद्रीय वित्त मंत्री अरूण जेटली ने वित्त वर्ष 2014–15 का आम बजट पेश करते हुए कहा कि लघु, छोटे और मध्यम एसएमई स्तर के उद्योग धंधे देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। औद्योगिक उत्पादन और रोजगार सृजन में उनकी भागीदारी महत्त्वपूर्ण है। सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि ज़्यादातर एसएमई एसटी, एससी और ओबीसी वर्ग के

लोग संचालित करते हैं। इस वर्ग को वित्त पोषण करना बेहद जरूरी है। खासतौर से समाज के निचले वर्ग को सबल बनाने की ज़रूरत है।

Jfed l?kksa dh ekax

श्रमिक संघों का कहना है कि सरकार को असंगठित क्षेत्र के कामगारों के लिए समग्र नीति बनानी चाहिए और अर्थव्यवस्था में उनके योगदान को स्वीकार करते हुए व्यवस्था में उचित भागीदारी देनी चाहिए। सरकार को विशेष रूप से निर्माण क्षेत्र, घरेलू नौकरों, मंडियों में काम करने वाले पल्लेदारों और रेहड़ी पटरी वालों पर ध्यान देना चाहिए। दुकानदारों और छोटे व्यापारियों के संगठन (अखिल भारतीय व्यापार संघ) का कहना है कि सरकार को असंगठित क्षेत्र में काम करने वाले लोगों को उचित मान सम्मान देते हुए नीति निर्माण में भागीदारी देनी चाहिए और राजस्व में उनकी हिस्सेदारी को देखते हुए सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध करानी चाहिए।

निर्माण मज़दूरों के संगठनों के संघ निर्माण मज़दूर अधिकार अभियान के अनुसार पूरे निर्माण उद्योग में मज़दूर पंजीयन को अनिवार्य बनाना चाहिए और श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा लाभ देने के लिए सरकार को संबंधित कंपनियों से अंशदान लेना चाहिए। नेशनल एसोसिएशन ऑफ़ स्ट्रीट वेंडर्स ऑफ़ इंडिया ने रेहड़ी पटरी और फेरी लगाने आजीविका कमाने वालों के लिए नियमित व्यवस्था करने की मांग की है। हालांकि संसद ने समय समय पर असंगठित या अनौपचारिक क्षेत्र के लिए कई क़ानून बनाए हैं। लेकिन ये क़ानून असंगठित क्षेत्र की समग्रता को ध्यान में रखकर नहीं बल्कि क्षेत्र विशेष की ज़रूरत को देखकर बने हैं। इनमें चाय बागानों के श्रमिकों, निर्माण मज़दूरों और रेहड़ी पटरी पर सामान बेचने वालों के लिए अलग–अलग क़ानून हैं। जानकारों का कहना है कि सरकार को असंगठित क्षेत्र की श्रम शक्ति का व्यापक अध्ययन कराना चाहिए और एक देशव्यापी योजना तैयार करनी चाहिए। श्रमिकों के लिए बने क़ानूनों को लागू करने की व्यवस्था करनी चाहिए। कर्मचारी भविष्य निधि संगठन इसमें केंद्रीय भूमिका निभा सकता है और असंगठित क्षेत्र के सभी कामगारों को सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध करा सकता है।

1450 djksM+ dk dks"k vkSj 12 lky esa 12 isa'ku%

दिल्ली में दिल्ली भवन एवं अन्य श्रमिक कल्याण बोर्ड तकरीबन 1450 करोड़ रुपए बटोरने के बाद अपने 12 साल के कार्यकाल में अभी तक केवल 12 मज़दूरों को पेंशन जारी कर सका है। बोर्ड का गठन दिल्ली सरकार ने सितंबर 2002 में किया और इसका उद्देश्य दिल्ली में कार्यरत निर्माण मज़दूरों का पंजीकरण कर उनको श्रम कल्याण और सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध कराना निर्धारत किया गया। जून 2014 में जारी आंकड़ों के अनुसार बोर्ड के पास 1450 करोड़ रुपए से अधिक का कोष जमा है। यह कोष श्रमिकों के अंशदान से बनता है। पिछले 12 साल में बोर्ड ने 591 श्रमिकों की मदद की है। इनमें से कार्यस्थल पर दुर्घटना में मारे गए 86 मज़दूरों के परिजनों

को वित्तीय सहायता के रूप में 31 लाख 60 हजार रुपए दिए गए हैं। मातृत्व लाभ केवल 58 महिला श्रमिकों को दिया जा सका। मात्र छह मज़दूरों को चिकित्सा के लिए मदद दी गई। सिर्फ़ 12 मज़दूरों को पेंशन जारी की जा सकी और पांच मज़दूरों को विवाह के लिए मदद दी गई। शिक्षा के लिए 353 श्रमिकों को सहायता दी गई और आवश्यक वस्तुएं खरीदने के लिए 15 श्रमिकों को पैसा दिया गया। बोर्ड ने इस अवधि में श्रमिकों के कल्याण के लिए केवल 56 लाख सात हजार रुपए व्यय किए। निर्माण मज़दूर अधिकार अभियान के संयोजक थानेश्वर दयाल आदिगौड़ ने बताया कि दिल्ली में लगभग 10 लाख निर्माण मज़दूर हैं। जिनमें से बोर्ड ने 30 जून 2014 तक केवल दो लाख 18 हजार 683 श्रमिकों का ही पंजीकरण किया है। हालांकि बोर्ड ने दिल्ली में श्रमिकों के कल्याण के लिए 18 योजनाएं बनाई हैं लेकिन इनका क्रियान्वयन नियमित तौर पर नहीं हो पा रहा है।

Je vkanksyu%

आज से 121 साल पहले श्रमिकों ने 'अमेरिकन फेडरेशन ऑफ लेबर' के इस प्रस्ताव को अमल में लाना शुरू किया था कि पहली मई 1886 से काम के आठ घंटे ही होंगे। मई दिवस मज़दूरों की इसी जीत का उत्सव है। उन्होंने न सिर्फ़ काम के घंटे तय कराए, बल्कि और भी कई सामाजिक–आथिर्क सुविधाएं हासिल कीं। लेकिन पहली मई 2007 को यह जश्न देश के सिर्फ़ संगठित मज़दूर ही मनाएंगे। आज भी देश के 93 फीसदी मज़दूरों को वह सब कुछ नहीं मिल सका है, जिन्हें हासिल करने का सपना श्रम आंदोलनों ने देखा था।

देश के लाखों श्रमिक आज भी असुरक्षित और अस्वास्थ्यकर माहौल में काम करने को विवश हैं। वहां भी उन्हें वाजिब पैसे नहीं मिलते। उन्हें श्रम क़ानूनों का कोई लाभ नहीं मिल रहा। वे आमतौर पर सामाजिक सुरक्षा और स्वास्थ्य संबंधी सुविधाओं से वंचित रहते हैं। उनकी आवाज़ भी अनसुनी कर दी जाती है, क्योंकि वे प्रायरू संगठित नहीं हैं। बहुतों को तो श्रमिक की मान्यता तक नहीं मिली हुई है। उनके सामने अस्तित्व का संकट मंडराता रहता है। उनके पास इतना अवकाश भी नहीं होता कि वे स्वतंत्रता के बारे में सोच सकें या अमानवीय स्थितियों से मुक्ति के बारे में।

laoSèkkfud vfèkdkjksa dk lp%

मज़दूरों को शोषण से बचाव के लिए भी अनेक प्रावधान किए गए। इस तरह तीन पक्ष बने – राज्य, नियोक्ता और श्रमिक। यह माना गया कि ये तीनों मिलकर देश के नीति–निर्माण में अपनी भूमिका निभाएंगे। इस तथ्य को 27 अप्रैल को इंडियन लेबर कॉन्फ्रेंस के 41वें सम्मेलन का का उद्घाटन करते हुए प्रधानमंत्री ने भी रेखांकित किया।

मज़दूर राष्ट्र निर्माण में अपनी भूमिका निभाने को तैयार हैं। बदले में राज्य ने तमाम वैधानिक उपायों के जरिए उन्हें कई तरह के अधिकार और सुविधाएं दी हैं। उसने

रोजग़ार को रेग्युलेट कर उन्हें शोषण से बचाने की कोशिश की है। उन्हें संगठन बनाने और सामूहिक समझौता करने का हक दिया है। बंधुआ और बाल मज़दूरी से मुक्ति दिलाई है। धन के समान वितरण के लिए मज़दूरी भी निर्धारित–नियंत्रित की है, सामाजिक सुरक्षा दिलाई है। पर इन सबके बाद भी हासिल क्या हुआ? छह दशकों की विकास यात्रा कुछ और ही कहानी कहती है। कुल 4.2 करोड़ (वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार) में से केवल 7 फीसदी मज़दूरों को ही संवैधानिक और क़ानूनी अधिकार प्राप्त हैं। इससे मज़दूरों को लेकर राज्य और उत्पादक समुदाय की सोच का खुलासा होता है। कहा गया था कि भारत के पारंपरिक अर्थतंत्र में अपनी अहम भूमिका निभानेवाले कारीगरों, छोटे उत्पादकों, विक्रेताओं और छोटे–मोटे रोजग़ारों को मॉडर्न इकॉनमी के फ्रेमवर्क में खपा लिया जाएगा, पर वास्तविकता यह है कि बहुसंख्य मज़दूर असंगठित क्षेत्र में हैं और तमाम अधिकारों से वंचित हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था में संगठित और असंगठित क्षेत्रों की एक दोहरी व्यवस्था चल रही है। इसका फायदा भारतीय औद्योगिक क्षेत्र को मिल रहा है। आज संगठित उद्योगों को बड़ी संख्या में सस्ते मज़दूर मिल रहे हैं। इन असंगठित मज़दूरों के बूते मालिक संगठित मज़दूरों पर भी दबाव बनाए रखने में सफल हो रहे हैं। कई औद्योगिक इकाइयों ने कम मज़दूरी पर मज़दूर रखे जिससे उनका लागत व्यय कम पड़ता है। वर्ल्ड बैंक और दूसरे संगठनों के कई अध्ययनों से पता चला है कि कई औद्योगिक इकाइयां असंगठित मज़दूरों का रजिस्ट्रेशन नहीं होने देतीं। वे नियमों की अवहेलना करती हैं और टैक्स भी मार लेती हैं। यह तर्क पूरी तरह गलत साबित हुआ है कि असंगठित मज़दूर सिर्फ़ परंपरागत क्षेत्रों में हैं और ये क्षेत्र धीरे–धीरे आधुनिक अर्थव्यवस्था का हिस्सा बन जाएंगे।

ग्लोबलाइज़ेशन और स्ट्रक्चरल एडजस्टमेंट नीतियों ने फॉर्मल सेक्टर को और कमज़ोर बनाया है। इन नीतियों ने निजीकरण और छंटनी को बढ़ावा दिया है। अंतरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्द्धा के कारण कंपनियां कम वेतन और अल्प सुविधाओं पर मज़दूरों को रखने के लिए प्रेरित हुई हैं। वे ज़्यादा से ज़्यादा आउटसोर्सिंग कराना चाहती हैं। असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों में दो तिहाई संख्या महिलाओं की है। उन्हें मज़दूरी भी कम मिलती है और भेदभाव का शिकार भी होना पड़ता है।

ज्यों–ज्यों असंगठित क्षेत्र का दायरा बढ़ा है और ऐसे मज़दूरों की रोजग़ार संबंधी असुरक्षा और शोषण बढ़ा है, उन्हें सामाजिक सुरक्षा और दूसरे अधिकार प्रदान करने की मांग विश्व स्तर पर ज़ोर पकड़ रही है। कई श्रमिक संगठन, ट्रेड यूनियन और एनजीओ यह मानते हैं कि सरकार इस पर पर्याप्त ध्यान नहीं दे रही है। उनका कहना है कि सरकार क़ानून के जरिए उनका रोजग़ार सुनिश्चित करे और उन्हें सामाजिक सुरक्षा दे। उनके अधिकारों की रक्षा के लिए सरकार पर्याप्त संसाधन मुहैया कराए। उनकी मांग है कि सरकार स्वास्थ्य संबंधी सुविधाओं का निजीकरण न करे। इसके अलावा नीति–निर्माण की प्रक्रिया में दलितों, आदिवासियों और महिलाओं की भागीदारी बढ़ाई

जाए। उनका कहना है कि सरकार श्रमिक–राज्य और नियोक्ता के त्रिपक्षीय समझौते की अवधारणा को कमज़ोर न करे। इनका मानना है कि अधिकार देकर ही असंगठित मज़दूरों की भागीदारी बढ़ाई जा सकती है, उन्हें सक्षम बनाया जा सकता है।

v lxfBr {k= ek= okV cd cudj jg x;k

संख्या के लिहाज से यह वर्ग एक बहुत बड़ा वोट बैंक है। इसलिए यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इनकी सामाजिक सुरक्षा के लिए देश में अब तक कोई क़ानून नहीं है। मज़दूरों की सामाजिक सुरक्षा के लिए पहले से बने क़ानून सिर्फ़ संगठित क्षेत्र के मज़दूरों पर लागू होते हैं। यद्यपि असंगठित क्षेत्र की कुछ श्रेणियों के लिए कुछ क़ानून देश के अलग–अलग हिस्सों में पहले से मौजूद हैं, जैसे महाराष्ट्र का मथारी वर्कर्स क़ानून, डॉक वर्कर्स क़ानून, रोजग़ार गारंटी क़ानून, तमिलनाडु सामाजिक सेक्यूरिटी क़ानून, 1996 में बना केंद्रीय निर्माण मज़दूर क़ानून आदि। पर ये क़ानून असंगठित क्षेत्र के अधिकांश मज़दूरों को सुरक्षा देने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। 'कल्याण कोश व कल्याण बोर्ड' की योजनाएं असंगठित क्षेत्र की कुछ श्रेणियों तक व कुछ राज्यों तक ही सीमित हैं। परिणामस्वरूप अधिकतर असंगठित मज़दूर इन क़ानूनी प्रावधानों तथा अन्य विभिन्न योजनाओं का फायदा नहीं उठा पाते हैं।

etnjk dh lqj{kk ds fy, Je vk;kx dh igy

मज़दूरों की सुरक्षा के बारे में श्रम आयोग ने कहा कि इसका अर्थ है रोजग़ार की सुरक्षा, न्यूनतम या न्यायसंगत मज़दूरी तय करना, इसकी जानकारी मज़दूरों तक पहुंचाना, किसी अवैध कटौती के बिना मज़दूरों को इसकी उपलब्धि सुनिश्चित करना और कार्यस्थल पर ऐसी व्यवस्था स्थापित करना जिससे न्यूनतम मज़दूरी और कार्य स्थितियों संबंधी क़ानून क्रियान्वित हो सके। मज़दूरों की भलाई या सुरक्षा के कार्य में चिकित्सा सेवाएं, चोट लगने पर मुआवज़ा, बीमा, प्रोविडेंट फंड, पेंशन लाभ भी शामिल हैं।

असंगठित मज़दूरों के क्षेत्र में विविध तरह के कार्य और व्यवसाय होने के कारण उनकी सुरक्षा के लिए कोई एक छातानुमा क़ानून बनाना सरल कार्य नहीं है। इनमें से कुछ महत्तवपूर्ण कार्य निम्न हैंकृ कृषि मज़दूर, वन मज़दूर, मछली कामगार, रिक्शा चालक, रेहड़ी पटरी पर सामान बेचने वाले, अपने घर में तरह–तरह के काम करने वाले मज़दूर या कारीगर, दूसरों के घर में काम कर रहे घरेलू कामगार, निर्माण मज़दूर, सफाईकर्मी, कूड़ा बीनने वाले, दुकानों व व्यापार स्थलों में काम करने वाले मज़दूर आदि। इन विविध तरह के कार्यों के लिए एक क़ानून से सुरक्षा देने में कठिनाई तो है, पर इसके बावजूद इन सब कार्यों के लिए कम से कम कुछ सुरक्षा देने वाला एक छातानुमा क़ानून बनाना आवश्यक है। यदि ऐसा क़ानून नहीं होगा, तो फिर बहुत से विविध कार्यों के लिए अलग–अलग क़ानून बनाने होंगे, जिसमें काफ़ी लंबा समय लग जाएगा।

श्रम मंत्रालय की विभिन्न रिपोर्टें मज़दूरों को सुरक्षा देने के लिए एक समग्र क़ानून बनाने की बात उठाती रही हैं। अंत्तरू दूसरे श्रम आयोग को यह जिम्मेदारी सौंपी गई कि वह असंगठित मज़दूरों के लिए छातानुमा क़ानून का प्रारूप तैयार करे।

श्रम आयोग के अनुसार असंगठित क्षेत्र के लिए बनाए जाने वाले क़ानून के उद्देश्यों में मज़दूरों के लिए पहचान पत्र, न्यूनतम आर्थिक सुरक्षा, न्यूनतम सामाजिक सुरक्षा, गरीबी दूर करने में मदद करना, बाल मज़दूरी समाप्त करना और बच्चों का बेहतर भविष्य बनाना, मज़दूरों के सदस्य आधारित संगठन बनाने को प्रोत्साहन तथा निर्णय प्रक्रिया में असंगठित मज़दूरों के संगठन के माध्यम से मज़दूरों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित होना चाहिए।

श्रम आयोग ने स्वास्थ्य सेवा, मातृत्व सुरक्षा और छोटे बच्चों की देख–रेख, प्रोविडेंट फंड का लाभ, परिवार संबंधी लाभ, आवास, पेयजल व सफाई स्थितियों संबंधी लाभ, रोजग़ार के दौरान लगी चोट के मुआवज़े संबंधी लाभ, अवकाश प्राप्ति व इसके बाद के लाभ (ग्रेच्यूटी, पेंशन, परिवार की पेंशन), आय अर्जन की समाप्ति या आय अर्जन की क्षमता न रहने की स्थिति में कुछ सुरक्षा, मज़दूरों की शिक्षा व कुशलता बढ़ाने की योजनाएं, बाल मज़दूरी हटाने की योजनाएं, बंधक मज़दूरी हटाने की योजना व अन्यायपूर्ण श्रम संबंध हटाने के प्रयास जैसे मुद्दों को असंगठित मज़दूरों की सामाजिक स्थिति में शामिल करने की सिफारिश की है।

असंगठित मज़दूर विषय से संबंधित अनेक व्यक्तियों से विचार–विमर्श और इस विषय पर गठित एक अध्ययन दल के सुझावों पर सोच–विचार के बाद राष्ट्रीय श्रम आयोग ने असंगठित मज़दूरों के लिए छतरीनुमा क़ानून का प्रारूप सुझाया है, तथा अपनी रिपोर्ट में इस क़ानून के अनेक प्रावधानों की सिफारिश की है।

राष्ट्रीय श्रम आयोग की रिपोर्ट जारी होने के बाद केन्द्रीय श्रम मंत्रालय ने नवंबर 2002 में असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों पर एक राष्ट्रीय सेमिनार आयोजित किया। इस सेमिनार ने क़ानूनी पक्षों पर एक तकनीकी दल नियुक्त किया। तकनीकी दल के सुझावों में कहा गया है कि कृषि मज़दूरों और असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों के लिए क़ानून बनाते वक्त रोजग़ार नियमन, जहां भी संभव हो न्यूनतम आय की गारंटी व विभिन्न स्कीमों को तैयार करने व लागू करने में मज़दूरों की भागीदारी पर विशेष ध्यान देना चाहिए। केन्द्र सरकार की भूमिका नेतृत्व व समन्वय की है। सामान्यतरू योजना राज्य व केन्द्रशासित क्षेत्र के स्तर पर कार्यान्वित होनी चाहिए। आर्थिक संसाधन जुटाने में, इनके वितरण में, विभिन्न राज्य बोर्डों के माध्यम से इनका ऑडिट करवाने में केन्द्रीय सरकार की महत्तवपूर्ण भूमिका है। न्यूनतम मज़दूरी की व्यवस्था क़ानून में होनी चाहिए। राष्ट्रीय स्तर पर एक न्यूनतम मज़दूरी तय होनी चाहिए ताकि किसी भी राज्य की न्यूनतम मज़दूरी इससे नीचे नहीं जा सके।

vlaxfBr {ks= ds dkexkjksa ds fy, dY;k.kdkjh ;kstuk,¡

सरकार ने असंगठित क्षेत्र के कामगारों की ज़रूरतों को ध्यान रखते हुए कई कल्याणकारी योजना आरंभ की है। इनमें आम आदमी बीमा योजना, राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना, असंगठित श्रमिक सामाजिक सुरक्षा अधिनियम एवं राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा निधि और सामाजिक सुरक्षा समझौते शामिल है। सामाजिक सुरक्षा समझौते विदेशी सरकारों के साथ किए गए समझौते हैं जिनमें संबद्ध देशों में काम करने वाले भारतीय कामगारों को सामाजिक सुरक्षा लाभ दिया जाता है। ये समझौते तकरीबन 15 देशों के साथ किए जा चुके हैं। केंद्र सरकार की प्राथमिकता को ध्यान में रखते हुए कर्मचारी भविष्य निधि संगठन ने एक उप समिति बनाने का फैसला किया है जो अनौपचारिक क्षेत्र के कामगारों को सामाजिक सुरक्षा, चिकित्सा और अन्य लाभ देने के उपाय तलाशेगी। समिति के दायरे में कामगारों को पेंशन और ग्रेच्यूटी जैसे लाभ देने के रास्ते तलाशना भी है। यह समिति असंगठित कामगारों की समस्याओं का व्यापक अध्ययन करेगी और उन्हें कर्मचारी भविष्य निधि संगठन के दायरे में लाने के उपाय सुझाएगी। इनमें निर्माण क्षेत्र, चाय एवं काफ़ी के बागान, घरेलू नौकर, रेहड़ी पटरी पर सामान बेचने वाले, फेरी लगाने वाले, स्व रोजग़ार करने वाले, मछुआरे, सरकारी एवं निजी क्षेत्र में दिहाडी या अनुबंध पर काम करने वाले लोग भी शामिल हैं। इसके अलावा सरकार ने कर्मचारी भविष्य निधि के अस्पतालों में चिकित्सा लाभ अर्जित करने की सीमा 15000 रुपए प्रति माह के वेतन से बढाकर 21000 रुपए प्रति माह कर दी है। इससे तकरीबन 50 लाख और श्रमिकों को यह लाभ मिल सकेगा।

अनौपचारिक क्षेत्र में काम करने वाले लोगों में सबसे बडा हिस्सा दुकानदारों का है। ये गली मोहल्लों में रहकर सीमित दायरे में काम करते हैं। इन्हीं के साथ फेरी लगाने वाले, रेहड़ी पटरी वाले और अपने छोटे वाहन चलाने वाले लोग भी शामिल है। देशभर के छोटे – बडे शहरों में फैली थोक मंडियों और बाज़ारों में काम करने वाले मज़दूर और पल्लेदार भी असंगठित क्षेत्र का हिस्सा है। मुख्य रूप से मंडियों और बाज़ारों में बोझा ढोने वाले मज़दूरों की गिनती छोटे दुकानदारों या एसएमई के साथ की जाती है। लेकिन इनमें एक बडा हिस्सा ऐसे लोगों का है जो किसी के साथ काम नहीं करते हैं बल्कि अपना अलग काम करते हैं। हालांकि ये लोग तीन से छह लोगों के समूह में काम करते हैं।

श्रम और रोजग़ार मंत्रालय ने असंगठित क्षेत्र में आने वाले बुनकरों, हथकरघा श्रमिकों, मछुआरों और मछलीपालन करने वालों, ताड़ी निकालने वालों, चमड़ा कार्यकर्ताओं, वृक्षारोपण मज़दूरों, बीड़ी मज़दूर श्रमिकों के कल्याण सुनिश्चित करने के लिए, श्रमिक सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, 2008 अधिनियमित किया। यह अधिनियम राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा बोर्ड के एक संविधान उपलब्ध कराता है जो सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के निर्माण जीवन और विकलांगता कवर, स्वास्थ्य और मातृत्व लाभ, वृद्धावस्था सुरक्षा और कोई भी अन्य लाभ जो असंगठित मज़दूरों के लिए सरकार

द्वारा निर्धारित किया गया हो के लिए अपनी अनुशंसाएं देता है। तदनुसार, मंत्रालय ने एक राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा बोर्ड का गठन किया है। (स्रोतः श्रम और रोजग़ार मंत्रालय) असंगठित क्षेत्र के कामगारों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान कराने के संबंध में, सरकार ने असंगठित कामगार सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, 2008 अधिनियमित किया। राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना (आरएसबीवाई) असंगठित क्षेत्र में गरीबी रेखा के नीचे के परिवारों (पांच की इकाई) को परिवार फ्लोटर आधार पर प्रतिवर्ष 30,000 रू. की स्मार्ट कार्ड आधारित नकदी रहित स्वास्थ्य बीमा सुरक्षा प्रदान कराने के लिए आरंभ की गई। सरकार ने मृत्यु एवं अपंगता के लिए बीमा प्रदान करने के लिए आम आदमी बीमा योजना (एएबीवाई) प्रारंभ की है।

वित्त मंत्रालय ने असंगठित क्षेत्र के कामगारों को 1,000 रूपये का न्यूनतम मासिक पेंशन उपलब्ध कराने का एक प्रस्ताव मंजूर कर लिया है। (स्रोत–छक्ज्ट इण्डिया, 24 जनवरी, 2014) सरकार का असंगठित क्षेत्र की महिला कर्मियों को भी मातृत्व सुरक्षा की सुविधाएं देने का इरादा श्रम मंत्रालय के मुताबिक असंगठित क्षेत्र में 42 करोड़ से 43 करोड़ वर्कर काम करते हैं। इनमें 20 प्रतिशत से 25 प्रतिशत महिलाएं हैं यानि करीब 8 से 10 करोड़ महिलाकर्मियों को मातृत्व सुरक्षा की सुविधा देने पर श्रम मंत्रालय ने विचार शुरू कर दिया है।

जाहिर है... असुरक्षित माहौल में काम करने वाली ऐसी ज़्यादातर महिलाएं न सिर्फ़ समाज के कमज़ोर तबके से होती हैं बल्कि उनके सामने कई तरह की चुनौतियां भी होती हैं। हालांकि श्रम मंत्रालय को भी इस बात का अंदाज़ा है कि असंगठित क्षेत्र में इसके प्रावधानों को लागू करना बेहद मुश्किल होगा। अब सरकार राज्य सरकारों के साथ इस प्रस्ताव पर मशविरा करने वाली है। इसके लिए 6 अलग–अलग प्रादेशिक सम्मेलन बुलाने की तैयारी है। (स्रोत छक्ज्ट इण्डिया, 12 अगस्त, 2016)

e tnjh lfgrk foek;d 2017

संसद में मानसून सत्र के दौरान सरकार ने लोकसभा (11 अगस्त, 2017) में लेबर बिल पेश किया है। साथ ही श्रमिकों की न्यूनतम मज़दूरी को तय करने का काम भी केंद्रीय स्तर पर किया जाएगा। इस बिल को लोकसभा मे श्रम एवं रोजग़ार मंत्री बंडारु दत्तात्रेय ने मज़दूरी संहिता विधेयक, 2017 के तहत पेश किया है जिसमें उन्होंने कुछ क़ानून मिलाकर बदलने का प्रस्ताव रखा है। इस बिल से असंगठित क्षेत्र के लगभग 40 करोड़ से भी ज़्यादा मज़दूरों को फायदा हो सकता है, जिन्हें फिलहाल न तो कोई देखने वाला है और न ही कोई पूछने वाला है कि उनका घर कैसे चल रहा होगा। मज़दूर संहिता विधेयक 2017 के माध्यम से चार क़ानूनों –मज़दूरी संदाय अधिनियम 1936, न्यूनतम मज़दूरी अधिनियम 1948, बोनस संदाय अधिनियम 1965 और समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976 को मिलाकर उसे सुव्यवस्थित और सरल बनाने का प्रस्ताव रखा है। यह विधेयक व्यापक परिदृश्य में लाया गया है। मज़दूरों के शोषण की कोई आशंका नहीं रहेगी।

दत्तात्रेय ने कहा, किसी भी स्थिति में श्रमिकों के अधिकारों का हनन नहीं होगा। यह श्रमिकों की मज़दूरी के संदर्भ में ऐतिहासिक बदलाव लाने वाला होगा और देश में पहली बार सार्वभौम न्यूनतम मज़दूरी लागू होने का मार्ग प्रशस्त होगा।

bl fcy l feyu oky Qk;n%

- इस बिल की खासियत यह है कि किसी भी मज़दूर की तनखाह नही दी गई या फिर कम दी गई तो 50 हजार रूपय का जुर्माना लगेगा और अगर पांच साल के दौरान ऐसा फिर किया गया तो 1 लाख जुर्माना या फिर तीन महीने की कैद या फिर दोनों सजा एक साथ हो सकती है।
- दिहाड़ी मज़दूरों की शिफ्ट ख़त्म होने के बाद, साप्ताहिक मज़दूरों के सप्ताह के आख़िरी दिन और पाक्षिक मज़दूरों को कार्य दिवस ख़त्म होने के बाद दूसरे दिन ही पगार देनी होगी और मासिक आधार वालों को अगले महीने के 7 तारीख तक पगार देनी होगी।
- किसी भी मज़दूर की पगार तभी काटी जा सकती है जब वह अपनी ड्यूटी से गैरहाजिर रहा हो या फिर उसकी वजह से कोई नुकसान हुआ हो।
- फिलहाल विपक्ष ने इस बिल पर विरोध जताते हुए कहा है कि सरकार ने अल्प सूचना पर बिल पेश कर दिया है लेकिन वहीं दूसरी तरफ श्रम एवं रोजग़ार मंत्री बंडारु दत्तात्रेय का कहना है कि अभी बिल पेश किया गया है और इस पर चर्चा बाद में होगी।
- काम के दौरान मृत्यु हो जाए तो ऐसे मिलेगा मुआवज़ा।
- असंगठित क्षेत्र के कई कर्मचारी या मज़दूर आए दिन काम के दौरान चोटग्रस्त होते हैं या फिर उनकी मृत्यु हो जाती है। कुछ स्थायी रूप से अपंग हो जाते हैं। ऐसे में मुआवज़े की व्यवस्था है। लेकिन इसकी जानकारी नहीं है कि मुआवज़ा कैसे मिलता है, इसे तय करने की विधि क्या है और मिले तो क्या करेंगे? जानिए दिल्ली हाईकोर्ट की वकील नंदिता झा से३

evkot+k olyh lcèkh lfVfQdV

कुछ दिन पहले सलमा नाम की महिला मुआवज़ा वसूली संबंधी सर्टिफिकेट लेकर आई थी। इस पत्र में गुड़गांव के श्रमायुक्त ने कलेक्टर को तीन लाख 46 हजार 822 रु. वसूली करने के लिए लिखा था। यह सर्टिफिकेट 2014 का था। सलमा के पति एक कंस्ट्रक्शन कंपनी में काम करते थे और काम के दौरान ही उनकी मृत्यु हो गई। इसके एवज में सलमा को उसका मुआवज़ा मिलना था, लेकिन आज तक नहीं मिला है। बतौर वकील यह पता करने की कोशिश की तो पाया कि जिस कॉन्ट्रेक्टर से मुआवज़ा लेना था, वह संपत्ति बेचकर फरार हो गया। अब सलमा को पैसा लेना है तो उसे कॉन्ट्रेक्टर की चल–अचल संपत्ति का पताकर श्रमायुक्त को बताना होगा और जिले के कलेक्टर को पत्र लिखना हगा, जहां उक्त कॉन्ट्रेक्टर की संपत्ति है।

दुर्घटना या मृत्यु की स्थिति में इसकी जानकारी मालिक और संबंधित अधिकारी को रजिस्टर्ड डाक से भेजी जानी चाहिए। इसमें मज़दूर की सारी जानकारी हो। प्रत्येक नियोक्ता को मज़दूर के दुर्घटना संबंधी जानकारी को विवरण सहित लेबर कमिश्नर को दी जानी चाहिए। (स्रोत–मज़दूरों के हक, 17 मई, 2016)

Jfed e|vkotk dkuu%

दैनिक भास्कर की ख़बर के मुताबिक, इस तरह की जानकारी न होने से बेबस महिलाएं और परिवार दर–दर भटकते हैं। यह मसला श्रमिक मुआवज़ा क़ानून 1923 के तहत आता है। असंगठित क्षेत्र में मज़दूरों की सामाजिक सुरक्षा के क़ानून कम हैं। अगर मालिक अपने मज़दूरों के लिए ईएसआई की सुविधा लेते हैं तो दुर्घटना की स्थिति में आश्रितों को ईएसआई से मदद मिलती है। बीमित राशि से अधिक की क्षति में मालिकों को शेष राशि देनी पड़ती है। जहां ईएसआई क़ानून लागू नहीं किया गया है, वहां भी मुआवज़ा देना होगा। वहां पूरा दायित्व मालिक का होगा। वर्ष 2000 में एक संशोधन कर अनियमित मज़दूरों को भी इसकी पात्रता के दायरे में ला दिया। एक महत्त्वपूर्ण बात इसके सेक्शन 12 में दी है। इसके अनुसार भले ही कोई मज़दूर ठेकेदार के अधीन किसी कंपनी में काम करने वाला अनियमित मज़दूर ही क्यों हो, वह भी मूल नियोक्ता से मुआवज़ा ले सकता है। लेकिन नियोक्ता अपने कॉन्ट्रेक्टर अथवा ठेकेदार से नुकसान की भरपाई कर सकता है। अगर किसी कंपनी ने ईएसआई कराया हो और वह दिवालिया हो गई हो तो मुआवज़ा ईएसआई कंपनी देगी।

सेक्शन 10 में कमिश्नर के अधिकारों का विवरण दिया गया है। यदि किसी मालिक ने मज़दूर के साथ किसी हादसे की सूचना नहीं दी और वह किसी अन्य तरह से कमिश्नर को मिलती है तो कमिश्नर मालिक को नोटिस भेज सकता है। तीस दिनों के भीतर नियोक्ता को इसका जवाब कमिश्नर को देना होता है कि वे मुआवज़ा राशि दे रहे हैं या नहीं।

जरूरी यह है कि मालिक मुआवज़ा राशि 30 दिनों में कमिश्नर के पास जमा कराएं। यदि मालिक इस नियम का पालन नहीं कर रहा हो तो उस पर पेनल्टी लगाने का भी अधिकार है। इसके अतिरिक्त मालिक कमिश्नर को सूचना दिए बिना मामला कोर्ट में नहीं ले जा सकता।

vlxfBr {k= d dkexkjk d fy, fofèkd lok,%

सभी विधिक संस्थानों द्वारा असंगठित कामगारों के लिए योजना लागू करते समय निम्नलिखित सिद्धांत को ध्यान में रखा जाएगा।

1. भारतीय संविधान की प्रस्तावना सभी नागरिकों के लिए प्रतिष्ठा व अवसर की समानता सुनिश्चित करती है तथा उनके गौरव का सम्मान करते हुए उनके बीच

भाई—चारे को बढ़ती है। अनुच्छेद 42 में आदेशित है कि राज्य कार्य के लिए न्यायोचित एवं मानवीय स्थिति तथा मातृत्व लाभों को सुरक्षित रखने हेतु प्रावधान बनाएगी। अनुच्छेद 43 द्वारा, राज्य सभी कामगारों के लिए काम, निर्वाह मज़दूरी, उचित जीवन स्तर सुनिश्चित करते हुए कार्य स्थिति तथा पूर्ण मनोरंजन, अवकाश, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अवसर सुरक्षित करेगी।

2. प्रत्येक नागरिक के गौरव को बनाये रखने का उद्देश्य वचन तब तक पूरा नहीं हो सकता जब तक कि एक कामगार का गौरव सुनिश्चित नहीं किया जाता।

3. असंगठित क्षेत्र समाज के उपेक्षित क्षेत्रों में से एक है तथा वे देश के नागरिक होने के कारण काम का अधिकार, न्यायोचित एवं मानवीय कार्य व्यवस्था, निर्वाह, मज़दूरी, मातृत्व लाभ तथा उचित जीवन स्तर के समान रूप से हकदार हैं। विधिक सेवा प्राधिकरणों के लिए यह वैधानिक आदेश है कि वह संवैधानिक सुनिश्चित्ताओं को वास्तव में उपलब्ध कराये। विधिक सेवा प्राधिकरणों को प्रशासनिक निष्क्रियता के प्रतिहित प्रहरी के रूप में कार्य करना होगा।

4. सरकार द्वारा विधानों अथवा योजनाओं आदि के रूप में किए गए कल्याण कार्यों में उद्धष्टि लाभार्थियों अथवा पीड़ितों को उनके अधिकारों व योग्यताओं को हासिल करने के लिए व्यवस्था का इस्तेमाल करने की ज़रूरत है। असंगठित क्षेत्र के कामगार समाज के वंचित एवं असुरक्षित क्षेत्र से संबंध रखते हैं तथा वे व्यवस्था का इस्तेमाल करने में सक्षम नहीं होते हैं। विधिक सेवा प्राधिकरण का यह कर्तव्य है कि वह न्याय प्राप्ति तक उनकी पहुंच स्थापित करने मे सहायता करे।

5. असंगठित क्षेत्र के कामगारों के वर्गों की बड़ी संख्या, प्रत्येक वर्ग में बहुत बड़ी जनसंख्या तथा बड़े भौगोलिक क्षेत्र में उनके फैलाव के कारण उन तक विधिक सेवा पहुंचाने के लिए परियोजनाबद्ध कार्यक्रम की आवश्यकता है। उन्हें उनके संवैधानिक अधिकारों की प्राप्ति के योग्य बनाने के लिए एक संस्थागत व्यवस्था, वचनबद्ध कार्यबल तथा लगातार प्रयासों को लम्बे समय तक करने की ज़रूरत है। (स्रोत : राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण, नालसा, भारत सरकार)

अन्य स्रोतः इंटरनेट व समाचार पत्रों से।

• • •

eu"; viuh lcl vPN :i e lHkh thok e lcl mnkj gkrk g]
yfdu ;fn dkuu vkj U;k; uk gk rk ok lcl [kjkc cu tkrk g

– अरस्तु

efgyk dkexkj vkj ekuokfèkdkj

vkdk{kk•

हमारे समाज में अभी तक 'काम' की कोई ठोस परिभाषा नहीं है। आज भी उसी श्रम को 'काम' की श्रेणी में रखा जाता है जिसे करने से 'अर्थ' अर्थात 'धन' की प्राप्ति होती है। यदि कोई पुरुष घर से बाहर श्रम करके 'अर्थ प्राप्ति' करता है तो उसे 'काम' की श्रेणी में रख लिया जाता है पर, महिलाएं चाहे जितना भी घरेलू–श्रम करे उसे 'काम' की श्रेणी में नहीं रखा जाता और इसकी सबसे महत्त्वपूर्ण वजह यह है कि महिलाओं को घरेलू श्रम करने से 'अर्थ–प्राप्ति' नहीं होती। वास्तव में देखा जाए तो महिलाओं द्वारा किया जाने वाला 'घरेलू श्रम' पुरुषों द्वारा घर से बाहर किए जाने वाले की तुलना में कहीं ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है। महिलाएं यदि घरेलू श्रम नहीं करें तो शायद पुरुष के लिए कार्यस्थल पर जाकर श्रम करना उतना आसान नहीं होगा। अधिकांश मामलों में महिलाएं ही अपने परिवार के पुरुष सदस्यों को कार्यस्थल पर जाने के लिए वे तमाम सुविधाएं जैसे, समय पर भोजन, कपड़े तथा अन्य मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करती है। कामकाजी महिलाओं की भी लगभग यही स्थिति है। वह भी अपने परिवार के पुरुष सदस्यों को तमाम सुविधाएं मुहैया करा कर उनके कार्यस्थल पर जाने के बाद ही अपने कार्यस्थल पर जाने के विषय में सोचती हैं।

'काम' को दो श्रेणियों को संगठित क्षेत्र और असंगठित क्षेत्र में विभक्त किया जा सकता है। संगठित क्षेत्र में स्कूल, विश्वविद्यालय, बैंक, डाकखाना आदि को रखा जा सकता है क्योंकि, यहां के कर्मचारियों को निश्चित वेतन, स्वास्थ्य एवं क़ानूनी सुविधाएं, नियमित रोजग़ार आदि प्रदान की जाती हैं। इनके काम के घंटे निर्धारित होते हैं तथा अन्य मूलभूत सुविधाएं भी मिलती हैं। पर, इस क्षेत्र में भी कार्यरत महिलाओं की वास्तविक स्थिति पर गौर किया जाए तो स्पष्ट होता है कि इस क्षेत्र में भी महिलाओं के साथ भेदभाव किया जाता है। उन्हें पुरुष कर्मचारियों की तुलना में कई तरह की सुविधाओं से महरूम रखा जाता है। जब भी इस क्षेत्र में कार्यरत महिला के विषय में सोचा जाता है तो एक खास तरह की छवि उभरती है जैसे नर्स, टाइपिस्ट, शिक्षिका आदि। यह माना जाता है कि महिलाएं टेक्नोलॉजी से जुड़े काम नहीं कर सकतीं क्योंकि, उसमें दिमाग का इस्तेमाल करना होता है। यह कार्य पुरुषों का माना जाता है। हमारे अंदर आज भी कामकाजी महिलाओं के लिए इस तरह की छवि समाज निर्मित एक 'आइडियोलाजी' बनकर रह गई है। आम तौर पर महिलाओं को वही नौकरी दी जाती है जिसमें उसे मातृत्व से जुड़े काम या आज्ञापालक के रूप में काम करना पड़ता है। महिला कर्मचारियों को कार्यस्थल पर यौन शोषण का भी शिकार होना पड़ता है। इसके अलावा कई बार उसे अपने पुरुष सहकर्मी या मालिक द्वारा अपमानित भी किया जाता है। यह एक महत्त्वपूर्ण वजह है कि कुल कामकाजी

• स्वतंत्र लेखिका एवं टिप्पणीकार, दिल्ली

जनसंख्या की लगभग १० प्रतिशत से भी कम महिलाएं संगठित क्षेत्र में कार्यरत हैं, उसमें भी लगभग १५ प्रतिशत महिलाओं को ही एक निश्चित वेतन मिलता है तथा बाकी की महिलाएँ सेवा एवं उत्पादन के क्षेत्र से जुडी हुई हैं।

असंगठित क्षेत्र में कामगारों के बीच औपचारिक अनुबंधों के अभाव के साथ–साथ संगठन और कर्मचारियों के बीच भी स्पष्ट संबंधों का अभाव होता है। इस क्षेत्र में किसी स्थायी क्षेत्र की बात ही नहीं की जा सकती। हालांकि इस क्षेत्र में प्रवेश पाना आसान है। यहाँ महिला श्रमिकों की संख्या अधिक होती है। उदारीकरण के पहले उत्पादन के तन्त्र में छोटी–छोटी इकाइयां काम करती थी और उनमें काम का स्पष्ट विभाजन भी था पर, बाद में यह काम बड़ी इकाइयों ने ले ली। वर्तमान में उनकी जगह छोटी–छोटी कंपनियों ने या इसे विकेन्द्रित इकाई भी कह सकते हैं, ने ले ली। एक महत्त्वपूर्ण समस्या यह भी है कि इस नई व्यवस्था के आ जाने से कामगारों की छटनी की प्रक्रिया भी शुरू हुई और इस छटनी में सबसे ज़्यादा महिला कामगारों को ही हटाया जा रहा है। इस नई व्यवस्था में स्थायी कर्मचारी के अस्थायी कर्मचारी या 'पीस रेट' पर काम करने वाले कर्मचारी के रूप में बदल जाने की संभावना बढ़ी है। इस व्यवस्था में श्रम क़ानूनों को भी सही तरीके के लागू नहीं किया जा सकता है। यही वजह है कि आज महिलाएं अनौपचारिक या असंगठित क्षेत्र में ही अपना श्रम दे रही हैं। इसके लिए कहीं न कहीं हमारा पितृसत्तात्मक समाज भी जिम्मेदार है क्योंकि इन महिलाओं पर घरेलू कार्य, पति, बच्चे और परिवार के अन्य सदस्यों की देखभाल की जिम्मेदारी थोप दी गई है। महिला खुद भी इस जिम्मेदारी को पूरा करने के बाद ही अन्य किसी कार्य को करने के विषय में सोचती है। ऐसी स्थितियों का ही बहुराष्ट्रीय कंपनियां फायदा उठाती हैं क्योंकि उसे श्रमिकों का एक बहुत बड़ा वर्ग कम दामों में उपलब्ध हो जाता है। साथ ही वह अन्य खर्चों जैसे कारखाना लगाना, सुरक्षा व्यवस्था की जिम्मेदारी इत्यादि से भी मुक्त हो जाता है। इस क्षेत्र में महिलाएं बढ़ती गरीबी की वजह से मजबूरी वश या फिर कई बार समय बिताने के लिए भी श्रम करती हैं। इन दोनों ही स्थितियों में महिलाएं उचित सुविधाओं की मांग नहीं कर पातीं हैं। कुछ महिलाएं इसे नज़रअंदाज़ करती हैं तो कुछ को नौकरी छूट जाने का भय रहता है और यह स्थिति पूंजीपतियों के लिए फायदेमंद होता है। कई बार तो इन श्रमिकों को अपने असली मालिक का पता भी नहीं रहता क्योंकि काम 'ठेका' या 'उप–ठेका' व्यवस्था के अंतर्गत भी लिया जाता है। ऐसी स्थिति में कई बार महिला श्रमिक चाहकर भी अधिक पैसे, स्वास्थ्य और अन्य सुविधाओं के विषय में बात नहीं कर पातीं हैं। इस तरह के श्रमिकों में एक्सपोर्ट प्रोसेसिंग जोन में कार्यरत श्रमिक, बागान के श्रमिक, मकान बनाने वाले श्रमिक, ईंट भट्टे में काम करने वाले श्रमिक, बीड़ी श्रमिक आदि के साथ–साथ चूड़ी उद्योग एवं अगरबत्ती उद्योग आदि में कार्यरत श्रमिकों को रख सकते हैं। इस तरह के उद्योगों में ज़्यादातर महिलाएं ही कार्यरत होती हैं। यहाँ की महिला श्रमिकों के लिए न तो अलग से शौचालय की व्यवस्था की जाती है और न ही इनके बच्चों के लिए पालनाघर बनाया जाता है। अन्य बुनयादी सुविधाओं की तो बात ही नहीं की जा

सकती है। वेतन भी इतना ही दिया जाता है कि वह सिर्फ़ श्रम करने के लिए जिंदा रह पाए।

इसके अलावा उन महिलाओं को भी इस क्षेत्र के अंतर्गत रख सकते हैं जो कि अपने घर पर ही बैठकर खाली समय में श्रम करती हैं जैसे, बटन लगाना, कपड़े का कोई भाग सिलना, किसी सामान की पैकिंग करना आदि। यह कार्य महत्त्वपूर्ण नहीं लगते हुए भी काफ़ी महत्त्वपूर्ण है। तीसरी दुनिया के इन्हीं श्रमिक वर्ग द्वारा इन उत्पादों को बनाने में किए गए श्रम का फायदा सीधे तौर पर पूंजीपति वर्ग उठाते हैं और मुनाफ़ा भी कमाते हैं। इन श्रमिकों को, जो यह सोचकर श्रम करती हैं कि उनका समय भी कट जाएगा और कुछ पैसे भी मिल जाएंगे। वह इस बात को नज़रअंदाज़ कर देती हैं कि उनका कार्य कितना महत्त्वपूर्ण है और उसे इसके लिए उचित मूल्य मिल रहा है या नहीं और इससे सबसे ज़्यादा फायदा किसे होगा। उन्हें तो यह पता भी नहीं चल पाता है कि उसके द्वारा उत्पादित सामान गया कहां। अतरू, यह कहा जा सकता है कि अधिकांश विदेशी कंपनियों के मुहर लगे ये उत्पाद हमारी तीसरी दुनिया के देशों के ही कस्बों, गाँवों तथा घरों में निर्मित किए जाते हैं पर जब उसका मूल्य निर्धारण और मुहर लगाने का काम आता है तो वह इन कंपनियों द्वारा किया जाता है।

अतः यह कहा जा सकता है कि चाहे संगठित क्षेत्र हो या असंगठित क्षेत्र वहाँ की महिला श्रमिकों की स्थिति सोचनीय ही है। संगठित क्षेत्र में उन्हें निश्चित वेतन और काम का निश्चित समय जरूर मिलता है पर उसपर काम के दोहरे बोझ होने के साथ–साथ कार्यस्थल पर उन्हें तमाम तरह के उत्पीड़न भी झेलने पड़ते हैं। असंगठित क्षेत्र के महिला श्रमिकों को तो न ही निश्चित वेतन मिलता है और न ही काम का निश्चित समय है। इसके अलावा इन्हें किसी भी तरह की बुनियादी सुविधाएँ नहीं मिल पाती हैं। इनके बच्चे भी शिक्षा से वंचित ही रह जाते हैं और इसी तरह के जीवन जीने के लिए अभिशप्त हो जाते हैं। इनकी ऐसी स्थिति के लिए पूंजीपतियों से लेकर समाज और राज्य सभी जिम्मेदार हैं।

dkexkj efgykvksa dh l?k"kZ&;k=k

महिलाओं का जीवन हमेशा से ही संघर्षपूर्ण रहा है, भले ही उसका स्वरूप अलग–अलग क्यों न हो। महिला कामगारों के संघर्ष का हमें जो लिखित इतिहास प्राप्त होता है वह अमेरिका की जूट मिल में काम करने वाली महिलाओं के संबंध में है। इस इतिहास की जानकारी हमें उस समय से मिलती है जब उन मिलों की कामगार महिलाएं अपने अधिकारों के लिए संगठित होकर आंदोलन की शुरुआत करती हैं। इन महिलाओं की मांग थी कि इनके काम के घंटे निर्धारित किए जाएं। इन्हें अन्य कामगारों के समान अधिकार दिए जाएं तथा स्त्री होने के नाते कुछ विशेष अधिकार (नवजात बच्चे को स्तनपान कराने के लिए कुछ देर का अवकाश, मातृत्व–अवकाश आदि) दिए जाएं। इस आंदोलन को कामगार महिलाओं के संघर्ष के लिए मील का पत्थर माना जा

सकता है। इस आंदोलन के बाद कामगार महिलाओं द्वारा और भी कई आंदोलन किए गए जिसमें महिलाओं ने सक्रिय भूमिका निभाई। भारत के संदर्भ में 'गिरणी कामगार' स्त्रियों की लड़ाई, १६३६ ई. में मुंबई में 'ब्रिटिश मिल' का संघर्ष, १६४६ ई. में खानों और बगानों में कार्यरत महिलाओं का संघर्ष, १६७७ ई. में केरल के मछुआरों के संघर्ष में महिलाएं , १६८० ई. के आसपास निपाणी में बीड़ी कामगारों की लड़ाई आदि को देखा जा सकता है।

fxj.kh dkexkj fL=;ksa dh yM+kbZ

भारत में १८८०ई. में पहली बार लोखंडे जी जो की महात्मा फुले से प्राभावित थे, ने गिरणी कामगारों का संगठन बनाया और १६८२ ई. में ब्रिटिशों ने लेबर कमीशन बनाकर पहला 'फैक्ट्री एक्ट' लागू किया और इसके अंतर्गत कामगारों को क़ानूनन संगठित होकर संघर्ष करने का अधिकार दिया गया। इसी दौरान गिरणी में भारी संख्या महिलाओं की भर्ती हो रही थी। क्योंकि, इनसे १६–१७ घंटे काम भी लिया जा सकता था और पुरुषों की तुलना में इन्हें वेतन भी कम दिया जाता था। १६२२ ई. में अहमदाबाद में फिर से गिरणी कामगारों और मालिकों के बीच संघर्ष छिड़ा। गांधीजी ने इस आंदोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की और मज़दूरों की ओर से मिल मालिकों से बातचीत कर उन्हें समझाया। इन मालिक वर्ग (साराभाई घराना) की एक महिला अनुसुयाबेन जो गांधीजी से बहुत प्रभावित थी, कामगारों की नेता बनीं। गांधीजी के मार्गदर्शन में इनहोने 'मज़दूर महाजन कामगार संगठन' बनाया और लागातार मालिक वर्ग के विरुद्ध आवाज़ उठाती रहीं। १६२८–२६ ई. में एक लंबे हड़ताल के दौरान कुछ प्रमुख नेताओं की गिरफ़्तारी के बाद संघर्ष का नेतृत्व उषाताई डांगे ने किया जिसमें सैकड़ों महिलाओं ने हिस्सा लिया। १६३६ ई. में मुंबई में 'ब्रिटिश मिलों' में कामगारों की छंटनी की गई जिसके विरोध में लगभग ७०० कामगार महिलाओं ने पहली बार घेराव किया। इस विरोध में मुख्य रूप से उषाटाई डांगे, पार्वतीबाई भोर,जानाबाई प्रभु, भीमाबाई कामेटकर इत्यादि सक्रिय रहीं। इसके बाद कामगार महिलाओं ने कुछ अन्य स्थानों पर भी अपनी मांगे रखीं जिसमें उन्हें मानसिक तथा शारीरिक प्रताड़ना झेलने के अलावा जान भी गवानी पड़ी।

[knku&ckxku dh dkexkj efgykvks dk l?k"k &

चाय और काफ़ी के बगान तथा विभिन्न खानों में भारी संख्या में महिलाएं काम करती आई हैं। ये भी काम के अधिक घंटे, अपर्याप्त वेतन तथा विभिन्न प्रकार के शोषण को झेलने के लिए अभिशप्त थीं। इन महिलाओं ने कई बार इस तरह के दमन के खिलाफ आवाज़ उठाने का प्रयास किया पर हर बार इन्हें दबा दिया जाता था। १६४३ ई. में मैली छत्री नामक लड़की के नेतृत्व में चाय बगान में काम करने वाली बंगाल की कामगार महिलाओं ने हड़ताल की और संघर्ष किया। बाद में मैली छत्री को पुलिस से बचने के लिए भूमिगत होना पड़ा और उसने जंगल में रहते हुए आंदोलन का नेतृत्व

किया और अंत तक पुलिस के हाथ नहीं आई। लगातार प्रतिकूल वातावरण में रहने के कारण बाद में बीमारी के कारण उसकी मृत्यु हो गई।

खदान में काम करने वाली महिलाओं की भी लगभग यही स्थिति थी। खादान की कामगार महिलाओं के लिए कोई विशेष प्रावधान भी नहीं बनाया गया था। इस वजह से प्रसूति के समय इन महिला कामगारों को कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता था। जैसे, प्रसव के दौरान काम न करने के कारण इनकी मज़दूरी काट ली जाती थी और नौकरी से हटा दिया जाता था। ऐसी स्थिति में कामगार महिलाओं को प्रसूति का खर्च वहन करने के लिए क़र्ज़ लेना पड़ता था। १६१६ ई. में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने महिला मज़दूरों के लिए पर्याप्त प्रसूति सुविधाओं के प्रावधान बनाने की बात की, जिसमें मांग की गई कि महिला मज़दूर को प्रसूति से पहले और बाद में छः सप्ताह का आराम, माँ और बच्चे दोनों की देखरेख के लिए मुफ्त में डॉक्टर तथा आया की व्यवस्था, दिन में दो बार माँ को नवजात बच्चे को स्तनपान या देख–रेख के लिए आधे–घंटे की छुट्टी और प्रसूति–अवधि के दौरान काम पर न आ पाने के कारण नौकरी से न हटाने का प्रावधान। पर, उद्योगपतियों के दबाव की वजह से भारतीय सरकार ने इसे नजरंदाज कर दिया। धीरे–धीरे खदान मालिकों ने महिला मज़दूरों की छंटनी शुरू कर दी ताकि वह इस तरह की सुविधा देने से होने वाले खर्च को बचा सकें क्योंकि, इस समय तक बहुत ही कम खदानों में आधुनिक चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध थीं। जहां थीं भी वहाँ ज़्यादातर पुरुष डॉक्टर ही थे। प्रसूति के समय दी जाने वाली राशि भी अलग–अलग खादानों में अलग–अलग थी और वह भी सिर्फ़ कागजों तक ही सीमित रहा। १६२४–१६३० ई. तक इन कामगारों के लिए अलग–अलग प्रावधान बनाने को लेकर टालमटोल की स्थिति बनी रही। १६३० ई. के आसपास अखिल भारतीय स्तर पर 'रायल कमीशन आन लेबर' द्वारा यह कहा गया कि खदान में काम करने वाली महिलाओं की संख्या इतनी भी ज़्यादा नहीं है कि इनके लिए कोई विशेष क़ानून लाए जाएँ। बाद में अखिल भारतीय मज़दूर कांग्रेस के दबाव की वजह से १६४१ ई. में क़ानून तो बना पर, सुविधा देने के मामले में अभी भी कंजूसी बरती गई। प्रसूति से पहले और बाद छरू सप्ताह की ही छुट्टी देने का प्रावधान बना क्योंकि, मालिकों का मानना था कि छुट्टी देकर वह महिलाओं पर अहसान कर रहे हैं।

महत्त्वपूर्ण बात यह है कि द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जब कोयले की मांग बढ़ी और इस मांग को पूरा करने के लिए मज़दूरों की भी आवश्यकता बढ़ी तो भारत सरकार ने महिला मज़दूरों पर से ज़मीन के अंदर जाकर काम करने में लगी रोक को हटा लिया। फिर भी, आवश्यकता के अनुरूप मज़दूर नहीं मिल पा रहे थे जिसके कारण उत्पाद के साथ–साथ युद्ध की तैयारियां भी प्रभावित हो रही थीं। फलतः, मज़दूरों की मांग जैसे, वेतन में बढ़ोत्तरी एवं काम की स्थितियों में सुधार करना आवश्यक हो गया। अतरू, प्रसूति क़ानून में कुछ संशोधन किया गया। १६४४ ई. में सरकार ने कामगार समस्या की जांच करने के लिए 'रेगे समिति' बनाई। इस समिति ने अन्य समस्याओं

के साथ–साथ प्रसूति संबंधी क़ानून के प्रभाव की भी जांच पड़ताल की। इस समिति ने यह निष्कर्ष निकाला कि अधिकांश खान मालिकों ने स्त्री कामगारों को उसके दावों के अनुसार प्रसूति लाभ नहीं दिए और इस क़ानून का उल्लंघन करने के लिए हर तरह के हथकंडे अपनाए। इस तरह अंतर्राष्ट्रीय कामगार संगठन के समझौते के बावजूद ज़मीनी स्तर पर यहाँ की महिला कामगारों की स्थिति में कोई खास बदलाव नहीं आया।

इसके अलावा कामगार महिलाओं के और भी कई संघर्ष हुए जैसे केरल में मछुआरों का संघर्ष। इस संघर्ष में मछुआरा समाज की महिलाओं की भागीदारी का भी प्रमुख स्थान है। इस आंदोलन में भी महिलाओं ने भारी संख्या में मोर्चों, घेरावों, सड़क और रेल रोको आदि गतिविधियों में भाग लिया। बहुत सारी महिलाओं को गिरफ़्तार भी किया गया। धीरे–धीरे महिलाएं स्थानीय स्तर पर स्वतंत्र रूप से बैठक, काम से जुड़े किसी मुद्दे पर विचार–विमर्श भी किया करती थीं। इसी तरह बीड़ी बनाने वाली, लैस बनाने वाली, चूड़ी उद्योग जिनसे महिला कामगारों का एक बहुत बड़ा वर्ग जुड़ा था और आज भी है, ने भी सामय–समय पर अपने अधिकारों के लिए संघर्ष किया।

HkeMyhdj.k vkj dkexkj efgyk,&

१६६० के दशक में सरकार ने उदारीकरण तथा भूमंडलीकरण के तहत नई आर्थिक नीतियाँ लागू कीं। बाज़ार को खुली छूट दी जाने लगी जिसके कारण विदेशी वस्तुओं का बाज़ार में भरमार होने लगी। देशी और घरेलू/कुटीर उद्योग का महत्त्व कम होने लगा और इस तरह के उद्योगों का अस्तित्व संकट में आ गया। मज़दूर वर्ग को भी जो भी थोड़ी बहुत सुविधा मिली हुई थी उसपर भी अन्य संकट छा गए थे और कामगारों की दशा अब और ज़्यादा खराब हो गई क्योंकि, विश्व–बैंक और 'अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष' से लिए गए क़र्ज़ की शर्तों की वजह से ये नीतियां अब सिर्फ़ बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हितों को ही देखती हैं। १६६० के दशक से मुद्रास्फीति में बहुत तेज़ी आई है और धन एवं व्यापार अब कुछ लोगों तक ही सिमट कर रह गया है। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक है कि चाहे कामगार होने के नाते, उपभोक्ता होने के नाते या फिर और भी रूप में महिलाएं सबसे अधिक प्रभावित हुई हैं।

घर के खर्च के बजट को भी कम या नियंत्रित रखने की जिम्मेदारी ज्यादातर महिलाओं को सौंप दी जाती है। महिलाओं को इस जिम्मेदारी को निभाने में किस तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है इसे नजरंदाज कर दिया जाता है। ऐसी ही स्थिति कई बार मध्यमवर्गीय गृहणियों को अपनी तरफ से भी प्रयास कर कुछ साधन जुटाने पड़ते हैं। जैसे, आज बहुत सारी मध्यमवर्गीय महिलाएं अपने घर ही बैठकर खाली समय में 'पीस रेट' पर काम करती हैं जिससे उसे कुछ आय भी हो जाता है और उनका समय भी कट जाता है। जैसे, बटन लगाना, कपड़े का कोई भाग सिलना, पैकिंग करना आदि शामिल है। इस तरह से तैयार माल की संख्या के आधार पर

भुगतान किया जाता है और इसकी दर बाज़ार–दर से काफ़ी कम होती है। महिला कामगारों को भुगतान किया जाने वाला यही दर 'पीस रेट' के नाम से जाना जाता है

अतः, यह स्पष्ट हो जा है कि संगठित एवं असंगठित दोनों क्षेत्रों से जुड़ी स्त्रियां लगातार अलग–अलग तरह के शोषण को झेलने को मजबूर होती हैं। जैसे, मानसिक प्रताड़ना, यौन–अत्याचार, स्त्री शरीर का वस्तुकरण इत्यादि। इस तरह से महिलाओं के मानव अधिकार का हनन घर की चारदीवारी के अंदर अलग तरह से एवं चारदीवारी से बाहर अलग तरीके से होता है। कभी आधुनिकता के नाम पर तो कभी परंपरा के नाम पर इस तरह के शोषण और असमानता को बरकरार रखा जाता है जिससे लगातार विभिन्न स्तरों पर आधी आबादी के मानव अधिकार का हनन होता रहता है। इसमें परिवार के साथ–साथ समाज के विभिन्न तंत्रों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। आधी–आबादी के मानव अधिकार हनन के इन तमाम तरीकों से निबटने के लिए तमाम तरह की चुनौतियों को सहर्ष स्वीकार करते हुए समकालीन महिला आंदोलन लगातार समाजिक संरचना में बदलाव और समानता लाने के लिए प्रयास कर रही हैं। स्त्रियां हमारे समाज का वह हिस्सा हैं जिनके बिना मानव जाति की कल्पना का कोई मतलब नहीं है। महिला–आंदोलन मानव अधिकार के रूपांतरकारी दृष्टिकोण (व्यवस्था में परिवर्तन की बात करते हुए समानता, स्वतंत्रता, शांति, न्याय आदि मूल्यों पर ज़ोर देता है) को अपनाते हुए लगातार यह मांग भी कर रहा है कि समाज में रहने वाली हर ईकाई को समानता का अधिकार मिलना चाहिए। इनका तर्क है कि समानता का अधिकार ही किसी भी समाज को गतिशील और विकसित होने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सैद्धांतिक स्तर पर तो मानव अधिकार के रूपांतरकारी दृष्टिकोण के आधार पर आधी–आबादी के मानव अधिकार को कुछ हद तक मान्यता मिलनी शुरू हुई है पर, व्यवहारिक स्तर पर अभी भी विकासवादी दृष्टिकोण (बदलाव पर बहुत अधिक ज़ोर नहीं दिया जाता है) को ही अपनाया जा रहा है। इसलिए एक लंबे संघर्ष और लगातार प्रयास करने के बाद भी कामगार वर्गों को सही मायने में उनके अधिकार नहीं मिल पाए हैं।

l nHk l ph&

- नारीवादी राजनीति : संघर्ष एवं मुद्दे – २००१ (संपा.) साधना आर्या, निवेदिता मेनन,जिनी लोकनीता, प्रकाशन– हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय
- भारत में स्त्री असमानता–२००६, लेखक–डॉ. गोपा जोशी, प्रकाशन– हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय
- जब स्त्रियॉ ने इतिहास रचा– २००४, लेखक–कुसुम त्रिपाठी, नवजागरण प्रकाशन, नागपुर

- भारतीय समाज में महिलाएं– २००६, लेखक–नीरा देशाई और उषा ठक्कर, प्रकाशन–नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली
- स्त्री मुक्ति के प्रश्न–२००६, लेखक–देवेन्द्र इस्सर, संवाद प्रकाशन, मेरठ

• • •

efgyk l'kDrhdj.k vkj f'k{kk

ltyk Fkkuoh•

"…. यह कहना गलत नहीं होगा कि बिना शिक्षा के मानव एक पषु से बहुत अलग नहीं है, इसलिए शिक्षा स्त्री के लिए भी उतनी ही जरूरी है, जितनी पुरुषों के लिए।"

&egkREkk xkèkh

वास्तव में शिक्षा एक साधन है, सशक्तीकरण का एक माध्यम है, जिसके द्वारा अन्याय शोषण तथा अशिक्षा के विरुद्ध चेतना जागृत होती है। व्यक्ति अपने अधिकारों और अस्तित्व के प्रति जागरूक होता है। वह अपनी सर्वांगीण विकास कर सकता है। यह बात पुरुषों के साथ–साथ स्त्रियों पर भी समान रूप से लागू होता है। किसी भी समाज की प्रगति और विकास में दोनों की समान भूमिका होती है, लेकिन पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के लिए शिक्षा का ज़्यादा महत्त्व है क्योंकि कहा जाता है कि यदि एक पुरुष शिक्षित होता है तो केवल एक पुरुष की शिक्षित होता है, लेकिन यदि एक स्त्री शिक्षित होती है तो पूरा परिवार शिक्षित होता है, आने वाली पीढ़ी शिक्षित होती है और इस प्रकार n'k dk Hkfo"; f'kf{kr gkrk gA

किसी समाज की प्रगति को जांचने का सबसे अच्छा तरीक़ा है कि उस समाज की स्त्रियों की स्थिति एवं विकास का मूल्यांकन किया जाए। वास्तव में समाज में स्त्रियों की उन्नति और विकास ही समाज की प्रगति का सूचकांक सिद्ध होता है। जो समाज अपने सैद्धांतिक और व्यावहारिक प्रणाली में स्त्रियों को यथोचित, मानवोचित स्वतंत्रता एवं विकास के अवसर प्रदान करता है, वह समाज उतना ही प्रगतिशील माना जाता है। dkyl ekDl ने भी कहकर स्त्री शिक्षा का महत्त्व दर्शाया था, कि ''स्त्रियों की सामाजिक स्थिति से सामाजिक प्रगति को ठीक–ठीक मापा जा सकता है। यद्यपि भारतीय परिवेश में भौगोलिक और सांस्कृतिक भिन्नताएं पाई जाती हैं, जिनके कारण वहां के सामाजिक दृष्टिकोण में व्यापक अंतर देखा जा सकता है, किंतु समाज का व्यावहारिक अध्ययन के बिना पूर्ण नहीं होता और शिक्षा के माध्यम से ही उनके परिवर्तित और विकासात्मक दृष्टिकोण को जाना जा सकता है।

स्त्रियों को साक्षर करने की आवश्यकता सदा से ही अनुभव की जाती रही है। वैदिक काल में स्त्रियां शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार रखती थीं, किंतु उत्तर वैदिक तथा मध्ययुग में नारी शिक्षा की सीमा प्रतिबंधित होने लगी थी, जिसके कारण समाज में स्त्रियों की प्रगति में ठहराव सा आ गया। आधुनिक युग में स्त्री साक्षरता की धारणा को पुनः बल मिला, जो वैचारिक क्रांति के फलस्वरूप संभव हुआ था।

भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीयों में शिक्षा के प्रति जागरूकता का पुनः

• निदेशक, सूरज संस्थान, जयपुर (राज.)

विकास हुआ। कुछ भारतीयों ने विदेशों में जाकर शिक्षा ग्रहण की और भारत की निरक्षर जनता को साक्षर करने की आवश्यकता अनुभव की। व्यक्तियों ने नारी की दयनीय स्थिति देख उन्हें सशक्त और शिक्षित करने का बीड़ा उठाया। इस समय जनता का नेतृत्व करने वाले लोगों ने ही यह दायित्व संभाला। jktk jkeekgu jk; ने बाल विवाह और सती प्रथा को बंद करवाया। इन कुप्रथाओं के दूर होने से नारी शिक्षा को प्रोत्साहन मिला। b'ojpn fo|klkxj जैसे समाज सेवकों के सहयोग ने बंगाल में स्त्री शिक्षा के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

स्वयं ब्रिटिश लोग भी भारतीय नारी की दयनीय दशा देख उनके प्रति सहानुभूति रखते थे और ऐसे प्रयास उसी मानवीय पक्ष के परिणाम थे। शिक्षा मात्र पढ़ने–लिखने के लिए ही नहीं, अपितु सामाजिक जीवन में भी बहुत आवश्यक होती है। यह बात भारतीय समाज की समझ में आ चुकी थी। स्त्री शिक्षा को अधिक व्यावहारिक और गृहोपयोगी बनाने के उद्देश्य से 1926 में एक अखिल भारतीय नारी सम्मेलन हुआ और परिणामस्वरूप दिल्ली में लेडी इर्विन कॉलेज की स्थापना की गई, जिसका समस्त प्रबंधन स्त्रियां ही देखती थीं। स्वतंत्रता प्राप्ति के राजनैतिक उथल–पुथल भरे माहौल में भी स्त्री शिक्षा में निरंतर वृद्धि होती रही। स्वतंत्रता के पश्चात भी नारी शिक्षा में निरंतर प्रगति होती रही।

स्त्रियों में साक्षरता के प्रति उदासीनता का सबसे बड़ा कारण रूढ़िवादिता रहा है। आज भी ग्रामीण अंचलों एव निचले तबकों में लड़का–लड़की भेदभाव बरता जाता है। उनका मानना है कि लड़कियों को विवाह के बाद भी घर–परिवार, बच्चे ही संभालने है तो उनकी शिक्षा पर व्यय करना व्यर्थ है। लड़कियां भी मदद करती है, इसलिए पढ़ाई के प्रति जागरूकता और मार्गदर्शन के अभाव में वे शिक्षा की ओर उन्मुख नहीं हो पाती हैं। दरअसल पुरुष प्रधान समाज में स्त्रियों के प्रति ऐसा होना स्वाभाविक है। वे स्त्रियों में स्वतंत्र चेतना के विकास के विरुद्ध होते हैं, इसलिए महिला सशक्तीकरण के प्रयासों पर प्रतिबंध लगाते हैं; किंतु पुरुष और स्त्री को जीवन रूपी गाड़ी के दो पहिए माना जाता है, जिनमें सम्यक संतुलन एवं सामंजस्य आवश्यक है।

किसी भी देश के आर्थिक, सामाजिक बौद्धिक एवं नैतिक विकास आदि में स्त्रियों की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण मानी जाती है, क्योकि महिलाओं को आधी आबादी कहा गया है। निरक्षरता के अभाव में आधी आबादी देश के विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान नहीं दे सकेगी। विकास के चरण में महिला सशक्तीकरण एक महत्त्वपूर्ण घटक है और इसके बिना विकास की परिकल्पना को पूर्णरूपेण साकार नहीं किया जा सकता हैं। विकास की धारा में महिला सशक्तीकरण को जोड़ने का आशय स्त्री जाति के पूर्ण रूप से शिक्षित होने से है। निरक्षरता का प्रभाव स्त्री के समग्र जीवन पर पड़ता है। किंतु साक्षर होने के पश्चात वह आर्थिक और रोजग़ारोन्मुख कार्यक्रमों से भी सहज ही जुड़ सकेगी जो उसे आत्मनिर्भर और स्वावलंबी बनाने के साथ–साथ उसके परिवार के आर्थिक स्तर को भी ऊपर उठाने में सहायक होगा। एक शिक्षित स्त्री ही विचारों के आदान–प्रदान से अपने और समस्त नारी जाति के व्यक्तिव को सशक्त कर सकती

है। शिक्षा आर्थिक स्वतंत्रता के साथ–साथ वैचारिक जागरूकता भी देती है, उसे अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति सजग करती है। साक्षरता कल्पना को उद्‌बुद्ध करती है, संवेदना में विस्तार करती है और प्रगति के प्रति जागरूकता उत्पन्न करती है। उनमें अपनी पहचान के प्रति चेतना पैदा होती है और वे आत्मविश्वास से भरपूर होकर स्वावलंबी बन सकती है।

सामाजिक जीवन में परिवार, शिक्षा और विवाह अत्यंत प्राचीन तथा मौलिक संस्थाएं मानी जाती हैं, जिन पर सामाजिक और जीवन के अन्य क्षेत्रों में होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव भी पड़ता है। इनके साथ–साथ व्यवसाय, रोजग़ार, समानता, स्वतंत्रता तथा अधिकारों के प्रभाव भी पुरुष और स्त्री के जीवन को प्रभावित करते हैं। साथ ही स्त्रियों के प्रति पुरुषों और समाज का दृष्टिकोण भी उसके विकास पर प्रभाव डालता है।

आज की स्त्री भली प्रकार से अपने विकास के प्रति जागरूक होने लगी है, किंतु सुदूरवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी स्त्री विकासवादी दृष्टिकोण तथा आंदोलन की आवश्यकता अनुभव की जाती हैं। स्त्री सशक्तीकरण को शिक्षा के माध्यम से तेज़ करने के प्रयास शहरों, गांवों और आदिवासी क्षेत्रों में किए जा रहे हैं, जिनका लक्ष्य स्त्री को शिक्षित कर उसे सशक्त बनाना है, ताकि वह एक स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में अपनी पहचान बना सके और देश के विकास की मुख्यधारा में अपना योगदान दे सकें, अपने परिवार को शिक्षित कर सकें और आवश्यकतानुसार उसे आर्थिक सबंल प्रदान कर सकें।

स्वतंत्रता के पश्चात स्त्री साक्षरता की दिशा में युद्ध स्तर पर प्रयास किए गए हैं। संविधान द्वारा स्त्रियों को पुरुषों क समान ही शिक्षा का अवसर का अधिकार प्रदान किया गया। प्राथमिक शिक्षा से ले कर व्यावसायिक पाठ्‌यक्रमों तक को महिला विकास के दृष्टिगत रखकर बनाया गया। इस दिशा में सरकारी तंत्र के साथ–साथ स्वयंसेवी संस्थाओं ने भी उल्लेखनीय भूमिका निभाई और ग्रामीण और सुदूरवर्ती इलाकों में आंगनवाड़ी, बालवाड़ी, महिला मंडल, पंचायत और सामुदायिक केन्द्रों के माध्यम से स्त्रियों को शिक्षित करने के प्रयास किए गए। किंतु अथक प्रयासों के बाद भी स्त्रियों की स्थिति में सुधार नहीं हुआ। 1991 की जनगणना के अनुसार भारत में साक्षरता दर 52 प्रतिशत थी, जिनमें केवल 39.23 प्रतिशत महिलाएं ही साक्षर थीं।

jk"Vªh; f'k{kk uhfr

अधिकांश गरीब महिलाएं ऐसी परिस्थितियों में रहती हैं, जो उनकी शिक्षा प्राप्ति में बाधक बनती हैं। दिन–प्रतिदिन अपने जीवन को गति देने का प्रयास करती महिलाएं अपनी सामाजिक भूमिका को भूल जाती हैं। शिक्षा और सूचना साधनों के अभाव में उन्हें सामाजिक परिवर्तनों का बोध नहीं होता और आत्मविश्वास की कमी के चलते वे किसी भी निर्णय और नीति–निर्माण प्रक्रिया में शामिल नहीं हो पातीं। स्त्रियों की भागीदारी के अभाव में उत्पन्न लैंगिक असंतुलन को दूर करने के लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति में स्त्री

शिक्षा के सशक्तीकरण पर ज़ोर दिया गया। इस कार्यक्रम के प्रभाव से स्त्री साक्षरता में 9.47 प्रतिशत की वृद्धि हुई, जो 1991 की जनगणना के अनुसार पुरुष साक्षरता 7.75 प्रतिशत से कहीं ज़्यादा थीं। कई राज्यों में महिला साक्षरता में कमी पाई जाती है, जो कि शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक असंतुलन का कारण बनती हैं।

इस नीति के अंतर्गत पंजाब, राजस्थान के सरकारी स्कूलों सहित मणिपुर, दिल्ली, मेघालय, चंडीगढ़ और उत्तर प्रदेश के स्कूलों में आठवीं कक्षा तक, बिहार, हिमाचल, तमिलनाडु के सरकारी स्कूलों सहित, आंध्र प्रदेश, असम, कर्नाटक, मिज़ोरम और लक्षद्व ीप के दसवीं कक्षा तक, सिक्किम के सरकारी स्कूलों सहित अरुणाचल प्रदेश, गोवा, जम्मू–कश्मीर, केरल, त्रिपुरा, पश्चिम बंगाल, अंडमान–निकोबार द्वीप समूह, दमन और दीव, दादर और नगर हवेली, गुज़रात, पांडिचेरी और मध्य प्रदेश में बारहवीं कक्षा तक लड़कियों को मुफ़्त शिक्षा देने का प्रावधान रखा गया।

इनके अलावा उच्च शिक्षा में भी महिलाओं को आगे बढ़ने के व्यापक अवसर प्रदान किए गए। स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा में महिलाओं का नामांकन कुल प्रतिशत का 41.8 हुआ। तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में लड़कियों को आगे बढ़ने के व्यापक अवसर प्रदान किए गए।

वर्ष 2001 की राष्ट्रीय साक्षरता मिशन की रिपोर्ट के अनुसार भारत की कुल 1027. 01 मिलियन जनसंख्या (प्रोविजनल) में 531.27 मिलियन पुरुष और 495.74 मिलियन महिलाएं शामिल थीं। इस जनसंख्या में 566.71 मिलियन शिक्षित लोग थे, जिनमें 339. 97 मिलियन पुरुष तथा 226.74 मिलियन महिलाएं थी। इसके विपरीत 300.14 मिलियन निरक्षर लोगों में 108.21 मिलियन पुरुष तथा 191.93 मिलियन स्त्रियां शामिल हैं, जिसके आधार पर देश की कुल 64.8 प्रतिशत की साक्षरता दर में पुरुषों और महिलाओं की साक्षरता दर क्रमशः 75.30 प्रतिशत तथा 53.70 प्रतिशत थी, जबकि अशिक्षित लोगों की दर 34.62 प्रतिशत थी जिनमें 24.15 प्रतिशत पुरुष तथा 45.85 प्रतिशत महिलाएं थीं।

efgyk lk{kjrk dk Lrj ¼efgyk&i#"k vrj 1951&2011½

o"kZ	dy	i#"k	efgyk	vrj
1951	18.3	27.16	8.86	18-30
1961	28.30	40.40	15.33	25-07
1971	34.45	45.95	21.97	23-98
1981	43.57	56.38	29.76	26-62
1991	52.21	64.13	39.23	24-90
2001	64.8	75.30	53.70	21-60
2011	73-0	80-9	64-6	16-30

(संदर्भ – भारतीय जनगणना एवं एज्यूकेशनल स्टेटिस्टिक्स एट ए ग्लान्स 2016, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली प्रकाशन)

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि स्वतंत्रता के पष्चात शिक्षा के क्षेत्र में गुणात्मक सुधार हुआ है। महिला साक्षरता दर 8.9 प्रतिशत (जनगणना 1951) से बढ़कर 64.6 प्रतिशत (जनगणना 2011) तक पहुंच चुकी है। सरकार महिला शिक्षा/सशक्तीकरण के विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा 100 प्रतिशत महिला शिक्षा की ओर अग्रसर है।

efgyk lek[;k dk;Øe

ग्रामीण परिवेश पर सरकार द्वारा दी जाने वाली सेवाओं का प्रायः अभाव पाया जाता है, जिसके कारण ग्रामीण महिलाएं शिक्षा के संसाधनों तक अपनी पहुंच नहीं बना पातीं। दूसरे ग्रामीण संस्कृति, परंपराएं और रूढ़ियों के बंधन उनकी शिक्षा में बाधक बनते हैं। ऐसे परिवेश में साक्षरता की सुविधाएं ग्रामीण महिलाओं को देने के लिए महिला समाख्या कार्यक्रम का गठन किया गया, ताकि हाशिए पर पड़ी निरक्षर महिलाओं का विकास किया जा सके। अन्य शब्दों में शिक्षा द्वारा महिला समानता नामक इस कार्यक्रम को 1989 में डेनमार्क की वितीय सहायता से प्रारम्भ किया गया, जिसे बाद में भारत के कुछ राज्यों ने जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम के अतंर्गत सहायता प्रदान की गई। वर्ष 2003–04 से भारत सरकार भी इसे वित्तीय सहायता प्रदान कर रही है और यह कार्यक्रम भारत के ग्यारह राज्यों – आंध्र प्रदेश, असम, बिहार, गुज़रात, झारखंड, कर्नाटक, केरल, उतर प्रदेश, उत्तरांचल, तेलंगाना तथा आंध्र प्रदेश के 130 जिलों के 44446 से अधिक गांवों तक फैल चुका है।

इस कार्यक्रम का अप्रत्यक्ष उद्देश्य महिलाओं को रूढ़िवादी जीवन से निकाल कर ज्ञान और सूचनात्मक परिवेश में लाना है, जहां वे अपने विकास को पहचान सकें और ग्राम और महिलाओं से जुड़ी विभिन्न समस्याओं का स्वयं निदान कर सकें। कार्यक्रम के माध्यम से गुज़रात, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश में सकल साक्षरता मिशन, कर्नाटक में देवदासी प्रथा के उन्मूलन, स्वास्थ्य सुरक्षा तथा उत्तर प्रदेश में पेयजल और अनौपचारिक शिक्षा जैसे विषयों पर काम करने में उल्लेखनीय भूमिका अदा की है। साथ ही सामाजिक न्याय, बाल सुरक्षा और स्वास्थ्य, ईधन, घरेलू हिंसा आदि विषयों के प्रति भी महिलाओं में जागरूकता का विकास हुआ है।

lo| f'k{kk] ekè;fed f'k{kk rFkk jk"Vªh; mPprj f'k{kk vfHk;ku

भारतीय संविधान की भावना ''सबके लिए शिक्षा'' के अनुक्रम में भारत सरकार के प्रयासों से 2001 से सर्व शिक्षा अभियान संचालित किया जा रहा है। सर्व शिक्षा अभियान में यह प्रयास किया है कि 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चें हर हालत में शिक्षा के दायरे में आयें। कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय, तथा महिला समाख्या कार्यक्रम का लक्ष्य भी लड़कियों को प्रारम्भिक स्तर पर साक्षर बनाना है। सर्वशिक्षा अभियान और अनौपचारिक

शिक्षा का लक्ष्य देश के लोगों को साक्षर करना था, जिनमें महिलाओं और लड़कियों पर विशेष रूप से बल दिया गया, ताकि उन्हें आत्मनिर्भर और आत्मविकसित बनाया जा सके।

भारत की साक्षरता दर 1951 e 18-33 ifr'kr थी जो 2011 e c< dj 74-04 प्रतिशत हो गई। जबकि 1951 e 8-86 प्रतिशत की महिला साक्षरता दर 2011 e 64-6 ifr'kr तक पहुंच चुकी है। लड़कियों के प्रति लैंगिक असमानता, सामाजिक उत्पीड़न, आर्थिक शोषण, लड़कियों को शिक्षा प्राप्ति की बजाय घरेलू कामों में लगाने के कारण विद्यालय जाने वाली लड़कियों की संख्या कम थी। इन्हीं सब कारणों का विश्लेषण कर सरकार द्वारा कई नीतियों और परियोजनाओं का क्रियान्वयन किया गया, ताकि महिला और बालिका साक्षरता दर को बढ़ाया जा सके। ljdkj] }kjk jk"Vh; lk{kjrk fe'ku] vukipkfjd f'k{kk] efgyk lek[;k rFkk lo f'k{kk vfHk;ku tl f'k{kk ilkj d dk;Øe pyk, x,A

किंतु इस दौरान ग्रामीण, पर्वतीय और आदिवासी क्षेत्रों की ज़रूरतमंद महिलाओं की ओर भी व्यापक ध्यान दिया गया तथा कई संक्षिप्त पाठ्यक्रम प्रशिक्षण कार्यक्रमों और योजनाओ के अंग बने। इन योजनाओं का उद्देश्य महिलाओं को रोजग़ार के अवसर उपलब्ध कराना था। शिक्षा के संक्षिप्त पाठ्यक्रम की योजना के अंतर्गत 15 वर्ष की आयु से अधिक उम्र की स्त्रियों को प्राथमिक, मिडिल, मैट्रिक, माध्यमिक स्तर की परीक्षाओं में सफल बनाने हेतु 2 वर्ष की अवधि के लिए मात्र स्वैच्छिक संगठनों को अनुदान दिया जाता है।

भारतीय उच्च शिक्षा प्रणाली में आज उच्च शिक्षा को लेकर प्रमुख चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान उच्च शिक्षा के विकास के लिए भारत सरकार की योजना है, सर्व शिक्षा अभियान और राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान की सफलता की कहानी पर आधारित है।

lk{kjrk dk;Øek dk iHkko

सरकार और समाज कल्याण में कार्यरत गैर सरकारी इकाइयों के क्रांतिकारी प्रयासों का शहरी और ग्रामीण लोगों पर गहरा प्रभाव पड़ा है। शैक्षिक अभियानों में महिलाओं को नए रूप में विचार करने की योग्यता प्रदान की। साक्षरता कार्यक्रम जहां उनमें पढ़ने–लिखने और जानने की जिज्ञासा पैदा करते हैं, वहीं उनमें अपने समीपवर्ती वातावरण के प्रति सामाजिक जागरूकता बढ़ती है। इसी जागरूकता का प्रभाव उनके जीवन के समस्त पक्षों पर भी पड़ता है।

परिवार में महिलाओं की साक्षरता पूरे परिवार की साक्षरता का आधार बनती है और वे अपने घर की लड़कियों को भी साक्षर होने के लिए विद्यालय भेजते हैं। साक्षर महिलाएं शिक्षा का महत्त्व समझकर उसे अपने परिवार में बढ़ाना चाहती हैं, ताकि उनकी

बेटियों को निरक्षरता, उत्पीड़न और निम्न होने का दंष न झेलना पड़े। साक्षरता नारी शिक्षा के साथ–साथ उनके व्यक्तित्व को भी निखारती है और उनमें आत्मविश्वास बढ़ता है, जिसके चलते वे अपने पारिवारिक और सामाजिक निर्णय स्वयं लेने में सक्षम हो पाती है। उनमें स्वविवेक का संचार होता है, और वे परिवार में भागीदारी करके अपनी सक्रिय भूमिका निर्वाह करती हैं। वे जीवन संबंधी निर्णयों का वे गंभीरता से विश्लेषण कर उसे क्रियान्वित करती है। यह क्रियाकलाप ही उन्हें परिवार में सम्मान और आदर प्रदान करते हैं। पुरुषों के समान शैक्षिक समानता के अलावा उनमें जेंडर समानता संबंधी निर्णय लेने की योग्यता विकसित होती है, जिसका सीधा प्रभाव स्वास्थ्य, सुरक्षा, स्वच्छता और परिवार नियोजन संबंधी निर्णय पर होता है, जिसके दूरगामी परिणाम होते हैं। एक जागरूक, साक्षर तथा सशक्त महिला ही आर्थिक रूप से स्वावलंबी बन सकती है और परिवार में आर्थिक योगदान कर सकती हैं। इससे उसके परिवार की आर्थिक स्थिति में सुधार होता है। सशक्तीकरण के फलस्वरूप ही वह आर्थिक विषयों पर स्वतंत्र रूप से विचार करती है। और आर्थिक स्रोतों तक अपनी पहुंच बनाती है।

किसी निरक्षर स्त्री की तुलना में साक्षर स्त्री की इच्छाशक्ति और इच्छाशक्ति में प्राकृतिक उत्कर्ष पाया जाता है। सशक्तीकरण वास्तव में महिला–पुरूष समानता के विचार को दृढ़ता प्रदान करता है। सामाजिक, सांस्कृतिक और सांप्रदायिक सौहार्द्र में वृद्धि होती है। ग्रामीण शिक्षा के प्रति समितियों जैसी आधारभूत स्तरीय संरचनाओं को बल मिलता है। पर्यावरण के प्रति सजगता और स्वास्थ्य कार्यों के प्रति रूचि बढ़ती है। शिक्षा द्वारा सशक्तीकरण से स्त्री के सबलीकरण को ठोस आधार मिलता है। वह अपने अधिकारों और विकास के प्रति जागरूक होती है। सशक्तीकरण और संगठन की शक्ति से वह बाल विवाह, दहेज प्रथा, सती प्रथा, घरेलू हिंसा, दहेज उत्पीड़न, कार्यालय उत्पीड़न, यौन उत्पीड़न, शराबबंदी जैसी सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध खड़ी हो कर समस्त नारी जाति के गौरव की रक्षा करती है।

f'k{kk laLFkkuksa dk Øe'k% fodkl

o"kZ	lhfu;j Lrj	mPp f'k{kk	fo'ofo|ky;
1951	7400	578	27
2014&15	109300	38498	760

(संदर्भ – भारतीय जनगणना एवं एज्यूकेशनल स्टेटिस्टिक्स एट ए ग्लान्स 2016, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली प्रकाषन)

तालिका से स्पष्ट है कि हर स्तर के शिक्षा संस्थानों का क्रमशः विकास हुआ है। आज़ादी के पश्चात प्रथम जनगणना में कॉलेज 538 से बढ़कर आज 38498 हो चुकी है। इसी प्रकार विष्वविद्यालय 27 से बढ़कर 760 हो चुके है।

ukekadu dk Øe'k% fodkl ¼ yk[kks e ½

o"k	ikFkfed		mPp ikFkfed		lhfu;j Lrj		mPp f'k{kk	
		efgyk	iq:"k	efgyk	iq:"k	efgyk	iq:"k	efgyk
1951	138	54	26	5	13	2	4	0
	676	629	345	327	124	111	185	157

(संदर्भ – भारतीय जनगणना एवं एज्यूकेशनल स्टेटिस्टिक्स एट ए ग्लान्स 2016, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली प्रकाषन)

इस तरह नामांकन का विश्लेषण करें तो तालिका में देखेगे कि जहां 1951 में प्राथमिक शिक्षा ग्रहण करने वाली महिलाएं 54 लाख से बढ़कर आज 629 लाख है। उच्च प्राथमिक स्तर पर 5 लाख से 327 लाख हो चुकी है। सीनियर स्तर पर 2 लाख से बढ़कर 111 लाख है। उच्च शिक्षा संस्थानों में नामांकन आज़ादी के समय शून्य से बढ़कर 157 लाख तक पहुंच गया है।

fL=;ks dh Hkkxhnkjh ¼ ifr 100 iq#"k ds de e ½

o"k	ikFkfed	mPp ikFk-fed	lhfu;j Lrj	mPp f'k{kk
1951	39	19	15	13
2014&15	93	95	90	85

(संदर्भ – भारतीय जनगणना एवं एज्यूकेशनल स्टेटिस्टिक्स एट ए ग्लान्स 2016, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली प्रकाषन)

तालिका से प्रतीत होता है कि प्रति 100 पुरुष के क्रम में स्त्रियों की भागीदारी प्राथमिक स्तर पर 93 प्रतिशत, उच्च प्राथमिक स्तर पर 95 प्रतिशत, सीनियर स्तर पर 90 प्रतिशत एवं उच्च शिक्षा स्तर पर 85 प्रतिशत है, जो स्त्री शिक्षा में हुई उतरोत्तर वृद्धि का घोतक है। जनगणना 2011 के अनुसार जेण्डर पेरिटी इन्डेक्स 940 है। vr% bl ls Li"V gS fd L=h ,oa iq#"kksa dk 'kSf{kd Lrj esa lekurk gksrh tk jgh gSA og fnu vc nwj ugha fd L=h f'k{kk ds {ks= esa iq#"kksa ls vkxs c<+xhA

L=h lk{kjrk vkSj f'k{kk fL=;ksa dh 'kSfD{kd gSA साक्षरता की दृष्टि से स्त्रियों ने भी कदम बढ़ाये हैं। शिक्षण संस्थाओं में उनकी उपस्थिति है। चाहे वो प्राथमिक स्तर की हो या विश्वविद्यालय स्तर की। इससे महिलाएं सार्वजनिक क्षेत्र में सभी स्तर पर सरकारी और गैर सरकारी नौकरियों में सामान्य पद से उच्च अधिकारिक पदों पर काम करने लगी हैं। अब पायलट बनना तो आम जिज्ञासा बन रही है। अखिल

भारतीय परीक्षाओं में स्त्रियों का पुरुषों के मुकाबले प्रदर्शन भी अच्छा हो रहा है। यह बढ़ती साक्षरता की चेतना का ही परिणाम है। मनुष्य का जन्म सहज है, और उसे जैसा वातावरण मिलता है, उसी के आधार पर वह विकसित होता है। स्त्रियों से भी आग्रह है कि ऐसा प्रबुद्ध संस्कार बचपन में ही बच्चों को देवें, जिससे बच्चें बड़े होकर सामाजिक चेतना में अहम भूमिका निभाये।

l'kDr Hkkjrh; L=h

भविष्यवाणियों ने इक्कीसवीं सदी को ''स्त्री सदी'' के रूप में उद्घोषित किया गया है। स्त्री नए सिरे अपने से वर्चस्व का परिचय देने के लिए ऊपर आ रही है। स्त्री अधिक समर्थ, कुशल और सुसंस्कृत बनने जा रही है। यह उसके नवजीवन का स्वर्णिमकाल हैं। भारत में हर क्षेत्र स्त्रियाँ आगे बढ़ने लगी है। इसके इस नुतन परिचय में संकल्पना या संभावना नहीं वरन् सुनिश्चित भवितव्यता की झलक–झाँकी मिलने लगी है।

आज पुरुष के एकाधिकार वाले अधिकतर क्षेत्रों में भारतीय स्त्रियाँ निर्णायक भूमिका में पहुँच रही है। कार से लेकर अंतरिक्ष यान तक को संचालित करने का अधिकार कल तक पुरुषों के पास सुरक्षित था, किन्तु 25 वर्षीया rkjk {k=h ने प्रथम बार टैक्सी चलाई और l|j[kk ;kno ने ट्रेन के इंजन को अपने काबू में कर एक बड़ी चुनौती पेश की। अग्निशमन, सेना, वायुसेना, पुलिस जैसे चुनौतीपूर्ण कार्यों में भी स्त्रियों की हिस्सेदारी निरंतर बढ़ती जा रही है। dYiuk pkoyk अंतरिक्ष में उड़ने के लिए नासा जा पहुँची, तो ख़तरों का उत्साह से सामना करने की आदत के कारण inekorh देश की पहली एयरमार्शल बन गई। 38 वर्षीया ehuk{kh fot;d|ekj ने तमिलनाडु अग्नि बचाव सेवा में मंडल अग्निशमन अधिकारी के रूप में शामिल होकर स्त्रियों को एक नया साहस और प्रेरणा प्रदान की। मैगसेसे पुरस्कार से सम्मानित fdj.k cnh भारतीय पुलिस सेवा की पहली अधिकारी है। वैज्ञानिक क्षेत्र में कदम रखने वाली Mk- bfnjk fgn|tk ने 6 अगस्त, 1986 को भारत में सबसे पहले परखनली शिशु के जन्म का करिश्मा कर दिखाया।

सामाजिक नेंतृत्व में स्त्रियों की भूमिका बढ़–चढ़कर रही है। l|puk 'kfDr dh i|cy i|jkdkj v:.kk jk; ने सन् 1990 में मज़दूर किसान शक्ति संगठन की स्थापना की। उन्होंने राजस्थान में सूचना का अधिकार विधेयक पारित कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। कश्मीर में पैदा हुई l|;nÙk gehn मुस्लिम महिलाओं की शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक दशा सुधारने के प्रयास के साथ ही साम्प्रदायिक सौहार्द पैदा करने के लिए सम्भवतः सबसे अधिक सक्रिय स्त्रियों में से एक है। लगभग दो दशकों से ऑल इण्डिया डेमोक्रेटिक वीमेंस एसोसिएशन की महासचिव oUnk djkr, करघा, विकलांग और अल्पसंख्यक समुदाय की स्त्रियों के विकास में कार्यरत है। समाज को समर्पित fuel|yk n'kik.M गांधीवादी सामाजिक कार्यकर्ता रही है। वे आदिवासियों

और अनुसूचित जातियों की शिक्षा–रोजग़ार के लिए कार्यरत रही। राज्यसभा सदस्य मनोनीत होने के बाद से उनकी विशेष रूचि गरीबों की सेवा और सर्वधर्मसमभाव बनाने में रही। e?kk ikVdj को विस्थापितों का मसीहा कहा जाता है। स्वाश्रयी महिला संघ की प्रमुख byk HkVV ने स्त्रियों की दशा सुधारने में अथक प्रयास किया है। विगत 22 वर्षों से विकास और पर्यावरण के बीच सम्बन्ध पर काम कर रही lquhrk ukjk;.k दिल्ली स्थित 'सेन्टर फोर साइन्स एण्ड एन्वायरमेन्ट' से जुड़ी हुई है।

अपने देश में स्त्रियों की एक पूरी पीढ़ी नौकरशाही के शीर्ष पदों पर पहुॅच गई है। श्रीमती 'kf'k f=ikBh विदेश सेवा की अधिकारी है। किसी राज्य के पुलिस महानिदेशक पद को सुशोभित करने का गौरव पहली बार मिला dpu pkèkjh HkVVkpk;l को। Jherh ckjo.kdj मुम्बई पुलिस की अपराध शाखा की संयुक्त आयुक्त है। Mk- iquhrk vjkMk देश की पहली लेफ्टिनेंट जनरल बनी है। भारतीय रेलवे में वित्त आयुक्त के पद पर तैनात Jherh fot;y{eh fo'ukFku ने रेल बजट तैयार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। yhuk egnyi राष्ट्रीय महिला आयोग में कार्य कर चुकी है। fu:iek jko] 'kkHkkukjk;.k] uhuk jktu आदि ने भी प्रशासन के शीर्ष पर आसीन होकर प्रशासन को नया आयाम प्रदान किया है।

आज परम्परा की अकड़न और पश्चिम की आंधी के बीच संस्कृति के क्षेत्र में मौलिक योगदान का श्रेय बहुत कुछ स्त्रियों को जाता है। देश भर में फैली विधि कला–संस्कृति की परम्पराओं को गहराई से परखने और उस पर आलोचनात्मक विचार–विमर्श करने में कपिला वात्स्यायन की सार्थक और महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। 175 पुस्तकों की महान लेखिका egk'osrk noh भारत में ही नहीं, पूरे उपमहाद्वीप में गर्व कर सकने लायक नाम हे। 'ज्ञानपीठ' और 'साहित्य अकादमी' पुरस्कारों से सम्मानित उर्दू की बहुचर्चित लेखिका djry ,u gnj का साहित्य हिन्दुस्तान की साहित्यिक विरासत और वर्तमान के साथ सम्बन्धों का दस्तावेज़ है। मंच अभिनेत्री एवं नाट्य निदेशिका m"kk xkxyh ने समाज को समकालीन सांस्कृतिक पहचान प्रदान की है। ;kfeuh —".kefrl की भरतनाट्यम की श्रेष्ठ कलाकृति कहा जा सकता है। हिन्दुस्तानी संगीत की fd'kkjh vehudj ने नई दिशा दी है।

fdj.k etenkj शॉ बायोकॉन कम्पनी की चेयरपर्सन देश की सबसे धनी महिला है। lèkkefrl इंफोसिस कम्पनी की संस्थापक है। jkfg.kh uhyef.k के पास 700 करोड़ की पूॅंजी है। fo|k ekgu NkcfM;k जंबू समूह कोचेयरपर्सन हैं, जिन्हें 'फॉरच्यून' पत्रिका ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सशक्त महिला उद्यमियों में शामिल किया है। एच.एस.बी.सी. बैंक की चैयरपर्सन uuk yky fdnobl का नाम देश की अग्रणी धनी महिलाओं में शुमार है। इस क्रम में 'kgukt glu] fi;k iky] ihfr jMMh ,o pnk dkpj (आई.सी.आई.सी.आई. बैंक की अध्यक्ष) का नाम भी आता है। सभी ने अपनी मेघा, कौशल और परिश्रम से अपार सम्पदा को अर्जन किया है। अपने व्यक्तित्व और प्रतिभा से शानदार उपस्थिति दर्ज़ कराने वाली महिलाओं में fctul

oeu 'kkHkuk Hkjfr;k] flrkj okfndk vu"dk 'kdj] Q'ku fMtkbuj fjr dekj ,o fjr cjh] fo[;kr Mh-t- e?kk dkoy] ekuk xjckj] l"kek ijh] uQhlk vyh शामिल है। महिला खिलाड़ियों में दुनिया में देश का नाम रोशन किया। vt ckch tkt] vtfy Hkkxor] lkfu;k fetk] vi.kk ikiV] dku: gih] ferkyh jkt] ih-Vh- m"kk] Mkyk cuth] d.ke eYy'ojh ,o d-,e- chukeky ने इस प्रकार सूचना–क्रान्ति, भूमंडलीकरण, स्त्री मुक्ति आन्दोलन, समाजसेवा, वैज्ञानिक, राजनीति, पेशेवर क्षेत्र तथा सिनेमा आदि सभी क्षेत्रों में महिलाओं कृत्तिव ने अपना सम्मानजनक एवं प्रतिष्ठापूर्ण स्थान अर्जित किया है।

भारत के इतिहास में प्रथम बार रियो दी जेनेरियो में ऑलम्पिक 2016 में महिला खिलाडियों ने फ्री स्टाईल कुश्ती में साक्षी मलिक एवं बैड़मिन्टन में पी. वी. सिन्धु ने ही पदक प्राप्त कर देश का नाम रोशन किया।

QkCl }kjk o"k 2016 fo'o dh 100 l'kDr efgykvk की सूची जारी की गई है जिसमें 04 महिलाएं भारतीय है। v#ekfr HkVVkpk;, चेयरपर्सन, स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, pnk dkpj, प्रबन्ध निदेशक एवं मुख्य कार्यकारी अधिकारी, आई.सी. आई.सी.आई. बैंक, fdj.k etenkj, अध्यक्ष एवं प्रबन्ध निदेशक, शॉ बायोकॉन कम्पनी ,o 'kkHkuk Hkjfr;k, चेयरपर्सन एवं सम्पादक निदेशक, एचटी मीडिया, blh idkj vU; lHkh {k=k e Hkh efgyk, lrr ixfr'khy gA

राजनीति के क्षेत्र में स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गांधी, महामहिम श्रीमती प्रतिभा देवी सिंह पाटील, मीरा कुमार, न्यायिक क्षेत्र में जस्टिस रूमा पाल, जस्टिस ज्ञान सुधा मिश्रा एवं सब क्षेत्रों में अनेकानेक महिलाएं देश का विकास कर रही है। शिक्षा के क्षेत्र में भी बालिकाएं बालकों से बाजी मार रही हैं। कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं है।

राज्यों में सशक्त मुख्यमंत्री के रूप में श्रीमती वसुन्धरा राजे–राजस्थान, सुश्री ममता बनर्जी–पश्चिम बंगाल, के नाम उल्लेखनीय हैं। लोकसभा अध्यक्ष–श्रीमती सुमित्रा महाजन, श्रीमती सुषमा स्वराज– विदेश मामलात मंत्री, श्रीमती स्मृति ईरानी– मानव संसाधन विकास मंत्री, सुश्री उमा भारती– जल संसाधन एवं गंगा विकास मंत्री, श्रीमती मेनका गांधी – महिला एवं बाल विकास विभाग, सुश्री हर्षित बादल– फूड प्रोसेसिंग मंत्री, सुश्री नजमा हेपतुल्ला–अल्पसंख्यक मामलात मंत्री महिलाएं देश का विकास कर रही है। इसी प्रकार अन्य सभी क्षेत्रों में भी महिलाएं सतत प्रगतिशील है।

इसके आधार पर यह विश्वास हो सकता है कि पंचायती राज संबंधित 73वें संविधान संशोधन से करोड़ों महिलाओं का देश में लोकतांत्रिक प्रशिक्षण हो रहा है, वह अन्ततः हमारी समग्र राजनीति के चरित्र को प्रभावित कर सकेगा। 73वें संविधान संशोधन की बेटियों (महिला सरपंचों) की सफल कहानियां हमें एक आशा का दीप दिखा रही हैं। वे बाल विवाह और भ्रूण हत्या रोक रही हैं। छोटे परिवार का चलन चला रही हैं। शिक्षा की अलख जगाती है। सड़कों से गांवों को जोड़ती है और गांवों में बिजली का

प्रकाश फैलाती है। हर अधिकारी के साथ रिश्ते बनाने के साथ उनकी भ्रष्टाचार प्रवृत्ति से निलम्बन भी करवाती है। शराब को गांव से अलविदा कर रही है। आपसी झगड़े आपस में ही निपटारा करने की सफल समझ जगा रही है। ग्राम सभाओं को सशक्त बनाकर गांवों में अतिक्रमण को तोड़ना, शराबबंदी करना, घर–घर में शौचालय बनवाना तथा गरीबी उन्मूलन का प्रयास कर रही हैं। स्वयं सहायता समूह और दीदी बैंको से महिलाओं को अपनी ताकत से गरीबी को मिटाने का संकल्प जगा रही हैं। इससे भी महत्त्वपूर्ण काम वो यह करके दिखा रही है कि जनता से चुने जाने के बाद किसी भी राजनीतिक पद पर रहो अपने स्वयं के व्यवसाय से आजीविका अर्जन करके जीओ। स्वयं झोपड़ी में रहकर गांव वालों को पक्के मकान दिलाओ। शायद यही सोचकर यह माना जाता है कि हर क्षेत्र में ऐसी सफल सरपंचों की सकारात्मक निर्भीक सोच और सृजनशीलता की कहानी खोजी जाय। ek= ;g dguk fd efgyk, ?k?kV e ifr d lgkj dke djrh g ;g Hkh dgk fd o ifr d lgkj Lo; dk etcr djd ?k?kV dk dejdl cukdj viuk ijpe Hkh Qgjk jgh gA L=h lk{kjrk vkj f'k{kk efgykvk dh 'kfDr gA साक्षरता की दृष्टि से महिलाओं ने भी कदम बढ़ाये हैं। शिक्षण संस्थाओं में उनकी उपस्थिति है। चाहे वो प्राथमिक स्तर की हो या विश्वविद्यालय स्तर की। इससे महिलाएं सार्वजनिक क्षेत्र में सभी स्तर पर सरकारी और गैर सरकारी नौकरियों में सामान्य पद से उच्च्व अधिकारिक पदों पर काम करने लगी हैं। अब पायलट बनना तो आम जिज्ञासा बन रही है। अखिल भारतीय परीक्षाओं में महिलाओं का पुरुषों के मुकाबले प्रदर्शन भी अच्छा हो रहा है। यह बढ़ती साक्षरता की चेतना का ही परिणाम है।

D;k gk Hkkoh j.kuhfr \

पंचायती राज में स्त्री सहभागिता का क्षेत्रीय नेतृत्व उस क्षेत्र में स्त्रियों की दशा का दर्पण है। उस क्षेत्र की सामाजिक–पारिवारिक परिवेश तथा परिस्थितियों से महिला नेतृत्व की स्थिति स्पष्ट होती है। महिलाओं में साक्षरता की दर बढ़ रही है। गांवों में भी बालिका शिक्षा का चलन हो रहा है। गांवों में घूंघट उनकी परम्परा है पर अब इससे भी स्त्री उबर रही है। अब स्त्रियॉ भ्रूण हत्या को रोकने में सजग हैं। बाल मृत्यु दर भी कम हो रही है। ग्रामीण नेतृत्व की श्रेणी में 30–45 वर्ष की स्त्रियॉ ज़्यादा निर्वाचित होकर काम कर रही हैं। अब वे अपनी शैक्षणिक स्थिति को बढ़ाने की दिशा में सोच रही हैं। स्त्रियों में राजनीतिक जागृति और प्रशासनिक क्षमताओं का विकास होने लगा है।

घर और बाहर दोनों ही क्षेत्रों में स्त्रियां अपनी नई संभावनाएं तलाश रही हैं। नए समीकरण जोड़ रही हैं। दृढ़ संकल्प, एकाग्रता, आत्मचिन्तन और कुछ कर दिखाने की ललक से वे उत्साहित हैं। पुरुष प्रधानता वाले समाज में स्त्री अपना अस्तित्व खोज चुकी है। नया स्थान बना रही है इसलिए माना जाता है कि 33 प्रतिशत ग्रामीण और शहरी निकायों में आरक्षण अब विधायिकी और लोकसभा में मांगा जाने लगा है। इस

दृष्टि से 73वें संविधान के बाद जो सफलता के कार्य महिलाओं ने किए हैं उनकी सफलता की कहानी अन्य महिलाओं की तन्द्रा तोड़ कर उदासीनता से उत्साही कार्य के लिए जगा सकती है। हम सभी इक्कीसवीं सदी के युग में रह रहे हैं। सम्पूर्ण विश्व एक गांव में बदल चुका है। नवोन्मेष का दौर प्रारम्भ हो गया है। अब महिलाएं घर से बाहर जागरूक होकर घर के बाहर सार्वजनिक जीवन में सहभागिता निभाने को छटपटाने लगी हैं।

यह सब इक्कीसवीं शताब्दी के संधिकाल में सम्भव हुआ है। अगले दिनों में तो स्त्रियों को अपनी महत्ता का परिचय और भी बढ़—चढ़ कर देना है। करूणा, दया, सेवा समर्पण, निष्ठा, बुद्धि के माध्यम से स्त्री इक्कीसवी सदी में सुरम्य, सुसंस्कृत एवं उज्जवल भविष्य के रूप में बढेगी। संविधान ने स्त्री को समुचित स्वतंत्रता, सुरक्षा, संरक्षण, सम्पत्ति प्रदान की है। अब स्त्री का कर्तव्य है कि अपने अधिकारों का सदुपयोग कर अपने पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय कर्तव्यों का अनुपालन कर, भारतीय संस्कृति और संस्कारों का मान रखते हुए 'सम्यक जीवन' यापन करते हुए समाज और राष्ट्र का उत्थान करें।

समग्र स्वरूप यह कहा जा सकता है कि सुदूरवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों और आदिवासी क्षेत्रों को छोड़ दे, तो स्त्रियों की वर्तमान स्थिति संतोषजनक है। ऐसा माना जा सकता है कि जो सरकार/सामाजिक संस्थाओं/स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा प्रयास वर्तमान में चल रहे है, उन्हें और गति देकर स्त्री शिक्षा को उच्चतम शिखर पर पहुंचाया जा सकेगा।

शिक्षित करने का प्रमुख ध्येय स्त्री को मात्र शिक्षित करना नहीं है, बल्कि उनमें इतनी सामर्थ्य और जागरूकता पैदा करना है कि वह अपनी अस्तित्व को पहचान कर यथासमय अपना विकास कर सकें, परिवार शिक्षित कर सके और देश का भविष्य शिक्षित कर सकें।

lanHkZ %&

- एज्यूकेशनल स्टेटिस्टिक्स ,ट , ग्लान्स 2016, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली प्रकाशन।
- भारतीय जनगणना 1951 — 2011।
- डाईस सर्वे 2016—17 ,वं वेयर वी स्टे.ड ? नेशनल यूनिवर्सिटी फोर, एज्यूकेशन प्लानिंग एण्ड डमिनिस्ट्रेशन, नई दिल्ली।
- एम.एन. श्रीनिवास, द चेंन्जिग पोजीशन ऑफ इण्डिया वूमन, आक्सफोर्ड, यूनिवर्सिटी प्रेस, बॉम्बे।
- ए.एस. अल्टेकर, द पोजीशन ऑफ वोमेन इन हिन्दु सिविलाइजेशन।
- पुष्पा जोशी, गांधी आन वोमन, सेन्टर फार वोमनष्स डेवलपमेन्ट स्टडीज, दिल्ली।

- डॉ. जे. पी. सिंह, (2016). आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन।
- सुमन कृष्ण कांत, इक्कीसवीं सदी की ओर –राजकमल प्रकाशन।
- डॉ. राजकुमार, नारी के बदले आयाम, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस।
- जे सी अग्रवाल, भारत में नारी शिक्षा. प्रभात प्रकाशन।
- 73 वें संशोधन अधिनियम।
- Universal Declaration of Human Rights
- Constitution of India – Dr. J.N. Pandey.

• • •

L=h f'k{kk dh orleku pqukfr;k

vujkx eknh•

भारत की दो तिहाई से ज़्यादा आबादी आज भी गाँवों में रहती है। यहाँ महिलाओं पर परिवार की विशेष जिम्मेदारी होती है। वहीं लगभग आधी ग्रामीण महिलाएं आज भी अशिक्षित है, मात्र 2.8 प्रतिशत ही स्नातक और उच्च स्नातक है। हम इन आकंड़ों को विस्तार से देखे, उसके पहले "स्त्री शिक्षा की वर्तमान दिशा एवं दिशा" इस मुद्दे पर मैं कुछ सच्ची घटनाओं से आपको अवगत करना चाहूँगा, ये घटनाएँ आंकड़ों को एक परिप्रेक्ष्य प्रदान करेंगी।

वास्तविक घटनाएँ– भारत के दक्षिणी प्रदेश तमिलनाडु के कुडलूर जिले के कामापुरम् में रहने वाली दो सगी बहनों ने बारहवीं की परीक्षा अच्छे नम्बर से उत्तीर्ण करने के बावजूद फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली। इस पर न सरकार में चर्चा हुई, न तिल का ताड़ बनाने वाले मीडिया में। हुआ यूँ कि, 9 मई, 2014, दिन शुक्रवार, को जब तमिलनाडु के 12वीं बोर्ड का परिणाम आया, तो दोनों बहनें–17 वर्षीय सरन्या और 18 वर्षीय कृतिका– बहुत खुश थी कि उन्होंने लगभग 78 प्रतिशत अंक पाकर, आपस में एक अंक के अंतर से, अपने स्कूल में प्रथम और द्वितीय स्थान प्राप्त किया था। लेकिन इस परीक्षा परिणाम से उत्साहित होकर ज़मीनी असलियत से दूर, जब वो आगे की पढ़ाई के सपने बुन रहीं थीं, तब उनके माता–पिता खुश होने की बजाए कुछ और ही चिंता और सोच में डूबे थे, उनके पास दोनों बेटियों को आगे पढ़ाने के लिए पैसे जो नहीं थे और जब 10 मई, 2014, शनिवार को उन्होंने अपने माँ–बाप को आपस में बातें करते सुना– कि वो बड़ी बेटी कृतिका की शादी कर देना चाहते हैं और सिर्फ़ छोटी बेटी सरन्या को ही आगे डिग्री की पढ़ाई करवाने का सोच रहे हैं, तब यह सब सुनकर, उन्हें अपने माँ–बाप की चिंता और फैसले का अहसास हुआ। उन दोनों बहनों के आगे पढने के सारे सपने जरा सी देर में चकनाचूर हो गए, वो यह सच्चाई बर्दाश्त नहीं कर पाईं कि उन दोनों के लिए अब 12वीं से आगे की पढ़ाई संभव नहीं है। इसका परिणाम यह हुआ कि 11 मई, रविवार के दिन, जब सारे लोग घर से बाहर गए हुए थे, तब दोनों बहनों ने अपने–अपने दुपट्टे से फांसी लगा आत्महत्या कर सारा किस्सा ही ख़त्म कर दिया। असल में दोनों बहनों के पिता मुरुगन पेशे से बढ़ई थे, उन्होंने किसी तरह अपनी दोनों बेटियों को 12वीं तक तो पढ़ा दिया था, लेकिन अब उनके लिए अपनी दोनों लड़कियों इसके आगे पढ़ा पाना आर्थिक रूप से संभव नहीं था।

मैं आपको दूसरी सच्ची घटना बताता हूँ, जिससे कुछ हद तक मैं स्वयं भी जुड़ा हुआ हूँ। वर्ष 2007 की यह बात है– मध्य प्रदेश राज्य के हरदा जिले के दूरस्थ पहाड़ी

• श्रमिक आदिवासी संगठन से संबद्ध

और घने जंगल के ईलाके में बसे वनग्राम ढेगा में रहने वाली दो चचेरी बहनें– सुनीता और गजरी, आठवीं में अपने स्कूल में प्रथम श्रेणी में पास होने वाली उस ईलाके की पहली लड़कियां बनी। उनके माँ–बाप ने किसी तरह हिम्मत कर, और पैसे की व्यवस्था कर, उन्हें आगे पढने के लिए जिला मुख्यालय हरदा भेजा। लेकिन, इसी बीच जिस जंगल ज़मीन पर वो खेती करते थे, वहां से वन विभाग ने उन्हें भगाना शुरू कर दिया। इसका विरोध करने पर उनके माँ–बाप पर एक दर्जन अपराधिक क्रिमिनल और वन अपराध के प्रकरण दर्ज़ हो गए, एक बार पढ़ाई से घर लौटने पर जब सुनीता अपने खेत में काम कर रही थे, तब एक मामला सुनीता पर भी दर्ज़ हो गया। इन मामलों को कोर्ट में लडने के आर्थिक दबाव और तनाव में सुनीता के पिता की मौत हो गई, सुनीता भी इस दबाव को नहीं झेल पाई और मानसिक रूप से बीमार हो गई और फिर, बहन गजरी को भी पढाई छोडनी पड़ी। हमारे देश में स्त्री शिक्षा की इससे बड़ी विडंबना और क्या हो सकती है?

घटना आंकड़ों के आलोक में– अब, जरा इस कहानी को कुछ आंकड़ों के आलोक में देखेंगे, तो इन दो घटनाओं की व्यापकता का अंदाज़ होगा, कि हमारे देश में महिला शिक्षा के आंकड़े कितने चौंकाने वाले है, पिछले 28 वर्षों से देश के जनांदोलनों के कार्यकर्त्ता के रूप में काम करने के बाद भी, मैंने इन घटनाओं को नीचे दिए आंकड़ों के आलोक में देखा, तो यकायक विश्वास नहीं हुआ कि यह सच्चाई इतनी व्यापक और भयावह है। नेशनल सैम्पल सर्वे की, 71वें दौर की, वर्ष 2015 की रिपोर्ट "भारत में सामाजिक उपभोग के मुख्य संकेतक शिक्षा" में वर्ष 2014 के आंकड़े बताते है– ग्रामीण भाग में 2007–08 की तुलना में 15 वर्ष से उपर आयु की निरक्षर महिलाओं का प्रतिशत 52.5 से गिरकर मात्र 45.7 हुआ है, इसके अलावा 21 प्रतिशत महिलाएं मात्र नाम के लिए प्राथमिक स्तर तक पढ़ी है, याने परिवार संभालने वाली लगभग तीन–चौथाई महिलाएं आज भी किताबी ज्ञान और जानकारी से दूर है, वहीं मात्र 15 प्रतिशत 10वीं और उतनी ही 12 वीं पास कर पाती है। अगर हम 5 वर्ष से उपर की महिलाओं के लिए इन आंकड़ो को देखें तो समझ आएगा–मात्र 0.5 प्रतिशत डिप्लोमा और 2.2 प्रतिशत स्नातक और उच्च स्नातक पास महिला है, वहीं इस मुकाबले ग्रामीण पुरुष में 1.1 प्रतिशत डिप्लोमाधारी है, तो 4.5 प्रतिशत स्नातक और उच्च स्नातक डिग्री धारक है, वहीं शहर में इनका प्रतिशत पुरुष और महिला के लिए क्रमशः 17 और 13 ही है, यानि ग्रामीण पुरुषों के मुकाबले आधी ग्रामीण महिलाएं ही आगे पढ़ पाती हैं, वहीं शहरों में यह अंतर काफ़ी कम हो गया है। लेकिन शहर और गाँव में भी महिलाओं के बीच आज भी गहरी खाई है– शहरी महिलाओं में ग्रामीण महिला के मुकाबले 6 गुणा ज़्यादा महिलाएं स्नातक और उच्च स्नातक पास हैं। अगर हमें इन आंकड़ों को सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग और ईलाकों में धर्म और जाति में तोड़े तो और भयावह स्थिति नज़र आएगी। चूंकि, ये आंकड़े इस रिपोर्ट में नहीं हैं, इसके लिए हम नेशनल सैम्पल सर्वे की, 66वें दौर की, वर्ष 2010 की रिपोर्ट में 15 से ऊपर आयु वर्ग के लिए देखेंगे और इन आंकड़ों के बड़े जाल में न उलझें, इसलिए

हम यहाँ सिर्फ़ स्नातक और उच्च स्नातक स्तर के आंकड़े ही देखेंगे, इस रिपोर्ट के अनुसारः जहाँ मात्र 1 प्रतिशत ग्रामीण मुस्लिम महिलाएं स्नातक है और उच्च स्नातक है– 0.9 प्रतिशत स्नातक, 0.1 प्रतिशत उच्च स्नातक, वहीं हिन्दू ग्रामीण महिलाओं के लिए यह 2 प्रतिशत–1.6 प्रतिशत स्नातक, .4 प्रतिशत उच्च स्नातक है। यानि हिन्दू ग्रामीण महिलाओं के मुकाबले मुस्लिम महिलाओं के पास आगे पढ़ाई के अवसर और आधे हो जाते हैं। अब अगर इन आंकड़ों को शहरी महिलाओं के लिए देखें, तो हमें देश के गाँव और शहर की खाई का अंदाज़ा होगा– जहाँ 5.7 प्रतिशत शहरी मुस्लिम महिलाएं स्नातक और उच्च स्नातक की श्रेणी में है, वहीं शहरी हिन्दू महिलाओं के लिए यह 14.7 प्रतिशत है। यानि, ग्रामीण हिन्दू महिलाओं के मुकाबले 7 गुणा ज़्यादा शहरी हिन्दू महिलाएं स्नातक स्तर तक पढ़ पाती हैं। वहीं मुस्लिम महिलाओं में यह फर्क साढ़े पांच गुणे का है। बिहार, राजस्थान जैसे अनेक पिछड़े राज्यों के आंकड़े तो और भी भयावह है, बिहार में मात्र 0.1 प्रतिशत ग्रामीण मुस्लिम महिला स्नातक है, जिसके मुकाबले 0.8 प्रतिशत हिन्दू महिला स्नातक है। यानि यहाँ आकर जहाँ हिन्दू महिलाओं का शिक्षा स्तर राष्ट्रीय स्तर के मुकाबले आधे से भी कम हो गया, वहीं मुस्लिम महिला के लिए, तो यह आठ गुणे से कम हो गया। केरल जैसे राज्य में भी यह ज़्यादा जरुर है, लेकिन उम्मीद से बहुत कम। लेकिन, फिर भी यहाँ के आंकड़े अनेक मामलों में देश के सारे राज्यों से अलग है– यहाँ 9.2 प्रतिशत ग्रामीण हिन्दू महिला के मुकाबले मात्र 6.8 प्रतिशत ग्रामीण हिन्दू पुरुष स्नातक और उच्च स्नातक पास है, वहीं मुस्लिम महिलाओं के लिए यह आंकड़ा 3.8 है, तो पुरुषों के लिए 4.5 है। वहीं शहरी हिन्दू महिलाओं में यह प्रतिशत 15 है, तो मुस्लिम महिलाओं में 6.9, दोनों ही अपने शहरी पुरुष के मुकाबले में लगभग बराबर है।

यानि, केरल जैसे राज्य में भी अभी कुल 10 प्रतिशत से ज़्यादा लोग स्नातक नहीं है, और हिन्दू और मुस्लिम और ग्रामीण और शहरी शिक्षा के बीच लगभग दो गुणे का अंतर है, लेकिन वहां यही अंतर उसी वर्ग के स्त्री और पुरुष के बीच नहीं दिखाई देता। याने, देश में केरल ही एकमात्र ऐसा राज्य है, जहाँ शिक्षा के मामले में उस तरह लिंग भेद नहीं नजर आता।

अब अगर यहां ऊपर दिए सभी आंकड़ों को दलित और आदिवासी महिलाओं और पुरुष के लिए देखें, तो वो भी मुस्लिम समाज के पास ही खड़ी नजर आएंगे। चूंकि, इस वर्ग के लिए यह ताजे आंकड़े इतने विस्तार से महिला और पुरुष के लिए अलग–अलग उपलब्ध नहीं है, और फिर बहुत ज़्यादा आंकड़े के फेर से बचने के लिए, हम उन आंकड़ों को यहाँ विस्तार से नहीं दे रहे है।

अब अगर हम नेशनल सैम्पल सर्वे की, 71 वें दौर की, वर्ष 2015 की रिपोर्ट में महिलाओं के पढ़ाई छोडने के कारणों पर नजर डालें तो हमें इस लेख के शुरुआत में दी गई तमिलनाडु और मध्य प्रदेश की दो बहनों के पढ़ाई छोडने के कारण की व्यापकता का अंदाज़ा लगेगा। इस रिपोर्ट के अनुसारः ग्रामीण इलाकों में 32.9 प्रतिशत

महिला सिर्फ़ घरेलू काम के कारण ही अपनी पढ़ाई को मजबूर हो जाती हैं, वहीं शहर में भी ऐसी महिलाओं का प्रतिशत अच्छा खासा है–23, वहीं दोनों ही जगह, लगभग 15 प्रतिशत –15 प्रतिशत महिलाओं को आर्थिक तंगी और पढाई में रुचि नहीं होने के कारण पढाई छोडना पड़ती है। जहाँ शादी के करण एक भी पुरुष अपनी पढ़ाई नहीं छोड़ता है। इस मामले में गाँवों में 12.4 प्रतिशत महिलाओं और शहर में 17.1 प्रतिशत महिलाओं को इस कारण से अपनी पढ़ाई छोडनी होती है।

स्त्री शिक्षा पर रपट– मुस्लिम महिलाओं की शिक्षा पर प्रोफेसर उषा नायर द्वारा केन्द्रीय महिला एवं बाल कल्याण मंत्रालय के लिए वर्ष 2007 में किए गए विश्लेषण ाात्मक अध्ययन में मुस्लिम के साथ हिन्दू सहित सभी महिलाओं की शिक्षा व्यवस्था पर विस्तार से लिखा गया है। इस रिपोर्ट में यह ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री अनंत सदाशिव अतेकर के अध्ययन का उल्लेख करते हुए बताया है कि जहाँ हिन्दूओं में वैदिककाल में स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में आगे थी, वहीं ब्राह्मणकाल में 500 से 1800 काल में स्त्री की शिक्षा और हालात बिगड़े ही हैं। वहीं, मुसलमानों स्त्री के बारे में सफ़ा इकबाल, डॉक्टर एस. सैयद वसीफी, शेबा हुसैन, आबिदा सैबुद्दीन के अध्ययनों के हवाले से कहा है– जहाँ पैगम्बर मोहम्मद के समय में अरब देश में मुस्लिम महिलाओं में शिक्षा का लगातार फैलाव हुआ। वहीं मुस्लिम शासकों का राज्य जाने और 1857 के बाद अंग्रेज़ों के बदते प्रभाव से बड़ी निराशा ने मुस्लिम महिलाओं की शिक्षा पर विपरीत प्रभाव डाला।

उन्होंने अपने रिपोर्ट में सुझाव दिया– कि महिलाओं के शिक्षा की स्थिति पर समय–समय पर श्वेत–पत्र जारी किया जाना चाहिए, जिस पर प्रतिक्रिया लेकर उनकी शिक्षा के लिए क्या जरूरी बुनियादी बदलाव करना है, यह तय किया जा सके। लेकिन, उनके उस सुझाव को आजतक अमली जामा नहीं पहनाया गया।

मेरा विश्लेषण– हमें यह समझना होगा कि जहाँ अनेक देशों में महिलाओं के लिए अलग शिक्षा नीति है, वहीं हमारे देश में, 1968 में पहली शिक्षा नीति जारी होने के 18 साल बाद, 1986 में जब दूसरी शिक्षा नीति बनी, तब उसमें पहली बार महिला को शोषण से मुक्ती दिलाने और उनके सम्पूर्ण विकास के लिए शिक्षा को मुख्य आधार बनाने का फैसला लिया गया और संयुक्त राष्ट्र संघ के "डेवलपमेंट डिकेड फॉर वीमेन"–1985–1995 के दौरान "वर्ल्ड कांफ्रेंस फॉर ऑल" की 1990 में बैंकाक में हुई बैठक में भारत की और से यह विश्वास दिलाया गया कि शिक्षा गैर–बराबरी दूर करने का आधार बनेगी।

लेकिन, राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के उपर दिए गए आंकड़े हमें समझाते हैं कि भारत जैसे कल्याणकारी और संविधान में घोषित समाजवादी राष्ट्र में, जहाँ कुछ लोगों को पढने के लिए सब–कुछ उपलब्ध है, उनके परिवार की मुखिया की आय में उसका अलग प्रावधान है, उसी देश में आज़ादी के सात दशक बीत जाने के बावजूद

दो–तिहाई महिलाएं आर्थिक (पढ़ाई में रुची, घरेलू काम, आर्थिक तंगी यह सब जुड़ी बातें है) और छठवां हिस्सा शादी जैसे समाजिक कारणों से पढ़ाई छोडने को मजबूर होतें है। दूसरी तरफ, मुफ्त शिक्षा धीरे–धीरे दुर्लभ होती जा रही है–राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण, 2015 के अनुसार, ग्रामीण ईलाकों में जहाँ प्राथमिक स्तर पर एक–चौथाई बच्चे निजी स्कूलों में पढने जाने को मजबूर हैं, वहीं शहर में यह प्रतिशत दो–तिहाई से उपर है। लेकिन, कॉलेज आते–आते ग्रामीण इलाके में भी 52 प्रतिशत तो शहर में 60 प्रतिशत निजी संस्थानों में जाने को मजबूर हैं। वहीं अमेरिका जैसे पूंजीपति देश में 85 प्रतिशत बच्चे सरकारी शिक्षा संस्थानों में पढ़ाई करते हैं।

आगे की दिशा– यह सब आंकड़े और कहानियां हमें यह समझाती है कि स्त्री या महिला शिक्षा का असल मामला कहीं न कहीं आर्थिक और समाजिक गैर–बराबरी से जुड़ा हुआ है, और हमारी पढ़ाई उनके लिए रुचिकर और जरुरी नहीं बन पाई। पढ़ाई सिर्फ़ एक नौकरी पाने का ज़रिया भर बनकर रह गई, इसलिए उसे महिलाओं के लिए जरुरी नहीं समझा जाता है।

गांधी सिर्फ़ एक कोरी आदर्शवादी कल्पना वाला इंसान न होकर एक अत्यंत ही व्यवहारिक समझ रखने वाला था, जिसे देश की नब्ज़ पता थी और उनकी विकास और शिक्षा की सोच को सिरे से नकारकर हम आज–तक देश की 5 प्रतिशत स्त्रियों को भी स्नातक की डिग्री तक नहीं ले जा पाए। वहीं हमने उनके साझा, सामुदायिक और परम्परागत ज्ञान, कला, कौशल और समझ से सामंजस बैठा अपनी खुद की "देशी शिक्षा और विकास व्यवस्था" कायम कर उसे आधुनिक रूप से निखारने की बजाए, उन्हें सिर्फ़ किताबी–ज्ञान को ज्ञान और महिलाओं के ज्ञान को अनपढ़, अनाड़ी और दोयम दर्ज़े वाला करार दे दिया।

स्त्री शिक्षा व्यवस्था में बुनियादी बदलाव के लिए हमें गांधीजी की ताकीद को समझना होगा, जिसमें उन्होंने कहा था– हमें शिक्षा की क़ीमत एक वस्तु की तरह आंकते हैं– जैसे हम शेयर मार्केट और ज़मीन के मामले में करते हैं, चूंकि, स्त्री बाहर नौकरी करने नहीं जाती है, तो हमें उसकी शिक्षा महत्त्वहीन लगती है। उनका मानना था– शिक्षा को एक क्रांतिकारी रूप देने की ज़रूरत है, जिसमें गाँव की गरीबी का जवाब मिल सके, न की साम्राज्यवादी लुटेरे की लूट को साथ मिले। शिक्षा में क्रांतिकारी विचार रखने वाले "गिजुभाई बोधेका" ने एक पिता के सवाल के जवाब में कहा था–दुनियाभर की शालाएं बंद कर डालें तो भी बालक का कोई नुकसान नहीं होगा, बल्कि आजकल की शालाएं बंद हो जाए तो बहुत लाभ ही होगा।

प्रसिद्ध फ्रेंच समाजशास्त्री और दार्शनिक पियर बौर्दुआ ने कहा था, जो लोग पढ़े–लिखे ऊँचे परिवारों से आते हैं, हमारी शिक्षा व्यवस्था उनके अनुसार होती है, इसलिए उन्हें अपनी "कल्चरल कैपिटल" को तीखा करने का मौका मिलता है, वहीं पिछड़े वर्गों से आने वाले पूरी शिक्षा के दौरान हीनभावना से ही जूझते रहते है। मैं

इस बात को एक किस्से से समझाता हूँ– विगत दिनों मुझ से हमारे वरिष्ठ आदिवासी कार्यकर्त्ता, बैतूल जिले के जोड्यामउ गाँव के मंगलसिंह भाई, ने कहा– कि स्कूल हमारी भाषा के साथ हमारा पहनावा भी ख़त्म कर रहे हैं, इसलिए स्कूल में यूनिफार्म नहीं होना चाहिए, इससे हमारे पहनावे के साथ भेद–भाव होता है, और स्कूल जाने के साथ ही हमारा बच्चा आदिवासी पहनावा झोड़ चोंगला (फुलपेंट/पेंट) वाला शहरी पहनावा अपना लेता है, वो अपनी भाषा और संस्कृति सब भूल जाता है। उन्होंने अपना अनुभव बताया की, आज से 40 साल पहले वो जब मिडिल स्कूल की पढाई करने शाहपुर गए, तो उन्हें आदिवासी पहनावे के कारण रोज क्लास से बाहर कर दिया जाता है, उन्होंने दो साल लड़ाई लड़ी, और अंततः आठवीं में पढाई छोडना ही बेहतर समझा। यह सब सुनकर मैं दंग रह गया!

इन आदिवासी कार्यकर्ताओं की इन गूढ़ बातों को समझ पायंगे, तभी स्त्री शिक्षा को सही दिशा मिलेगी और एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था कायम कर पाएंगे जो लोग की संस्कृति और परम्परागत ज्ञान के साथ घुल मिल सके, जहाँ हर भाषा, पहनावे कला, कौशल और परम्परागत ज्ञान और श्रम को को उचित सम्मान और आर्थिक मुआवज़ा दे, हमें उसे निखार सके, न कि उसे दोयम दर्जे का मानकर नकारे।

लेकिन, इसके लिए हमें विकास और ज्ञान की अपनी घिसी–पिटी परिभाषा को बदलना होगा, वैज्ञानिक सोच वाली गांधीजी की नई तालीम और दुनिया भर के अन्य ऐसे प्रयोंगों को समझकर, अपने देशज आधुनिक सोच को अनुसार अपनी एक नई शिक्षा व्यवस्था कायम करनी होगी, तब ही कुछ बदलने की शुरुआत होगी। हो सकता है, जैसा गांधीजी कहते थे; इस बदलाव से कुछ समय के लिए शिक्षा में अराजकता की स्थिति पैदा हो, हमारी तथाकथित उच्च शिक्षा अफ़रातफ़री की स्थिति में आ जाए लेकिन, यह जरुरी है, तभी सविंधान में दिए बराबरी और समाजवाद के मूल्यों पर आधारित नई शिक्षा व्यवस्था कायम कर पाएंगे।

शिक्षा व्यवस्था और सोच में इस आमूल–चूल परिवर्तन के बिना स्त्री शिक्षा के आंकड़े और उसमें सुधार की रिपोर्ट और योजनाएं इसी तरह चलती रहेगी।

• • •

vkèkh vkcknh dh f'k{kk ,o pqukfr;k

Kkuorh èkkdM•

शिक्षा शब्द संस्कृत के 'शिक्ष' धातु से बना है जिसका अर्थ है सीखना या सिखाना, वहीं अंग्रेज़ी का शब्द 'एजुकेशन' जो स्वयं लेटिन शब्द 'एजुकेटम' से बना है; जिसका अर्थ है अंदर से बाहर निकालना यानि, कि बालक की आंतरिक शक्तियों को बाहर लाना या विकसित करने की क्रिया को शिक्षा कहते हैं।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार– *'मनुष्य में अन्तनिर्हित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है।'*

फ्रीड्रिक विलियम अगस्त फ्राबेल– *'शिक्षा एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा बालक अपनी शक्तियों का विकास करता है।'*

महात्मा गांधी– *'शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक या मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क या आत्मा के सर्वांगीण विकास से है।'*

अरस्तू– *'स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण करना ही शिक्षा है।'*

हरबर्ट स्पेन्सर– *'शिक्षा से तात्पर्य है अन्तर्निहित शक्तियों तथा बाह्य जगत के मध्य समन्वय स्थापित करना'*

प्लेटो– *'व्यक्तिव का विकास ही शिक्षा का उद्धेश्य है'*

मतलब साफ है कि शिक्षा व्यक्ति के जीवन को सकारात्मक, संस्कारयुक्त एवं सार्थक जीवन जीने का सम्बल देने का एक महत्त्वपूर्ण साधन है जो उसके दिमाग को विकसित और क्रियाशील बनाकर एक जागरूक एवं समझदार सामाजिक प्राणी बनाने में सहायक होती है, शिक्षा ही ज्ञान के भण्डार को हमारे दिमाग में भरकर हमें एक सुखद एवं कर्तव्यनिष्ठ जीवन जीने के योग्य बनाती है, क्योंकि शिक्षा के बिना व्यक्ति एक निरा अविकसित मानसिकता के साथ जीवन जीने को मजबूर हो जाता है। हां यह कहा जा सकता है कि किताबी ज्ञान के साथ साथ व्यक्ति को व्यवहारिक ज्ञान की भी आवश्यता होती है जो व्यक्ति को अपने जीवन के व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर दिन प्रतिदिन के अनेक कार्यों को करने की एवं उन पर निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करती हैं। अतः जो शिक्षा जीवन पुष्प को सुसमन्वित रूप से प्रस्फुटित करके मनुष्य जीवन को समग्र रूप से सार्थक बनाने के साथ ही दिन प्रतिदिन की समस्याओं का समाधान करने की क्षमता प्रदान करती हो, वही सच्ची शिक्षा है। लेकिन आज के उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण रूपी परिवेश में शिक्षा की

• अधिवक्ता, राजस्थान हाईकोर्ट, जयपुर

व्याख्या में इसके मौलिक आधार जैसे व्यक्तित्व विकास, नैतिकता, सामाजिक दायित्व, मानवीय कर्तव्य आदि की पूर्णरूपेण अनदेखी हो रही है और सिर्फ़ रोजग़ारपरक शिक्षा देने पर ही ज़ोर दिखाई दे रहा है जिसके कारण आज का युवा सम्पन्नता के बावजूद मानसिक उलझन में फंसे दिखाई देते हैं, वह हर वक्त आक्रामक दिखाई पड़ते हैं, उनमें धैर्य, सहनशीलता, संघर्ष करने की क्षमता, आत्म विश्वास, ईमानदारी, स्पष्टता आदि का सर्वथा अभाव होता जा रहा है, कारण स्पष्ट है हमारी शिक्षा पद्धति में ही कुछ मूलभूत कमी आ गई है इसीलिए यह उक्ति सही साबित हो रही है कि 'बोऐ पेड़ बबूल का, तो आम कहाँ से होय'। यह बात जब लड़कियों की शिक्षा की हो तो वहॉ पर उचित शिक्षा पर ध्यान देने की और भी ज़्यादा आवश्यकता है क्योंकि एक लड़की या महिला परिवार की धुरी होती है वह एक बेटी, पत्नी और माँ के रूप में कई भूमिकाएँ निभाती है, वह ही बच्चे की पहली गुरू होती है और जो गुण वह बच्चे को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सिखाती है वह उसके जिन्दगी भर साथ रहते हैं अतः उसकी शिक्षा–दीक्षा में संस्कार का होना अत्यंत आवश्यक है। भारतीय समाज में आज भी महिलाओं को लेकर दोहरे मापदंड है एक तरफ तो समाज उन्हें पूजनीय, सरस्वती, लक्ष्मी जैसी उपमाएँ देता है तो दूसरी तरफ उनका शोषण करने में भी पीछे नहीं रहता है, आज भी उसे घर परिवार और समाज में उचित सम्मान प्राप्त करने के लिए संघर्ष करना पड़ता है, जबकि उसे सृष्टि की रचनाकार कहा गया है लेकिन वह ही असुरक्षित होकर जीवन–यापन करने को मजबूर है क्योंकि एक बहुत बड़ा प्रतिशत अशिक्षा का दंश झेल रहा है। जबकि उसकी शिक्षा तो लड़कों से भी ज़्यादा आवश्यक है क्योंकि वह ही बच्चे की जन्मदात्री है इसलिए वह जन्म के पहले से ही संस्कार डालने लग जाती है इसलिए अगर वो शिक्षित होगी तो बच्चे में स्वमेव ही वे गुण आ जाएंगे। शिक्षा से वह स्वयं तो अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति सजग एवं आत्मनिर्भर होंगी ही, साथ ही देश के विकास में भी योगदान दे सकेंगी। किसी भी राष्ट्र का विकास तभी सम्भव है जब उसकी इस आधी आबादी को शैक्षणिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक व धार्मिक आदि समस्त क्षेत्रों में सशक्त किया जाए। जैसा कि कई विद्वानों ने कहा भी है कि–

जवाहरलाल नेहरू– *'यदि आपको विकास करना है तो महिलाओं का उत्थान करना होगा, महिलाओं का विकास होने पर समाज का विकास स्वतः हो जाएगा।'*

गाँधीजी– *एक लड़की की शिक्षा एक लड़के की शिक्षा की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि लड़के को शिक्षित करने से वह अकेला शिक्षित होता है किन्तु एक लड़की की शिक्षा से पूरा परिवार शिक्षित हो जाता है, महिला ही बच्चे की सबसे पहली शिक्षक होती है। महिला की शिक्षा का स्पष्ट लाभ परिवार, समाज एवं सम्पूर्ण राष्ट्र को प्राप्त होता है।*

अरस्तु– *'किसी भी राष्ट्र की स्त्रियों की उन्नति व अवनति पर ही राष्ट्र की उन्नति व अवनति निर्भर है।'*

स्वामी विवेकानन्द– *'किसी राष्ट्र की प्रगति का सर्वोत्तम थर्मामीटर है, वहाँ की महिलाओं की स्थिति, अगर आप चाहते हैं कि आपकी संतान महान बने तो इसके लिए आपके घर की महिलाओं का शिक्षित होना आवश्यक है।*

यानि कि, महिलाओं के सामाजिक सशक्तिकरण में शिक्षा की अहम् भूमिका है, शिक्षित महिलाएं न केवल स्वयं आत्मनिर्भर होती है अपितु भावी पीढ़ियाँ भी लाभान्वित होती है। शिक्षा ऐसी सम्पत्ति है जिसे छीना नहीं जा सकता है। इस जीवन रूपी रथ के नर और नारी दो पहिए है इसमें से अगर एक पहिया कमज़ोर हो तो यह स्वयमेव ही समझ में आने वाली बात है कि वह रथ या गाड़ी कैसे सफलतापूर्वक अपनी मंजिल पर पहुँचेगी, अतः आवश्यकता है कि समाज के ये दोनों पहिए पुरुष एवं महिला शिक्षित, सशक्त एवं जागरूक नागरिक हो। अशिक्षा के कारण महिला अंधविश्वास और भ्रम की शिकार हो जाती है, असामाजिक तत्व उन्हें बहला फुसलाकर अनेक कुकृत्यों की ओर ढ़केल देते हैं जैसे हम कई बार सुनते हैं कि किसी महिला के लड़का नहीं होने के कारण उसने किसी ढ़ोंगी बाबा के बहकावे में आकर अपने पड़ोसी की संतान की बलि चढ़ा दी, यह अशिक्षा का ही परिणाम है।

भारत में महिलाओं की शिक्षा की स्थिति सदैव एक समान नहीं रही है इसमें वैदिक युग से आधुनिक युग तक अनेक उतार–चढ़ाव आते रहे हैं। वैदिक युग में महिलाओं की स्थिति सुदृढ़ थी परिवार एवं समाज में उन्हें सम्मान प्राप्त था, सम्पत्ति में बराबर की हकदार थी पूजा–पाठ एवं सभा समितियों में स्वतंत्रतापूर्वक भाग लेती थी उत्तर वैदिककाल से महिलाओं की अवनति शुरू हो गई और उनकी शिक्षण की सुविधा पूरी तरह से समाप्त प्रायः हो गई थी, लेकिन वहीं दूसरी ओर उत्तर वैदिक काल में ही तथा स्मृतिकाल में भी 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' कहकर सम्मानित भी किया जाता था, पौराणिक काल में शक्ति स्वरूपा मानकर उसकी पूजा की जाती थी किन्तु मुगल शासन, सामन्ती व्यवस्था, केन्द्रीय सत्ता का नष्ट होना, विदेशी आक्रमण और शासकों की विलासितापूर्ण प्रवृत्ति ने महिलाओं को उपभोग की वस्तु बना दिया, उनकी स्थिति में ज़बरदस्त गिरावट आई और वह अशिक्षा और रूढ़िवादिता में जकड़ती गई, परिणामस्वरूप महिलाऐं अबला और भोग्या बनकर रह गई। पर्दा प्रथा, सती प्रथा, बाल विवाह और विधवा पुनर्विवाह पर रोक जैसी प्रथाएं फैली, वहीं बहुविवाह प्रथा भी महिलाओं को दबाए रखने का काम कर रही थी। धीरे धीरे 19वीं सदी के मध्यकाल से 21वीं सदी तक पहुँचते पहुँचते पुनः महिलाओं की स्थिति में कई सुधार आए और फलस्वरूप वह शैक्षणिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, प्रशासनिक, खेलकूद, डाक्टर, वकील, लोक सभा–राज्यसभा सदस्य, इंजीनियर, न्यायाधीश, प्रशासनिक अधिकारी, पंच, सरपंच, प्रधान, प्रमुख आदि विविध क्षेत्रों में नित नए आयाम स्थापित करने लगी और इतने उच्च स्तर पर पहुँच रही है कि सारी दुनिया में अपनी छाप छोड़ रही है। आज महिला आत्मनिर्भर, स्वनिर्मित एवं आत्मविश्वासी बनती जा रही है और घर की चारदिवारी से निकलकर रूढ़िवादी प्रवृत्तियों को त्यागकर विभिन्न व्यवसायों एवं सेवाओं

में कार्यरत है। इस तरह आज यह कहा जा सकता है कि महिलाएँ शिक्षित होकर चहुँ दिशाओं में अपना परचम लहरा रही है लेकिन ऐसा गिनती की महिलाएँ ही कर पा रही है जबकि एक बहुत बड़ी संख्या आज भी निरक्षरता के जाल में फंसी हुई है जिन्हें शिक्षित करना आज प्रशासन एवं हम स्वयं जो कुछ पढ़े लिखे व्यक्ति हैं की जिम्मेदारी बनती है कि विशेषकर गांवों में शिक्षा की अलख जगाएँ और प्रत्येक बच्चे को चाहे वो लड़का हो या लड़की शिक्षित करने का प्रयास करे ताकि एक सम्पूर्ण साक्षर भारत बने।

हालांकि हमारे के संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 16, 19, 21, 23, 24, 39, 42, 44, 51(क)(ड़) एवं 325 महिलाओं को पुरुष के समान अधिकार प्रदान करते है। संविधान के 86वें संशोधन द्वारा शिक्षा को मौलिक अधिकार का दर्जा दिया गया है और सभी लड़के एवं लड़कियों को बिना किसी भेदभाव के 6 साल से 14 साल की उम्र तक निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के प्रावधान किए गए हैं इसके साथ ही 2005 में बालकों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा अधिनियम भी बना दिया गया है। जिसके द्वारा भी छह वर्ष से चौदह वर्ष की आयु के प्रत्येक बालक/बालिका को प्रारम्भिक शिक्षा पूरी होने तक निःशुल्क और अनिवार्य रूप से प्राप्त करने का अधिकार होगा और इसके लिए उनसे किसी प्रकार की फीस या अन्य कोई प्रभार भी नहीं लिया जायगा। वैसे अब चारों तरफ एक जागरूकता आई है और सबको यह समझ में आने लग गया है कि शिक्षा के बिना व्यक्ति का जीवन अन्धकारमय ही रह जाता है अतः सभी का शिक्षित होना आवश्यक ही नहीं बल्कि अतिआवश्यक है, आज तो शिक्षा को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी बहुत महत्त्व दिया जा रहा है यही कारण है कि शिक्षा के अधिकार को सम्पूर्ण विश्व में करीब करीब सभी देशों ने एक मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता दी है।

संस्कृत की एक प्रसिद्ध उक्ति है–'नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति मातृ समोगुरू' यानि कि इस दुनिया में विद्या के समान नेत्र नहीं है और माता के समान गुरू नहीं है।' जो शत–प्रतिशत सही भी है क्योंकि बालक के विकास में सर्वप्रथम माता का ही प्रभाव पड़ता है, माता ही उसकी पहली गुरू होती है और इस प्रारम्भिक ज्ञान का प्रभाव बालक के जीवन की अमिट लकीर बन जाता है अतः अगर माता पढ़ी लिखी एवं संस्कारयुक्त होगी तो वह अपने बच्चे में भी सुसंस्कार डालेगी। एक बार नेपोलियन को पूछा गया कि फ्रांस की प्रगति के लिए क्या आवश्यक हैं तो उसने जवाब दिया कि 'देश की प्रगति शिक्षित माता के बिना असम्भव है।'

जोन इलियोट ने कलकत्ता में 1849 में ही एशिया का पहला महिला स्कूल खोल दिया था जिसे बाद में 'बीथुने कॉलेज' के रूप में परिवर्तित कर दिया गया था। वैसे स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही भारत में स्त्री शिक्षा पर विशेष ज़ोर दिया जाने लगा, लेकिन अभी तक जो सच्चाई है वह बहुत ही निराश करने वाली है क्योंकि आज भी लड़की को एक बोझ माना जाता है और इस मानसिकता के कारण कहीं–कहीं तो उसे

जन्म के पहले ही मार दिया जाता है लड़के लड़की का भेदभाव अभी तक ख़त्म नहीं हुआ है। इस मामले में शिक्षित और अशिक्षित में कोई विशेष फर्क नहीं है। सरकार के अनेक प्रयासों के बावजूद अभी भी शिक्षित लड़कियों का प्रतिशत बहुत कम है। 2011 के आंकड़ों के अनुसार लड़के 84.14 प्रतिशत तक शिक्षित हो रहे है वहीं लड़कियाँ सिर्फ़ 65.46 प्रतिशत ही स्कूलों में दाख़िला लेती है और उनमें से भी 40 प्रतिशत तो प्राइमरी शिक्षा प्राप्त करते करते स्कूल छोड़ देती है। अतः महिलाओं की शिक्षा की स्थिति सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती है हाल के एक सर्वे के अनुसार 2015 तक भी 3.7 मिलियन लड़कियाँ स्कूल के दरवाजे तक पहुँच ही नहीं पा रही है और गांवों में तो 100 लड़कियों में से सिर्फ़ एक लड़की 12वीं कक्षा तक की पढ़ाई कर पा रही है। करीब 40 प्रतिशत लड़कियाँ पांचवी कक्षा तक पहुँचते—पहुँचते स्कूल छोड़ देती है और उसमें भी उनकी स्थिति ऐसी रहती है कि वह सामान्य हिन्दी को भी अच्छी तरह से नहीं पढ़ पाती है। हालांकि सरकार के सर्व शिक्षा अभियान, मिड—डे मील, निःशुल्क शिक्षा के साथ ही अन्य सुविधाओं के दिए जाने के कारण तथा संविधान संशोधन द्व ारा शिक्षा को मौलिक अधिकार मानने के बाद 6 वर्ष से 14 साल के लड़के—लड़कियों की शिक्षा में अच्छी वृद्धि हुई है। इसके साथ ही केन्द्रीय सरकार के डिस्ट्रिक्ट प्राइमरी एज्यूकेशन प्रोग्राम के कारण बच्चों का एक बार भर्ती होने के बाद कुछ समय बाद स्कूल छोड़ देने में भी कमी आई है। बच्चों के स्कूल छोड़ने में भाषा भी एक कारण बन जाती है क्योंकि बच्चे हिन्दी को समझ नहीं पाते हैं जिसके लिए भी संविधान के अनुच्छेद 350क में विशेष प्रावधान किए गए हैं कि अगर आवश्यकता हो तो वहाँ की स्थानीय भाषा में भी शुरू की शिक्षा दी जा सकती है ताकि जब बच्चे धीरे धीरे हिन्दी को समझने लगे तो उनका पढ़ाई में मन लगने लगेगा और वह बीच में ही पढ़ाई छोड़ कर नहीं जाएंगे। हालांकि शहरों में स्थिति इतनी निराशाजनक नहीं है क्योंकि शहरों में इतनी जागरूकता तो आ गई है कि हर माँ—बाप अपनी लड़कियों को पढ़ाई के लिए भेजने के लिए उत्सुक होने लगे हैं चाहे वो उसे स्नातक तक ही पढ़ायें, पर इतनी शिक्षा अधिकतर लड़कियों को दिलाई जाने लगी है लेकिन जहाँ तक गांवों का सवाल है वहाँ पर तो आज भी स्थिति बहुत निराशाजनक है और अधिकतर लड़कियाँ या तो स्कूल का दरवाजा ही नहीं देखती हैं, और जाती भी हैं तो जल्दी ही छोड़ देती हैं। ऐसे अनेक कारण हैं जो लड़कियों की शिक्षा में बाधा बन रहे हैं जैसे गरीबी, सामाजिक प्रतिबन्ध, बाल विवाह, घरों के पास में स्कूलों का नहीं होना, स्कूलों की सफाई व्यवस्था, महिला शिक्षकों की कमी, सरकारी स्कूलों का भीड़ भरा वातावरण, लड़को और लड़कियों के लिए अलग अलग शौचघरों का नहीं होना, कमरों में बिजली की उचित व्यवस्था का न होना, लड़कियों की अपूर्ण सुरक्षा व्यवस्था आदि आदि ऐसे अनेक कारण हैं कि आज भी माँ—बाप अपनी बेटियों को स्कूलों में भेजने से कतराते हैं। अतः हम देखते हैं कि आख़िर इतने प्रयासों के बावजूद आज भी गांवों तक पूरी शिक्षा क्यों नहीं पहुँच पाई है, इसके क्या कारण है और उनके क्या समाधान किए जा सकते हैं—

vf'kf{kr ek&cki ,o xjhch&

हमारे गांवों में सबसे बड़ी समस्या यह है कि बच्चों के अधिकतर माँ–बाप स्वयं ही अशिक्षित है जिन्हें पढ़ाई का महत्त्व ही मालूम नहीं है तो वह अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए कैसे उत्सुक हो सकते हैं, हालांकि अब वह अपने बेटों को तो पढ़ाने के लिए उत्सुक होने लगे हैं लेकिन बेटियों को वह अभी तक पढ़ाने को तैयार नहीं है। अभी भी उनकी मानसिकता यही है कि उसे तो घर का काम करना आना चाहिए, उसको पढ़ाई करके क्या करना है उसे तो बस थोड़ा बड़ा होने के बाद शादी करके दूसरे घर जाना है वहाँ अपने ससुराल वालों की सेवा करनी होगी ऐसे में पढ़ाई का उनके लिए कोई महत्त्व ही नहीं होता है। इसके साथ ही भारत में 21.9 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन कर रही है वहाँ हम यह कैसे सोच सकते हैं कि वह अपनी बेटियों को पढ़ाई के लिए स्कूलों में भेजेंगे। वह तो चाहेंगे कि वह घर के कार्यों में सहयोग करे ताकि परिवार के अन्य सदस्य कमाई के लिए जा सके या वह भी घर में कोई कार्य करे ताकि कुछ आमदनी का साधन बने। इसके लिए आवश्यक है कि चौपाल या सामाजिक संस्थाओं के सदस्यों को उनके बीच बैठकर पढ़ाई का महत्त्व समझाना होगा कि बेटी की शिक्षा उनके स्वयं के उत्थान के लिए और समाज की प्रगति एवं बच्चों के विकास के लिए कितनी आवश्यक है और यह भी सम्भव है कि अगर वह पढ़ लेगी तो वह भी आर्थिक उपार्जन कर उनका सहारा भी बन सकती है साथ ही उनकी बेटी जीवन भर के लिए आत्मनिर्भर बन जायगी, आदि बाते उन्हें उनके स्तर पर बैठकर समझाई जाएगी तभी वह अपनी बेटियों को पढ़ाई के लिए भेजने के लिए तैयार होंगे। अगर परिवार में कोई शिक्षित महिला है तो उसका कर्तव्य है कि वह अपने ही परिवार एवं पड़ोस की अशिक्षित महिलाओं एवं बेटियों समझाये और उनके ज्ञान एवं क्षमता तथा तर्कशक्ति का विकास करे और उन्हें प्रगतिशील एवं सभ्य बनाने का प्रयास करे तो सहज ही बेटियाँ पढ़ने के लिए अग्रसर होने लगेगी।

cky fookg

अनेक क़ानूनों एवं प्रशासन के प्रयासों के बावजूद आज भी ग्रामीणों की मानसिकता में पूरी तरह बदलाव नहीं आया है और हर साल आखातीज जैसे मौकों पर हजारों की संख्या में चोरी–छुपे बाल विवाह हो रहे है, जो एक बहुत बड़ा कारण है कि बेटियाँ शिक्षा से वंचित रह जाती हैं। आज भी अधिकतर परिवार के सदस्यों की सोच यही होती है कि बेटी तो पराया धन है उसे एक दिन शादी करके अपने घर जाना है, तो फिर उसे शिक्षित कराने का क्या फायदा। उसे तो बस घर का काम करना आना चाहिए अन्यथा ससुराल वाले उसे स्वीकार ही नहीं करेंगे। इसी सोच के कारण वह उसे ज़्यादा बड़ा भी नहीं होने देते हैं बल्कि छोटी उम्र में ही उसे विवाह के बन्धन में बांध देते हैं, स्थिति यहाँ तक खराब है कि लड़के लड़कियों को गोद में लेकर या उनकी अबोध उम्र में ही शादी कर दी जाती है, ऐसी स्थिति में उनकी पढ़ाई की कल्पना करना एक बेकार

की सोच बन जाती है। हालांकि अब सरकार ने "बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ" अभियान की घोषणा करके इस दिशा में एक सकारात्मक कदम उठाया है। इस अभियान के लिए 100 करोड़ रूपये भी आवंटित किए गए हैं, लेकिन अभी इस ओर और भी ठोस कदम उठाए जाने की आवश्यकता है। अभिभावकों को समझाना होगा कि छोटी उम्र में शादी करने के कितने नुकसानप्रद परिणाम होते हैं जिसके कारण उनकी बेटी की तो जिन्दगी खराब होती ही है बल्कि उससे होने वाली सन्तान भी कमज़ोर हो सकती है। अतः आवश्यकता है कि प्रशासन, सामाजिक संस्थाएँ, जो वहॉ पर पढ़े लिखे लोग हो उन सबकी जिम्मेदारी है कि जब भी कोई बाल विवाह हो रहा हो तो तुरंत इसकी सूचना पुलिस या अन्य अधिकारी को दे ताकि ऐसा होने से रोका जा सके और फिर उसे पढ़ाई में लगाने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। एक सामाजिक कारण यह भी है कि हर माँ—बाप की इच्छा रहती है कि उनकी बेटी की शादी जल्दी से जल्दी अच्छे घर में पढ़े—लिखे लड़के के साथ हो जाए। लेकिन चूंकि अभी तक लड़के ही गांवों में बहुत कम पढ़े—लिखे होते हैं तो माँ—बाप की एक स्वभाविक चिन्ता यह हो जाती है कि अगर हमने अपनी बेटी को बहुत पढ़ा दिया तो उसकी शादी कैसे करेंगे, क्योंकि सभी की यह मानसिकता होती है कि लड़का उससे ज़्यादा पढ़ा लिखा होना चाहिए अगर वह स्वयं ज़्यादा पढ़ लेगी तो उसे उससे ज़्यादा पढ़ा—लिखा लड़का नहीं मिलेगा। इसके लिए भी माँ—बाप को समझाना होगा कि शादी से पहले उनकी बेटी का भविष्य सुरक्षित करना ज़्यादा आवश्यक है अगर वह शिक्षित हो जायगी तो अच्छे और पढ़े लिखे लड़के शहरों में खूब मिल जाएंगे, साथ ही यह भी क्या आवश्यक है कि लड़का लड़की से ज़्यादा पढ़ा लिखा ही हो, वह कुछ पढ़ाई करके स्वयँ का व्यवसाय भी तो कर सकता है, इसलिए सिर्फ़ शादी के नाम पर बेटी को पढ़ाई से मत रोको बल्कि उसे कम—से—कम इतनी शिक्षित तो होने दो कि वह अपनी जिन्दगी को समझ सके और निर्णय लेने के काबिल हो सके तथा आवश्यकता पड़ने पर कुछ काम करके परिवार के लिए जीविकापार्जन भी कर सके। मुम्बई की एक संस्था 'चाइल्ड राइट्स एण्ड यू क्राई' द्वारा किए गए हाल ही एक सर्वेक्षण में यह बात सामने आई कि बाल विवाह के आंकड़ों की संख्या घटी है और दूसरी ओर पढ़ी—लिखी बेटियाँ स्वास्थ्य की ओर अधिक जागरूक हो रही है और कुपोषण की संख्या भी घट रही है।

ng t iFkk

आज भी दहेज प्रथा हमारे समाज को दीमक की तरह खाए जा रही है और अनेक क़ानूनों के बावजूद यह ख़त्म होने का नाम ही नहीं ले रही है बल्कि ज़्यादा दहेज प्राप्त करना एक इज़्ज़त बढ़ाने का तरीक़ा तक माना जाता है जिसके कारण अगर बहू ज़्यादा दहेज नहीं लाती है तो कहीं कहीं तो उसकी हत्या तक कर दी जाती है जो भी बेटियों की पढ़ाई पर एक बड़ी रोक लगाने का कारण बनती है क्योंकि उसके माँ—बाप सोचते हैं कि उसकी शादी में इतना ज़्यादा दहेज तो देना ही पड़ेगा तो उसे ज़्यादा बड़ा करने का एवं पढ़ाई कराने का खर्चा क्यों किया जाए, और इस कारण से

उसकी जल्दी से जल्दी शादी करके उसमें मांगा गया दहेज देकर अपने आपको क़र्ज़ मुक्त हुआ मानते हैं। फलस्वरूप बेटी पूरी पढ़ाई प्राप्त करने से महरूम रह जाती है। हालांकि इसके लिए क़ानून भी अब बहुत सख़्त कर दिए गए हैं लेकिन उनका भी कोई लाभ नहीं हो पा रहा है क्योंकि ये सब खुले में तो होता नहीं है बल्कि दोनों पक्षकारों की मिली भगत से होता है ऐसी स्थिति में मामला पुलिस तक पहुँच ही नहीं पाता है। फिर भी अगर कोई लड़की या उसके अभिभावक हिम्मत करके सामने आ जाते हैं तो दूसरे पक्ष को शिक्षा मिल भी रही है अतः समाज को जागरूक होने की आवश्यकता है जो अप्रत्यक्ष रूप से लड़कियों की पढ़ाई के लिए भी सहायक का काम करेगी।

Ldwyksa dh deh

हालांकि काफ़ी समय से प्रशासन अधिक–से–अधिक स्कूल खोलने के लिए प्रयासरत है लेकिन आज भी स्थिति सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती है क्योंकि आज भी गांवों में इतने कम स्कूल है कि बच्चियों को स्कूल पहुँचने के लिए बहुत दूरी पार करनी पड़ती है और कहीं कहीं तो स्थिति इतनी खराब है कि बच्चों को काफ़ी दूर तक पानी में होकर जाना पड़ता है, तो कहीं स्कूल भवन इतने जर्जर हैं कि बारिश का पानी कमरों में भर जाता है, जिसके कारण स्कूलों को बन्द करना पड़ता है, और अगर खुले भी रहते हैं तो कभी भी उनके गिरने का डर बना रहता है, कुछ स्कूल कबाड़खाने, मोटर के गैरेज या मंदिरों में ही चल रहे हैं तो कहीं पर पेड़ों के नीचे ही स्कूल चल रहे हैं। जहाँ स्कूल है वहाँ एक कमरे में एक क्लास लगाने के बजाय कहीं पर तो एक क्लासरूम में तीन–तीन कक्षाएँ तक चल रही है जो हतोत्साहित करने वाली स्थिति है इसलिए इनमें सुधार करना अतिआवश्यक है अन्यथा वैसे ही बच्चे नहीं आएंगे और अगर आएंगे तो भी बारिश, धूप, आंधी के वक्त बच्चे वहाँ पढ़ ही नहीं सकते हैं। साथ ही स्कूलों में अलग–अलग शौचालय भी आवश्यक रूप से बनाये जाने चाहिए, अन्यथा यह भी लड़कियों को स्कूल नहीं भेजने का एक बड़ा बहाना बन जाता है, आदि अनेक स्थितियाँ भी लड़कियों को शिक्षित करने में रोड़ा बन रही है क्योंकि इन स्थितियों में माँ–बाप अपने बेटों को तो फिर भी पढ़ने के लिए भेज देते है लेकिन बेटियों को भेजने के लिए तैयार नहीं होते हैं अतः अगर लड़कियों को अधिक संख्या में शिक्षित करना है तो स्कूलों की संख्या बढ़ानी होगी और उनमें कम से कम आवश्यक सुविधाएँ तो होनी ही चाहिए, साथ ही निःशुल्क मध्यान्तर का खाना, स्कूल की ड्रेस, निःशुल्क किताबें और लिखने के सामग्री, निःशुल्क चिकित्सीय सुविधाऐं और क्रेच आदि की व्यवस्था हो। हालांकि अब शौचालय का काम तो बड़े स्तर पर किया भी जा रहा है और अनेक लोग इसमें सहयोग भी कर रहे हैं जैसे टाटा कंसल्टेंसी सर्विसेज और भारती एंटरप्राइजेज ने 100, 100 करोड़ रुपये देने की घोषणा की है, वहीं वेदान्ता ग्रुप भी बड़ी संख्या में स्कूलों में शौचालय बना रहा है, जो सराहनीय कार्य है। इस बात को तो हमें कंठस्थ करना ही होगा कि बेटियाँ पढ़ जाती हैं तो पीढ़ियाँ सुधर जाती हैं लेकिन यह बात सिर्फ़ कहने से नहीं बल्कि धरातल पर करने से ही स्थिति सुधरेगी।

इसके लिए दोष किसी एक को नहीं दिया जा सकता है क्योंकि प्रत्येक स्तर पर शिक्षा को अनदेखा किया जा रहा है जैसे जितना बजट शिक्षा पर केन्द्र सरकार को देना होता है वह उससे कहीं कम बजट ही देती है और दूसरी ओर राज्य सरकारें हैं कि दिए गए बजट को भी पूरा खर्च नहीं कर पाती है जो कि शिक्षा व्यवस्था में कमियों का एक बड़ा कारण है, कि कहीं क्लास रूम नहीं है तो कमरों में बैठने आदि की सुविधा नहीं है तो कहीं शौचालय नहीं है और अन्य शिक्षा सामग्री बहुत कम उपलब्ध कराई जा रही हैं अतः इन सब बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

;kX; f'k{kdk dh deh

2010 में नेशनल काउंसिल फॉर टीचर एज्यूकेशन के अनुसार शिक्षा के अधिकार को पूरी तरह से लागू करने के लिए अभी भी करीब 1.2 मिलियन शिक्षकों की आवश्यकता है। जो है उनमें से भी करीब 60 प्रतिशत पूरी तरह से प्रशिक्षित नहीं हैं, और वह भी सरकार द्वारा सौंपी गई अन्य जिम्मदारियों को निभाने में लगे रहते हैं जिससे बच्चों की पढ़ाई ठीक तरह से नहीं हो पाती है और उनके अभिभावको को स्कूल छुड़ाने का बहाना मिल जाता है। इसलिए शिक्षकों को वहाँ के वातावरण के अनुसार प्रशिक्षित किया जाना चाहिए साथ ही उन्हें गैर शैक्षणिक कार्यों में इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि इसके कारण वह शिक्षा पर पूरा ध्यान नहीं दे पाते है और इसका प्रभाव सीधे सीधे बच्चों की पढ़ाई पर पड़ता है। शिक्षक को अपने बच्चे से सत्त् जुड़े रहना आवश्यक है और वह भी जब बात लड़कियों की पढ़ाई की हो तो यह और भी ज़्यादा आवश्यक है क्योंकि बार बार के व्यवधान से उनके माता पिता को बेटियों को स्कूल नहीं भेजने का बहाना मिल जाता है। हालांकि पिछले कुछ सालों से इस ओर काफ़ी प्रयास किए जा रहे हैं लेकिन अभी भी ये अपर्याप्त है और इनमें सुधार किए जाने की महत्ती आवश्यकता है। छात्र शिक्षक अनुपात ठीक हो। एक शिक्षक कितनी कक्षाओं के कितने बच्चों को एक साथ भली–भाँति पढ़ा सकेगा, इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाना आवश्यक है। अभी हालात यह है कि कई कई स्कूलों में तो एक शिक्षक 70–80 बच्चों को एक साथ पढ़ा रहा होता है जिससे भी बच्चे में पढ़ाई के प्रति रूझान कम हो जाता है और यह लागू किए गए नियमों के भी विपरीत है क्योंकि आरटीई/शिक्षा के अधिकार के नियमों के अनुसार आदर्श स्थिति में 30 बच्चों पर एक शिक्षक होना चाहिए, अतः शिक्षक छात्र अनुपात ठीक होना चाहिए। जहाँ तक बात गांवों में लड़कियों की पढ़ाई की हो तो यह और भी ज़्यादा आवश्यक हो जाता है क्योंकि उन्हें तो व्यक्तिगत स्तर पर सम्भाला जाना आवश्यक है जिसके लिए शिक्षको को भी विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता हो तो वह भी उन्हें उपलब्ध कराई जानी चाहिए। शिक्षा केन्द्रों के लिए संचालन मार्गदर्शिका का सृजन होना चाहिए और उसे वास्तविक रूप से लागू किया जाना चाहिए, ताकि कार्यरत स्टॉफ़ अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक रहे और उनका प्रदर्शन बेहतर हो। वैसे योग्य शिक्षकों को तैयार करना भी एक बड़ी समस्या है क्योंकि शिक्षक का कार्य एक दफ्तर में बैठकर कार्य करने वाले

से बहुत अधिक फर्क वाला होता है, यहाँ एक जीते जागते बच्चे को गढ़ना होता है, जो बहुत ही श्रमसाध्य और धीरज वाला काम होता है अतः कुशल शिक्षकों की प्रथम आवश्यकता को पूरा किया जाना आवश्यक है। शिक्षा की कई स्थानों पर ऐसी स्थिति है कि 5वीं क्लास का बच्चा दूसरी क्लास तक के सवालों के भी ठीक से जवाब नहीं दे पाता है, जिस पर गम्भीरता से सोच विचार करके निर्णय लेने होंगे और शिक्षा के स्तर को सुधारना होगा।

ikB;Øe vkj Ldy dk le;

लड़कियों की पढ़ाई के लिए जिस गांव में स्कूल हो वहाँ की आवश्यकताओं के अनुसार स्कूल का समय तय किया जाय और पाठ्यक्रम लचीला और गतिविधि आधारित हो तथा वह बच्चों की ग्रहण क्षमता के अनुरूप हो। जहाँ तक सम्भव हो महिला स्कूलों में अधिकाधिक महिला अध्यापिकाएं, निरीक्षक एवं प्रशासक हो। जहाँ पर लड़कों एवं लड़कियों की सहशिक्षा हो वहॉ उनके समय को ऐसे तय किया जाय कि दोनों अलग अलग समय पर आकर पढ़ सके। क्योंकि कई बार इस कारण से भी गांवों में लड़कियों को पढ़ाई से रोक दिया जाता है कि उनके माता पिता सहशिक्षा दिलवाने के लिए तैयार नहीं होते है। पाठ्यपुस्तकों की रचना पहले से स्थापित लेखकों द्वारा न की जा जाकर प्रबुद्ध शिक्षकों और शिक्षा विशेषज्ञों द्वारा की जानी चाहिए, जो व्यवहारिक शिक्षा के लिए आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्यक्रम और पुस्तकों को तैयार कर सके। शिक्षा का उद्धेश्य सिर्फ़ किताबी कीड़े तैयार करना न होकर वास्तविक जिन्दगी में काम आने वाली शिक्षा पद्धति होनी चाहिए, और जब बात लड़कियों की शिक्षा की हो तो और भी अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है क्योंकि अगर लड़कियों को ऐसी शिक्षा दी जाती है जो उनके दिन प्रतिदिन के व्यवहारिक जीवन में और उनकी आवश्यकताओं के लिए भी उपयोगी हो तो अधिक बच्चियाँ पढ़ाई की तरफ़ आकर्षित होंगी।

f'k{kk jkt xkj eyd gk&

यह भी अतिआवश्यक है कि शिक्षा रोजग़ारमूलक हो क्योंकि ऐसी पढ़ाई की तरफ सब आकर्षित होंगे जिसको करने के बाद उससे कुछ लाभ प्राप्त हो अन्यथा सिर्फ़ किताबी ज्ञान से अगर वह आगे कुछ नहीं कर पाती हैं तो उससे माँ–बाप और बच्चियाँ दोनों ही हतोत्साहित होंगे। इसलिए आज इस बात की अत्यंत आवश्यकता है कि शिक्षा में परिवर्तन लाया जाए और ऐसे पाठ्यक्रम बनाये जाएं जिससे पढ़ाई के बाद लड़के–लड़कियाँ कमाई के लायक तैयार हो सके। साथ ही विद्यालय प्रशासन, शिक्षकों और शैक्षिक कार्यक्रमों में तालमेल बिठाया जाए। जिस स्थान पर विद्यालय स्थापित हो वहाँ की परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के अनुरूप वातावरण बनाने की एवं व्यवसायिक योग्यता में वृद्धि को सुनिश्चित करने वाली शिक्षा प्रणाली को अपनाना होगा। आंगनबाड़ी कार्यकर्ता, शिक्षक और सत्त् शिक्षा केन्द्रों के प्रेरक एक साथ बैठकर कार्यक्रम को तैयार करें, इन तीनों एजेन्सी के एकीकृत रूप में कार्य करने से

सकारात्मक परिणाम आने की सम्भावना बढ़ जाती है। वैसे यह सन्तोष की बात है कि भारत में अब इस ओर काफ़ी सकारात्मक प्रयास किए जा रहे है महिलाओं के अनेक विद्यालय, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय खोले जा रहे है वहाँ उन्हें उचित माहौल देने के प्रयास किए जा रहे हैं ताकि, अधिकाधिक महिलाऐं शिक्षित होने के लिए प्रोत्साहित हो।

लेकिन फिर भी महिलाओं को शिक्षित करने के लिए सामाजिक, मनावैज्ञानिक और संरचनात्मक दुविधाओं को दूर किया जाना आवश्यक है, इसके लिए सबसे ज़्यादा आवश्यकता तो लड़की के माता पिता की सोच को बदलने की है उन्हें इसका महत्त्व समझाना होगा कि वह अपनी पुत्रियों को घर के काम या खेती के काम में लगाकर उनका बचपन ख़त्म नहीं करे बल्कि उन्हें शिक्षा के लिए स्कूलों में भेजे। सरकार के साथ साथ स्वयं सेवी संस्थाओं का भी यह प्रयास होना चाहिए कि वह जिस तरह से भी हो प्रयासरत रहे कि ग्रामीणों को बालिका शिक्षा का महत्त्व समझाये और व्यवहारिक तौर पर इसके फायदे बताए ताकि वे प्रेरित हो और अपनी बेटियों को पढ़ाई के लिए भेजे। अगर गांवों में स्कूल दूर दूर है तो चल विद्यालयों की व्यवस्था करे, ताकि वहाँ तो अधिक–से–अधिक लड़कियाँ पढ़ाई करने के लिए आ सके। इसके अलावा यह भी आवश्यक है कि हम सभी जागरूक कार्यकर्ता बने और यह ध्यान रखे कि बेटियाँ सुरक्षित रहकर पढ़ाई कर सके, उन्हें यौन उत्पीड़न की घटनाओं से बचाना होगा, क्योंकि यह भी एक बड़ा कारण है जो लड़कियों को स्कूल जाने से हतोत्साहित करता है। महिलाओं को शिक्षित करने के लिए पुरुष समाज को आगे आना होगा तभी वास्तव में इस उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि महिला सशक्तीकरण पुरुष निरपेक्ष नहीं बल्कि सापेक्ष विमर्श है अतः उनका सहयोग अत्यंत आवश्यक है। लड़कों को अपने घर एवं विद्यालय में ये सिखाना अतिआवश्यक है कि वह लड़कियों की इज़्ज़त करे, उनका सम्मान करना अपना कर्तव्य समझे तभी लड़कियाँ बिना किसी डर के स्कूलों में पढ़ सकेगी। महिला उत्पीड़न भी बालिका शिक्षा में एक बड़ा रोड़ा बनी हुई हैं जिसके लिए समस्त समाज को जागरूक होना होगा। हालांकि प्रशासन द्वारा अनेक योजनाएँ स्त्रियों की प्रगति के लिए बनाई गई हैं लेकिन आवश्यकता है उनका सदुपयोग हो और उन्हें काम में लेने की जागरूकता पैदा हो, साथ ही इन योजनाओं का अधिक से अधिक प्रचार प्रसार करना भी आवश्यक है क्योंकि जानकारी के अभाव में आम जन इनका लाभ नहीं ले सकते हैं।

उच्चतम न्यायालय ने भी अपने फैसलों द्वारा समय–समय पर स्त्री शिक्षा के पक्ष में अनेक फैसले दिए हैं और यहाँ तक तय किया है कि स्त्री शिक्षा प्रशासन की जिम्मेदारी है, जिसके लिए चाहे तो क़ानूनों में भी बदलाव किए जा सकते हैं, जैसे–

,e- lh- egrk cuke LVV vkQ rfeyukM ,o vU; (एआईआर 1997 एससी 699) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि राज्यों का कर्तव्य है कि बच्चों को चाहे वो लड़का हो या लड़की, सभी को प्राथमिक शिक्षा आवश्यक रूप से उपलब्ध

कराए। माननीय न्यायालय ने यहाँ तक कहा कि अगर कोई माँ–बाप अपने बेटे बेटी को बचपन में पढ़ाई नहीं कराकर काम पर लगा देता है तो उसे उसकी सजा तक भुगतनी होगी और मुआवज़ा भी देना होगा।

cpiu cpkvk vkUnkyu cuke ;fu;u vkQ bf.M;k ,o vU; (एआईआर 2011 एससी 3361) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि बच्चों को प्राथमिक स्तर तक शिक्षित करना प्रशासन का कर्तव्य है। उनसे बालश्रम कराना या उनके साथ किसी प्रकार का दुर्व्यवहार करना असंवैधानिक कृत्य के साथ ही भारतीय दण्ड संहिता में भी दण्डनीय अपराध हैं। प्रशासन का भी यह कर्तव्य है कि सभी को प्राथमिक शिक्षा के लिए प्रवेष दिलाये और उसे पूरा करने तक उसमें किसी प्रकार की रूकावट नहीं हो।

उच्चतम न्यायालय ने jkt'k dekj xIrk ,o vU; cuke LVV vkQ ;- ih- ,o vU; (एआईआर 2005 एससी 2540) के मामले में तो यहाँ तक तय कर दिया कि अगर महिलाओं के उत्थान के लिए विशेष क़ानून बनाए जाते हैं तो भी वह लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं माना जायगा, क्योंकि अभी तक महिलाओं की स्थिति को समानता तक नहीं पहुचाया जा सका है अतः उन्हें विशेष संरक्षण की आवश्यता है। .

इसी प्रकार LVV vkQ ee;in'k cuke xkiky ,o vU; (एआईआर 2003 एससी 2952) के मामले में भी उच्चतम न्यायालय ने यही अभिनिर्धारित किया कि अगर महिलाओं को गांवों में नौकरी करने के लिए कुछ रियायत या छूट दी जाती है तो वह असंवैधानिक नहीं माना जायगा क्योंकि ये ही ऐसे तरीके हैं जिनसे महिलाओं को प्रोत्साहन मिलेगा।

अन्त में यह बात तो स्पष्ट है कि आज भी हम महिलाओं की शिक्षा के मामले में बहुत सन्तोषजनक स्थिति नहीं कह सकते हैं लेकिन फिर भी इतना जरूर कह सकते हैं कि पहले से काफ़ी अधिक जागरूकता आई है और बड़े स्तर पर कार्य किए जा रहे हैं जिससे निकट भविष्य में बेहतर परिणामों की आशा की जा सकती है। वैसे भी अब स्थिति इतनी निराशाजनक भी नहीं है जो एक उदाहरण से साबित होती है कि लड़कियों में भी जागरूकता आई है, कि हरियाणा के एक स्कूल की छात्रा अपने स्कूल को उच्चतर माध्यमिक स्तर में बदलने की मांग को लेकर अनशन पर बैठ गई और तब तक नहीं उठी जब तक उनकी मांगे नहीं मानी गई। यह एक ज्वलन्त उदाहरण है कि अब लड़कियों में जागृति आने लगी है अतः प्रशासन को भी इसे खुले दिल से लेना चाहिए और ऐसी मांगों को पूरा करने के लिए तत्पर रहना चाहिए। हमें यह तो समझना ही होगा कि महिलाओं को भी बराबरी का मौका दिया जाना चाहिए, उन्हें शिक्षा से दूर रखना उनके साथ क्रूरता के समान है। महिला और पुरुष समाज रूपी सिक्के के दो पहलू हैं अतः दोनों का ही समान रूप से विकसित एवं शिक्षित होना आवश्यक है। शिक्षा न केवल महिलाओं का समाज में स्तर ऊँचा करती है बल्कि

महिलाओं के प्रति समाज की संकीर्ण सोच, जिसमें उन्हें माँ—बाप पर बोझ की तरह देखा जाता है, को ख़त्म करती है। अन्त में इतना तो कहा ही जा सकता है कि हमें हमारी कमियों से निराश न होकर इस दिशा में और बढ़—चढ़कर काम करना होगा, क्योंकि यह हमारे ही प्रयास है कि आज महिलाएँ पहले के मुकाबले बहुत अधिक संख्या में शिक्षित होती जा रही हैं और नए—नए मुकाम हासिल कर रही हैं। हाँ, यह आवश्यक है कि वास्तविक शिक्षा दी जाए जिसमें सिर्फ़ अक्षर ज्ञान ही नहीं अपितु जीवन के हर क्षेत्र की जानकारी होना चाहिए। हम प्रत्येक वर्ष 8 मार्च को महिला दिवस खूब धूमधाम से मनाते हैं लेकिन वह तभी सार्थक होगा जब हम प्रत्येक बालिका को शिक्षित कर पाये, क्योंकि बिना शिक्षा के नारी असभ्य, अदक्ष, अयोग्य एवं अप्रगतिशील ही रह जाती है और वह परावलम्बी और परमुखापेक्षी बनी हुई विकास से वंचित मूक जीवनयापन करती है। समाज को अपनी मानसिकता बदलनी होगी, कई बार देखा जाता है कि अगर कोई महिला पढ़—लिखकर ऊँचे पद पर भी पहुँच जाती हैं तो भी उनका समाज, परिवार और यहाँ तक कि पति द्वारा भी ईष्यावश उसका शैक्षणिक शोषण किया जाता है जिसके कारण उसे आर्थिक, मानसिक एवं दैहिक उत्पीड़न तक झेलने पड़ते हैं। इसी के साथ एक बात का ध्यान देना भी उतना ही आवश्यक है कि महिलाओं का शिक्षा प्राप्त करके आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनने का यह मतलब नहीं है कि वह पुरुष की प्रतिद्वन्दी बनकर उनके सामने मोर्चा लेकर खड़ी हो जाए, बल्कि पुरुष के साथ मैत्रीपूर्ण रूप से सहयोगी बने, यही सच्ची शिक्षा का उद्धेश्य होना चाहिए। जो कुछ प्रतिशत नारियाँ पढी लिखी है उन्हें ही आगे आना होगा और सम्पूर्ण नारी समाज में जागरूकता लानी होगी, तभी उनमें एक आत्म विश्वास की अलख जगेगी और वह भी शिक्षा प्राप्त करने के लिए अग्रसर होगा, क्योंकि एक जागरूक समाज ही सदियों से चली आ रही बेड़ियों को तोड़ कर नए समाज की स्थापना कर सकता है। उत्तरप्रदेश की सरकार ने सराहनीय कार्य किया है कि बजट में महिलाओं की शिक्षा के लिए विशेष प्रावधान किए हैं और यह घोषणा की कि राज्य की लड़कियों को स्नातक तक मुफ्त शिक्षा दी जायगी। प्रत्येक व्यक्ति को जागना होगा और लड़कियों की शिक्षा की प्राथमिकता को समझना होगा। अभिभावको एवं अध्यापकों का सही तालमेल बनाए रखना होगा ताकि वह समय—समय पर अभिभावकों को प्रेरित करते रहे कि वह अपनी बेटियों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने तक उन्हें पढ़ाते रहे, बीच में पढ़ाई नहीं छुड़वाएँ। परिवार की आर्थिक सुदृढ़ता एवं सुरक्षा के लिए अब महिलाएँ भी कदम से कदम मिलाकर कार्य कर रही हैं अतः पुरूषों को भी अपनी सोच बदलनी होगी। समय समय पर सभाऐं करना, ग्रामीणों के बीच बैठकर उन्हें लड़कियों की शिक्षा के लाभों को बताना ताकि वह अपनी बेटियों को स्कूल भेजने के लिए प्रेरित हो। महिला स्वयं सेवी संस्थाओं को इसमें सहयोगी होना होगा और वह ग्रामीणों के बीच बैठकर उनको समझाएं कि बेटियों को पढ़ाना कितना आवश्यक है। केन्द्रीय और राज्य सरकर को भी इन संस्थाओं की आर्थिक मदद करनी चाहिए ताकि वह अपने कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक अंजाम दे सके। कोई भी कार्य तब तक पूरा नहीं हो सकता है जब

तक हमारे समाज का प्रत्येक व्यक्ति या सम्पूर्ण समाज इसे अपना कर्तव्य नहीं समझेगा कि वह लड़कियों एवं महिलाओं का सम्मान करना सीखे और जहाँ कहीं भी उनके खिलाफ कोई अभद्र बात देखे तो उसे गम्भीरता से ले, साथ ही प्रशासन भी अधिक सजगता से इस कार्य को अंजाम देता रहे तभी लड़कियाँ निर्भीक होकर पढ़ सकेगी और शिखर पर पहुँच सकेंगी।

• • •

L=h&f'k{kk] efDr vkj ekuokfèkdkj

l jkt d|ekj oek•

"अजब जुनूने–मुसाफत[1] में घर से निकला था
खबर नहीं है कि सूरज किधर से निकला था
ये कौन फिर से उन्हीं रास्तों में छोड़ गया
अभी–अभी तो अजाबे–सफर[2] से निकला था"

&vgen Qjkt

1. यात्रा का जुनून में
2. यात्रा की पीड़ा

किसी भी विमर्श के दो आयाम होते हैं। एक तो यह कि उस विषय से संबंधित आंकड़ों और अनुपातों की फेहरिस्त गिनाकर उसमें होने वाली वृद्धि को उपलब्धि मानते हुए अपनी पीठ ठोकी जाए अथवा उसमें होने वाली कमी को नाकामी बताते हुए माथे पर चिंता की लकीरें खींच ली जाएं। इसे विमर्श का गणनात्मक आयाम कहा जा सकता है। दूसरा यह कि उस विषय के अर्थ, स्वरूप और उद्देश्य को स्पष्ट कर अपेक्षित लक्ष्य–पूर्ति का मूल्यांकन किया जाए। यह विमर्श का दार्शनिक आयाम होता है। शिक्षा पर भी यही बात लागू होती है। इसलिए स्त्री–शिक्षा–विषयक विमर्श के भी दो आयाम हो जाते हैं। एक गणनात्मक, जिसमें महिलाओं के शिक्षित होने के कालिक आंकड़ों के साथ सेवा तथा अन्य रोजग़ार प्राप्त करने वाली महिलाओं के अनुपातों की सूची प्रस्तुत कर दी जाए और दूसरा दार्शनिक, जिसमें महिलाओं को कैसी शिक्षा दी जा रही है और उससे कौन से उद्देश्य की प्राप्ति हो रही है, इस पर विचार किया जाए। और इसी के साथ यह भी नत्थी किया जाए कि क्या इससे अपेक्षित अभीष्ट की सिद्धि हो पा रही है? स्त्री–शिक्षा की वर्तमान दशा एवं दिशा पर विचार करने के संदर्भ में, यद्यपि कि गणनात्मक आयाम की अपनी उपयोगिता और महता है, विमर्श का यह दार्शनिक आयाम अपेक्षाकृत ज़्यादा गहन और प्रासंगिक है, क्योंकि इससे स्त्री की वर्तमान दशा का तो मूल्यांकन होता ही है, उसके भविष्य की दिशा की भी समीक्षा हो जाती है।

• आचार्य, दर्शन विभाग, बी.आर. अम्बेड़कर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

(1)

इस विमर्श की शुरुआत 'kdjkpk; की उस परिभाषा से की जा सकती है, जिसमें वे शिक्षा को मुक्ति का साधन मानते हैं। उनके अनुसार विद्या वही है जो मुक्त करे – 'सा विद्या या विमुक्तये।' शंकराचार्य के इस पैमाने पर यदि देखा जाए तो वर्तमान में स्त्रियां शिक्षा प्राप्त करने पर भी मुक्त नहीं हुई हैं। हालांकि अतीत में ऐसा नहीं था। भारतीय इतिहास के वैदिक काल में स्त्रियों को मुक्ति प्राप्त थी। उन्हें कुलदेवी का स्थान हासिल था। शिक्षा का समान अधिकार मिला था। तभी तो वे ज्ञानी, विदुषी और पंडिता हुआ करती थीं। स्त्रियों द्वारा रची गईं वेद की कई ऋचायें इसके प्रमाण हैं। संपत्ति पर उनका समान अधिकार था। आपस्तम्ब–धर्म–सूत्र (2/29/3) में इसका उल्लेख मिलता है। घर की स्वामिनी होने के बावजूद वे घर से बाहर निकलती थीं। क्षत्राणियाँ तो युद्ध में सारथ्य का दायित्व भी संभालती थीं। किन्तु कालान्तर में उनकी स्थिति ऐसी नहीं रही। उनकी मुक्ति के द्वार बंद होते गए। उनके अधिकार छिनते चले गए। पुरुषों ने अपने लिए जो नियम–कानून बनाये, स्त्रियों को उनसे वंचित कर दिया। पति की सेवा, बच्चे का जन्म तथा घर के काम–काज तक उनकी ज़िंदगी सिमट गई। पुरुषों ने उन्हें पराधीन, हेय और अशिक्षित करके घर में कैद कर दिया। वे एक ऐसी निर्जीव वस्तु के समान हो गईं जो अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों के विरुद्ध उफ् भी नहीं कर सकती थीं। foodkun इसका मूल कारण अशिक्षा को मानते हैं। वे इस स्थिति की पड़ताल करते हुए कहते हैं– ''यह समझना बड़ा कठिन है कि इस देश में स्त्रियों और पुरुषों के बीच इतना भेद क्यों रखा गया है, जबकि वेदांत की यह घोषणा है कि सभी प्राणियों में वही एक आत्मा विराजमान है। स्मृतियां आदि सीख कर और स्त्रियों पर कड़े नियमों का बंधन डालकर पुरुषों ने उन्हें केवल सन्तानोत्पादक यंत्र बना रखा है। अवनति के युग में जबकि पुरोहितों ने अन्य जातियों को वेदाध्ययन के अयोग्य ठहराया, उसी समय उन्होंने स्त्रियों को भी अपने अधिकारों से वंचित कर दिया। पर वैदिक और औपनिषदिक युग में तो मैत्रेयी, गार्गी आदि पुण्यस्मृति महिलाओं ने ऋषियों का स्थान ले लिया था। सहस्त्र वेदज्ञ ब्राह्मणों की सभा में गार्गी ने याज्ञवल्क्य को ब्रह्म के विषय में शास्त्रार्थ करने के लिए ललकारा था।''[1] इसीलिए वे आगे कहते हैं– ''स्त्रियों की बहुत सी कठिन समस्याएं हैं, पर उनमें एक भी ऐसी नहीं, जो उस जादू भरे शब्द 'शिक्षा' द्वारा हल न हो सके।''[2]

विवेकानंद का यह कथन भारतीय पुनर्जागरण काल का है, जिसमें स्त्रियों की मुक्ति के लिए उनकी शिक्षा पर सघन रूप से ध्यान दिया गया। भारत में पुनर्जागरण का काल 19वीं सदी है और इसके अग्रदूत राजा राममोहन राय थे। उन्होंने ही स्त्रियों की मुक्ति के लिए सबसे पहला संगठित प्रयास किया। इसी प्रयास के कारण सती–प्रथा जैसी कुरीतियां बंद हुईं और बाल–विवाह पर भी अंकुश लगे। स्त्रियों की शिक्षा के बारे में भी प्रतिबद्ध रूप से सोचा जाने लगा तथा उनकी स्वतंत्रता के विचार भी उभरने लगे। किन्तु राजा राममोहन राय का प्रयास बेहद प्रतिक्रियावादी था। इसलिए उन्हें

जितनी सफलता मिलनी चाहिए, उतनी नहीं मिली। तब स्वामी दयानंद ने स्त्रियों की दशा में सुधार लाने के लिए संतुलित प्रयास प्रारंभ किया। उनका 'आर्य समाज' इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने लगा। इसी क्रम में 'प्रार्थना समाज' की भूमिका भी रेखांकित की जाने लगी और ऐनी बेसेंट भी अपनी 'थियोसोफिकल सोसाइटी' द्वारा स्त्रियों की स्थिति सुधारने हेतु प्रयासरत हुईं। इसके बाद स्वामी विवेकानंद ने इस दिशा में अहम् योगदान दिया और अंत में महात्मा गांधी ने इस अभियान को स्वतंत्रता आंदोलन से जोड़ दिया। इस जोड़ के लिए ही उन्होंने चम्पारण में सत्याग्रह करते हुए कस्तूरबा को बुला कर वहां की स्त्रियों की दुर्दशा जानने का प्रयास किया और वहां शिक्षा के लिए जो विद्यालय खोले गए उनमें स्त्रियों की शिक्षा की भी व्यवस्था की गई। उन विद्यालयों में कस्तूरबा के अतिरिक्त आनंदी बाई, अवंतिका बाई, दुर्गा बहन तथा मणि बहन जैसी शिक्षिकाएं रखी गईं। इस प्रयास के कारण बीसवीं सदी के राष्ट्रीय जागरण–काल में स्त्री–मुक्ति का मसला एक व्यापक जन–सरोकार से संबद्ध हो गया। किन्तु इस संबद्धता के बावजूद स्वतंत्रता–संग्राम की तीव्रता के कारण यह मसला समाधान की दिशा में दूर तक नहीं जा सका। यह यात्रा कोई तीन–चार दशक पहले के स्त्रीवादी आंदोलनों में फिर से शुरू हुई जब वैचारिक स्तर पर स्त्री–मुक्ति की नई लहर उठी। इस लहर ने स्त्रियों की मुक्ति के कई द्वार खोले। उन्हें घर से बाहर निकलने की सुविधा मिली। अर्थोपार्जन के अवसर उपलब्ध हुये। उनकी स्वतंत्रता, समानता तथा शिक्षा के अधिकारों को बल मिला। उनके दायित्वों का संकुचित दायरा टूटा। सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों में भागीदारी मिली। उन पर लगी कई प्रकार की पाबंदियां और वर्जनायें ख़त्म हुईं। इनसे उनकी बंद दीवारों में दरवाजे खुले। उन्होंने बाहर आकर सुनहरी धूप और ताज़ा हवा का स्वाद लिया। मुक्त आकाश में उड़ने के लिए अपने पंख फैलाए।

(2)

मगर त्रासदी यह हुई कि वे उड़ नहीं सकीं। बाज़ारवाद और उपभोक्तावाद के रंगीन–चमचमाते जाल ने उन्हें अपने में कैद कर लिया। वे एक बंधन से मुक्त होकर दूसरे बंधन में जकड़ गईं। यह कुंए से निकल कर खाई में गिरने जैसा हुआ। किन्तु विडंबना यह कि उन्हें इसका गुमान तक नहीं हुआ। वे इस महीन बंधन को ही अपनी मुक्ति का पर्याय मानने लगीं। ऐसा इसलिए हुआ कि औद्योगिक क्रांति और प्रगति के फलस्वरूप जो आधुनिक सभ्यता विकसित हुई उसका केन्द्र बाज़ार है। इसलिए बाज़ार का दबाव आज हर क्षेत्र में है। आदमी की सोच, शैली, गति तथा दिशा सब बाज़ार तय कर रहा है। jfoHk"k.k के शब्दों में –''बाज़ार अब किसी स्थल–विशेष में नहीं है। वह सर्वत्र है। उसका एक वाद विकसित हो चुका है, जिसे 'बाज़ारवाद' कहा जाता है। यह प्रमुख नहीं है कि अर्थशास्त्र में यह 'वाद' प्रयुक्त होता है या नहीं। बाज़ार की व्यापक उपस्थिति से, उसके सिद्धांत और दर्शन से 'बाजारवाद' जुड़ा है। बाज़ार अब मूल्य, व्यवस्था, संस्थान, विचार–दर्शन, जीवन–दर्शन में बदल गया है। इसने उपभोक्तावाद

को जन्म दिया है। वित्तीय पूंजी, कॉरपोरेट पूंजी, याराना (क्रोनी) पूंजी से बाज़ार का सीधा संबंध है। शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र हो, जहां इसकी पहुंच न हो। इसने हमारे चित्त और मानस को एक साथ प्रभावित, नियंत्रित और अनुकूलित किया है।''[3] इसी प्रभाव, नियंत्रण और अनुकूलन द्वारा बहुराष्ट्रीय कंपनियां रोज नए–नए उत्पाद निर्मित कर पूरी दुनिया में बेचती हैं और इन उत्पादों को उपभोक्ता खरीद सके, इसके लिए विज्ञापन द्वारा उन्हें आकर्षित–सम्मोहित करती हैं। स्त्रियां इसका माध्यम बन रही हैं। वे अपने रंग–रूप, नाज–नखरों के सहारे इन उत्पादों को बेचने में लगी हैं और प्रकारान्तर से स्वयं बिक रही हैं। जब कोई स्त्री विज्ञापन में चप्पल, टायर, ठंढ़ा पेय, मज़बूत सिमेंट अथवा सुविधाजनक गाड़ी बेच रही होती है तो इन सबके साथ वह खुद भी बिक रही होती है और इसके लिए वस्त्र उतारने से भी परहेज़ नहीं करती।

इस प्रकार बाज़ार, विज्ञापन तथा प्रसाधन आदि इस नई सभ्यता द्वारा स्त्रियों के लिए निर्मित किया हुआ नया बंधन है, जो पहले से ज़्यादा आकर्षक और खूबसूरत होने के कारण उन्हें सहज स्वीकार्य लगता है; जबकि यह अपेक्षाकृत ज़्यादा ठोस और सख़्त है। किन्तु चूंकि यह बंधन ज़्यादा मोहक और नफ़ीस तरीके से निर्मित किया गया है, इसलिये स्त्रियां इसे ही अपनी मुक्ति की परिभाषा मान रही हैं। लेकिन यह कितनी बड़ी विडंबना है कि स्त्री की मुक्ति और अधिकार के संघर्ष को देह की नग्नता और उपभोग की स्वच्छंदता से परिभाषित किया जाए। उसे वर्जनाओं से मुक्ति मिलने के बदले वस्त्रों से मुक्ति मिले। स्त्रियों ने बंधन का प्रतीक मानते हुए अपने पुराने गहने इसलिए नहीं उतारे थे कि अपने बाल को काले–घने रखने, गाल को सुर्ख–लाल रखने तथा अंग–अनुपात का सौष्ठव बनाये रखने जैसे शरीर के रख–रखाव संबंधी नए गहनों से सज–धज कर बाज़ार में बिकने के लिए बैठ जाए। iHkkdj Jkf=; इस पर विस्तार से विचार करते हुए लिखते हैं– ''यह सूक्ष्म और वायवीय कैद पहले की कैदों से ज़्यादा मज़बूत है।... यह अधिक चुनौतीपूर्ण इसलिए हो उठा है कि स्वयं स्त्रियों का एक वर्ग नए भ्रमजाल में फंसकर स्त्री मात्र को फंसा रहा है, बिना यह सोचे कि साबुन के सान्निध्य में प्रेमिका जैसी लाज; घोड़ा, साबुन और हवाखोरी के रिश्ते; सांसों की खुशबू से प्रेम संबंध का निर्धारण, असंख्य स्त्रियों को क्या संदेश दे रहा है? स्त्री क्यों इन्कार नहीं करती कि वह बाज़ार का माध्यम नहीं बनेगी। अपनी व्यवसायिक आत्म–निर्भरता के बदले लाखो–करोड़ों स्त्रियों को वस्तुओं का दास नहीं बनायेगी।''[4]

(3)

स्त्रियों के इस इन्कार नहीं करने के पीछे वर्तमान शिक्षा है, क्योंकि यह शिक्षा बाज़ार–केन्द्रित है। इस शिक्षा में सिर्फ़ बाज़ार में खरीद–फरोख्त का प्रशिक्षण दिया जाता है। इसमें रोजग़ार प्राप्ति के नाम पर गलाकाट प्रतिस्पर्धा सिखायी जाती है और किसी भी नीति–अनीति की चिंता किए बग़ैर अत्यधिक धन कमाने की होड़ में डाल दिया जाता है। आज इंजिनियरिंग, मेडिकल अथवा बिजनेस मैनेजमेंट में दाख़िला लेने के लिए जो आपाधापी मची रहती है उसकी वजह यही है। इनकी डिग्री ले लेने पर

उच्च वेतन की नौकरी मिल जाती है जिससे अधिक आय प्राप्त कर अत्यधिक उपभोग किया जा सकता है। इस प्रकार यह शिक्षा भोगोन्मुखी है तथा केवल सूचना और तकनीक पर आधारित है। इसमें ज्ञान और नैतिकता का कोई समावेश नहीं है, चरित्र और मूल्य की कोई जगह नहीं है। आज की स्त्रियां यही ज्ञान, नीति, चरित्र और मूल्यों से रहित शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। इसलिए उन्हें अपने वायवीय बंधन और मोहक कैद का पता नहीं चलता। वे बाज़ार और उपभोग के प्रवाह में बही जा रही हैं। vfuy lnxkiky शिक्षा में आए इस बदलाव पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं– ''ज्ञान की भूमिका हमेशा से ही रही है। जबसे इंसान और इंसानियत का इतिहास शुरू हुआ, उसी समय से ज्ञान का इतिहास है। जिस तरह गोल पहिया वाहन के रूप में इस्तेमाल होता रहा है, उसी तरह ज्ञान भी एक चक्ररूप में है लेकिन ज्ञान का समाज के साथ 20 वर्षों (अब 25 वर्षों) में अर्थात् उदारीकरण की प्रक्रिया के दौरान संबंध तेज़ी से बदला है। बाज़ार के साथ ज्ञान का संबंध आदि के दायरे में ज्ञान को रखा और समझा जा रहा है। वह ज्ञान जो समाज के लिए उपयोगी हो, देश के लिए उपयोगी हो, इंसानियत पैदा करता हो, उस ज्ञान को आज ज्ञान नहीं माना जा रहा है। ज्ञान के चरित्र, उसके उपयोग में बदलाव हुआ है। ज्ञान की भूमिका बदली है। आज हम बायोटेक्नोलॉजी की बात करते हैं, लेकिन बायोटेक्नोलॉजी की शुरुआत जिस विज्ञान से हुई उसे हम भुलाये जा रहे हैं। अर्थात् हम मूल ज्ञान को भूल रहे हैं। इसके बनिस्बत विकसित शाखाओं को छोड़, जड़ की ओर लौट रहे हैं। बिना बुनियाद के हम ज्ञान को प्रसारित नहीं कर सकते। हम बाज़ार की रौ में बहे जा रहे हैं।''[5]

स्त्रियां भी इसी रौ में बहने के कारण अपनी मुक्ति के नैसर्गिक अधिकार से वंचित हुई जा रही हैं। समानता की समतल ज़मीन उन्हें उपलब्ध नहीं हो पा रही है। वे आज भी दोयम दर्जे का जीवन जी रही हैं। उन्हें अन्या समझा जा रहा है। अधीनस्थ भूमिका निभाने के लिए बाध्य किया जा रहा है। अतः यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि स्त्री–शिक्षा की वर्तमान दशा और दिशा दोनों ठीक नहीं हैं। इस शिक्षा से न तो स्त्रियों को समानता की ठोस ज़मीन मिल पा रही है, न उन्हें स्वतंत्रता का खुला आकाश मिलने वाला है। इसके लिए आवश्यक है कि वर्तमान शिक्षा में बदलाव किया जाए। यह बदलाव व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा के साथ मूल्य और नैतिकता की शिक्षा को समाहित कर किया जा सकता है। d- lfPpnkunu इसकी अनिवार्यता पर बल देते हुए लिखते हैं –''चूंकि आज का दौर बाज़ार का दौर है, इसलिए इसमें मौजूदा शिक्षा–पद्धति की सामाजिक भूमिका कम हो जाती है। आज ज़्यादातर लोग सिर्फ़ नौकरी के लिए पढ़ाई करते हैं, जो कि गलत है। विश्वविद्यालयों की यह जिम्मेदारी होती है कि वह छात्रों के अंदर छिपी प्रतिभा को तलाश कर उसके हिसाब से ज्ञानार्जन के लिए सही मार्गदर्शन करें। विश्वविद्यालय और शिक्षण संस्थान के अध्यापकों को चाहिए कि वे छात्रों को किताबों के साथ–साथ नैतिक ज्ञान की जानकारी भी दें। हर शिक्षण संस्थान को यह कोशिश करनी चाहिए कि वह छात्रों की शिक्षा में नैतिक मूल्यों का समावेश कर अपनी सामाजिक भूमिका तय करे। कोई भी शिक्षण

संस्थान यदि अपनी सामाजिक भूमिका के बिना जी रहा है तो यह न सिर्फ़ छात्रों के लिए नुकसानदायक है, बल्कि हमारी सामाजिक व्यवस्था के लिए भी नुकसानदायक है। ......इसलिए हमें चाहिए कि व्यावसायिक शिक्षा के साथ–साथ नैतिक शिक्षा को बढ़ावा दें।''[6] इस नैतिक और मूल्यपरक शिक्षा से स्त्री बाज़ार की रौ में बहने से बचेगी, विज्ञापन के बहाने स्वयं को बेचने से रोकेगी और वस्त्रों से मुक्ति के बदले वर्जनाओं से मुक्ति के लिए लड़ेगी। वह उपभोग की स्वच्छंदता में अपनी स्वतंत्रता को परिभाषित नहीं करेगी बल्कि अपनी स्त्रीत्व की पहचान को अपनी स्वतंत्रता का पर्याय मानेगी।

इसके लिए स्त्रियों को पुरुषों का अनुकरण करने से भी तौबा करनी पड़ेगी। अभी की शिक्षा–व्यवस्था और स्त्रीवादी विमर्श ने स्त्रियों से उनकी अपनी पहचान ही छीन ली है। उन्हें यह बताया है कि स्त्री–मुक्ति का अर्थ पुरुष का अनुकरण करना है, पुरुष जैसा बनना है। उसी की तरह चलना–बोलना है, कपड़ा पहनना–बाल कटाना है, शराब–सिगरेट पीना है, और इस तरह के वे तमाम नैतिक–अनैतिक कार्य करने हैं जो पुरुष करता है। दरअसल ऐसा वे पुरुष से समानता और उसकी जैसी स्वतंत्रता की चाह में करती हैं, जो वास्तव में पुरुष के हास्यास्पद अनुकरण का शिकार होकर अपनी दशा से च्युत और दिशा से भटक जाना है। मौलिक स्त्री बनने के बदले नकली पुरुष में तब्दील हो जाना है। चूंकि किसी और का प्रतिरूप अपना मूल नहीं हो सकता, इसीलिए vk'kk (भगवान श्री रजनीश) स्त्रियों को इस अनुकरण से बचने की हिदायत देते हुए कहते हैं – ''यह ध्यान रहे स्त्री के पास एक अपने तरह का व्यक्तिव है, जो पुरुष से बहुत भिन्न है, बहुत विरोधी, बहुत अलग, बहुत दूसरा है। उसका सारा आकर्षण, उसके जीवन की सारी सुगंध, उसके अपने होने में है, उसके निज होने में है। अगर वह अपनी निजता के बिन्दु से च्युत होती है और पुरुष जैसे होने की दौड़ में लग जाती है तो यह बात इतनी बेहूदी होगी जैसे कोई पुरुष स्त्रियों के कपड़े पहन के, दाढ़ी–मूंछ घुटा के, स्त्रियों जैसा बनके घूमने लगता है तो वह बेहूदा हो जाता है। यह बात इतनी ही गलत है।''[7] इसलिए स्त्री, स्त्री की तरह बची रहे, अपनी पहचान को बचाए रखे, अपने स्त्रीत्व को सुरक्षित रखे तभी वह स्वतंत्र, समान और सम्माननीया हो सकती है।

(4)

इसके लिए जैसी शिक्षा चाहिए उसका सूत्र विवेकानंद, गांधी, टैगोर, अरविन्द, कृष्णमूर्ति तथा ओशो आदि दार्शनिकों के शिक्षा–विषयक विचारों से मिल सकती है, क्योंकि इन दार्शनिकों ने स्त्रियों के लिए ऐसी शिक्षा का प्रस्ताव दिया है जिससे वे अपनी मौलिकता को सुरक्षित रखते हुए, अपने स्त्रीत्व को बचाते हुए, मुक्ति की उड़ान भर सकती हैं, समानता का स्वाद ले सकती हैं। इसे इन दार्शनिकों के कथनों में देखा जा सकता है। foodkun के अनुसार – ''स्त्री–शिक्षा का विस्तार धर्म को केन्द्र बनाकर करना चाहिए। .... धार्मिक शिक्षा, चरित्र–गठन, ब्रह्मचर्य–पालन – इन्हीं की ओर ध्यान देना चाहिए। ....इतिहास और पुराण, गृह–व्यवस्था और कला–कौशल,

गृहस्थ–जीवन के कर्त्तव्य और चरित्र–गठन के सिद्धांतों की शिक्षा देनी होगी। और दूसरे विषय, जैसे सीना, पिरोना, गृह कार्य–नियम, शिशुपालन आदि भी सिखाए जाएंगे। जप, पूजा और ध्यान शिक्षा के अनिवार्य अंग होंगे। दूसरे गुणों के साथ उन्हें शूरता और वीरता के भाव भी प्राप्त करने होंगे। आधुनिक युग में उन्हें आत्म–रक्षा के भी उपाय सीख लेना आवश्यक हो गया है।''[8] यही बात xkèkh इन शब्दों में कहते हैं– ''स्त्रियों के अधिकार के सवाल पर मैं किसी तरह का समझौता स्वीकार नहीं कर सकता। मेरी राय में mu पर ऐसा कोई क़ानूनी प्रतिबंध नहीं लगाया जाना चाहिए, जो पुरुषों पर न लगाया गया हो। पुत्रों और कन्याओं में किसी तरह का भेद नहीं होना चाहिए। उनके साथ पूरी समानता का व्यवहार होना चाहिए। पुरुष और स्त्री की समानता का यह अर्थ नहीं है कि वे समान धंधे भी करें। स्त्री को शस्त्र–धारण करने या शिकार करने के खिलाफ कोई क़ानूनी बाधा न होनी चाहिए। लेकिन जो काम पुरुष के करने के हैं, उनसे वह स्वभावतः विरत होगी। प्रकृति ने स्त्री और पुरुष को एक–दूसरे के पूरक रूप में सिरजा है। जिस तरह उनके आकार में भेद है, उसी तरह उनके कार्य भी मर्यादित हैं।''[9]

इसी बात को vks'kks (भगवान श्री रजनीश) और विस्तार देते हुए कहते हैं – ''जब मैं कहता हूँ स्त्रियां भी शिक्षित होनी चाहिए तो मेरा मतलब यह नहीं है कि वे ठीक पुरुषों जैसी शिक्षा से शिक्षित हो जाएं, तब उपद्रव होगा। वैसा उपद्रव हो भी रहा है। अगर स्त्रियों को गणित में, तर्क में, व्यायाम में, फिजिक्स में, कैमेस्ट्री में, विज्ञान में ठीक पुरुषों जैसा शिक्षित कर दिया जाए तो इस सारी शिक्षा में उनके भीतर स्त्रैण तत्त्व का कोई हिस्सा मर जाता है। ..... स्त्री की शिक्षा तो होनी ही चाहिए पुरुष के बराबर, लेकिन उसके अपने आयाम में। उसकी अपनी दिशा में। उसकी अपनी ही दिशा है। उस दिशा में अगर शिक्षा होगी तो ही सार्थक है।..... स्त्री को एक और तरह की शिक्षा चाहिए जो उसे संगीतपूर्ण व्यक्तिव दे, जो उसे नृत्यपूर्ण लयबद्ध व्यक्तिव दे; जो उसे प्रतीक्षा की अनंत क्षमता दे; जो उसे मौन की, चुप होने की, अनाक्रमक होने की, प्रेम की और करूणा की गहरी शिक्षा दे।''[10] ऐसी ही शिक्षा के लिए —".kefr यह कहते हैं कि – ''वास्तविक जीवन मूल्यों की खोज में व्यक्ति की सहायता करना ही शिक्षा का कार्य है और ये मूल्य पूर्वाग्रहविहीन अन्वेषण तथा आत्म–अवधान से ही आते हैं। जब आत्मबोध नहीं होता तो आत्म–अभिव्यक्ति अहंकार हो जाती है और उसके साथ उसके तमाम आक्रामक एवं महत्वाकांक्षी द्वन्द्व उत्पन्न हो जाते हैं। शिक्षा का कार्य आत्म–अवधान की क्षमता को जाग्रत करना है, न कि तुष्टिकरण वाली आत्म–अभिव्यक्ति की वासना को अवसर देना।''[11] स्त्रियों के लिए ऐसी शिक्षा के सूत्र टैगोर तथा श्रीअरविन्द आदि दार्शनिकों के शिक्षा–संबंधी विचारों में भी ढूंढे जा सकते हैं। हाँ! इस ढूंढ़ने में यह समझ साफ होनी चाहिए कि ऐसे विचार स्त्रियों को न तो उनके अधिकारों से वंचित करते हैं और न उन्हें दोयम दर्जे का स्थान दिलाते हैं, बल्कि इसके विपरीत उन्हें अपने स्त्रीत्व की संपूर्ण गरिमा के साथ बाज़ार में बिकने से बचाते हुए समानता के अवसर और मुक्ति का अहसास देते हैं।

(5)

स्त्रियों के मानवाधिकार भी उन्हें समानता का अधिकार और मुक्ति का मसौदा उनके स्त्रीत्व की संपूर्ण गरिमा के साथ ही प्रदान करते हैं। उल्लेखनीय है कि मानव अधिकार, मानव को, मानव होने के नाते मिलने वाले अधिकारों की अवधारणा है। इसलिए इसमें मानव को मिलने वाले अधिकार उसके मानव होने की मुकम्मल गरिमा के साथ प्राप्त होते हैं। स्वभावतः इसमें स्त्री के मानव अधिकार भी उसके स्त्रीत्व की गरिमा के साथ ही प्राप्त होते हैं। होंगे। होने चाहिए। इसीलिए उनके शिक्षा–संबंधी मानव अधिकार भी ऐसी शिक्षा की हिमायत करते हैं जिससे उनके अस्तित्व, उनके स्त्रीत्व और उनकी पहचान की सुरक्षा और संरक्षा के साथ उन्हें स्वतंत्रता और समानता का अधिकार प्राप्त हो सके। ऐसे अधिकार के लिए ही तो संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 1948 में 30 अनुच्छेदों वाली मानव अधिकारों की जो सार्वभौम घोषणा की गई उसके 26वें अनुच्छेद में शिक्षा का लक्ष्य 'मानव व्यक्तित्व का पूर्ण विकास और मानव अधिकारों एवं मौलिक स्वतंत्रताओं की प्रतिष्ठा को बढ़ाना' रखा गया। यह अनुच्छेद तीन उप अनुच्छेदों में विभाजित है जो इस प्रकार है –

''अनुच्छेद 26 (1) प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा पाने का अधिकार है। शिक्षा कम से कम प्रारंभिक और मौलिक अवस्था में निःशुल्क होगी। प्रारंभिक शिक्षा अनिवार्य होगी। तकनीकी (टेक्नीकल) और व्यावसायिक (कमर्शियल) शिक्षा की सामान्य उपलब्धि की व्यवस्था की जाएगी और योग्यता के आधार पर उच्च शिक्षा सभी समान रूप से प्राप्त कर सकेंगे।

(2) शिक्षा का लक्ष्य मानव व्यक्तित्व का पूर्ण विकास और मानव अधिकारों एवं मौलिक स्वतंत्रताओं की प्रतिष्ठा बढ़ाना होगा। शिक्षा द्वारा सभी राष्ट्रों और जनजातियों एवं धार्मिक समूहों में सद्भाव, सहिष्णुता और मैत्री की अभिवृद्धि की जाएगी और शांति कायम रखने के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ के कार्यों को शिक्षा द्वारा बढ़ाया जाएगा।

(3) माता–पिता को अपनी संतान के लिए शिक्षा के प्रकार चुनने का अधिकार है।''[12]

उल्लेखनीय है कि इस अनुच्छेद में अथवा घोषणा–पत्र के किसी अन्य अनुच्छेद में यदि अलग से स्त्रियों के लिए शिक्षा का कोई जिक्र नहीं है तो वह इसलिए कि यह घोषणा–पत्र लिंग के आधार पर कोई भेद–भाव नहीं करता, इसलिए जब वह प्रत्येक व्यक्ति के शिक्षा पाने के अधिकार की घोषणा करता है तो उसमें स्त्रियों के शिक्षा पाने का अधिकार भी अवियोज्य रूप से अंतर्निहित है। इसी आधार पर जब ब्राजील के प्रस्ताव पर स्त्रियों की स्थिति पर एक उप–आयोग के रूप में आयोग (Commission on the status of Women), जो आर्थिक और सामाजिक परिषद् का एक कार्यकारी आयोग है, की स्थापना हुई तो उसे जो अधिदेश (mandate) दिया गया उसमें परिषद् को दी जाने वाली संस्तुतियों और प्रतिवेदनों में राजनीतिक, आर्थिक, सिविल तथा

सामाजिक के साथ–साथ शिक्षा के क्षेत्र में भी स्त्रियों के अधिकार के संवर्धन हेतु संस्तुति और प्रतिवेदन देने का अधिदेश दिया गया। इसके बाद 1962 में जब संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने स्त्रियों के विरुद्ध भेद–भाव की समाप्ति हेतु एक घोषणा का निर्णय लिया, जो 1967 में उद्घोषित हुई, तो उसमें स्वीकृत मुख्य अधिकारों में शिक्षा–संबंधी अधिकार भी शामिल है। इसके अन्य अधिकार – राजनीतिक अधिकार, राष्ट्रिकता का अधिकार, सिविल विधियों के अन्तर्गत् अधिकार, स्त्रियों में दुर्व्यापार तथा आर्थिक अधिकार – हैं। फिर संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा ने जब स्त्रियों की समानता और सार्वभौम मान्यता आदि के लिए 1975 को 'अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष' घोषित किया तो स्त्रियों का विश्व सम्मेलन 19 जून से 02 जुलाई 1975 तक मैक्सिको में आयोजित हुआ। इसमें महासभा ने 1976–85 को स्त्रियों के लिए 'संयुक्त राष्ट्र संघ दशक' घोषित किया। इस दशक का विश्व सम्मेलन जब 1980 में कोपेनहेगेन में आयोजित हुआ तो इस सम्मेलन की विषय–वस्तु यद्यपि 'समानता, विकास और शांति' थी, किन्तु इसकी उप विषय–वस्तु नियोजन, स्वास्थ्य और शिक्षा थी।

फिर स्त्रियों पर चौथा विश्व–सम्मेलन 04 से 15 सितम्बर, 1995 तक वीजिंग में आयोजित हुआ तो उसमें सरोकार के कई निर्णायक क्षेत्रों में एक निर्णायक क्षेत्र स्त्रियों की शिक्षा और प्रशिक्षण भी था। इनके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र संघ घोषणा–पत्र, मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा और मानवाधिकार की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं द्वारा जो अनेक अंतर्राष्ट्रीय दस्तावेज़ और अभिसमय, संयुक्त राष्ट्रसंघ और विशिष्ट अभिकरणों के त्तवावधान में अंगीकार किए गए हैं, उनमें शिक्षा में भेदभाव के विरुद्ध अभिसमय 1960 भी अंगीकृत है। Mk- Vh-ih- f=ikBh इस अभिसमय के संबंध में लिखते हैं–''शिक्षा में भेदभाव के विरुद्ध अभिसमय, संयुक्त राष्ट्र संघ, शैक्षिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक संगठन की सामान्य सभा (कान्फ्रेंस) द्वारा 14 दिसम्बर, 1960 को पेरिस में ग्यारहवें सम्मेलन में अंगीकार किया गया था। यह 22 मई 1962 को प्रभावी हुआ। अभिसमय शिक्षा के मामले में भेदभाव के लिए लिंग को एक अनुनज्ञेय (impermissible) आधार मानता है। इस अभिसमय के प्रयोजन के लिए : भेदभाव में सम्मलित है, कोई अंतर, अपवर्जन, सीमा या वरीयता जो लिंग पर आधारित है और जिसका प्रभाव शिक्षा में समानता के व्यवहार को निष्प्रभावी करना या कम करना होता है। पद शिक्षा का तात्पर्य है : सभी प्रकार और स्तर की शिक्षा, और इसमें सम्मिलित हैं, शिक्षा में पहुंच, शिक्षा का स्तर (standard) और गुणवत्ता, और वे शर्तें जिसके अंतर्गत यह दिया जाता है।''[13]

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि स्त्रियों के शिक्षा–संबंधी मानव अधिकार उनके लिए ऐसी शिक्षा का प्रावधान करते हैं, जिसके द्वारा उन्हें ऐसी समानता और स्वतंत्रता मिले जिसमें उन्हें उपभोग का माध्यम बनते हुए बाज़ार में बिकने की बाध्यता न हो और जो पुरुषों के समान तो हो किन्तु उसमें पुरुषों का अनुकरण न हो ताकि स्त्रियां पुरुषों का प्रतिरूप बनने के बदले अपने स्त्रीत्व को मूल रूप में, पूर्ण गरिमा के साथ सुरक्षित रखते हुए विकसित कर सकें। इस विकास से ही वह मुक्त स्त्री सृजित होगी

जो प्रेम, करुणा और सहिष्णुता से सराबोर होगी। फिर वह जो दुनिया बनायेगी उसमें शांति होगी, जो मनुष्यता निर्मित करेगी उसमें सह अस्तित्व होगा।

''ज़िंदगी !
तुम मुझे इस तरह बहलाने की कोशिश न करो –
यह वर्षों के खिलौने
बहुत नाजुक हैं
जिसे भी हाथ लगाऊं
टुकड़ों में बिखर जाता है
अब इन मुंह चिढ़ाते टुकड़ों को
मैं उम्र किस तरह कह दूं
सखी, कोई तो टुकड़ा
फर्श को लाल कर दे।''

& ik'k

lanHkZ %

1. *स्वामी विवेकानंद, शिक्षा, श्री रामकृष्ण आश्रम, धन्तोली, नागपुर–440012 (अष्टम संस्करण), पृ.40*
2. *वही, पृ. 41*
3. *रविभूषण, सबकुछ बाज़ार नहीं है, प्रभात ख़बर, दीपावली विशेषज्ञांक 2012, 15 पी, कोकर इंडस्ट्रियल एरिया, कोकर, रांची–834001, पृ. 7*
4. *प्रभाकर श्रोत्रिय, स्त्री : युद्ध का मोर्चा (संपादकीय), वागर्थ, अंक–32, नवम्बर, 1997, भारतीय भाषा परिषद्, 36 ए, शेक्सपीयर सरणी, कलकत्ता–700017*
5. *अनिल सद्गोपाल, देशहित नहीं बाज़ार हित प्रमुख है, प्रभात ख़बर, दीपावली विशेषज्ञांक 2011, पृ. 147*
6. *के. सच्चिदानंदन, भारतीय भाषा में हो सकता है शिक्षा का प्रसार, उपरिवत्, पृ. 140–141*
7. *भगवान श्री रजनीश (ओशो), संभोग से समाधि की ओर, रजनीश धाम, 17, कोरेगांव पार्क, पूना–411001, महाराष्ट्र, 1983, पृ. 270*
8. *वही, पृ. 42–44*

9. *मो. क. गांधी, गांधीजी ने कहा था, सस्ता साहित्य मंडल, एन–77, पहली मंजिल, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली–110001, 2003, पृ. 47*

10. *भगवान श्री रजनीश (ओशो), शिक्षा में क्रांति, रजनीश फाउन्डेशन लिमिटेड, श्री रजनीश आश्रम, 17 कोरेगांव पार्क, पूना–411001 (महाराष्ट्र), पृ. 427...429...433*

11. *जे.कृष्णमूर्ति, शिक्षा एवं जीवन का महत्व, कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, राजघाट शिक्षा संस्थान, राजघाट फोर्ट, वाराणसी–221001, 1993, पृ.6*

12. *डॉ एस. सी. सिंहल की पुस्तक समकालीन राजनीतिक मुद्दे, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, अनुपम प्लाजा, ब्लॉक नं. 50, संजय प्लेस, आगरा–2, 2005–06 के पृ. 100 से उद्धृत।*

13. *डॉ. टी.पी. त्रिपाठी, मानव अधिकार, इलाहाबाद लॉ एजेन्सी पब्लिकेशनस, विधि–पुस्तक प्रकाशन, 10, सर पी.सी बनर्जी रोड, इलाहाबाद–2, 2011, पृ. 127–128*

• • •

ge ekuork dk mu ufrd tMk rd okil y tkuk pkfg, tgk l
vu'kklu vkj Lor=rk nkuk dk mnxe gk

– Sarvepalli Radhakrishna

ykd dY;k.k ,o ekuo vfèkdkj

i|uhr d|ekj•

e|t|yrk xx••

iLrkouk

लोक कल्याण मानव जीवन का सात्विक, शाश्वत एवं सार्वभौमिक तथा अपरिहार्य सत्य है। सभ्यता के प्रथम चरण से ही, प्रत्येक व्यवस्था का सर्वोच्च साध्य जनगण का कल्याण रहा है। सभ्यता का स्वरूप, प्रगति के स्पर्श से शनैः–शनैः परिवर्तित होता रहा है, विकास के अनेक मापदण्डों ने सभ्यता और संस्कृति को नए कलेवर अवश्य प्रदान किए हैं तथा निस्सन्देह परिवर्तनशील सभ्यता एवं संस्कृति से अपना संतुलन साधने के उद्देश्य से व्यवस्था ने भी अनेक नवीन आयाम ग्रहण किए हैं, किन्तु किसी भी स्तर पर लोक कल्याण की भावना, जनहित हेतु नीति निर्धारण और जनगण की प्रगति का लक्ष्य क्षण मात्र के लिए भी तिरोहित करने का दुस्साहस किसी व्यवस्था ने नहीं किया है। यह तथ्य लोक कल्याण की शाश्वत प्रासंगिकता को स्वयमेव स्थापित करता है। वस्तुतः विकास एवं प्रगति का रचनात्मक स्वरूप लोक कल्याण को सर्वोच्च साध्य स्वीकार कर शिरोधार्य करता है। कदाचित प्रगति का वही स्वरूप पोषणीय (Sustainable) स्वीकारा जाता है, जो जनहित को प्रत्येक स्थिति में संस्तुत एवं सुनिश्चित करता है। सामाजिक विज्ञान के पितामह अरस्तू ने शताब्दियों पूर्व इस कालजयी यथार्थ से विश्व का परिचय करा दिया था कि प्रत्येक व्यवस्था का परमोच्च लक्ष्य सदजीवन है और सन्देह इस तथ्य में कदापि नहीं होना चाहिए कि सदजीवन लोक कल्याण की सुनिश्चित्ता की भित्ति पर ही आकार प्राप्त कर सकता है। दूसरी ओर, सात्विक सत्य यह भी है कि मानव अधिकार लोक कल्याण की सुनिश्चित्ता के सशक्त आह्वाहन से अपना अवधारणात्मक शिलान्यास करता है। जनहित का साध्य किसी भी स्तर पर नेपथ्य में नहीं जाना चाहिए, मानव अधिकारों का एक मात्र उद्देश्य है। स्पष्ट है कि लोक कल्याण एवं मानव अधिकार अथवा मानव अधिकार व लोक कल्याण एक ही अवधारणा के दो आयाम हैं, जिनका नाभि–नाल सम्बंध है। एक की सुनिश्चिता दूसरे की उपलब्धता की स्वयमेव प्रत्याभूति देता है। इसी तथ्य का तामसिक पक्ष यह भी है कि एक की अनुपलब्धता दूसरे की सुलभता को भी ग्रसित कर देता है। अर्थात् मानव अधिकार एवं लोक कल्याण अन्योन्याश्रित हैं। लोक कल्याण की हिमशिला जब पिघलती है, तो मानव अधिकारों की मंदाकिनी प्रवाहित होती है अथवा मानव अधिकारों की गंगोत्री से ही लोक कल्याण की सहस्त्र धारा प्रवाहित होती है। मानव संसार में प्रत्येक व्यवस्था, प्रगति, नीति, आविष्कार और विकास तभी स्वीकार्य होना चाहिए, जब वह मानव अधिकार अथवा लोक कल्याण का सशक्त वाहक हो।

• सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, शासकीय एस.एम.एस. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शिवपुरी, म.प्र.

•• विभागाध्यक्ष, शोध केन्द्र एवं स्नातकोत्तर राजनीति विज्ञान विभाग, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शिवपुरी

ykd dY;k.k dk vFk

लोक कल्याण के अर्थ का जब विश्लेषण किया जाता है, तो यह सरलता से स्पष्ट हो जाता है कि लोक अर्थात सामान्य जनगण को प्रगति की समस्त परिस्थितियॉं उपलब्ध कराना ही उसके कल्याण का मार्ग निर्मित करता है। अर्थात लोक कल्याण मानवीय प्रगति का ही पर्याय है। इस मानवीय प्रगति का जब शास्त्रीय विश्लेषण किया जाता है, तब यह स्पष्ट होता है कि स्वतंत्रता, समानता और न्याय को सुनिश्चित करने वाली स्थितियॉं स्वयमेव लोक कल्याण को सशक्त करती हैं। अन्य शब्दों में, यह भी कहा जा सकता है कि परतंत्रता, असमानता अथवा भेदभाव एवं अन्याय लोक कल्याण को कदापि आयुष्मान नहीं कर सकता है। किसी भी समाज में जब न्याय स्थापित हो जाता है, तो असमानता स्वयमेव तिरोहित हो जाती है और जब न्याय और समानता का प्रश्रय हो जाता है तो स्वतंत्रता का पथ भी प्रशस्त हो जाता है। अर्थात् न्याय समानता की जननी है एवं न्याय तथा समानता स्वतंत्रता के प्रति स्वभावतः उर्वर होते हैं। वस्तुतः न्याय के कई महत्त्वपूर्ण तत्व हैं, यथा–'न्याय, नैतिकता के प्रति आग्रही होता है, न्याय सामाजिक सद्‌गुण ही है, न्याय का प्राथमिक आग्रह होता है कि प्रत्येक मानवीय विषय संतुलित और समानता पर आधारित हो तथा अपने नैतिक स्वरूप में न्याय प्राणि मात्र के प्रति समानता की स्थापना हेतु तत्पर होता है।'[1]

न्याय समानता की जननी है। कई विद्वानों का मत है कि समानता के अभाव में न्याय की कल्पना भी दुष्कर है। यदि किसी समाज विशेष में समानता नहीं है, तो वहॉं न्याय भी प्रश्रय नहीं पा सकता है। 'समानता न्याय का पर्याय कदापि नहीं है, किन्तु न्याय की अवधारणा का प्रस्थान बिन्दु अवश्य है। समानता विहीन न्याय उस दौड़ प्रतियोगिता की भॉंति है, जिसमें दौड़ प्रारंभ करने के स्थान का ही निश्चयन न किया गया हो।'[2]

न्याय की अवधारणा देश व काल सापेक्ष होती है। प्राचीन समय में न्याय की अवधारणा धर्म और पवित्रता सदृश्य अर्थो से अपना भावार्थ ग्रहण करती थी, तो आधुनिक समय में यह पूर्णतः सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अर्थो से स्पंदित हो रही है। कदाचित इन्हीं आधुनिक अर्थो के प्रभाव से समानता को न्याय का प्रारंभिक बिन्दु स्वीकारा जा रहा है।

समानता के अर्थ का जहॉं तक प्रश्न है, उस विषय में कहा जा सकता है कि समानता दो विशिष्ट स्थितियों के माध्यम से परिभाषित की जा सकती है। ये स्थितियॉं इस प्रकार हैं – (i) विधि के समक्ष समानता एवं (ii) विधि का समान संरक्षण। 'विधि के समक्ष समानता' के शब्द लगभग उन सभी संविधानों में अंकित है, जिनमें मौलिक अधिकार प्रत्याभूत किए गए हैं। क़ानून के समक्ष समानता ब्रिटेन के सामान्य क़ानून जैसी अभिव्यक्ति है। 'कानून का सामान्य संरक्षण' (equal protection of laws) के शब्द अमरीकी संविधान की देन है। दोनों ही

उक्तियों का उद्देश्य ...... स्तर एवं अवसर (equity of status and opportunity) की समानता को स्थापित करना है। विधि के समक्ष समानता अस्वीकार सूचक अवधारणा है, जिसमें किसी भी व्यक्ति के लिए विशेषज्ञधिकारों के निषेध के साथ–साथ यह स्पष्ट होता है कि प्रत्येक वर्ग सामान्य क़ानून द्वारा प्रशासित है। किन्तु क़ानून का सामान्य संरक्षण एक स्वीकारात्मक कथन है और समान परिस्थितियों में समान व्यवहार का आश्वासन देता है। .... समानता का अधिकार मनुष्य को केवल विधानमंडलों के भेदमूलक क़ानूनों से ही नहीं बचाता, कार्यपालिका की निरंकुश स्वेच्छाचारिता से भी उसकी रक्षा करता है।'[3] यह संक्षिप्त विश्लेषण यह स्पष्ट करने में सक्षम है कि समानता लोक कल्याण की सुनश्चितता के लिए अपरिहार्य है। यदि किसी समाज में भेद–भाव का प्रश्रय है तो वह समाज लोक कल्याण को किसी भी मूल्य पर यथार्थतः प्रतिष्ठित नहीं कर सकता है।

स्वतंत्रता वह तृतीय महत्त्वपूर्ण स्तंभ है, जो लोक कल्याण की भावना को अभीष्ट स्वरूप प्रदान करता है। वस्तुतः स्वतंत्रता वह शब्द है, जिसका सार्वभौम भावार्थ स्थापित करना दुष्कर है। इस शब्द के अर्थो को दो श्रेणी में बांटा जा सकता है। प्रथम श्रेणी वह है, जिसमें स्वतंत्रता का प्रयोग असीमित अधिकारों के उपयोग के अर्थ को स्वीकारता है। समाज वैज्ञानिक इस प्रकार की स्वतंत्रता को नकारात्मक स्वतंत्रता का संबोधन देते हैं। द्वितीय श्रेणी में नागरिकों के अधिकार असीमित नहीं होते हैं, अपितु विधि, विधान एवं संविधान की सीमाओं में आबद्ध होकर, स्वयं को उसी स्तर तक स्वतंत्र स्वीकारा जाता है, जहॉ से अन्य नागरिकों की स्वतंत्रता का सम्मान किया जा सकें। अर्थात औचित्यपूर्ण प्रतिबन्धों की मर्यादा में अधिकारों का उपयोग द्वितीय श्रेणी की स्वतंत्रता है, जिसे समाज वैज्ञानिक सकारात्मक स्वतंत्रता का संबोधन प्रदान करते हैं। लोक कल्याण के लिए स्वतंत्रता की अपरिहार्यता एवं स्वतंत्रता को उच्छ्रंखलता में परिवर्तित होने से निषिद्ध करने में रचनात्मक प्रतिबन्धों की अनिवार्यता को थामस हिल ग्रीन ने इस प्रकार विश्लेषित किया है। 'मानव चेतना स्वतंत्रता चाहती है, स्वतंत्रता में अधिकार निहित हैं और अधिकार राज्य की मॉग करते हैं।' अर्थात मनुष्य के संतुलित विकास हेतु स्वतंत्रता की आवश्यकता है, यह स्वतंत्रता करने योग्य एवं पाने योग्य क्रमशः कार्यो और सुविधाओं या अधिकारों में समाहित है और यह अधिकार असीमित कदापि नहीं है। कतिपय मूलभूत स्वतंत्रताओं को इस प्रकार सूचीबद्ध किया जा सकता है, यथा–'विचार एवं अंतःकरण की स्वतंत्रता, राजनीतिक स्वतंत्रता (यथा–मताधिकार एवं राजनीतिक सहभागिता का अधिकार), संघ बनाने की स्वतंत्रता तथा वे समस्त स्वतंत्रताएं जो व्यक्ति की स्वतंत्रता और गरिमा के लिए अपरिहार्य है तथा अंत्तः वे समस्त स्वतंत्रतायें जो विधि के शासन के अंतर्गत स्वीकारी जा सकती हों।' स्पष्ट है कि स्वतंत्रता उन स्थितियों की सर्जक है, जिनका उपभोग कर व्यक्ति प्राप्त अवसरों के माध्यम से अपना सर्वांगीण विकास करता हैं यह असीमित कदापि नहीं हो सकती है। कदाचित असीमित स्वतंत्रता मत्स्य न्याय की ही पर्याय होगी।

इस विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि न्याय, समानता और स्वतंत्रता पर आधारित राष्ट्र, समाज एवं व्यवस्था ही स्वयं के लोक कल्याणाकारी होने की आकांक्षा का यथार्थ प्रदर्शन कर सकती है अर्थात् न्याय, समानता एवं स्वतंत्रता की स्थापना लोक कल्याण की स्वतः प्रत्याभूति है

जब लोक कल्याण के आधारभूत स्तम्भों न्याय, समानता एवं स्वतंत्रता को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में द्रवित किया जाता है, तो लोक कल्याण को संस्तुत करने वाली एक और अवधारणा की उत्पत्ति होती है, जिसे सुरक्षा का सम्बोधन दिया जा सकता है। यह सुरक्षा कई प्रकार की हो सकती है, यथा– सामाजिक, आर्थिक, मानसिक। सत्य यह भी है कि जब इस सुरक्षा शब्द के भावार्थ का विश्लेषण वृहत स्तर पर किया जाता है, तो वह न्याय, स्वतंत्रता और समानता की ही सहोदर प्रतीत होती है। लोक कल्याण की अवधारणा की सरल व्याख्या में न्याय, समानता और स्वतंत्रता के साथ–साथ समस्त प्रकार की सुरक्षा को समाहित किया जा सकता है। वर्तमान में प्रत्येक राज्य स्वंय को कल्याणकारी सिद्ध करता है और इस 'सिद्धि' के लिए वह अपने यहॉ अनेक योजनाओं और नीतियों के माध्यम से विविध कल्याणकारी योजना संचालित करता है, जिसके प्रभाव से प्रत्येक नागरिक स्वयं को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं मानसिक रूप से सुरक्षित अनुभूत करता है।

ykd dY;k.k dh voèkkj.kk ds fof'k"V rÙo

पूर्व विश्लेषण के आधार पर लोक कल्याण की अवधारणा के विशिष्ट तत्त्वों को अग्रवत चिह्नित् किया जा सकता है यथा– न्याय, समानता, स्वतंत्रता और सामाजिक सुरक्षा।

अत्यन्त संक्षेप में, लोक कल्याण को संस्तुत करने वाले न्याय के प्रमुख अंश हैं– नागरिकों को समान स्थितियॉ उपलब्ध कराना तथा उपलब्धियों का समानता के आधार पर वितरण सुनिश्चित करना। समानता, न्याय की अवधारणा से ही प्रतिपादित होने वाली स्थिति है। इसी प्रकार न्याय के प्रमुख अंश हैं। (अ) विधि का शासन (ब) विधि का समान संरक्षण एवं (स) विधि के समक्ष समानता। स्वतंत्रता वह अन्य विशिष्ट तत्व है, जिससे लोक कल्याण अपना आकार पाता है। स्वतंत्रता का प्रत्यक्ष अर्थ है करने योग्य कार्यो का भेदभाव रहित अधिकार प्राप्त होना। इसके अंतर्गत वे कार्य आते है, जिसके संपन्न होने से सम्बंधित व्यक्ति का संतुलित विकास तो हो ही अपितु संबंधित समाज की रचनात्मकता में भी वृद्धि सुनिश्चित हो। लोक कल्याण का अन्य विशिष्ट तत्व है, सामाजिक सुरक्षा की स्थापना। सामाजिक सुरक्षा का प्रत्यक्ष अर्थ मात्र यह है कि यदि किसी नागरिक के जीवन में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक अथवा मानसिक दृष्टि से आलोच्य स्थितियॉ आती हैं, तो सम्बंधित राज्य का यह दायित्व है कि वह उस नागरिक की यथायोग्य सुरक्षा सुनिश्चित करे। यदि किसी राज्य में ये विशिष्ट तत्व विद्यमान हैं तो निश्चय ही वह राज्य लोक कल्याणाकारी राज्य के सम्बोधन का अधिकारी है।

ekuo vfèkdkj dk vFk

मानव अधिकारों का आग्रह है कि मानव के व्यक्तिव के विकास हेतु आवश्यक समस्त परिस्थितियों का अधिकतम सृजन होना चाहिए। मानव अधिकारों का दूसरा सशक्त आग्रह है कि मानव गरिमा का किसी भी मूल्य पर क्षरण नहीं होना चाहिए। स्पष्ट है कि मानव अधिकारों का अर्थ है मानव गरिमा को अक्षुण्ण रखते हुए मानव व्यक्तिव का अधिकतम विकास। मानव व्यक्तिव का पल्लवन जिस स्वस्थ सान्निध्य की अवधारणा पर आधारित है, वह स्वयमेव मानव अधिकारों की मांग करता है।

संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार केन्द्र की भाषा मे कहा जा सकता है 'मानव अधिकार सामान्यतः उन अधिकारों के रूप में परिभाषित किए जा सकते हैं, जो कि हमारी प्रकृति के अभिन्न अंग होते हैं तथा जिनके अभाव में हम मानव प्राणी के रूप में नहीं रह सकते हैं। इसी प्रकार संविधान विशेषज्ञ दुर्गादास बसु का विचार है कि मानव अधिकार वे न्यूनतम अधिकार है, जो प्रत्येक को राज्य या किसी अन्य सत्ता के विरुद्ध अनिवार्यतः मात्र इसलिए प्राप्त होना चाहिए क्योंकि प्रत्येक, मानव परिवार का एक सदस्य है।[4]

भारतवर्ष के पूर्व मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति एम.एच. बेग मानव अधिकारों को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि 'मानव अधिकारों में न्याय, समानता तथा भेदभावपूर्ण व्यवहार से मुक्ति व स्वेच्छाचारिता से स्वतंत्रता का भाव निहित है।'[5]

चिन्तक पाल सिगर्ट मानव अधिकारों को अन्य अधिकारों की तुलना में विशिष्ट स्वीकारते हैं। उनका विचार है कि मानव अधिकार न तो किसी द्वारा प्राप्त होते हैं, न ही ये किसी अन्य को स्थानांतरित होते हैं और न ही किसी भी स्थिति में ये अधिकार लुप्त हो सकते हैं क्योंकि मानव अधिकार प्रत्येक मानव प्राणी की प्रकृति में सार्वभौमिक रूप से स्वाभावतः समाहित हैं। सिगर्ट के अनुसार मानव अधिकारों की एक अन्य विशेषता यह भी है कि मानव अधिकारों के परिप्रेक्ष्य में कर्तव्य पूर्ति का प्रारंभ बिन्दु राज्य एवं तत्सम्बंधित सार्वजनिक सत्ता है। पाल सिगर्ट अपनी व्याख्या में यह भी स्पष्ट करते हैं कि इन दो विशिष्ट तत्वों के कारण मानव अधिकारों से सम्बंधित तीन तथ्य स्पष्ट होते हैं। प्रथम–समानता की स्थापना होनी चाहिए और प्रत्येक भेदभाव निषिद्ध होना चाहिए, द्वितीय–विधि का शासन हो अर्थात प्रत्येक जन विधि मात्र द्वारा शासित होना चाहिए और तृतीय मानव अधिकारों के उल्लंघन के उपचारों की अनिवार्य उपलब्धता हो। पाल सिगर्ट का विश्वास है कि यदि यह तीन स्थितियां स्थापित होकर व्यवहृत हो रही है, तो निस्सन्देह, सम्बंधित राष्ट्र मानव अधिकारों की स्थापना में उल्लेखनीय सफलता अर्जित कर चुका है। भारत के राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के पूर्व अध्यक्ष न्यायमूर्ति वेंकटचेलैया द्वारा कदाचित उपर्युक्त संदर्भ में ही कहा गया है कि 'मानव अधिकार नैसर्गिक अधिकार हैं तथा जिनके अभाव में हम मानव प्राणी के रूप में जीवित नहीं रह सकते हैं।'[6]

ekuo vfèkdkjkk dk vko';d rRo

मानव अधिकारों के पूर्व विश्लेषण के आधार पर कतिपय ऐसे तथ्य स्पष्ट होते हैं, जिन्हें मानव अधिकारों के आवश्यक तत्वों की संज्ञा दी जा सकती है। इन तत्वों को अग्रवत स्पष्ट किया जा सकता है –

- मानव अधिकार नैसर्गिक तथा स्थायी चरित्र के हैं।
- प्रत्येक मनुष्य को मानव समुदाय का सदस्य मात्र होने के कारण ये अधिकार स्वतः प्राप्त होते हैं अर्थात ये सार्वभौमिक हैं।
- मानव अधिकारों के सन्दर्भ में कर्तव्य पालन की पहल राज्य व उसके अभिकरण ाों को करना होता है।
- मानव अधिकारों का स्वस्थ स्वरूप विधि के शासन की मांग करता है।
- मानव अधिकारों के उल्लंघन के निषेध हेतु संवैधानिक उपचारों की व्यवस्था अनिवार्य है।
- मानव अधिकारों के अभाव मे जनगण के व्यक्तिव का संतुलित विकास संभव नहीं है।
- मानव अधिकार न्याय, समानता, स्वतंत्रता, भ्रातृत्व एवं मानव गरिमा के संरक्षण की अवधारणा को समाहित किए हैं।

मानव अधिकारों की अवधारणा एवं स्वरूप का उपर्युक्त विश्लेषण यह स्थापित करता है कि मनुष्य के व्यक्तिव का स्वस्थ विकास मानव अधिकारों की मांग करता है, मानव अधिकारों की मांग राज्य को कर्तव्यों के स्वस्थ निर्वहन हेतु प्रेरित करता है तथा कर्तव्यों के स्वस्थ निर्वहन का अधिकतम सार्थक प्रयास सम्बंधित राज्य व उसकी सत्ता को तदनुरूप कल्याणकारी सिद्ध करता है। निस्सन्देह, यह सात्विक सत्य है कि मानव अधिकारों की सार्थक स्थापना लोक कल्याणकारी राज्य की प्राथमिक अवस्था है।

यथार्थतः मानव अधिकार मानव प्राणी की नैसर्गिक अनिवार्यता है। मानव अधिकार मनुष्य की चेतना का जनतंत्र है, तथा व्यक्तिव का गणतंत्र है। यह 'जनतंत्र' और 'गणतंत्र' तभी आयुष्मान होते हैं, जब न्याय, समानता और स्वतंत्रता सदृश्य स्थितियों की स्थापना लाकसत्ता की सर्वोच्च प्राथमिकता होती है।

Ykkd dY;k.k d le{k pqukfr;k

इस तथ्य में सन्देह उचित नहीं होगा कि वर्तमान इक्कीसवीं शताब्दी में भी आर्यावर्त में लोक कल्याण के समक्ष अनेक चुनौतियां विद्यमान है। इन चुनौतियों में सबसे घातक चुनौती न्याय, समानता और स्वतंत्रता की स्थापना की है। अर्थात् लोक कल्याण के आधारभूत तत्वों की सार्वभौमिक स्थापना न हो पाना जंबूद्वीप के गणतंत्र के समक्ष सर्वाधिक गम्भीर समस्या है। इन आधारभूत तत्वों को जब विखंडित अथवा द्रवित किया

जाता है, तो अनेक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व लैंगिक व्याधियॉं समक्ष आती हैं, जिन्होंने लोक कल्याण की स्थापना को चुनौतीग्रस्त बना रखा है।

इन चुनौतियों को बिन्दुस्वरूप अग्रवत प्रस्तुत किया जा सकता है–

fuèkurk] fuj{kjrk ,oa 0;olk;ghurk

इक्कीसवीं शताब्दी का आर्यावर्त निर्धनता के श्राप से मुक्त नहीं है, यह एक कटु यथार्थ है। '2015 में लगभग 170 मिलियन अर्थात लगभग 12.4 प्रतिशत जनसंख्या निर्धन की अवधारणा में सम्मिलित थी। 2009 में यह आंकड़ा 29.8 प्रतिशत था। ...... संयुक्त राष्ट्र शताब्दी विकास लक्ष्य कार्यक्रम के अनुसार 2011–12 में 270 मिलियन अर्थात 21.9 प्रतिशत जनसंख्या निर्धनता की रेखा में आती थी।'[7] इस निर्धनता का एक पक्ष यह भी है कि भारत में भी संपत्ति का संग्रह सीमित वर्ग के पास ही है। एक अध्ययन के अनुसार 'जनसंख्या का एक प्रतिशत, देश की 60 प्रतिशत सम्पत्ति का स्वामी है।'[8] स्पष्ट है कि निर्धनता भारतीय सन्दर्भों में लोक कल्याण की सुनिश्चित्ता के समक्ष एक गंभीर चुनौती है।

इसी प्रकार निरक्षरता एवं अशिक्षा के कारण भी लोक कल्याण की अवधारणा अत्यन्त चुनौतीग्रस्त है। शिक्षा एवं साक्षरता किसी भी राष्ट्र की प्रगति का मेरुदण्ड होता है। शिक्षा के अभाव में लोक कल्याण का बाधित होना अस्वाभाविक नहीं है। यद्यपि भारतीय सन्दर्भों में साक्षरता के क्षेत्र में प्रगति हुई है। '1947 में साक्षरता दर जहां लगभग 12 प्रतिशत थी, वहीं 2011 में यह लगभग 74 प्रतिशत मापी गई है। दूसरी ओर विश्व की साक्षरता का दर लगभग 84 प्रतिशत है। अर्थात साक्षरता के क्षेत्र में आर्यावर्त की प्रगति संतोषजनक अवश्य हैं, किन्तु इसे और श्रेष्ठतर बनाने की आवश्यकता है। साक्षर जनसंख्या में महिला साक्षरता दर अधिक चुनौतीग्रस्त है। पुरूषों की साक्षरता दर 82.14 प्रतिशत की तुलना में महिला साक्षरता दर मात्र 65.46 प्रतिशत है।'[9] अर्थात आर्यावर्त की आधी महत्त्वपूर्ण शक्ति में शिक्षा का स्तर संतोषजनक कदापि नहीं है।

एक और चिंताजनक तथ्य यह है कि भारतवर्ष में व्यवसायहीन अथवा अजीविकाविहीन युवाओं की संख्या भी गंभीर है। जीविका के साधनों की न्यूनता भारतीय युवा के समक्ष एक अत्यन्त संवेदनशील चुनौती है। '1983 से 2011 तक व्यवसायहीनता का औसत 9 प्रतिशत रहा है। इस अवधि में बेरोजग़ारी का सर्वोच्च प्रतिशत दिसम्बर, 2010 में लगभग 9.4 प्रतिशत रहा है और न्यूनतम दिसम्बर, 2011 में लगभग 3.8 प्रतिशत रहा है। ... 2013 में प्रकाशित एक अध्ययन में केरल में बेरोजग़ारी अर्थात व्यवसायहीनता की दर सर्वोच्च थी, वहीं गुज़रात में यह दर न्यूनतम आंकी गई थी।'[10]

lkEinkf;drk vkj yfxd HknHkko

किसी राष्ट्र के प्रत्येक वर्ग में एकता और सुरक्षा की भावना का होना अपरिहार्य

है। साम्प्रदायिकता वह तामसिक सत्य है, जिसके दुष्प्रभाव से एकता एवं सुरक्षा दोनों भावनाओं का क्षीण होना अवश्यंभावी है। फलतः राष्ट्रीय एकता व अखण्डता का आहत होना स्वाभाविक है। भारतवर्ष में धर्म एवं जाति की विविधता के संदर्भ में साम्प्रदायिक सद्भाव को आर्यावर्त के सद्जीवन हेतु प्राणवायु की संज्ञा दी जा सकती है। देश के विभाजन के समय जन्मी साम्प्रदायिक कटुता वर्तमान में भी नख एवं दंत विहीन नहीं हुयी है। राष्ट्रीय अस्मिता पर इसका प्रहार अभी भी होता रहता है।

लैंगिक भेदभाव ने राष्ट्र की आधी जनसंख्या को हतोत्साहित करने का अनुचित कार्य किया है। फलतः राष्ट्र का विकास भी सर्वांगीण होने की घोषणा नहीं कर सकता है। शिक्षा एवं व्यवसाय के साथ–साथ राजनीतिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक स्तरों पर जिस प्रकार स्त्रियों के साथ भेदभाव वर्तमान में भी निरंतर हो रहा है, उसके दुष्प्रभाव से भारत की प्रगति का विकलांग होना आश्चर्यजनक कदापि नहीं होना चाहिए। 'भारत में निर्धन जनसंख्या का 70 प्रतिशत महिला जनसंख्या है। इसका कारण स्त्री स्वतंत्रता का अभाव और आवश्यक अवसरों की अनुपलब्धता है। शिक्षा के प्रति महिलाओं को प्रोत्साहित न किए जाने के साक्ष्यों की भी कमी नहीं है। .... सामाजिक रूढ़ियां और परंपरायें, महिलाओं के प्रति समाज की भेदभावपूर्ण मानसिकता एवं प्रवृत्ति तथा स्वयं महिलाओं में पर्याप्त सजगता का अभाव इत्यादि'[11] वे प्रमुख कारण है, जिनके कारण भारतीय संविधान की समानता की अवधारणा एवं लैंगिक भेदभाव का निषेध इत्यादि प्रबन्धों का यथार्थ क्रियान्वयन संभव नहीं हो पा रहा है।

स्वात्र्योत्तर भारतवर्ष ने प्रगति का स्मरणीय अध्याय लिखा है। किन्तु यथार्थ यह भी है कि जंबूद्वीप के सभी प्रदेशों में इस प्रगति का समानता पर आधारित विभाजन नहीं हुआ है अर्थात भारत के कई प्रदेश और जिले आर्यावर्त की प्रगति के मानक स्थापित करते हैं, तो कई प्रदेश और जिले ऐसे भी हैं, जो विकास के प्रकाश से अस्पृश्य सदृश्य प्रतीत होते हैं। इस असंतुलित प्रगति के कई कारण हैं, यथा– –ब्रिटिश काल में उद्योगपतियों ने पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र जैसे प्रदेशों और कोलकाता, मुंबई एवं चेन्नई जैसे बड़े नगरों में ही अपने उद्योग लगाए, ब्रिटिशकाल में भूमि सम्बन्धी जो नीतियां अपनाई गई थीं, उनके कारण एक ओर कृषक कुंठित हुए तो दूसरी ओर जमींदारों एवं साहूकारों का शोषण बढ़ता गया, ब्रिटिश काल में यातायात, संचार, सिंचाई और विद्युत ऊर्जा इत्यादि सुविधाओं का जिस प्रकार विकास हुआ उसने भी असमान प्रगति को प्रोत्साहित किया। इसी प्रकार आर्थिक सहायता के समान प्रोत्साहन का अभाव, नियोजन प्रक्रिया का सफल न होना, हरित क्रांति का लाभ कुछ क्षेत्र विशेष को ही प्राप्त होना, पिछड़े क्षेत्रों में अनुषांगिक उद्योगों का विकसित न हो पाना, पिछड़े प्रदेशों में औद्योगिक विकास को प्रोत्साहित करने वाले प्रयासों का अभाव और अंत्तः सरकार की अस्थिरता, उग्रवादी हिंसा तथा सशक्त विधि एवं व्यवस्था का अभाव[12] इत्यादि वे कारण है, जिनका प्रत्यक्ष प्रभाव यह हुआ कि भारतवर्ष के कई प्रदेश और क्षेत्र प्रगति के उस मानक से वंचित रहे, जो उनका स्वाभाविक अधिकार था।

पूर्वोक्त विश्लेषण यह सिद्ध करने में सक्षम है, कि राष्ट्र का अभीष्ट विकास वर्तमान में भी प्रतीक्षित है। फलतः यह स्वीकारना अनुचित नहीं होगा कि लोक कल्याण की अवधारणा और उसकी सुनिश्चित्ता भी इन्हीं कारणों से वर्तमान में भी दुष्प्रभावित है। राष्ट्र की प्रगति और विकास, सम्बंधित जनगण की प्रगति, उन्नति और विकास का पर्याय होता है। यदि किन्हीं कारणों से राष्ट्रीय विकास बाधित है और वांछनीय मानक से अस्पर्श्य है, तो निश्चय ही लोक कल्याण भी अपेक्षित ढंग से प्रोत्साहित नहीं हो सकता है। राष्ट्र की प्रगति लोक कल्याण का सोपान है और लोक कल्याण की सुनिश्चित्ता राष्ट्रीय विकास का मानक है। आर्यावर्त के सन्दर्भों में यह स्वीकारा जा सकता है कि लोक कल्याण की अवधारणा उन्हीं कारणों से हतोत्साहित है, जिन कारणों के दुष्प्रभाव से राष्ट्रीय प्रगति चुनौतीग्रस्त है। अर्थात निरक्षरता, निर्धनता, व्यवसायहीनता, अशिक्षा, साम्प्रदायिकता, लैंगिक भेदभाव, राजनीतिक अस्थिरता तथा पक्षपातपूर्ण विकास इत्यादि वे नकारात्मक स्थितियॉ हैं, जिनसे राष्ट्र की उन्नति ग्रसित हुई है। फलतः लोक कल्याण की अवधारणा भी कुप्रभावित हुई है।

ykd dY;k.k dh l|fuf'prrk e ekuo vfèkdkjk dh Hkfedk

वस्तुतः यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि मानव अधिकार लोक कल्याण की ही विराट अवधारणा है। कदाचित मानव अधिकारों की अवधारणा की उत्पत्ति लोक कल्याण को सुनिश्चित करने के लिए ही हुई है। मानव अधिकार जीवन और समाज के प्रत्येक अंश को सुरक्षा प्रदान करना अपना नैतिक दायित्व स्वीकारता है। महिला, पुरूष, बच्चे, जेल में बन्दी, व्याधिग्रस्त नागरिक, विकलांगजन, मानसिक रोगी, वृद्धजन, श्रमिक और युद्धबन्दियों इत्यादि के कल्याण के प्रति मानव अधिकार जहां चिन्ति हैं, वहीं दूसरी ओर उन स्थितियों को संरक्षित करने के प्रति भी मानव अधिकार उद्यत हैं, जिनसे जीवन प्रत्येक स्थिति में मानवीय स्पर्श से सजीव रहे। इसी परिप्रेक्ष्य में कहा जा सकता है कि मानव अधिकार पर्यावरण संरक्षण, विधि का शासन, स्वच्छ पेयजल, साम्प्रदायिक सद्भाव और स्वस्थ वातावरण इत्यादि स्थितियों की स्थापना हेतु भी गुरुतर उद्यम कर रहा है।

'मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (1948), आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों सम्बन्धी अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा (1966) तथा नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों सम्बन्धी अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा (1966) वे महत्त्वपूर्ण अभिलेख हैं, जिनके अभाव में मानव अधिकारों का वर्तमान वैश्विक विकास निस्सन्देह एक स्वप्न होता। ... मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा मानव प्राणी की आधारभूत स्वतंत्रता के प्रति कटिबद्ध है। इस घोषणा के अनुच्छेद 3, 6 और 9 अत्यन्त प्रासंगिक हैं। विधि का शासन, स्वच्छ और निष्पक्ष न्यायिक प्रक्रिया, विधि की समानता और जीवन का अधिकार मानव अधिकारों के अपरिहार्य तत्व हैं।'[13] इसी प्रकार 1966 में अस्तित्व में आई दोनों अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदायें भी मानव अधिकारों की स्थापना के प्रति अपनी कटिबद्धता प्रदर्शित कर लोक कल्याण की सुनिश्चित्ता को पुष्ट करती है। 'नागरिक व राजनीतिक अधिकारों सम्बन्धी प्रसंविदा

का अनुच्छेद 16 धर्म, जाति, लिंग, प्रजाति, जन्म स्थान इत्यादि के भेदभाव के बिना सभी को जीवन का अधिकार प्रदान करता है। इसी प्रसंविदा का अनुच्छेद 15 विधि के शासन की स्थापना करता है। ... वस्तुतः मानव अधिकार राष्ट्रीय और राज्य सरकारों को यह दायित्व बोध प्रदान करने के प्रति प्रतिबद्ध है कि आधारभूत मानव अधिकारों का संरक्षण प्रत्येक स्थिति में सुनिश्चित होना चाहिए तथा किसी भी मूल्य पर इन मानव अधिकारों का हनन नहीं होना चाहिए। इस सन्दर्भ में ....निवर्तमान राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा का कथन स्मरण करना प्रासंगिक होगा ... मानव अधिकारों के दो महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं, प्रथम .... एक समाज स्थिर और प्रगतिशील तभी स्वीकारा जाएगा, जब वहां मानव अधिकारों को वांछनीय स्वीकृति और अभीष्ट क्रियान्वयन प्राप्त होगा, द्वितीय जिस राजनीतिक व्यवस्था में मानव अधिकारों को अस्वीकारा और निषिद्ध किया जाता है, वह व्यवस्था चिरायु नहीं हो सकती है ..।'[14]

भारतीय संविधान में मानव अधिकारों की अवधारणा पर यद्यपि कोई प्रत्यक्ष अनुच्छेद नहीं है तथापि यह स्वीकारना अनुचित नहीं होगा कि संविधान की प्रस्तावना, भाग तीन, एवं भाग चतुर्थ मानव अधिकारों के संरक्षण और संवर्द्धन हेतु प्रतिबद्ध हैं। भारतीय संविधान में उल्लिखित मौलिक अधिकार और राज्य के नीति निदेशक तत्व, मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा तथा 1966 की दोनों अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं के लक्ष्यों का भारतीय संस्करण है। मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम 1993, मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा, आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों सम्बन्धी अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा तथा नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों सम्बन्धी अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा का संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित संस्करण स्वीकारा जा सकता है। 1993 का यह अधिनियम राष्ट्रीय और राज्य मानव अधिकार आयोगों की ही स्थापना नहीं करता है, अपितु यह अधिनियम मानव अधिकारों की उपेक्षा और उल्लंघन को निषिद्ध करना तथा उनका संरक्षण और संवर्द्धन सुनिश्चित करना भी अपना कर्तव्य समझता है। स्पष्ट है कि मानव अधिकार जिन अधिकारों के संरक्षण एवं संवर्द्धन हेतु तत्पर है, वे लोक कल्याण की स्वयमेव सुनिश्चित करते हैं। मानव अधिकारों के अभाव की स्थिति लोक कल्याण को कदापि संस्तुत नहीं कर सकता है। अर्थात मानव अधिकारों की अवधारणा लोक कल्याण का मेरूदण्ड है, तो लोक कल्याण मानव अधिकारों की रक्त वाहिनियां हैं। एक के अभाव में दूसरे का व्याधि एवं विकारग्रस्त होना अवश्यंभावी है।

ekuo vfèkdkjk dh lfuf'prrk e ckèkk,

मानव अधिकारों की सुनिश्चित्ता में सर्वप्रमुख बाधा मानुषिक विकारों की है। भ्रष्टाचार इन विकारों की श्रेणी में प्रथम स्थान पर है। भारतवर्ष में भी भ्रष्टाचार के कारण मानव अधिकारों की सुनिश्चिता में अनेक बाधायें प्रस्तुत हो रही हैं।' चीन, भारत और इंडोनेशिया विश्व के भ्रष्टतम देशों की श्रेणी में आते हैं, वहीं जापान और सिंगापुर न्यूनतम भ्रष्ट देशों में स्वीकारे गए हैं। ... भ्रष्टाचार के कारण एक ओर जहां लोकतंत्र

रूग्ण होता है, वहीं दूसरी ओर आतंकवाद समाप्त करने की सामरिक योजनाएं असफल हो जाती हैं।'[15] भ्रष्टाचार के कारण सामान्य जनगण विकार रहित जीवन, व्याधिहीन स्वतंत्रता, संतुलित समानता और स्वस्थ गरिमा प्राप्ति के अधिकारों से वंचित हो जाता है। मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 के 2(द) परिच्छेद में स्पष्ट अंकित है कि मानव अधिकारों की अवधारणा में वे अधिकार समाहित है, जिनसे प्रत्येक जनगण उस जीवन, स्वतंत्रता समानता और गरिमा का अधिकारी होता है, जिसकी प्रत्याभूति भारतीय संविधान द्वारा प्रदान की गई है तथा अनेक अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदायें जिसकी उपलब्धता के लिए प्रत्येक देश से अपेक्षा करती है। विधि का शासन और मानव अधिकारों का संरक्षण एवं संवर्द्धन सुशासन के दो अनिवार्य पक्ष हैं। भ्रष्टाचार इन दोनों अनिवार्य पक्षों को निशक्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

भारतवर्ष के विशेष सन्दर्भ में साम्प्रदायिकता, नागरिकों में जागरूकता का अभाव, निर्धनता, अशिक्षा एवं लैंगिक भेदभाव भी मानव अधिकारों के संरक्षण एवं संवर्द्धन में प्रमुख बाधाएं हैं। इन कारणों से जहां सभी को न्याय उपलब्ध नहीं होता, वहीं नागरिकों को आभास भी नहीं हो पाता कि उनके अधिकारों का उल्लंघन हो रहा है। भेदभावपूर्ण स्थिति का सर्वाधिक दुष्प्रभाव स्त्रियों और समाज के निर्बल वर्ग पर पड़ता है। फलतः राष्ट्र का एक विशाल अंश उस कुंठा का आखेट हो जाता है, जिससे सम्पूर्ण भारतवर्ष की प्रगति का बाधित होना स्वाभाविक है। फलतः लोक कल्याण के साध्य का नेपथ्य में जाना अस्वाभाविक नहीं है।

न्यायिक प्रक्रिया का असामान्य रूप से लम्बा एवं व्ययसाध्य होना भी मानव अधिकारों के संवर्द्धन को बाधित कर रहा है। किसी प्रकार के मानव अधिकारों के उल्लंघन के पश्चात न्याय के लिए जनगण न्यायपालिका की शरण में जाता है, किन्तु अत्यन्त लम्बी प्रक्रिया और अत्यधिक व्यय के पश्चात यदि उसे न्याय प्राप्त हो जाता भी है, तो अत्यन्त विलंब के कारण सम्बंधित को अर्थहीन प्रतीत होता है। यह सर्वमान्य धारणा है कि विलंब से प्राप्त न्याय, अन्याय के समकक्ष होता है।

स्पष्ट है कि इन कारणों से भारतवर्ष में मानव अधिकारों का वांछनीय संरक्षण एवं संवर्द्धन प्रतीक्षित हैं। यदि इन चुनौतियों का समाधान हो जाए तो आर्यावर्त में सुशासन की स्थापना अवश्यंभावी है। फलतः लोक कल्याण की सरस सलिल धारा से जनगण का तृप्त होना स्वप्न नहीं रहेगा।

okNuh; lekèkku

मानव अधिकारों अथवा लोक कल्याण की सुनिश्चिता के पथ में प्रस्तुत हो रही समस्त चुनौतियां मानुषिक विकार का प्रतिफल हैं। मानुषिक विकारों को समाप्त करना कठिन अवश्य है, असंभव कदापि नहीं है। इस संदर्भ में कतिपय वांछनीय समाधानों को अग्रवत प्रस्तुत किया जा सकता है –

- मानव अधिकारों के सम्मुख सर्वाधिक गंभीर चुनौती भ्रष्टाचार की है। 'राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के पास वह संरचना है, जिसके माध्यम से आयोग वैयक्तिक एवं संस्थानिक दोनों प्रकार के भ्रष्टाचार को निषिद्ध कर सकता है। ... राष्ट्रीय एवं राज्य मानव अधिकार आयोगों की स्थापना का महत्त्वपूर्ण लाभ यह हुआ है कि राष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था में लोकतांत्रिक उद्यम का वातावरण सशक्त हुआ है। ...तथा सामान्य जन का यह विश्वास भी दृढ़ हुआ है कि न्याय के लिए एक संस्थानिक संरचना उपलब्ध है। ....राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को भ्रष्टाचार के दुष्प्रभावों का सैद्धांतिक ही नहीं व्यवहारिक अध्ययन भी सुनिश्चित करना होगा। .... भ्रष्टाचार से लड़ने के लिए मानव अधिकार अधिनियम 1993 में किसी प्रकार के संशोधन की आवश्यकता नहीं है। अधिनियम की धारा 2 में मानव अधिकारों की जो परिभाषा दी गई है तथा धारा 12 में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के कर्तव्यों की जो व्याख्या की गई है, उसके आधार पर भ्रष्टाचार को मानव अधिकारों का उल्लंघन स्वीकारने में कोई कठिनाई नहीं है।'[16]
- मानव अधिकारों के संवर्द्धन के लिए द्वितीय महत्त्वपूर्ण उद्यम यह होना चाहिए जनगण को उनके मानव अधिकारों के प्रति जागरूक बनाया जाए। इसके लिए सर्वप्रथम शिक्षण एवं प्रशिक्षण सदृश्य समाधानों को अपनाया जाना चाहिए अर्थात पाठ्यक्रमों और शोधों में मानव अधिकारों और उससे सम्बंधित विषयों को समाहित एवं प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- शासकीय कर्मियों को समय–समय पर मानव अधिकारों के संरक्षण एवं संवद्ध र्न की सुनिश्चितता का प्रशिक्षण अनिवार्य किया जाना चाहिए। साथ–ही–साथ मानव अधिकारों के उल्लंघन न करने के प्रति भी उन्हें संवेदनशील बनाया जाना चाहिए।
- मानव अधिकारों के उल्लंघन को निषिद्ध करने में न्यायपालिका को कठोर निर्णय लेने में कदापि संकोच नहीं करना चाहिए। न्यायपालिका को समस्त आवश्यक संरचनात्मक सुविधाएं सुलभ होनी चाहिए।
- मानव अधिकारों और लोक कल्याण को संरक्षित एवं संवर्द्धित करने का बीड़ा वस्तुतः राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग एवं राज्य मानव अधिकार आयोगों को ही उठाना होगा। मानव अधिकार आयोगों को अपनी प्रतिष्ठा, सक्षमता और शक्ति को पहचानना होगा। न्यायपालिका के पश्चात कदाचित मानव अधिकार आयोग वह संस्था है, जिससे भारतीय जनगण को असीम अपेक्षाएं हैं। निस्सन्देह, इन अपेक्षाओं की पूर्ति की शक्ति मानव अधिकार आयोग के पास है। राष्ट्रीय और राज्य मानव अधिकार आयोग जिस क्षण से मानव अधिकारों के उल्लंघन के प्रति मनसा–वाचा–कर्मणा शत–प्रतिशत असहिष्णु हो जाएंगे, कदाचित कोई भी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और प्रशासनिक संस्था, समिति, संगठन व पदाधिकारी तथा व्यक्ति मानव अधिकारों के उल्लंघन का दुस्साहस नहीं करेगा। फलतः लोक कल्याण की अवधारणा का यथार्थतः फलीभूत होना अवश्यंभावी होगा।

mi lgkj

विश्लेषणोपरांत स्वीकारना उचित होगा कि मानव अधिकार और लोक कल्याण की प्रतिध्वनियां एक समान है। दोनों अवधारणायें परस्पर पर्यायवाची शब्द भी हैं तथा दोनों अवधारणाओं की सफलता अन्योन्याश्रित भी हैं अर्थात मानव अधिकार यदि संरक्षित हो रहे हैं, तो लोक कल्याण स्वयमेव फलीभूत होगा और यदि लोक कल्याण सिद्ध हो रहा है, तो मानव अधिकार स्वयमेव संवर्द्धित होगा। इस संरक्षण एवं संवर्द्धन के पथ में चुनौतियां निस्सन्देह हैं, किन्तु समाधान कदापि असंभव नहीं है। समाधान हेतु सर्वप्रथम संभावना के रूप में राष्ट्रीय और राज्य मानव अधिकार आयोगों को स्वीकारना बहुत स्वाभाविक है। तपश्चात न्यायपालिका को अपने रचनात्मक स्वरूप को और वृहत बनाना होगा। इन दोनों संस्थाओं मात्र के पास वह क्षमता है, जो लोक कल्याण की सुनिश्चित्ता को सशक्त कर सकता है और मानव अधिकारों को जनगण के लिए स्वाभाविक रूप से सुलभ बना सकता है। फलतः लोक कल्याण प्रत्येक संस्था व पद का सर्वोच्च प्राथमिक लक्ष्य अनिवार्यतः होगा एवं यथार्थतः जनगण को उपलब्ध होगा।

lUnHk& lwph

1. कन्सारा दीपा (2013), 'द प्रियम्बल', युनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग कं. नई दिल्ली, पृ. 165।
2. –वही–7, पृ. 172 ।
3. पायली एम.बी. (1996), 'भारतीय संविधान एक परिचय' विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि. नई दिल्ली, पृ. 71, 72 ।
4. 'इन्ट्रोडक्शन टू हयूमन राइट्स' (1.1), भारतीय मानव अधिकार संस्थान, मैदानगढ़ी मार्ग, नई दिल्ली।
5. ––वही––
6. ––वही––
7. विकीपीडिया, दिनांक 14.8.17 को अवलोकित।
8. ––वही––
9. ––वही––
10. ––वही––
11. ––वही––
12. ––वही––
13. गुप्ता राजकुमार (2013), 'इसेन्शियल्स ऑफ ह्यूमन राइटस्' युनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग कं. नई दिल्ली, पृ. 32, 33 ।

14. ——वही——
15. द हिन्दू 25.1.2008, नई दिल्ली।
16. द हिन्दू 30.5.2006, नई दिल्ली।

• • •

Hkkjrh; lfoèkku] ekuo vfèkdkj ,o ykd dY;k.k

dpu ekyk•

मानवाधिकार की विभिन्न समस्याएं नस्लीय भेदभाव, भाषाई अधिकार, धार्मिक अधिकार लिंग भेद, मृत्युदंड, पुलिस अत्याचार, मौलिक अधिकारों के उल्लंघन इत्यादि के कारण उत्पन्न हुई है। भारत में मानवाधिकारों के अंतर्गत मुख्य रूप से दलितों पर अत्याचार बंद करने, बड़ी परियोजनाओं के कारण लोगों के विस्थापन, से प्रभावित लोगों को मूलभूत सुविधा उपलब्ध कराने संबंधी कमी की समस्या, बच्चों के साथ अमानवीय बर्ताव, कन्याओं को वेश्यावृत्ति के लिए बाध्य करना, कई राज्यों में आतंकवादी गतिविधियों, जेल में बलात्कार तथा कलेश, बंधुआ मज़दूरी, अल्पसंख्यकों के प्रति किया जाने वाला अत्याचार धार्मिक असहिष्णुता के प्रश्न जुड़े हुए हैं। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आतंकवाद के रूप में किए गए अपराधों के पीछे जो भी दार्शनिक, राजनैतिक, नसलीय, जातीय, धार्मिक तथा अन्य उद्देश्य हों, वे किसी भी परिस्थिति एवं रूप में अनुचित हैं।

मानव होने के नाते मानवाधिकार लोगों को विरासत में मिले हैं, जिनसे उन्हें वंचित नहीं किया जा सकता है। मानव अधिकार को नैतिक एवं क़ानूनी अधिकार के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो मानवीय गरिमा को सुनिश्चित करता है। इसे क़ानून के माध्यम से स्थापित किया जाता है। इसके अंतर्गत नागरिक, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार भी आते हैं। मानवाधिकार, राज्य से विधिमान्य अपेक्षाएं हैं। ऐसा माना जाता है कि राज्य मानवाधिकार का निर्माता और संरक्षक है।

मानवाधिकार को अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार बिल के रूप में कोडीकृत तथा परिभाषित किया गया है। इसके साथ–साथ इसमें विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों एवं घोषणाओं का योगदान है। इसके विकास में वैधानिक प्रावधान, प्रशासनिक आदेश तथा स्थानीय स्तर पर न्यायिक घोषणाओं का योगदान है।

मानव–अधिकार की समस्या नस्लीय भेदभाव, भाषा के अधिकार, धार्मिक स्वतंत्रता, लैंगिक भेदभाव, मृत्युदंड, पुलिस नृशंसता, मौलिक अधिकार के उल्लंघन इत्यादि से जुड़ी हुई हैं। ये समस्याएं अब अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर नीति–निर्माताओं, शिक्षकों और छात्रों का ध्यान आकर्षित करने लगी हैं। मानव जीवन और सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन की प्रक्रिया से उत्पन्न समस्याओं पर वृहत् ध्यान दिया जाता है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत प्रत्येक नागरिक को अपनी मानवीय गरिमा से जीने का अधिकार है। कुछ न्यूनतम आवश्यकताएं हैं जो प्रत्येक मानव को गरिमापूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए अनिवार्य हैं। इसके अंतर्गत मज़दूरों (स्त्री एवं

• सामाजिक कार्यकर्ता एवं सचिव, एस.आर.एन.सी.टी., लखनऊ

पुरूष) के स्वास्थ्य एवं शक्ति तथा बच्चों का शोषण के विरुद्ध संरक्षण आते हैं। बच्चों को स्वास्थ्य रूप से विकसित होने का अवसर एवं सुविधा प्रदान करना, स्वतंत्रता एवं गरिमा का माहौल बनाए रखना, शिक्षा का अवसर प्रदान करना तथा मातृत्व सुविधा प्रदान करने के लिए न्यायपूर्ण एवं मानवोचित परिवेश बनाना चाहिए। अधिकांश लोग अपने मौलिक मानव–अधिकारों के प्रति सजग रहते हैं किन्तु अपने विरुद्ध किए जा रहे उत्पीड़न को चुपचाप सहते हैं।

मानवाधिकार के लिए उपयुक्त वातावरण पैदा करना, विकास का केंद्रीय एवं अपरिवर्तनीय लक्ष्य हो गया है। अपने नागरिकों के मानव अधिकारों के संरक्षण में विश्वास करने वाले किसी भी राष्ट्र के लिए विकास की रणनीति बनाते समय मानव, विशेषकर समाज के निर्धनतम वर्ग की गरिमा का विशेष ध्यान रखा जाता है। इससे लोगों में जीवन के प्रति उद्‌देश्य और आशा की किरणें जगमगाती रहती हैं।

यद्यपि मौलिक अधिकार का मुद्‌दा भारत के लिए नया नहीं है, मानव अधिकार की उचित मान्यता वैश्विक मानव अधिकार उद्‌घोषणा, 1948 में हस्ताक्षर करने के साथ मिली। सन् 1993 के सितम्बर, माह में मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम पारित किया गया। इसके पश्चात् अक्टूबर, 1993 में भारत सरकार ने मानवाधिकार आयोग की स्थापना की। इस परिप्रेक्ष्य में मानवाधिकार की अवधारणा को समझना महत्त्वपूर्ण है।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानव अधिकार आंदोलन को अंतर्राष्ट्रीय शांति के लिए एक अनिवार्य तत्व के रूप में प्रारम्भ किया। संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानव अधिकार चार्टर प्रकाशित किया। यह अपने सदस्य देशों से इस चार्टर के अनुपालन की अपेक्षा करता है। इसके द्वारा 10 दिसम्बर, 1948 को मानव अधिकार की अंतर्राष्ट्रीय घोषणा की गई, जिसमें मानव को कुछ मौलिक अधिकार समाहित हैं। ये निम्नलिखित है–

- वाक् स्वतंत्रता का अधिकार
- न्यायिक उपचार का अधिकार
- सरकार (किसी देश में) में भागीदारी का अधिकार
- काम का अधिकार
- स्तरीय जीवन जीने का अधिकार
- आराम एवं सुविधापूर्ण जीवन जीने का अधिकार
- शिक्षा का अधिकार
- समान काम के लिए समान वेतन का अधिकार
- सामाजिक सुरक्षा का अधिकार
- समाज की सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेने का अधिकार
- कला का आनंद लेने का अधिकार तथा वैज्ञानिक प्रगति में भाग एवं उससे लाभ लेने का अधिकार

- जीवन, सुरक्षा एवं स्वतंत्रता का अधिकार
- मानमानी ढंग से गिरफ़्तारी अथवा निर्वासन के विरुद्ध अधिकार
- निष्पक्ष एवं स्वतंत्र न्यायिक सुनवाई का अधिकार
- विचार, विवेक एवं धार्मिक स्वतंत्रता
- शांतिपूर्ण सभा—संगोष्ठी करने तथा संघ बनाने का अधिकार

इस घोषणा में प्रजातांत्रिक संविधानों में निहित नागरिक एवं राजनैतिक अधिकार ही नहीं अपितु कई आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों की भी चर्चा है।

संयुक्त राष्ट्र चार्टर तथा अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार घोषणा में ये सिद्धान्त और उद्देश्य निहित हैं। उनकी प्रासंगिकता और प्रभाव में कोई कमी नहीं आई है। जनसंपर्क बढ़ने से वैश्विक स्तर पर सामुदायिक उत्तरदायित्व की भावना में विकास हुआ है।

प्रत्येक नागरिक एवं प्रत्येक राष्ट्र के लिए अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार घोषणा सर्व स्वीकृत है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के मानव अधिकार घोषणा पर हस्ताक्षर करने वाले प्रत्येक देश का यह कर्तव्य है कि वे अपने यहां इन अधिकारों का संवर्द्धन तथा संरक्षण सुनिश्चित करें। उन्हें प्रत्येक नागरिक के लिए इन अधिकारों को प्रभावी बनाने तथा उनका निरीक्षण करने के लिए प्रेरित किया जाता है।

संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग ने सन् 1948 से 1954 के बीच मानवाधिकार संबंधी वैधानिक रूप से बाध्य दो मसौदा तैयार किया। आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अधिकारों से संबंधित अंतर्राष्ट्रीय मसौदा को जनवरी, 1976 में लागू किया गया। नागरिक एवं राजनैतिक अधिकार से संबंधित अंतर्राष्ट्रीय मसौदा को मार्च, 1976 में लागू किया गया। अंतर्राष्ट्रीय घोषणा के साथ—साथ इन प्रावधानों को मिलाकर अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार बिल बनाया गया है। इसके अंतर्गत नागरिक एवं राजनैतिक अधिकार परंपरागत अधिकार हैं तथा आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार आधुनिक अधिकार है।

नागरिक व राजनैतिक अधिकारों के अनुबंध के प्रावधानों के अनुसार इसके राज्य पक्षकारों ने 20 सितम्बर, 1976 को मानवाधिकार समिति की स्थापना की। महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव के समापन की समिति की स्थापना 1982 में महिलाओं के विरुद्ध सभी रूपों में भेदभाव के समापन सम्मेलन के कार्यान्वयन की देख—रेख के लिए हुई थी। बालकों के अधिकारों की रक्षा तथा बाल अधिकारों को प्रभावी बनाने के लिए बाल अधिकारों की समिति का गठन किया गया।

संयुक्त राष्ट्र संघ के मानवाधिकार आयुक्त की स्थापना महासभा ने 20 दिसम्बर, 1993 को की।

हाल में यह एक चर्चा का विषय बन गया है कि किस अधिकार को मानव अधिकार का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू माना जाएगा। कुछ लोगों का मानना है कि नागरिक एवं राजनैतिक अधिकार मानव अधिकार के महत्त्वपूर्ण पहलू है। जिसके तहत प्रेस, भाषण एवं सभा करने की स्वतंत्रता, मताधिकार का प्रयोग तथा सरकार बनाने का अधिकार और क़ानूनी प्रक्रिया तथा अन्य वैधानिक प्रावधानों के कारण सजगता हैं। इन्हें मानव अधिकार का परंपरागत पक्ष माना जाता है। इनका समावेश नागरिक एवं राजनैतिक अधिकार संबंधी अंतर्राष्ट्रीय मसौदा में किया गया। अन्य लोगों की मान्यता है कि मानव अधिकार के अंतर्गत स्तरीय जीवन–यापन के लिए पर्याप्त मूलभूत आवश्यकताओं की आपूर्ति, रोजग़ार, पोषण, आवास, स्वास्थ्य सेवा और शिक्षा हैं। ये समाज के गरीब वर्ग के लिए अनिवार्य हैं। ये अधिकार आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों से संबंधित अंतर्राष्ट्रीय मसौदा में सन्निहित हैं। इन्हें बाद में 'विकास के अधिकार की घोषणा' माना गया। इस चर्चा से एक महत्त्वपूर्ण बात उभर कर आई कि मूल घोषणा में व्याप्त सभी सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण हैं। दुर्भाग्यवश, मानव अधिकारों और विकास पर होने वाली सार्वजनिक चर्चाओं में इस बात पर ध्यान नहीं दिया जाता है कि इन दोनों में अन्योन्याश्रय संबंध है।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यह बात स्वीकार की गई है कि मानव अधिकार के बिना धारणीय विकास संभव नहीं है, किन्तु लोग यह मानने को तैयार नहीं है कि विकास के बिना मानव अधिकार में संवर्द्धन भी नहीं हो सकता है। इसके लिए विवेकसम्मत विधान और सशक्त समाज की आवश्यकता है। किन्तु ये अपने–आप में पूर्ण नहीं हैं। मानव अधिकार को अवधारणा एवं निर्माण की दृष्टि से सरकार द्वारा संगठित लोगों ने बनाया है। वे स्वतः नहीं मिलते। किसी सार्वजनिक सेवा का लाभ समाज के गरीब वर्गों को तभी मिलता है, जब सरकार उसे प्रदान करने में सक्षम होती है। ऐसा तभी होता है जब शासन भ्रष्टाचार मुक्त होता है। बाल श्रम को तभी समाप्त किया जा सकता है, जब समाज की आर्थिक परिस्थिति ऐसी हो, जिसमें बच्चे माता–पिता की आय पर आश्रित हों तथा सक्षम न्याय प्रणाली द्वारा क़ानूनी प्रावधानों का पालन होता। सन् 1993 में वियना में आयोजित मानव अधिकार सम्मेलन में प्रत्येक मानव अधिकार को समान महत्त्व दिया गया। सरकार को सभी नागरिकों को सभी प्रकार के मानव अधिकार सुनिश्चित करने के लिए प्रयास करना चाहिए।

कुछ लोग भारत में मानव अधिकार की शुरूआत ब्रितानी सरकार के विरुद्ध प्रारम्भ किया गया स्वतंत्रता आंदोलन के समय से मानते हैं, किन्तु यदि भारतीय इतिहास को गहराई से देखा जाय तो पता चलता है कि प्राचीन काल में मानव के मौलिक अधिकारों की रक्षा करने वाले कई उदाहरण भरे पड़े हैं।

सहनशीलता, उदारता और दया भारतीय परम्परा के अभिन्न अंग हैं। ऐसा सिर्फ़ भारत में होता आया है। अन्य देश इन गुणों को आचरण में ढालने में कामयाब नहीं

हो सके। प्राचीनकाल से ही भारत दूसरे के धर्मों एवं संस्कृतियों का स्वागत करता रहा है।

वैदिक काल से ही भारत में सहनशीलता और दूसरे के आस्था का सम्मान करते हुए मानव अधिकार संरक्षण की परंपरा रही है। तथापि संहिताबद्ध क़ानून तथा न्याय में मानव अधिकार को अनिवार्य बाध्यता के रूप में स्थान नहीं दिया गया था। य़द्यपि एक विकसित न्याय व्यवस्था का अस्तित्व था, किनतु कोई मानव अधिकार घोषणा पत्र नहीं था। हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म तथा अशोक के शिलालेखों पर उत्कीर्ण दार्शनिक, आध्यात्मिक और धार्मिक विचारों में मानव–अधिकारों के पुट व्याप्त थे। आधुनिक समय में मौलिक अधिकारों की मान्यता स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान दी गई। यह संघर्ष मूलरूप से नागरिक एवं मानव अधिकारों को कुचलने के विरुद्ध था। स्वराज (भारतीय शासन) आंदोलन लाखों भारतीय में आत्म–चेतना जगाने तथा उन्हें नैतिक एवं वैधानिक रूप से सजग बनाने का प्रयत्न था।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय संविधान में नागरिकों के अधिकार को सुनिश्चित करने के लिए ठोस प्रावधान बनाए गए तथा उन्हें न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व प्रदान किए गए।

मानव अधिकार की विभिन्न समस्याएं नस्लीय भेदभाव, भाषाई अधिकार, धार्मिक अधिकार, लिंग भेद, मृत्युदंड, पुलिस अत्याचार, मौलिक अधिकारों के उल्लंघन इत्यादि के कारण उत्पन्न हुई हैं। आज के युग में मानव अधिकार उल्लंघन की कई घटनाएं घटित हो रही हैं। भारत में मानव अधिकारों के अन्तर्गत मुख्य रूप से दलितों पर अत्याचार बंद करने, बड़ी परियोजनाओं के कारण लोगों के विस्थापन, प्राकृतिक आपदा (चक्रवात, सूखा इत्यादि) से प्रभावित लोगों को मूलभूत सुविधा उपलब्ध कराने संबंधी कमी की समस्या, बच्चों (कालीन और शीशा उ़द्योग मे काम करने वाले बच्चों) के साथ अमानवीय बर्ताव, बच्चों को वेश्यावृत्ति के लिए बाध्य करना (विशेषकर दिल्ली और कर्नाटक में), कई राज्यों में आतंकवादी गतिविधियों, जेल में बलात्कार तथा क्लेश, बंधुआ मज़दूरी, अल्पसंख्यकों के प्रति किया जाने वाला अत्याचार, धार्मिक सहिष्णुता के प्रश्न जुड़े हुए हैं।

आतंकवाद से जूझने के लिए नीति निर्माताओं, सुरक्षाबलों और मानव अधिकारवादियों को मिलकर काम करना चाहिए। इससे विचार और अभियान को बल मिलने के साथ–साथ प्रजातांत्रिक राजनीति को संबल प्रदान किया जाता है। आतंकवाद की चुनौतियों का सामना करने वाली नीतियों को नागरिकों का पूर्ण समर्थन मिलना चाहिए।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने सीमा सुरक्षा बल और सेना को मानवाधिकार हनन के प्रत्येक मामले को सूचित करने की हिदायत दे रखी है। मानवाधिकार, 1993 की धारा 19 में उल्लेख किया गया कि सेना के विरुद्ध की गई शिकायत का समाधान किस

प्रकार किया जाएगा। सन् 1996–97 में आयोग के सामने फर्जी मुठभेड़ का मामला दर्ज़ किया गया, जिसमें सुरक्षा बल के लोग संलग्न थे। इस शिकायत को गंभीरतापूर्वक लिया गया तथा उसका समाधान किया गया।

जब सुरक्षा बल को नागरिकों की रक्षा के लिए बुलाया जाता है उस समय हुई मृत्यु, बलात्कार अथवा अपमान की घटना के विरुद्ध शिकायत का किसी भी परिस्थिति में समर्थन नहीं किया जाता है। जब सुरक्षा बलों द्वारा किसी व्यक्ति को गिरफ़्तार किया जाता है तो नजदीक के पुलिस थाना को सौंप दिया जाता है तथा यह भी स्पष्ट किया जाता है कि उसे किस परिस्थिति में गिरफ़्तार किया गया। तत्पश्चात् 24 घंटे के अंदर उसे निकटवर्ती न्यायाधीश (दंडाधिकारी) के समक्ष उपस्थित किया जाता है।

ऐसा माना जाता है कि मानव अधिकारों के हनन की घटनाओं में कमी हो जाएगी, यदि नागरिक प्राधिकरणों के वैध उत्तरदायित्वों का पूर्ण सम्मान किया जाए। सर्वोच्च न्यायालय का आदेश है कि सुरक्षा बल के अधिकारी शस्त्र सेना अधिनियम की धारा (4) का अनुपालन करते समय निषेधाज्ञा का उल्लंघन करने वालां के प्रति न्यूनतम बल का उपयोग करें जिससे उन्हें नियंत्रित रखा जा सके। अधिकारियों को सेना के अनुदेशों का कड़ाई से पालन करना चाहिए। ऐसा करने के लिए वह बाध्य है। ऐसा न करने पर उनके विरुद्ध सेना अधिनियम के तहत अनुशासनात्मक कार्रवाई की जाएगी।

पुलिस द्वारा कारागार में मौत/अपमान की घटनाएं मानव अधिकार हनन की दृष्टि से चिन्ता का विषय है। मौत, बलात्कार और अपमान की ऐसी घटनाओं की शिकायत बढ़ती ही जा रही है। सन् 1993 में मानवाधिकार आयोग ने पत्र लिखकर सभी राज्यों को सूचित किया कि वे अपने सभी जिलाधीश और पुलिस अधीक्षक को हिदायत दें, जिससे वे पुलिस हिरासत में हुई मौत अथवा बलात्कार की घटना की सूचना, आयोग को 24 घंटे के अंदर दें। ऐसा न करने पर यह माना जाएगा कि तथ्य को छुपाने का प्रयास किया जा रहा है।

तथापि पुलिस हिरासत में होने वाली मौत की घटनाओं में वृद्धि हुई है। ऐसा आयोग द्वारा राज्यों को लगातार सूचना भेजने के कारण समझ में आ रहा है। आयोग राज्यों से अति तत्काल सूचना भेजने के लिए इसलिए कहता है कि शीघ्र मामले की जांच की जा सके। आयोग के लगातार अनुदेश के कारण प्राधिकारी कठोर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। पुलिस हिरासत में मौत की सर्वाधिक घटनाएं उत्तर प्रदेश में घटित हो रही हैं। उसके पश्चात् बिहार, महाराष्ट्र और आन्ध्र–प्रदेश में भी ऐसी घटनाएं हो रही हैं।

बाल विवाह प्रतिरोध अधिनियम 1929 के बावजूद विशेष रूप से राजस्थान सहित देश के विभिन्न भागों में बाल विवाह की घटनाएं व्यापक रूप से घटित हो रही हैं। इसे संगीन और गैर जमानती अपराध घोषित करने की आवश्यकता है। बाल–विवाह की सूचना तुरंत प्राप्त करने तथा इसे रोकने के लिए कार्यपालिका का विकेन्द्रीकरण

आवश्यक है। इस संदर्भ में गैर–सरकारी संगठनों को सशक्त बनाने तथा पंचायत स्तर पर प्रभावशाली व्यक्तियों के सहयोग लेने की आवश्यकता है। बाल विवाह को निरस्त करने के स्थान पर इसे रोकने का प्रयास करना चाहिए। विवाह के अनिवार्य पंजीकरण से बाल–विवाह को रोका जा सकता है।

बाल–श्रम एक सामाजिक–आर्थिक मुद्दा है। बाल श्रम को रोकने के लिए संवैधानिक प्रावधान हैं। राष्ट्रीय बाल श्रम नीति की घोषणा 1987 में की गई। किन्तु समस्या अभी भी विद्यमान है जिससे काफ़ी संख्या में बाल श्रमिक प्रभावित हैं। यह अनुमान है कि 20 लाख बच्चे जोख़िम भरे उद्योगों में कार्यरत हैं किन्तु इस चुनौती का सामना करने के लिए उपाय अभी भी सीमित हैं और ये समस्याएं सामाजिक–आर्थिक समस्याओं से गहराई से जुड़ी है।

बाल श्रम के विस्तार को रोकने के लिए राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने बाल–श्रम मामले पर राष्ट्रव्यापी सर्वेक्षण कराया है। इसने इस बुराई को रोकने के लिए 14 वर्ष की आयु तक बच्चों को निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने, जोखिमपूर्ण उद्योग से हटाए गए बच्चों के परिवार के कम से कम एक सदस्य को रोजग़ार उपलब्ध करवाने तथा बच्चों से काम लेने वाले नियोक्ताओं को बाल–श्रम अधिनियम के तहत दंडित करने का प्रावधान है।

बाल वेश्यावृत्ति काफ़ी समय से प्रचलन में है। इसका संबंध संगठित अपराध से जोड़कर देखा जाता है। ऐसा पाया गया है कि कुछ खास जगह हैं जहां से बच्चे लाकर उन्हें इस अपराध में धकेला जाता है। ऐसे मार्ग हैं जिनसे होकर बच्चों को दक्षिण एशिया के सीमा तक ले जाया जाता है, जहां उन्हें इस अपराध में धकेला जाता है। यह पूरा धंधा विदेशी ताकत द्वारा नियंत्रित है। एड्स के कारण लोग अब बच्चों को ही यौनाचार के लिए प्राथमिकता देते हैं। इससे समस्या और भी जटिल हो गई है।

उच्चतम न्यायालय द्वारा कामकाजी महिलाओं के साथ यौन उत्पीड़न की घटनाओं की रोकथाम के लिए निम्नलिखित दिशा–निर्देश जारी किए–

1. जहाँ कामकाजी महिलाएं है, वहां के नियोक्ताओं एवं अन्य जिम्मेदार अधिकारियों का यह कर्तव्य होगा कि वे कामकाजी महिलाओं के यौन शोषण का निवारण कर, उन्हें रोकने के उपाय करें तथा दोषी व्यक्तियों के विरुद्ध अभियोजन चलाने की कार्यवाही करें।
2. कामाजी महिलाओं के यौन उत्पीड़न के निवारण हेतु ततसंबंधित निर्देश सूचना पट्टों पर प्रदर्शित किए जाएं तथा यौन उत्पीड़न के दुष्परिणामों से जनसाधारण को अवगत कराया जाए।

3. यदि कोई व्यक्ति यौन उत्पीड़न के लिए अभियोजित किया जाता है तो यह सुनिश्चित किया जाय कि पीड़ित महिला एवं मामले में साक्ष्य देने वाले व्यक्तियों को तंग एवं परेशान न किया जाए।

4. यदि किसी कार्यस्थल पर कार्यरत व्यक्ति द्वारा कामकाजी महिला का यौन उत्पीड़न किया जाता है तो ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाए।

5. कामकाजी महिलाओं के यौन उत्पीड़न सम्बन्धी परिवादों की सुनवाई के लिए शिकायत समितियों का गठन किया जाए।

6. ऐसी समितियों का अध्यक्ष महिलाओं को बनाया जाए तथा समिति के न्यूनतम आधे पदों पर महिलाओं को नियुक्त किया जाए।

7. यौन उत्पीड़न निवारण विषयक साहित्य तैयार किया जाए तथा इसका अधिक से अधिक प्रचार–प्रसार किया जाए।

8. किसी कामकाजी महिला के साथ बाहरी व्यक्तियों द्वारा यौन उत्पीड़न किए जाने पर ऐसी महिला को पर्याप्त संरक्षण प्रदान किया जाए।

मानव अधिकार का संबंध व्यक्ति की गरिमा एवं आत्म सम्मान से है जो मानव की पहचान तथा मानव समाज के संवर्द्धन के लिए आवश्यक है।

सर्वप्रथम यह मानना आवश्यक है कि वृहत्तर मानव समुदाय के अंग होने के नाते सभी को मानव अधिकार मिलना चाहिए, चाहे वे इस तथ्य से अवगत हों अथवा नहीं। मानव अधिकार नैतिक अधिकार की तरह हैं जिनके तत्व मानव चेतना में समाहित हों। इसके अंतर्गत राज्य द्वारा संरक्षित वैधानिक प्रावधान हैं। इसमें मौलिक अधिकार भी समाहित हैं। संशोधन एवं न्यायिक उपचार का इसमें प्रावधान है।

मानव अधिकार उल्लंघन के मामलों का अंतर्राष्ट्रीय आयाम है। जिस देश में मानव अधिकारों का हनन होता है वहां ऐसे मामलों में अंतर्राष्ट्रीय समुदाय हस्तक्षेप कर सकता है।

इसका अर्थ यह नहीं कि मानव अधिकार के एकांगी लक्षण हैं। अन्य अधिकारों की भांति इस अधिकार की भी जनता की शांति, सामाजिक शालीनता, राजनैतिक सुरक्षा इत्यादि की दृष्टि से सीमा है। प्रत्येक देश में विवेकपूर्ण कारणो से इन अधिकारों को सीमित किया जा सकता है। इस तर्क से मानव अधिकारों को वैश्वीकरण में बाधा पहुंचती है।

इस संदर्भ में सबसे बड़ी बाधा यह है कि मानव अधिकार की कोई सर्वमान्य अवधारणा नहीं है। वस्तुतः समय, स्थान और पात्र के अनुरूप यह परिवर्तनीय है। समाज के अंदर भी अवधारणा में फर्क है और यह समय के साथ बदलते रहता है। इन सबके बावजूद

मानव अधिकार से तात्पर्य यह है कि मानव व्यक्तित्व का सम्मान करना चाहिए चाहे उसका रंग, वर्ण, लिंग अथवा धर्म कुछ भी हो। परिभाषागत विवादों में उलझे बिना यह तो सर्वमान्य है कि ये अधिकार मानव विकास के लिए अनिवार्य हैं। अतएव मानव होने के नाते विश्व के प्रत्येक भाग में निवास कर रहे नर–नारियों को ये अधिकार प्राप्त करने का हक़ है।

• • •

vki ekuork e fo'okl er [kkb,- ekuork lkxj dh rjg g(vxj lkxj dh dN cn xUnh g] rk lkxj xUnk ugh gk tkrk

– महात्मा गाँधी

ukxj lekt dh ldYiuk rFkk dk;l {k=

fMEiy dqekjh•

हमारे समाज, प्रदेश या राष्ट्र के आधारभूत विकास को नवीन उच्च स्तर पर ले जाने के लिए पारदर्शी, सरल और सुलभ प्रशासन की आवश्यकता होती है। भारत जैसे विशाल लोकतंत्र में यदि प्रशासन की पहुंच हर नागरिक तक समान रूप से हो जाए और अंतिम छोर पर मौजूद व्यक्ति भी सामाजिक सुविधाओं का लाभ सुगमता के साथ उठा सके, तो सामाजिक बदलाव की एक सकारात्मक तस्वीर सामने आ सकती है। तब यह दावा किया जा सकता है कि प्रत्येक व्यक्ति को उसके समस्त अधिकार सहज सुलभ हो रहे हैं। आज के नवउदारवाद के दौर में राज्य पश्चगमन की प्रक्रिया के तहत सरकार द्वारा अपने परंपरागत दायित्वों को बाज़ार व नागरिक समाज को सौंप दिया गया है। नव उदारवाद का यह दर्शन "न्यूनतम शासन एवं अधिकतम अभिशासन" पर बल देता है तथा सरकारों को सेवा प्रदान करने के स्थान पर सुविधा प्रदायक एवं सक्षम बनाने वाली भूमिका अपनाने पर बल देता है। इसी का एक आयाम नागरिक समाज की बढ़ती सक्रियता है। वर्तमान सरकारें विश्वभर में सामाजिक विकास के क्षेत्र में नागरिक समाज को अधिक से अधिक भूमिका प्रदान कर रही हैं ताकि विकास प्रक्रिया में व्यापक जन सहभागिता जुटाई जा सके और विकास के लक्ष्य प्राप्त किए जा सकें। समर्थ नागरिक समाज नागरिकों को घर बैठे ही तमाम सूचनाएं और उनके अधिकार दिलवा सकता है। प्रस्तुत आलेख में सिविल सोसाइटी की संकल्पना, वर्तमान स्थिति, भूमिका, सीमाएं और मानवाधिकार संरक्षण एवं संवर्द्धन में उसके योगदान का वर्णन व विश्लेषण किया गया है।

flfoy lkslkbVh dh ldYiuk

सिविल सोसाइटी की धारणा वस्तुतः काफ़ी पुरानी है, लेकिन पिछले दशक में विश्व स्तर पर हो रहे राजनीतिक घटनाक्रम इसके पुनः लोकप्रिय होने के कारण बने हैं। इसका एक अन्य कारक भी बहुत महत्त्वपूर्ण है— हाल के वर्षों में राज्येतर तत्त्व, खासकर स्वैच्छिक संगठन और आन्दोलन, सार्वजनिक नीतियों के निर्माण और कार्यान्वयन में प्रभावशाली भूमिका निभाने लगे हैं। यथार्थ में, आमतौर पर सिविल सोसाइटी यानि नागरिक समाज से अनेक ऐसी सामाजिक और राजनीतिक शक्तियों का बोध होता है जो राज्य के सीधे नियंत्रण से बाहर हैं। ऐसी शक्तियां आर्थिक, सांस्कृतिक, पर्यावरणीय तथा ऐसे ही अन्य क्षेत्रों से संबद्ध होती हैं। हमारे यहाँ नागरिक समाज के तीन प्रमुख स्रोत हैं— अर्थव्यवस्था, समाज और संस्कृति। वस्तुतः नागरिक व सभ्य समाज की अवधारणा उत्तर आधुनिक युग की लोकप्रिय अवधारणा बन गई है। सर्वप्रथम राजनीतिक दार्शनिक डीएफ हैगल ने नागरिक समाज को राज्य से भिन्न

• सामाजिक विज्ञान विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

अवधारणा माना था, बाद में कार्ल मार्क्स फ्रेड्रिक एंजेल्स जैसे साम्यवादी विचारकों ने नागरिक समाज की अवधारणा को आगे बढ़ाया। बीसवीं सदी में एंटोनियो प्रांशौ ने इस अवधारणा का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया। आज के आधुनिक समाज के तीन मुख्य क्षेत्र माने गए हैं– सरकार, बाज़ार और नागरिक समाज। इनमें से तृतीय क्षेत्र सिविल सोसाइटी अर्थात नागरिक या सभ्य समाज पहले के दो क्षेत्रों पर अपनी लोकतांत्रिक जागरूकता से नियंत्रण रखता है।

शाब्दिक दृष्टि से देखा जाए तो नागरिक समाज के लिए अंग्रेज़ी में प्रयुक्त शब्द है "सिविल सोसायटी"। सिविल का अर्थ है, नागरिक अर्थात् असैनिक। इसके अन्य अर्थ हैं– नागरिकों से संबंधित, दीवानी मामले, सहयोग करने वाले व्यक्ति, उत्तरदायी और सुसंस्कृत व्यक्ति आदि। सोसाइटी का अर्थ है, समाज या समिति। वस्तुतः नागरिक समाज सभ्य, जागरुक और उत्तरदायी व्यक्तियों का समूह है। इस अर्थ में यह राज्य से भिन्न हो जाता है क्योंकि राज्य के अंतर्गत समस्त संगठित और असंगठित क्षेत्र आता है जबकि सभ्य समाज के अंतर्गत मात्र संगठित। नागरिक समाज में मात्र उत्तरदायी और उचित विधि काम करने वाले व्यक्ति ही शामिल होते हैं। राज्य के पीछे मुख्य भूमिका नागरिक समाज की ही होती है। एमके दास के अनुसार, नागरिक समाज वह संगठित समाज है जिस पर राज्य शासन करता है। जेफ्री एलेग्जेंडर के अनुसार, नागरिक सामाजिक समावेश छाते जैसी अवधारणा है जो राज्य के बाहर स्थित असंख्य संस्थाओं को अपनी छाया में रखती है। सरल शब्दों में नागरिक समाज का अर्थ है राज्य संस्थाओं का एक ऐसा समूह है जो सरकार व समाज के बीच मध्यस्थता करता है प्रधान नागरिकों की वहां सहायता करता है जहां सरकार नहीं कर पाती है। समकालीन समय में नागरिक समाज कई क्षेत्रों में कार्य कर रहा है तथा सरकार के दायित्वों को पूर्ण करने में पूर्ण भूमिका निभा रहा है। नागरिक समाज में सामान्यतया कुटुंब, जातीय समूह, दबाव समूह तथा गैर सरकारी संगठन शामिल होते हैं। पाश्चात्य जगत में जान लाक, स्काटलैंड के सिद्धान्तकारों व हीगेल के मत नागरिक समाज पर काफ़ी प्रभावषाली रहे हैं। किन्तु कार्ल मार्क्स की नागरिक समाज की समीक्षा और मार्क्सवादी विचारक ग्रास्की द्वारा उसके परिष्कार भी उल्लेखनीय हैं। इन सबका संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया गया है।

flfoy lkslkbVh ij t,u y,d dk er&

अपने सामाजिक संविदा के सिद्धान्त को मानते हुए जॉन लॉक ने, व्यवसिथत राजनीतिक समाज को नागरिक समाज माना। उसके अनुसार, व्यक्तियों के पास प्राकृतिक अधिकारों के होने की स्थिति में क़ानून बनाने वाला, उन्हें लागू करने वाला और अपराधियों को दंड देने वाला कोई प्राधिकारी नहीं होता। लेकिन, जब व्यक्ति सामूहिक तौर पर अपने प्राकृतिक अधिकारों को राज्य अथवा समुदाय को समर्पित कर देतें हैं ताकि उसके द्वारा उनके जीवन, स्वतंत्रता और संपत्ति के बुनियादी अधिकार संरक्षित रह सकें, तो कहा जा सकता है कि उन्होंने एक नागरिक समाज का निर्माण

कर लिया है। इस नागरिक समाज के कार्य हैं– क़ानून बनाना, उन्हें लागू करना और उनका उल्लंघन करने वालों को दंडित करना। इस प्रकार, लॉक के अनुसार, नागरिक समाज प्राकृतिक अवस्था के विरुद्ध होता है, क्योंकि यह स्थायी क़ानूनों, न्यायाधीशों और प्रभावी बाध्यकारी सत्ता वाला व्यवसिथत समुदाय होता है। मानव प्राणी सभ्य, शिष्ट और अनुशासित रहें, इसके लिए नागरिक समाज का होना आवश्यक है। लॉक की स्पष्ट मान्यता है कि नागरिक समाज और राज्य एक दूसरे से भिन्न हैं। उसके अनुसार, राज्य एक न्यासी सत्ता है जो नागरिक समाज के न्यास पर निर्भर करता है। यदि राज्य निरंकुश अथवा गैरजवाबदेह ढ़ंग से काम करने लगे और व्यक्तियों के अधिकार में कटौती करने लगे तो नागरिक समाज को चाहिए कि उस पर रोक लगाए। इस प्रकार, लाक दो प्रकार के अनुबंधों का उल्लेख करता हैः एक, नागरिक समाज के सदस्यों के बीच तथा दूसरा, सरकार के निर्माण के लिए। लॉक ने राज्य की सत्ता को सीमित रखने के दो उपाय सुझाएः (1) भौतिक संसाधन और (2) संवैधानिक आधार पर नैतिक नियम, जो राज्य और अन्य नागरिक निकायों के कृत्य का निर्धारण करते हैं। अन्य सामाजिक निकाय इसलिए आवश्यक है, क्योंकि सामाजिक जीवन के लिए अनेक प्रकार के क्रिया कलाप अपेक्षित हैं और राज्य मानव प्राणी के सारे लक्ष्यों की पूर्ति का उपयुक्त संगठन नहीं है। इस तरह, राज्य के साथ–साथ अन्य सामाजिक निकायों और संघों का होना आवश्यक है और ये अन्य समूह ही नागरिक समाज के घटक हैं। नागरिक समाज के ये समूह राज्य पर नियंत्रण रखते हैं।

LdkVyM d fl)kUrdkjk d er&

स्कॉटिश सिद्धान्तकारों के रूप में जाने गए– हचिसन, एडम फर्ग्यूसन, एडम स्मिथ जैसे विचारकों ने अठारहवीं सदी में यूरोप और इंग्लैण्ड में विकसित होते नव पूंजीवाद की व्याख्या करने और उसे उचित ठहराने के लिए सिविल सोसाइटी के संबंध में अपने विचार व्यक्त किए। उनका कहना था कि मुनाफ़ा, धन और द्रव्य कमाने का लक्ष्य इतना तर्कसंगत और विवेकपूर्ण है कि उस पर राज्य द्वारा वैधिक न्याय व्यवस्था के तहत किसी प्रकार का हस्तक्षेप अथवा रोक अनुचित है। उनकी दृष्टि में ऐसा नागरिक समाज जो वाणिज्यिक गतिविधियों पर ध्यान केंद्रित करता है, एक उच्चतर समाज है और सभ्यता का उच्चतर स्वरूप है। यह सैनिक विजय को अपना लक्ष्य नहीं बनाता, बल्कि समाज कला और विज्ञान को भी प्रोत्साहित करता है। इसके अतिरिक्त, इसने भौतिक सुख–सुविधा के सामानों के उत्पादन की वृद्धि में सहायता की और आत्म नियंत्रण एवं शिष्ट आचरण पर आधारित व्यवस्थित एक समाज का निर्माण आसान हो गया। स्कॉटिश सिद्धान्तकारों ने वाणिज्यिक ढांचे को नागरिकों के अधिकतम हित–साधन के रूप में देखा। बाज़ार प्रणाली ने सिर्फ़ पारस्परिक हित के लिए निजी सामाजिक संबंधों को अधिक परिपक्व आधार प्रदान किया है। इस तरह नागरिक समाज ऐसी राज्य प्रणाली का सहगामी है जो विधि के नियम, सीमित सरकार, अहस्तक्षेप की नीति, वाणिज्यिक क्रियाकलाप, बाज़ार और वाणिज्यिक अनुबंधों एवं स्वतंत्रता का समर्थक

है। उन्होनें नागरिक समाज को राज्य का सहगामी ही नहीं एक सभ्य समाज के रूप में भी देखा।

flfoy lkslkbVh dk ghxsy er

जर्मन विचारक हीगेल ने समाज के तीन पहलुओं– परिवार, नागरिक समाज और राज्य में विभेद किया। उसने परिवार को निजी और नागरिक समाज तथा राज्य को सार्वजनिक क्षेत्र में रखा। उसने नागरिक समाज को प्रतिवाद और राज्य को संवाद की संज्ञा दी और नागरिक समाज को मनुष्य और समाज के सर्वोच्च नैतिक उत्थान की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम माना और इसे राज्य के माध्यम से ही संभव बताया। हीगेल के अनुसार, अपने छोटे आकार और दायरे के कारण परिवार व्यक्ति की सारी आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकता। यह आधुनिक राज्य द्वारा बड़े पैमाने पर अपेक्षित अवैयक्तिक कृत्यों और आर्थिक एवं सामाजिक जीवन की गतिविधियों के लिए सर्वथा अपर्याप्त है। इसीलिए हीगेल नागरिक समाज को, जो आधुनिक औद्योगिक पूंजीवादी समाज की सामाजिक, आर्थिक और नैतिक व्यवस्थाओं के लिए आवश्यक है, 'प्रतिवाद' कहता है। नागरिक समाज आधुनिक पूंजीवाद की भौतिकवादी सभ्यता के लिए विशिष्टीकरण और परिष्करण का मार्ग प्रशस्त करता है। समुदाय का सामाजिक जीवन मुक्त बाज़ार वाली प्रतियोगी अर्थव्यवस्था से बाधित होता है। आधुनिक पूंजीवादी प्रणाली में नागरिक प्रणाली में नागरिक समाज स्वार्थ–परायण, घोर प्रतियोगी और धनलोलुप हो जाता है। ऐसे हालात में सारे संघर्षों और विभाजनों से ऊपर उठकर संपूर्ण समुदाय के श्रेष्ठ हितों को साधने के लिए राज्य की आवश्यकता होती है। हीगेल की दृष्टि में नागरिक समाज उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए भौतिक उत्पादकता के निर्माण और संचालन के लिए आर्थिक प्रेरणा तो प्रदान करता है, किन्तु, इसके फलस्वरूप एक छोटे–से समुदाय का भातृत्व और सामाजिक सौहार्द नष्ट हो जाता हैं इसी स्थिति में वाद (परिवार) और प्रतिवाद (नागरिक समाज) का मिलन होता है और उसकी परिणति संवाद (राज्य) में होती है। परिवार और नागरिक जीवन में जो कुछ सर्वोत्तम है उसे राज्य कायम रखता है और एकता तथा सामंजस्य की स्थापना करता है।

flfoy lkslkbVh dk ekDlloknh er

हीगेल की राज्य संबंधी अवधारणा के विपरीत मार्क्स मानता था कि राज्य संवाद के परिणामस्वरूप निर्मित सर्व–समावेशी राजनीतिक समुदाय न होकर नागरिक समाज की परस्पर संघर्षरत शक्तियों का कृत्य है और उनके अधीन ही कार्य करता है। उसके अनुसार, नागरिक समाज पूंजीवादी प्रणाली की बाज़ार–आधारित प्रणाली में उत्पादन और विनिमय की आर्थिक व्यवस्था, जो श्रम–विभाजन और वर्गों में विभाजित समाज पर टिकी होती है, के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मनुष्य का इतिहास सिर्फ़ नागरिक समाज का इतिहास भर है और नागरिक समाज आर्थिक संबंधों का ढांचा मात्र है

जिसमें राज्य की स्थिति अपेक्षाकृत महत्त्वहीन रहती है। मार्क्स ने इस विचार से अवश्य सहमति जताई कि नागरिक समाज का उदभव पश्च–सामंती काल में निजी आर्थिक उत्पादन से राज्य के अलगाव से हुआ है। उसकी दृष्टि में मुक्त बाज़ारवादी पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में नागरिक समाज बुनियादी तौर पर एक गैर–सामाजिक निष्ठुर व्यवस्था है क्योंकि इसमें आर्थिक वर्गों के बीच तीव्र प्रतियोगिता और संघर्ष की स्थिति बनी रहती है। इस प्रकार, पूंजीवादी व्यवस्था में नागरिक समाज मनुष्य द्वारा मनुष्य का धनी व्यापारी वर्ग या बुर्जुआ द्वारा निर्धन श्रमिक वर्ग का शोषण मात्र है। इस शोषण का अंत तभी होता है जब वर्ग–संघर्ष शुरू होता है और सर्वहारा वर्ग क्रांति द्वारा वर्गविहीन और राज्यविहीन स्वतंत्र सहकारी उत्पादकों के समुदाय की स्थापना के लिए राज्य को ख़त्म कर देता है। इस प्रकार मार्क्स की दृष्टि में पूंजीवादी समाज में नागरिक समाज एक ऐसी वाणिज्यिक और औद्योगिक जीवन पद्धति का अंग होता है जो मानवप्राणी को अर्जनशील तथा स्वार्थी बनाता है और उनके बीच सिर्फ़ आर्थिक संबंध बनाने की प्रवृत्ति पैदा करता है।

flfoy lklkbVh dk lcèk e xkElh dk er

ग्राम्सी ने हीगेल और मार्क्स के विश्लेषणों को संयुक्त कर मार्क्स के मत को किंचित रूपांतरित कर दिया। उसके अनुसार, नागरिक समाज न तो प्राकृतिक स्थिति और न औद्योगिक समाज का परिणाम है। यह एक ऐसे 'आधिपत्य' का कार्य है जो राजनीतिक और सांस्कृतिक दोनों हो सकता है। उसने समाज की अधिरचना को दो भागों में बांटा है– नागरिक समाज और राजनीतिक समाज। समाज के प्रभावशाली वर्ग इसी अधिरचना के दोनों अवयवों के माध्यम से दमनकारी और विचारधारात्मक दोनों तरीकों से अपने आधिपत्य का इस्तेमाल करते हैं। ग्राम्सी के अनुसार नागरिक समाज में भौतिक के साथ–साथ विचारधारात्मक और सांस्कृतिक संबंध भी बनते हैं, अर्थात इसमें जीवन के वाणिज्यिक और औद्योगिक संबंधों के साथ–साथ आध्यातिमक और बौद्धिक पहलू भी शामिल होते हैं। इसमें चर्च, राजनीतिक दल, श्रमिक संगठन, और यहां तक कि स्वैच्छिक और गैर–सरकारी संगठन भी शामिल हैं। ये सभी प्रभावशाली वर्ग की विचारधारा को समर्थन एवं प्रोत्साहन देते रहते हैं। ये प्रभावशाली वर्ग हमेशा अपनी सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक सर्वोच्चता को सुनिश्चित करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं और उनके अधीनस्थ वर्ग भी उन्हे अपनी स्वीकृति प्रदान कर देते हैं। ग्राम्सी का विश्वास था कि राज्य को अपनी दमनकारी शक्ति का उपयोग करने की आवश्यकता तभी पड़ती है, जब विचारधारा की चतुर योजना काम नहीं करती। पूंजीवादी प्रणाली में नागरिक समाज की सूक्ष्म किंतु प्रभावशाली कार्यशैली का इस्तेमाल शोषित श्रमिक वर्ग की क्रांति या विद्रोह के विरुद्ध सुरक्षा की दूसरी पंक्ति के रूप में किया जाता है। लेकिन उसने यह भी स्वीकार किया कि नागरिक समाज श्रमिक वर्ग को आधिपत्य कायम करने के अवसर प्रदान करता है और अंतिम क्रांतिकारी संघर्ष की पृष्ठभूमि तैयार करता है।

flfoy lkslkbVh dk mnkjoknh 0;fäijd er

पाश्चात्य चिंतन की उदारवादी परंपरा के अनुसार, नागरिक संघों, समतामूलक संस्थाओं और राजनीतिक संगठनों में लोगों की सहभागिता के बग़ैर सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओं के लोकतांत्रिक स्वरूप को अक्षुण्ण नहीं रखा जा सकता, क्योंकि एक बहुलवादी और स्वशासी नागरिक समाज, जो राज्य से स्वतंत्र हो, लोकतंत्र की बुनियादी शर्त है। उदारवादी योजना में नागरिक समाज के संघों के अंतर्गत पड़ोसी के कल्याण संघ से लेकर सांस्कृतिक संघ और श्रमिक संगठन तक कुछ भी हो सकते हैं, और लोग उनमें स्वेच्छा एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता के साथ उत्तदायित्व–भावना से भाग ले सकते हैं। राज्य अपनी भूमिका में दमनात्मक सत्ता का उपयोग करता है, जबकि नागरिक समाज व्यक्ति को अपनी नियति संवारने की स्वतंत्रता प्रदान करता है। अधिकतम स्वतंत्रता की प्रतिबद्धता के कारण उदारवादी विचारकों ने राज्य पर नागरिक समाज को तरजीह दी और सार्वजनिक प्राधिकार की सत्ता को न्यूनतम करने का प्रयास किया। उदारवादी चिंतक हेना आरेंत के अनुसार, स्वतंत्र रूप से निर्मित और संचालित नागरिक समाज वाले संघ सर्वसत्तावाद की संभावनाओं के प्रतिभार के रूप में कार्य करते हैं, क्योंकि वे राज्य और व्यक्ति के बीच का स्थान लेते हैं। एक अन्य प्रमुख विचारक हैबर मास का कहना है कि नागरिक समाज लोकनीति के सफल कार्यान्वयन के लिए अत्यंत आवश्यक है। सहभागिता की बदौलत लोकनीति के निर्धारण और सफल क्रियान्वयन के लिए राज्य और नागरिक समाज की साझेदारी बहुत जरूरी है। नैंसी रोजेनब्लम ने कहा है कि उदारवाद विरोधी भावनाओं को विस्फोटक बनने से रोककर उनसे शांति से निपटने के लिए, लोकतांत्रिक उदारवाद के मूल्यों के समर्थक नागरिक समाज संगठन को भी प्रोत्साहित करने और सहभागी बनाने का अवसर दिया जाना चाहिए।

flfoy lkslkbVh dh Hkfedk

सिविल सोसाइटी का कार्यक्षेत्र व्यक्तिगत मानवाधिकारों की रक्षा से लेकर राष्ट्र–राज्य के सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, राजनीतिक और प्रशासनिक क्षेत्र तक विस्तृत है। इसके व्यावहारिक पक्षों का मानव के तमाम क्रियाकलापों से सीधा संबंध रहा है। सिविल सोसाइटी की शक्ति का खुलासा पिछले दशकों में मुख्य रूप से कोलकोवास्की, वाकलाव हैवेल, वाज्दा और अन्य नागरिक समाज के नेताओं और बुद्धि जीवियों के कारण ही हुआ है। प्रच्छन्न नागरिक समाज के समूहों ने रूस में ग्लासनास्त (पारदर्शिता) और पेरेस्त्रोइका के काल में शुरू हुए परिवर्तनों की प्रक्रिया में अग्रगामी राजनीतिक संगठनों और आंदोलनों की भूमिका निर्भाई। इस ऐतिहासिक परिवर्तन के पश्चात नागरिक समाज के संगठन स्वतंत्रता, बहुलवाद और सहभागिता की दशाओं से जुड़े रहे हैं। नागरिक समाज के आन्दोलन ने प्रसुप्त राष्ट्रीय, संजातीय और धार्मिक असीमताओं को पुनर्जीवित करने के लिए राजनीतिक दलों, संगठनों, सूचना–तंत्र के

सदनों, प्रकाशन संस्थानों और व्यापारी संघों जैसे अनेक संघों का पुनर्निर्माण किया है। सिविल सोसाइटी एक सामाजिक संगठन का डोमेन है जिसमें स्वैच्छिक साहचर्य संबंध प्रमुख हैं। क्रियात्मक समाज को आधार देने वाले स्वैच्छिक नागरिक और सामाजिक संगठनों और संस्थाओं की समग्रता से बने नागरिक समाज की भूमिका वर्तमान में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण है। नागरिक समाज की भूमिका के कुछ आयाम अग्रलिखित हैं– समाज में लोकतांत्रिक अभिशासन के लिए नीति का समर्थन, संसदीय विकास, निर्वाचन प्रणालियों और प्रक्रियाओं, न्याय और मानवाधिकार, ई–गवर्नेंस और जानकारी तक पहुँच, विकेन्द्रीकरण, स्थानीय प्रशासन और शहरी /ग्रामीण विकास, लोक प्रशासन में सुधार और भ्रष्टाचार विरोधी. संसदीय व्यवस्था के अंतर्गत प्राइवेट मेम्बर, बिल पर ध्यान शिक्षा, स्वास्थ्य, खेल, मनोरंजन, पर्यावरण, पेय जल, महिला विकास, उदा. नदी संरक्षण में नर्मदा बचाओ आन्दोलन, चिपको आन्दोलन, आर.टी.आई. का हमारे मूल अधिकार में शामिल होना, आर.टी.ई. का 6 वर्ष से 14 तक के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य शिक्षा का अधिकार की प्राप्ति, सार्वजनिक नीतियों के निर्माण व कार्यान्वयन में प्रभावी भूमिका आदि। उपर्युक्त समस्त कार्यों से मानवाधिकारों का भी संवर्द्धन होता है।

डायमंड के अनुसार मानवाधिकार संरक्षण के लिए उदारवादी लोकतंत्र के सुदृढ़ीकरण हेतु नागरिक समाज द्वारा निम्न कार्य सम्पन्न किए जाते है– (1) राज्य–सत्ता को निष्प्रभावी करने वाली शक्ति के रूप में कार्य करना। (2) जनता के बीच राजनीतिक सहभागिता का भाव जगाना और लोकतांत्रिक कुशलता को प्रश्रय देना ताकि एक लोकतांत्रिक राजनीतिक संस्कृति विकसित हो सके। (3) यह विभिन्न हितों को, जिनमें अनेक मुख्यधारा के राजनैतिक दलों के माध्यम से प्रतिनिधित्व नहीं प्राप्त कर सकतें हों, प्रतिनिधित्व प्रदान करने में मदद करता है। (4) यह विभिन्न हितों और समूहों के बीच अन्योन्य संबंध स्थापित करने में मदद करता है। (5) यह भावी राजनेताओं के लिए प्रशिक्षण का आधार तैयार करता है। (6) यह नीतिगत युक्तियों के बारे में सूचना का विकीर्णन करता है और लोकनीतियों के क्रियान्वयन में अनुश्रवण समूह (निगरानी रखने वाला समूह) का काम करता है। (7) यह परस्पर विरोधी संकल्पों के बीच मध्यस्थता का कार्य करता है आदि। संयुक्त राष्ट्र संघ के पूर्व महानिदेशक बान–की मून के अनुसार– नागरिक समाज सामाजिक प्रगति एवं आर्थिक वृद्धि में उत्प्रेरक भूमिका, लोकतंत्र की ऑक्सीजन, जीवंत और स्थिर लोकतांत्रिक व्यस्वथा व सरकार की जवाबदेही बनाए रखने, कमज़ोर वर्ग और विविधतापूर्ण जनसंख्या के हितों का प्रतिनिधित्व करने आदि में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।। नागरिक समाज के अन्य कार्य– समानता आधारित सार्वजनिक कल्याण, पिछड़े व्यक्तियों व समुदायों का विकास, जन सहभागिता, जनता को सरकारी योजनाओं तथा सरकार को जनता की समस्याओं से अवगत करवाना, प्रशासनिक जबाबदेही– भ्रष्टाचार पर रोक, प्रशासन को हितग्राही– लक्ष्य समूह तय करवाना, स्थानीय विकास के लिए स्थानीय संसाधनो का दोहन, सामुदायिक आत्मनिर्भरता, ग्रामीण महिलाओं द्वारा छोटे ऋणों की मदद से

किए प्रयासों को बढ़ावा देना, स्थानीय शासन को स्वायत्त बनाना, जनता में राजनीतिक प्रशासनिक चेतना जगाना, जनता की मांगों को संगठित करना, परस्पर सहायता द्वारा आत्म सहायता, गरीबों के दुख दूर करने में सहायता करना आदि हैं। स्पष्ट है कि नागरिक समाज सरकार की विरोधी नहीं, उसकी पूरक व्यवस्था है। इसमें से कुछ स्वतः स्फूर्त होते हैं अर्थात् अनौपचारिक प्रकृति के होते हैं तो अधिकतर औपचारिक प्रकृति के होते हैं। सिविल सोसाइटी द्वारा अंधराष्ट्रवाद, तानाशाही, सांप्रदायिकता, क्षेत्रवाद, जातिवाद, वंशवाद, अलगाव जैसी धारणाओं को समाप्त करके मानवाधिकारों का संरक्षण सुनिश्चित किया जाता है।

ekuokfèkdkj lj{k.k ,o lo)u&

सिविल सोसायटी की, वर्तमान पीढ़ी, आने वाले पेशेवरों और सरकारी अधिकारियों के बीच, मानव अधिकारों की जागरूकता, संवैधानिक शिक्षा, संवैधानिक जागरूकता और मानवाधिकार शिक्षा को समझने, जीने और बढ़ावा देने में एक प्रमुख भूमिका है। लोगों को पता हो कि उनके पास स्वास्थ्य देखभाल, विरोध करने व स्कूल जाने का अधिकार है। संविधान, अधिकारों के विधेयक, मानवाधिकार क़ानून के बारे में जागरूकता का स्तर, शिक्षा के स्तर, सामाजिक–आर्थिक स्थिति और सूचनाओं तक पहुंच के साथ दृढ़ता से जुड़े हैं। इसे सिविल सोसइटी द्वारा कार्यशालाओं की श्रृंखला, सरकारी और नागरिक समाज संगठनों के बीच साझेदारी, शैक्षिक कार्यक्रमों के लिए एक ढांचा, प्रशिक्षण सामग्री और प्रभावी निगरानी द्वारा ही संभव किया जा सकता है। मानव अधिकारों के संरक्षण में नागरिक समाज की भूमिका और सीमाएं स्पष्ट करने के लिए यह जानना सबसे महत्त्वपूर्ण है कि नागरिक समाज को राज्य, संस्थाओं और राजनीतिक दलों के साथ मिलकर कार्य करना चाहिए। राज्य का यह दायित्व है कि वह वैध व संप्रभु मानदंडों, क़ानूनों और संस्थानों की स्थापना करे, जो कि नागरिकों के अधिकारों और समूहों के अधिकारों की रक्षा करने में सक्षम हों। नागरिक समाज की भूमिका और अधिक बढ़ जाती है, जब राज्य अपने कर्त्तव्यों को पूर्ण करने में असफल रहे। सिविल सोसाइटी की महत्त्वपूर्ण भूमिका अग्रलिखित है– मानवाधिकार, क़ानून और उनकी संवैधानिकता के प्रति सम्मान की निगरानी, व्यक्ति की शारीरिक सुरक्षा, वैध संपत्ति की सुरक्षा, सार्वजनिक संपत्तियों की सुरक्षा, ऐसे नए सामाजिक मूल्यों का प्रस्ताव जो एक नए कर्तव्य के रूप में, मानव गरिमा, व्यक्ति की शारीरिक सुरक्षा, स्वतंत्रता और जिम्मेदारियों का सम्मान करते हों, लोगों की गत्यात्मकता द्वारा परिवर्तन; विशेषज्ञों और शोधकर्ताओं के समर्थन से विचार पैदा करना; ज़मीन पर नई प्रथाओं के लिए एक उत्प्रेरक की तरह काम करना जो अपने काम को एक सामाजिक स्तंभ, शक्ति और वैधता प्रदान करें, लोकतंत्र निर्माणः एक नैतिक आवश्यकता, एक अभ्यास और न्याय का एक साधन, समानता और क़ानून का शासन; शक्तियों पर समुदाय का नियंत्रण, लोगों के लिए निर्णय लेने, कार्यान्वयन और परियोजनाओं की निगरानी की प्रक्रिया में भाग लेने के लिए अवसर प्रदान करना, लोगों को अपने नेताओं को स्वतंत्र

रूप से चुनना, सत्ता के प्रबंधन में शामिल होना, उनके प्रतिनिधियों पर नियंत्रण करना और असफलता की स्थिति में उनके जनादेश को वापस लेना आदि।

व्यावहारिक दृष्टिकोण से कोई भी सिविल सोसाइटी अकेले कार्य नहीं कर सकती। अतः इसे मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए पूर्ण स्वायत्त राष्ट्रीय संस्थानों की स्थापना का समर्थन करना चाहिए तथा राज्य और इन मध्यस्थता निकायों के साथ मज़बूत सहयोग में काम करना चाहिए। यह सब मिलकर मानवाधिकार के क्षेत्र में सामना की जा रही निम्न बाधाओं का मुकाबला कर सकते हैं— संवैधानिक मानव अधिकार की गारंटी देना, दण्ड से मुक्ति के खिलाफ एक एकीकृत राष्ट्रीय रणनीति को अपनाना और लागू करना; न्याय, सुरक्षा और क़ानून प्रवर्तन, शिक्षा और सेवा प्रशिक्षण के क्षेत्र में सार्वजनिक नीतियों को तैयार करना व लागू करना और समाज के सभी घटकों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करना; कार्यकारी शाखा से उत्पन्न क़ानूनों और स्वायत्त नियमों की संवैधानिकता के नियंत्रण को मज़बूत करना; सुरक्षित प्रशासन सुनिश्चित करना, जिसमें नवीनीकरण, स्पष्टीकरण और विनियमों का प्रकाशन शामिल है। आर्थिक उदारीकरण और बुनियादी सार्वजनिक सेवाओं के निजीकरण से उत्पन्न नवीन चुनौतियों का सामना करने हेतु सिविल सोसाइटी, मानव अधिकारों के रक्षकों की साझेदारी के माध्यम से, प्रशिक्षण में योगदान करने और संघों की स्वायत्तता और स्वतंत्रता के संबंध में सुरक्षा देने, अधिकारियों को जागरूकता बढ़ाने में सक्षम बनाने, संसद के सदस्यों की आज़ादी की पुष्टि करने, उन्हें सहयोगी दल बनाने, संसद सदस्यों को अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करने और नागरिकों के प्रति प्रतिबद्धता को पूरा करने के तरीके को नियंत्रित करने, शक्तियों को अलग करने पर स्पष्ट प्रावधानों को बढ़ावा देने तथा संवैधानिक, क़ानूनी और संस्थागत तंत्र (कार्यकारी और विधायिका) के बीच बेहतर संतुलन सुनिश्चित करने के कार्य करती हैं।

orleku cnyrk ifj–';

वर्तमान में हमारी नीतियों में सिविल सोसाइटी और अधिकार आधारित दृष्टिकोण सीमित होता जा रहा है। यह दृष्टिकोण लोकतंत्र के भविष्य के लिए ठीक नहीं है। वर्ष 2004 से 2014 तक सिविल सोसाइटी संगठन समाज की भलाई हेतु सरकार से नागरिकों के अधिकारों को सुनिश्चित कराने के लिए एकजुट हुए थे। किन्तु जब सूचना का अधिकार, खाद्य और कार्य करने का अधिकार पारित किए गए तो इन कार्यकर्ताओं ने आयोग के कार्य पर निगरानी रखनी शुरू करके नागरिकों की रिपोर्टें जारी कर दी। आज सामाजिक सुरक्षा योजनाओं की घोषणा सिविल सोसाइटी संगठनों से परामर्श किए बिना ही की जा रही है। सरकार ने इन संगठनों के बैंक खातों को ब्लॉक करके, उन्हें प्राप्त होने वाले धन पर रोक लगाकर, लोगों के लिए कार्य करने की उनकी क्षमता पर प्रश्नचिह्न लगाकर उनके विरुद्ध सख़्त रवैया अपनाया है। कई घटनाओं में ग्रीनपीस जैसे गैर–सरकारी संगठनों को राष्ट्रविरोधी भी बताया गया है। सरकार सिविल सोसाइटी में मौजूदा अंतरालों को कम करने के भी अनेक प्रयास कर

रही है। सिविल सोसाइटी के राजनीतिक परिदृश्य में इस प्रकार के बदलावों से हमें समझना होगा कि सिविल सोसाइटी को राष्ट्र से अलग नहीं रखा जा सकता है। एक लोकतांत्रिक राष्ट्र में लोकतांत्रिक सिविल सोसाइटी और लोकतांत्रिक राष्ट्र को एक दूसरे की आवश्यकता होती है। लोकतांत्रिक राष्ट्र एक ऐसा राष्ट्र होता है जो 'मतदान की राजनीति' के स्थान पर 'आवाज़ की राजनीति' का सम्मान करता है। यदि सरकार नागरिकों की आवाज़ का सम्मान उन्हें अभिव्यक्ति तथा संघ बनाने की स्वतंत्रता देकर करेगी तो इससे सिविल सोसाइटी की आकांक्षाएँ मुखर होंगी और वह राष्ट्र के साथ जुड़कर इसका सामाजिक रिपोर्ट कार्ड जारी करेंगे। लोकतंत्र के सिद्धांतों को सिविल सोसाइटी के संयुक्त कार्यों के माध्यम से ही वास्तविकता में बदला जा सकता है। सिविल सोसाइटी को क्षीण करने के प्रयासों में लोकतंत्र की अवधारणा भी छिन्न–भिन्न हो जाएगी, नागरिकों को केवल एक मतदाता के रूप में देखा जाएगा तथा वे राष्ट्र में अपनी वास्तविक स्थिति से वंचित रह जाएंगे। इस स्थिति से यथाशीघ्र उबरने की महत्ती आवश्यकता है।

fu"d"k

अपने तमाम सकारात्मक आयामों के बावजूद सिविल सोसाइटी आज भी अपना वजूद तलाश रही हैं। जहां एक ओर नागरिक समाज की भूमिकाओं और क्षेत्रों में वृद्धि हो रही है वहीं दूसरी ओर सरकार, संस्थाओं, नीति नियंताओं और सिविल सोसाइटी के मध्य तालमेल कठिन से कठिनतर होता जा रहा है। अधिकारियों ने नागरिक सामाजिक संगठनों पर लगे प्रतिबंधों को और कड़ा कर दिया है। विदेशी अंशदान नियमन अधिनियम (एफसीआरए) का अधिकारिक उपयोग, संगठनों को परेशान करने के लिए, विदेशी दाताओं से प्राप्त अनुदान पर नजर रखने के लिए होता है जो उनकी गतिविधियों में बाधाओं को डालने के लिए, सरकारी नीतियों की आलोचना या सवालों और विदेशों से फंड को हटाने के लिए होता है। भारतीय नागरिक समाज पर इसका गंभीर प्रभाव पड़ा है। जब भारतीय गृह मंत्रालय, एफसीआरए के अनुसार एक जांच का आयोजन करती है, तो यह अक्सर, जांच होने पर सिविल सोसाइटी जैसे गैर सरकारी संगठनों के खातों को बंद कर देती है, दान देने के सभी स्त्रोतों को बंद कर देती है और इसकी गतिविधियों को भी बंद करने के लिए मजबूर करती है। ऐसी रणनीतियां, अन्य समूहों के कार्य पर व्यापक प्रभाव डालती हैं। सरकार ने ग्रीनपीस के खाते में से विदेशी धन जाने से पहले पूर्व अनुमति मांगने के लिए देश के केन्द्रीय बैंक से पूछा था। ह्यूमन राइट्स वॉच ने अपनी वर्ल्ड रिपोर्ट 2017 में कहा कि भारत सरकार ने विदेशी वित्तीय मदद रोक दी है और सरकार की नीतियों की आलोचना करने वाली मीडिया और नागरिक समाज समूहों पर दबाव बढ़ा दिया है। चिंता का विषय यह है कि सरकार, संगठनों के लिए कम सहनशील हो रही है जो सरकार, सिविल सोसाइटी के साथ साथ विकास, बुनियादी परियोजनाओं और मानवाधिकार संरक्षण के लिए भी एक नकारात्मक कदम है। सिविल सोसाइटी द्वारा

मानवाधिकार संरक्षणयुक्त समाज की स्थापना के पावन उद्देश्य की सार्वभौमिक प्राप्ति हेतु सभी भागीदारों को संकल्प लेना होगा कि प्रत्येक भारतीय को अधिकार प्रदान करने, देश के कोने–कोने में स्थित हर परिवार तक मानवाधिकारों के संरक्षण और संवर्द्धन की रोशनी फैलाने तथा इस धरती, यहाँ के गाँवों और शहरों के लिए, जहाँ सवा एक अरब से ज़्यादा लोगों के सपने बसते हैं, एक उज्ज्वल भविष्य का रास्ता प्रशस्त करने के पावन कार्य को पूरा करने के लिए नए जोश से कार्य करना होगा।

lnHk&

1. ह्यूमन राइट्स वॉच, वर्ल्ड रिपोर्ट, 2017
2. पी. साईनाथ, द डिस्क्रीट चार्म ऑफ सिविल सोसाइटी, द हिंदू, 17 जून 2011
3. श्रिरिनराय, सिविल सोसाइटीः डेमोक्रेसी पर्सपेक्टिव,टेलर एंड फ्रेंशिस पब्लि, यू.के., 2015
4. एडिनबर्ग, जॉन, सिविल सोसाइटी, दी क्रिटिकल हिस्ट्री, न्यूयॉर्क यूनिवर्सिटी प्रेस, 1999
5. कविराज, सुदीप्त, सिविल सोसाइटीः हिस्ट्री एंड पॉसिबिलिटीज, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2001
6. अवस्थी एवं माहेश्वरी, लोक प्रशासन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा–3, 2011
7. सिविल सोसाइटी प्रोवाइड्स द क्रिटिकल फाउंडशन फोर प्रोमोटिंग ऑल ह्यूमन राइट्स,https:èègeneva.usmission.gov
8. ए. बी. सेलिंगमैन, द आइडिया ऑफ सिविल सोसाइटी, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1995
9. कमल लाहबीब, मौरोक्को नेशनल ह्यूमन राइट्स काउंसिल http:èèwww.cndh.org.ma 2016
10. राजो टंडन और रंजीता मोहंती, डज सिविल सोसायटी मैटर, समकालीन भारत में अभिशासन, सेग प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003

• • •

n;kyqrk og Hkk"kk gS ftls cgjs lqu ldrs gS vkSj va/ks ns[k ldrs gS

– Mark Twain

शिक्षा का अधिकार : एक अध्ययन

जोस कलापुरा•

आशुतोष कुमार विशाल••

1. परिचय

सामाजिक बहिष्कार एक प्रक्रिया है जिसके तहत कुछ समूहों को उनकी गरीबी, निम्न शिक्षा अथवा उनकी पहचान के कारण हाशिए पर धकेल दिया जाता है और सामाजिक कार्यो में पूर्ण भागीदारी नहीं दी जाती है। एक व्यक्ति को सामाजिक रूप से बहिष्कृत माना जाता है अगर वह समाज की प्रमुख गतिविधियों में शामिल नहीं होता है। सामाजिक बहिष्करण के विपरीत सामाजिक समावेशण व सामाजिक एकीकरण व्यक्ति और समूहों की समाज में सकारात्मक भागीदारी है।

यह लेख दलित बच्चों द्वारा स्कूलों में सामाजिक बहिष्करण को समझने का प्रयास करता है। लेख के प्रारंभ में सामाजिक बहिष्करण और दलित बहिष्करण को समझने का प्रयास किया गया है। उसके उपरान्त बिहार में दलित शिक्षा की स्थिति और शोध प्रणाली का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इस अध्ययन का निष्कर्ष यह बताता है कि दलित बच्चे स्कूलों में भेदभाव अनुभव करते हैं। शिक्षकों और दूसरी जातियों के बच्चों द्वारा दलित बच्चों से भेदभाव किया जाता है। स्कूलों में उनके लिए अनुकूल वातावरण नहीं है और उन्हें शिक्षा में प्रोत्साहन नहीं मिलता। वे स्कूलों में जातिगत भेदभाव और रूढ़िबद्धता का शिकार होते हैं और परिणामस्वरूप उनकी पढ़ाई पर बुरा असर पड़ता है और वे नकारात्मक भावनाओं से ग्रसित होने लगते हैं।

2. सामाजिक बहिष्करण

सामाजिक बहिष्करण शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम फ्रांस में गरीबी और निम्न वर्ग के लोगों के लिए किया गया। सामाजिक विज्ञान के साहित्य में इसे विभिन्न तरीकों से परिभाषित किया गया है। Room (1995) द्वारा इसे समूह का समाज से संधि–विच्छेद अथवा अलगाव समझा जा सकता है। जो पाँच प्रकार के होते हैः बहुआयामी, गतिशील, सामुहिक, संबंधपरक और विपत्तिपूर्ण। Atkinson (1998) के अनुसार सामाजिक बहिष्कार के तीन मुख्य तत्व हैः सापेक्षता, एजेंसी और गतिशीलता। Kabir (2006:3) के अनुसार सामाजिक बहिष्करण के केन्द्र में किसी समूह की सामाजिक पहचान होती है जिसके परिणाम स्वरूप विभिन्न स्तरों पर उस समूह का नुकसान और भेदभाव होता है।

एक सामान्य परिभाषा और समझ जो विभिन्न परिभाषाओं से निकल कर आया है

• निदेशक, सेंट जेवियस इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल रिसर्च, पटना

•• स्वतंत्र शोधकर्त्ता

कि सामाजिक बहिष्करण सिर्फ़ गरीबी और भौतिक संसाधनों की कमी नहीं है अपितु यह एक प्रक्रिया जिसमें गरीबी, संसाधनों की कमी, समूह की समाज में श्रेणी और पहचान और अन्य संबंधित कारक है जिसकी वजह से व्यक्ति अथवा कोई समूह समाज के हाशिये पर चला जाता है। यह प्रक्रिया बहुआयामी, गतिशील, सामाजिक, भौतिक और राजनीतिक है।

ऐतिहासिक रूप में हिन्दू समाज में दलित सामाजिक वर्गीकरण में सबसे नीची श्रेणी में आते हैं। उन्हें अछूत समझा जाता है और शिक्षा, आजीविका आदि से दूर रखा जाता है। Michael (2007:16) के अनुसार अछूत होने का मतलब सामाजिक व्यवस्था में निम्न स्थान और विभिन्न प्रकार से बहिष्करण होता है। दलित भारतीय समाज के पूर्ण जनसंख्या का 16 प्रतिशत है। सदियों के सामाजिक बहिष्करण के कारण दलित आज भी समाज के हाशिए पर है। उन्हें 'बाहरी जातियाँ' (J. H. Hutton), 'वंचित वर्ग' (अंग्रेज पदाधिकारियों), 'बहिष्कृत आवारा' (Pariahs) और 'हरिजन' (गाँधी, सर्वप्रथम नरसिंह मेहता) के नाम से पहले संबोधित किया जाता था (ibid)।

3- Ldiyk e nfyr cfg"dj.k

सर्वभौमिक मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा के बावजूद वित्तीय संसाधन की शिक्षा प्राप्त करने में मुख्य भूमिका है। सरकारी स्कूलों में शिक्षा की गुणवत्ता निराशाजनक है और कुछ दशकों से निजी स्कूली शिक्षा का विस्तार बहुत तेज़ी से हुआ है। दूसरा, जीवन में उत्कृष्ट विकास के लिए सामाजिक पूँजी की आवश्यकता होती है। पियर बोर्दयू (Pierre Bourdieu) के अनुसार सामाजिक पूँजी सामाजिक प्रथाओं और प्रतीकों और अर्थो का सामाजिक प्रजनन को दर्शाता है (Moore, 2012)। दूसरे शब्दों में सामाजिक पूँजी वर्गो में मौजूद अनुभवों, स्वभाव और संसाधनों को दर्शाता है जो उन्हें विभिन्न क्षेत्रों में सफलता प्राप्त करने में मदद करता है। जैसे उच्च जातियों में वर्षो से शिक्षा प्राप्त करने की परंपरा और विभिन्न क्षेत्रों में नौकरी पेशा करने के अनुभव विकसित होते रहे हैं। यहाँ तक कि उच्च जाति, गरीब मे भी सामाजिक और सांस्कृतिक पूँजी विद्यमान होती है। उनके रिश्तेदार, संबंधी, दोस्त आदि शिक्षित और नौकरी में रहते हैं। इस प्रकार बचपन से ही उन्हें सहायता और प्रोत्साहन मिलता है जो जीवन में उन्हें अच्छी शिक्षा, नौकरी और सफलता में सहयोग देते रहते है। सामाजिक संबंध और सहयोग उनमें आत्मविश्वास पैदा करता है (Poras, 2011)।

दलित बच्चों के लिए स्कूलों में अनुकूल वातावरण नहीं होता है और उन्हें विभिन्न प्रकार के जातीय भेदभाव और प्रतिकूल परिस्थतियों का सामना करना पड़ता है। स्कूलों के अलावा आस–पड़ोस, विभिन्न जातियों का उनसे और उनके परिवार से संबंध और बर्ताव, उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति, हमउम्र बच्चों से संबंध आदि, दलित बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने में अवरोध उत्पन्न करते है (दलित बहिष्करण : एक रिपोर्ट, 2007–08)।

गरीबी और सामाजिक असमानता ने शिक्षा के अवसरों को दलित बच्चों के लिए संकीर्ण किया है। विभिन्न शोधों से यह पता चलता है कि अस्पृश्यता और भेदभाव दलित बच्चों के शिक्षा प्राप्ति और सफलता के लिए बाधा उत्पन्न करते हैं। जातिगत भेदभाव बच्चों की असफलता और dropout का प्रमुख कारण है। Borooah, Sabharwal, Diwakar, Mishra & Naik 2015, Bhattacharjee 2013, Rama Krishna and Ramana Murty, 2013 आदि द्वारा किया गया अध्ययन प्रमाणित करता है कि हमारे स्कूलों में जातिगत भेदभाव और बहिष्करण विद्यमान है। दलित बच्चे विभिन्न सुविधाओं का प्रयोग नहीं कर सकते हैं, जैसे कि पानी के नल व चापाकल का प्रयोग आदि। वे कक्षा में अलग व पीछे बैठते हैं, उन्हें सफाई के काम में लगाया जाता है, उन्हें जातिगत नाम से बुलाया जाता है और अभद्र शब्दों का उपयोग और नामंकरण किया जाता है। वे कक्षा में भागीदारी नहीं कर पाते। सामान्य जाति के बच्चों द्वारा निम्न और प्रदूषित कार्य जैसे सफाई का काम करने वाले अभिभावकों के बच्चों को अछूत समझा जाता है और उन्हें हमेशा सभी गतिविधियों से अलग रखा जाता है। शिक्षक भी दलित बच्चों के लिए संवेदनशील नहीं होते और वे भेदभाव करने में लिप्त होते हैं। उन्हें दंडित किया जाता है और डाँटा जाता है। कई बार उन्हें अलग कामों में लगाया जाता है, जैसे कि मरे जानवरों, पक्षियों को फेंकना, स्कूल और शौचालयों की सफाई व पान – सिगरेट लाना आदि।

दलित बच्चों की शिक्षा इससे प्रभावित होती है और वे ज्ञान अर्जन नहीं कर पाते और परीक्षा में अच्छा प्रर्दशन नहीं कर पाते है। शिक्षक उनसे कोई उम्मीद नहीं रखते अर्थात् वे मानते है कि दलित बच्चे शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते। बच्चों से अच्छा उम्मीद न रखना भी बच्चों की असफलता का प्रमुख कारण है। इसे पीगमैलियन इफैक्ट (Pigmalion effect) कहते है यानि जब किसी से आप बहुत अपेक्षा करते हैं तो उस व्यक्ति का प्रर्दशन भी उसी अनुरूप होता है। भेदभाव और बहिष्करण को सर्वशिक्षा अभियान और टोटल अभियान के तहत तीन प्रकार से वर्णित किया गया है : (क) शिक्षक द्वारा बहिष्करण (ख) पीचर समूहों द्वारा बहिष्करण और (ग) ढ़ाँचागत बहिष्करण (Mangubhai, 2013: 4)।

4- fcgkj e nfyr lk{kjrk

बिहार में 23 जातियों को अनुसूचित जाति का दर्जा प्राप्त है (GOI, 2001)। 2005–06 से शिक्षा के क्षेत्र में राज्य ने प्रगति की है। 2001 से 2011 में साक्षरता दर में अच्छी वृद्धि दर्ज़ की है–2001 में साक्षरता दर 47.2 प्रतिशत था, 2011 में यह 63.8 प्रतिशत है। गौर करने वाली बात यह है कि 16.6 की यह वृद्धि 1961 के बाद बिहार में सबसे ज़्यादा है और 2001–11 के बीच देश में यह वृद्धि दर सबसे अधिक है। इसके बावजूद बिहार देश के साक्षरता दर में सबसे नीचे के पायदान पर है। 1951 में बिहार की साक्षरता 13.49 प्रतिशत था। 1961 के जनगणना के अनुसार राष्ट्रीय साक्षरता दर

और बिहार के साक्षरता दर में सिर्फ़ 49 प्रतिशत का अंतर था। यह अंतर 2001 तक 17.8 प्रतिशत हो गया था।

2011 के जनगणना के अनुसार पुरूष साक्षरता 73.4 प्रतिशत और महिला साक्षरता दर 53.3 प्रतिशत है। देश में साक्षरता के क्षेत्र में लिंग असमानता में कमी आ रही है। बिहार में लिंग असमानता 2001 में 26.3 प्रतिशत था, यह 2011 में घटकर 20.1 प्रतिशत हो गया है (Table 1)। बिहार सभी राज्यों की तुलना में सबसे तेज़ी में लिंग असमानता को कम करने में सफल रहा है।

तालिका- 1

Hkkjr vkj fcgkj e lk{kjrk ,o fyx vlekurk ¼1951&2011½

[Literacy rates and Gender Gap in India and Bihar (1951-2011)]

	India			Bihar			India	Bihar
	Male	**Female**	**Persons**	**Male**	**Female**	**Persons**	**Gender Gap**	**Gender Gap**
1951	27.16	8.86	18.33				18.3	
1961	40.4	15.3	28.3	37.9	8.7	23.4	25.1	29.2
1971	46	22	34.5	38.3	10.7	24.9	24	27.6
1981	56.4	29.8	43.6	46.8	16.6	32.3	26.6	30.2
1991	64.1	39.3	52.2	51.2	22	37.5	24.8	29.2
2001	75.9	54.2	65.4	59.7	33.4	47.2	21.7	26.3
2011	82.1	65.5	74	73.4	53.3	63.8	16.6	20.1

Source: Educational Statistics at a Glance, 2016

राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों का मुख्य ज़ोर स्कूल में नामांकन पर रहा है। सभी बच्चों को स्कूल कैसे लाए इस दिशा में सरकार वर्षों से प्रयास करती रही है। मुख्यतः वंचित समाज, जैसे की दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक और लड़कियों की शिक्षा में भागीदारी कम रही है अतः इन वर्गों को स्कूल में प्रवेश कैसे मिले इस पर विशेष ज़ोर रहा है।

बिहार में स्कूलों में नामांकन विशेषकर प्राथमिक और अपर प्राथमिक स्तर पर काफ़ी सुधार हुआ है। 2009–10 से 2014– 15 में प्राथमिक और अपर प्राथमिक स्तर में नामांकन की स्थिति को टेबुल 2 में नीचे दर्शाया गया है। इस अवधि में प्राथमिक स्तर के नामांकन में वार्षिक वृद्धि दर 3.4 प्रतिशत दर्ज़ किया गया। वर्ष 2011–12 में प्राथमिक स्तर पर कुल नामांकन 161.2 लाख था जो 2009–10 में 139 लाख था। पिछले चार वर्षों में वार्षिक वृद्धि उच्च प्राथमिक स्तर पर भी की गई है। नामांकन में वृद्धि का मुख्य कारण सरकार द्वारा बच्चों के लिए विभिन्न योजनाओं को लागू करना

और भौतिक स्तर पर स्कूल व्यवस्था में व्यापक सुधार करना है। नए स्कूलों को खोलना, शिक्षकों की भर्त्ती, मिड डे मील, छात्रावृत्ति, पोशाक, आदि से स्कूल में दाख़िले के लिए माहौल बना है।

तालिका- 2

fcgkj e| d|y ukekdu ¼yk[k e½

LevelèType of Students		2009-10	2010-11	2011-12	2012-13	2013-14	CAGR
Primary							
Boys	Total	77.56	80.76	82.29	79.74	83.34	1.3
	SC	13.68	15.23	16.1	14.5	15.81	2.4
Girls	Total	61.52	68.57	74.21	74.77	77.86	5.7
	SC	9.85	12.17	13.29	13.21	14.47	8.9
All	Total	139.08	149.34	156.50	154.51	161.2	3.4
	SC	23.54	27.4	29.39	27.71	30.29	5.3
Upper Primary							
Boys	Total	23.42	26.65	27.04	31.34	33.66	9.3
	SC	3.24	3.82	4.26	4.81	5.59	14.1
Girls	Total	17.85	22.14	23.51	29.02	31.75	15.3
	SC	2.09	2.78	3.37	4.23	5.11	24.7
All	Total	41.27	48.8	50.55	60.36	65.41	12
	SC	5.33	6.61	7.63	9.04	10.71	18.6

CAGR- compound annual growth rate

Source: Economic Survey 2016, Government of Bihar

लड़कियों का बंहत 2005–10 से 2013–14 के दौरान 5.7 प्रतिशत था, इसी दौरान लड़कों का बंहत मात्र 1.3 प्रतिशत था। दलित लड़कों और लड़कियों में क्रमशः 2.4 प्रतिशत एवम् 8.9 प्रतिशत बंहत दर्ज़ किया गया। उच्च प्राथमिक स्तर पर कुल बंहत 12 प्रतिशत दर्ज़ किया गया और दलित बच्चों के लिए 18.6 प्रतिशत दर्ज़ किया गया। माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तर पर नामांकन दर कम है इसका प्रमुख कारण स्कूल छोड़ना, स्कूल का दूर होना, आर्थिक मजबूरी आदि। हालांकि पूर्ण शिक्षा की माँग बढ़ रही है। स्कूल की पूरी शिक्षा पूरी करने और उच्च शिक्षा ग्रहण करने पर अच्छी नौकरी और भविष्य की संभावना अभिभावक और बच्चों को शिक्षा पूर्ण करने के लिए प्रेरित करेगी।

दलित बच्चों में शिक्षा बीच में छोड़ देने की प्रवृत्ति अधिक है। प्राथमिक स्तर पर वे नामांकन कराते हैं किन्तु माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तर पर स्कूल छोड़ने का दर अधिक हो जाता है। 2013 में प्राथमिक स्तर पर सामान्य बच्चों के लिए यह दर 29.11 प्रतिशत था और दलित बच्चों के लिए 23.16 प्रतिशत था वही उच्च प्राथमिक स्तर पर यह सामान्य बच्चों से ज़्यादा 48.9 प्रतिशत हो गया और माध्यमिक स्तर पर 67.7 प्रतिशत हो गया।

तालिका- 3

[Dropout Rates in Bihar]

Year	Girls	Boys	Total	SC Girls	SC Boys	SC Total
Primary						
2009-10	41	43.5	42.5	49.7	50.9	50.4
2010-11	35.3	42.13	39.27	35.9	40.9	38.8
2011-12	30.74	38.01	34.8	30.55	36.73	34.11
2012-13	26.27	36.01	31.68	24.3	36.25	31.15
2013-14	23.57	33.63	**29.11**	**13.32**	**30.36**	**23.16**
Upper Primary						
2009-10	56.7	60.2	58.8	69.8	72.7	71.6
2010-11	51.31	57.87	55.14	63.8	68.2	66.5
2011-12	51.07	58.61	55.48	60.45	67.22	64.56
2012-13	38.68	52.41	46.67	48.99	61.42	56.45
2013-14	38.46	52.39	**46.54**	**40.46**	**54.74**	**48.93**
Secondary						
2009-10	67	69.9	68.8	80.7	81.4	81.1
2010-11	58.85	64.38	62.24	76.8	78	77.6
2011-12	62.71	66.87	65.18	72.65	75.86	74.65
2012-13	59.51	65.15	62.8	65.05	70.57	68.44
2013-14	57.61	64.75	**61.78**	**64.32**	**69.84**	**67.67**

Source: Economic Survey, 2016, Government of Bihar

4-1 fofHkUu nfyr tkfr;ksa esa lk{kjrk

दलित समुदाय में विभिन्न जातियों में साक्षरता स्तर भिन्न है। सबसे ज़्यादा साक्षरता धोबी में (पुरूष 43.9 प्रतिशत एवं महिला 27.9 प्रतिशत) है और मुसहर में साक्षरता दर सबसे कम है (पुरूष 9 प्रतिशत एवम् महिला 3.9 प्रतिशत)

तालिका- 4

[Literacy rate among major Dalit communities: Percentage of their Population]

Major Dalit sub-castes	Literacy rate	Female literacy rate
All SCs in Bihar	28.5	15.6
Dhobi	43.9	27.9
Pasi	40.6	25.3
Dusadh	33.0	18.5
Chamar	32.1	16.8
Bhuiya	13.3	6.5
Musahar	9.0	3.9

Source: GOI, 2001, p. 2

दलित जातियों में शिक्षा के विभिन्न स्तर को तालिका 5 में दर्शाया गया है।

तालिका- 5

[Levels of education among major Scheduled Castes: Percentage of their Population]

Names of SCs	Liter-ate with-out educa-tion	Below pri-mary	Pri-mary	Mid-dle	Educational levels at-tained Matriculateè secondar-yèhigher secondaryè intermediate, etc.	Techni-cal and non-tech-nical diploma, etc.	Grad-uate and above
All SC	6.6	33.1	28.4	13.1	15.1	0.1	3.6
Bhuiya	15.3	44.1	26.5	7.4	6	nil	0.6
	5.9	33.6	28.5	13.4	15	0.1	3.5
Dhobi	4.5	28.3	27	14.9	19.7	0.2	5.4
Dusadh	6	32	28.5	13.7	16.1	0.1	3.5
Musa-har	15.3	44	27.8	6.7	5.5	nil	0.8
Pasi	5.7	30	27.1	13.4	17.9	0.2	5.6

Source: GOI, 2001.

दलित जातियों के स्कूल जाने योग्य बच्चों का प्रतिशत तालिका 6 में दर्शाया गया है।

तालिका- 6

[Percentage of school going population in the age group 5-14 yrs]

Age Group	All SCs	Chamar	Dusadh	Musahar	Pasi	Dhobi	Bhuiya
5-14 years	29.4	33.7	34.1	9.8	39.4	45.6	15.1

Source: GOI, 2001, p. 3

विभिन्न जातियों में शिक्षा का स्तर, साक्षरता और बच्चों का स्कूलों में नामांकन भिन्न है। पिछले कुछ वर्षो में दाख़िले में स्पष्ट सुधार दिखता है अपितु स्कूलों में शिक्षा की गुणवत्ता गंभीर विषय है। यह अध्ययन दलित बच्चों के शिक्षा की स्थिति, शिक्षा की गुणवत्ता और भेदभाव एवं उसके परिणाम को समझने का प्रयास करता है। यह अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि दलित बच्चों की शिक्षा की स्थिति बेहद गंभीर है (Kantha, 2009: 14-23; Economic Exploitation of weaker sections: Report, 2008-09)।

5- 'kkèkfØ;k fofèk

यह अध्ययन शिक्षा के क्षेत्र में कुछ दलित समुदाय की वास्तविक स्थिति को चित्रित करता है और दर्शाता है कि भागीदारी से वंचित यह समुदाय विकास में पीछे है। ढ़ाँचागत व्यवस्था उनके सशक्तीकरण में अवरोध उत्पन्न करता है। यह अध्ययन पाँच जिलों में किए गए सर्वेक्षण पर आधारित है। वर्ष 2013–14 में पटना, रोहतास, बेगुसराय, मुजफ्फरपुर और दरभंगा में पूर्व परीक्षित प्रश्नावली पर यह सर्वेक्षण किया गया। जिलों का चयन उच्च दलित जनसंख्या प्रतिशत एवम् भाषा एवम् प्रान्तीय आधार पर चादृच्छिक (random) चयन पद्धति पर आधरित था। ऊपर वर्णित जिलों में एक ब्लॉक को चुना गया जो क्रमशः मानेर, सासाराम, बकरी, मीनापुर और बहादुरपुर थे। इन ब्लॉकों में दो ग्राम पंचायतों का चयन किया गया था। Random चयन पद्धति से ग्राम पंचायत में परिवार एवं बच्चों को चुना गया तथा मुख्य हितधारकों, समाज के प्रतिनिधियों आदि के मध्य समूह चर्चा का आयोजन किया गया (Kalapura, 2017)।

6- ueuk

अध्ययन के लिए प्राथमिक आंकड़े एक अच्छी तरह से तैयार किए गए प्रश्नावली पर आधारित साक्षात्कर के माध्यम से एकत्र किए गए। प्रश्नावली में ओपन एंडेड और बंद प्रश्न शामिल थे। नमूना का आकार 1488 परिवार था जिनमें 299 (20.3 प्रतिशत) पटना, 293 (19.7 प्रतिशत) रोहतास, 295 (19.8 प्रतिशत) बेगुसराय, 306 (20.6 प्रतिशत) मुजफ्फरपुर और 295 (19.8 प्रतिशत) दरभंगा का था। दलित जातियों का नमूना क्रमशः 532 (35.8 प्रतिशत) चमार, 398 (26.7 प्रतिशत) मुसहर, 280 (18.8 प्रतिशत) दुसाध, 81

(5.4 प्रतिशत) धोबी, 59 (4 प्रतिशत) तुरी, 55 (3.7 प्रतिशत) पासी। पुरूष (727) 48.9 प्रतिशत और महिलाएं (761) 51.1 प्रतिशत के साथ साक्षात्कार पूरा किया गया।

तालिका- 7

ifjokj dk fooj.k

District	**Block**	**Number of households**	**Percentage of sample**
Patna Maner	299	20.3	
Begusarai	Bakari	295	19.8
Muzaffarpur	Meenapur	306	20.6
Darbhanga	Bahadurpur	295	19.8
Rohtas	Sasaram	293	19.7
Total	**5**	**1488**	**100**

परिवार के साक्षात्कार के अलावा 1,010 बच्चों का साक्षात्कार किया गया। इनमें से 184 पटना, 197 बेगुसराय, 199 रोहतास, 234 मुजफ्फरपुर और 196 दरभंगा से थे। जातिगत विवरण के अनुसार 396 (39.2 प्रतिशत) चमार, 288 (28.5 प्रतिशत) दुसाध, 166 (16.4 प्रतिशत) मुसहर, 49 (4.9 प्रतिशत) धोबी, 50 (5 प्रतिशत) पासी, और 23 (2.3 प्रतिशत) तुरी था। अन्य जातियों के बच्चे कम थे—नट 19, डोम 6, रजवार 5, भूईया 5 और मेहतर 3 थे। साक्षात्कार के लिए चुनी गई संख्या बिहार में दलित जातियों की संख्या का प्रतिनिधित्व करता है। चमार जाति की जनसंख्या सबसे अधिक, दुसाध, मुसहर, धोबी और पासी क्रमशः आते हैं।

माता—पिता की उम्र 26—45 साल के बीच था। 37.1 प्रतिशत 26—35 साल के बीच के थे और 32.6 प्रतिशत 36—45 के बीच के थे। 12.4 प्रतिशत 46—55 साल के बीच और 10.1 प्रतिशत 18—25 साल के बीच के थे। बच्चे 10 (1 प्रतिशत), 8 के नीचे 84 (8.3 प्रतिशत), 9—10 साल के बीच के 238 (23.6 प्रतिशत), 11—12 साल के बीच के 400 (39.6 प्रतिशत), 13—14 साल के बीच के और 199 (19.7 प्रतिशत) 15—16 साल के बीच के थे। 65 (6.4 प्रतिशत) 17—18 साल के बीच के और 14 (1.4 प्रतिशत) 19 साल और उसके ऊपर के थे। बच्चों में 980 (97.8 प्रतिशत) हिन्दू थे, 23 (2.3 प्रतिशत) मुसलमान, 6 (0.6 प्रतिशत) ईसाई और 1 (0.1 प्रतिशत) बौद्ध थे। कुल 154 बच्चे (15.2 प्रतिशत) प्राथमिक स्कूल में नामांकित थे, 569 (56.3 प्रतिशत) माध्यमिक स्कूल में नामांकित थे, 244 (24.2 प्रतिशत) उच्च स्कूल में थे और 43 (4.3 प्रतिशत) उच्च माध्यमिक स्कूल में थे।

7- fu"d"kZ vkSj fo'ys"k.k % f'k{kk esa nfyr cfg"dkj

इस अध्ययन का मुख्य निष्कर्ष और विश्लेषण (Kalapura, 2016: 7067–7082) इस प्रकार हैः

7-1 nfyr ifjokjksa dh 'kSf{kd fLFkfr

अधिकांश माता–पिता निरक्षर थे। पुरूष 1011 (67.9 प्रतिशत) और महिला 1215 (81.7 प्रतिशत) पढ़ लिख नहीं सकते थे। 1421 (96 प्रतिशत) पुरूष और 1465 (99 प्रतिशत) महिला उच्च स्कूल की पढ़ाई नहीं कर पाये थे। 234 (15.7 प्रतिशत) माता–पिता पढ़ लिख सकते थे लेकिन वे स्कूल नहीं गए थे। सिर्फ़ 22 (1.5 प्रतिशत) पुरूष उच्च माध्यमिक स्कूल पास कर पाये थे और 12 (0.8 प्रतिशत) पुरूष स्नातक तक शिक्षित थे। महिला की स्थिति अत्यंत दयनीय थी 184(12.4 प्रतिशत) साक्षर थी किन्तु स्कूल नहीं गई थी अर्थात् औपचारिक शिक्षा से वंचित है।

7-2 Ldwy esa nfyr cPpksa ds lkFk O;ogkj

हमारा अध्ययन बताता है कि दलित बच्चे और अन्य जाति के बच्चे कक्षा में साथ–साथ बैठते हैं। मिड डे मील के समय भी बच्चे साथ–साथ भोजन करते हैं किन्तु उनकी संख्या कम होती है। 981 (97.1 प्रतिशत) बच्चों ने कहा कि वे कक्षा में अन्य जाति के बच्चों के साथ बैठते हैं। सिर्फ़ 29 (2.9 प्रतिशत) बच्चों ने इस बात से इन्कार किया। दोपहर में भोजन के दौरान 113 (11.2 प्रतिशत) दलित बच्चों ने स्वीकार किया कि वे एक साथ भोजन करते हैं। अतिरिक्त गतिविधियों में क्या वे अन्य जाति के बच्चों के बराबर हिस्सा लेते है या अवसर प्रदान किया जाता है के प्रश्न पर 835 (82.7 प्रतिशत) बच्चों ने पुष्टि हाँ में की; जबकि 147 (14.6 प्रतिशत) ने कहा उन्हें समान अवसर नहीं मिलता।

सर्वेक्षण में 1010 बच्चों में से 741 (73.4 प्रतिशत) बच्चों ने महसूस किया कि दलित बच्चों के साथ समान रूप से व्यवहार किया जाता है जबकि 180 (17.8 प्रतिशत) ने महसूस किया कि दलित बच्चों को दूसरे बच्चों के बराबर नहीं समझा जाता। 826 (81.8 प्रतिशत) बच्चों ने कहा कि दूसरे बच्चे उनका सम्मान करते है लेकिन 100 (9.9 प्रतिशत) इस बात से इन्कार करते हैं। 323 (32 प्रतिशत) बच्चों ने पुष्टि की कि उनके साथ जातिगत भेदभाव हुआ है। इस अध्ययन से स्पष्ट है कि स्कूल व्यवस्था जातिगत भेदभाव और पूर्वाग्रहों से मुक्त नहीं है।

7-3 f'k{kd&Nk= lacaèk

शिक्षकों की भी जाति होती है और उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि अलग होती है। अध्ययन से पता चलता है कि वे जातिगत पूर्वाग्रहों से ग्रसित होते हैं। विभिन्न अध्ययनों ने इस बात को प्रमाणिक रूप से स्वीकारा है कि शिक्षक दलित बच्चों के प्रति

असंवेदनशील और नकारात्मक सोच रखते हैं। वे खानापूर्त्ति के लिए उन्हें पढ़ाते हैं। वे दलित बच्चों को जातिगत नाम से, अपमानजनक शब्दों से बुलाते हैं। दलित बच्चों को प्रोत्साहन नहीं करते हैं और निम्न घृणित कार्यो में भी संलिप्त करते हैं जैसे शौचालय, कक्षा–स्कूल की सफाई, मरे हुए पक्षी व जानवरों को स्कूल से बाहर फेंकना। उन्हें बार–बार दंडित भी किया जाता है। कई ऐसे घटनाएं भी होती हैं जिसे अत्याचार और शोषण के अन्तर्गत रखा जा सकता है (NCDHR, 2007; Navarsarjan Trust and RFK Center for Justice and Human Rights, 2010)।

हमारे अध्ययन से पता चलता है कि दलित बच्चों को स्कूल में भेदभाव और बहिष्कार का सामना करना पड़ता है। 107 (10.7 प्रतिशत) ने कहा कि शिक्षक उनके साथ दुर्व्यवहार करते है। 828 (82 प्रतिशत) बच्चे मानते है शिक्षकों का व्यवहार ठीक है। 80 प्रतिशत बच्चे यह मानते हैं कि शिक्षक उनका सम्मान करते है हालांकि 12.4 प्रतिशत बच्चों ने इससे इन्कार किया। 754 (74.7 प्रतिशत) बच्चों ने माना कि शिक्षक उन्हें प्रोत्साहित करते है जबकि 171 (16.9 प्रतिशत) बच्चों ने कहा कि पढ़ाई में शिक्षक मदद नहीं करते।

7-4 lgk;rk dkjdk dk vHkko

समाजशास्त्री मानते है कि शिक्षा–प्राप्ति में विभिन्न वर्गों में अंतर तीन कारकों के कारण होता है जो क्रमशः आर्थिक पूँजी, सामाजिक पूँजी और सांस्कृतिक पूँजी है। उच्च वर्ग में अच्छी शिक्षा और जीवन में सफलता इन तीनों पूँजियों की उपलब्धता के कारण संभव होता है। दलित समाज में तीनों पूँजियाँ नगण्य होती है, जिसका परिणाम बच्चे पढ़ाई पूरी नहीं कर पाते और करते है तो अधिकांश अच्छे अंक नहीं प्राप्त कर पाते। वे हमेशा स्वयं को छोटा समझते हैं, हीन–भावना और अकेलापन के वे शिकार हो जाते हैं। वर्ग और जाति दोनों उनके व्यक्तिव को प्रभावित करते हैं। 175 (17.3 प्रतिशत) बच्चों ने माना कि वे हमेशा दूसरे बच्चों के तुलना में स्वयं को नीचा समझते हैं। 485 (48 प्रतिशत) बच्चों ने इस बात से इन्कार किया कि वे कभी भी दूसरे जाति के बच्चों से अपने आप को छोटा समझते हैं। 161 (15.9 प्रतिशत) बच्चे मानते है कि वे पढ़ाई में कभी अच्छा नहीं कर सकते, 390 (38.6 प्रतिशत) बच्चे कभी–कभी सोचते हैं कि वे पढ़ाई में अच्छा नहीं कर सकते। आर्थिक रूप से कमज़ोर होना भी उन्हें अखड़ता है। वे मानते है कि सामाजिक और आर्थिक रूप से कमज़ोर होने के कारण उनकी पढ़ाई नकारात्मक रूप से प्रभावित होती है। वे मानते हैं कि दूसरे जाति के बच्चों की तरह उनके दोस्त, रिश्तेदार नहीं हैं जो उन्हें पढ़ाई में मदद करें या जीवन में शिक्षा और नौकरी के लिए प्रोत्साहन करें। 336 (33.6 प्रतिशत) बच्चों ने कहा कि उनकी सामाजिक स्थिति उनकी शिक्षा को बहुत प्रभावित करती है, 467 (46.2 प्रतिशत) बच्चों ने कहा कुछ हद तक प्रभावित करती है। 278 (27.5 प्रतिशत) बच्चों ने कहा कि आर्थिक स्थिति का बहुत ज़्यादा प्रभाव शिक्षा पर पड़ता है और 542 (53.7 प्रतिशत) बच्चों ने कहा कि आर्थिक स्थिति उनकी शिक्षा को कुछ हद तक प्रभावित करती है।

284 (28.1 प्रतिशत) मानते है उनके माता–पिता का न पढ़ा–लिखा होना उनकी पढ़ाई को बहुत प्रभावित करता है जबकि 408 (40.4 प्रतिशत) बच्चे मानते हैं माता–पिता का निरक्षर होना कुछ हद तक उनकी शिक्षा को प्रभावित करता है। 285 (28.2 प्रतिशत) बच्चे स्वीकार करते हैं कि उनके माता–पिता तथा समाज का निरक्षर होना उनकी शिक्षा पर बहुत नाकारात्मक प्रभाव डालता है। 472 (46.7 प्रतिशत) का मानना है कि यह कुछ हद तक शिक्षा को प्रभावित करता है। 242 (24 प्रतिशत) बच्चे मानते हैं मार्गदर्शन का आभाव उनके शैक्षिक संभावना को बहुत हद तक प्रभावित करता है।

7-5 :f<c) vkj dyfdr

इसी तरह से गाँव का वातावरण, जाति के प्रति समाज का पूर्वाग्रह और भेदभाव आदि बच्चों की शिक्षा को बहुत हद तक प्रभावित करते है। उनमें आत्मविश्वास की कमी आती है। 136 (13.5 प्रतिशत) बच्चों ने कहा कि वे हमेशा महसूस करते है कि वे अच्छे नहीं है। 364 (36 प्रतिशत) बच्चे इसे कभी कभार महसूस करते है। 145 (14.4 प्रतिशत) बच्चे यह हमेशा मानते है कि वे अक्लमंद नहीं है अर्थात् उनके पास दिमाग नहीं है कि वे पढ़ाई कर सकें। 368 (36.4 प्रतिशत) बच्चों ने इस नाकारात्मक भावना को कभी–कभी महसूस किया है। 391 (38.7 प्रतिशत) बच्चों ने माना कि वे हमेशा आत्मविश्वास की कमी महसूस करते हैं। हमारे अध्ययन में यह स्पष्ट पता चलता है कि जातिगत और वर्ग विभेद बच्चों के मनोविज्ञान को नकारात्मक रूप से प्रभावित करते है। हीन भावना, अकेलापन, शक्तिहीन ये भावनायें पूरे स्कूली जीवन और उसके बाद के जीवन को प्रभावित करती रहती है। समाज में स्टीरीयोटाईप और मूल्यांकन व्यापक रूप से ज्ञात होता है (Crocker, Major & Steele, 1998)। किसी समूह के प्रति इससे उस समूह को सभी स्तर पर बहिष्कृत किया जाता है (Major & Eccleston, 2004)।

7-6 lkekftd cfg"dkj dk cPpk ij udkjkRed iHkko

सामाजिक बहिष्कार का व्यक्ति और समूह पर व्यापक और दूरगामी प्रभाव पड़ता है। सामाजिक बहिष्कार के फलस्वरूप उनके स्वास्थ्य खराब रह सकता है, शिक्षा में असफल या उच्च शिक्षा नहीं प्राप्त कर सकते, असामाजिक कार्यों व आपराधिक मामलों में संलिप्त हो सकते हैं और दूसरे कई तरह के नकारात्मक प्रभाव में आ सकते हैं। बहिष्कृत व्यक्ति जैसे की दलित मनोवैज्ञानिक रूप से अस्वस्थ, कमज़ोर और अवसाद से ग्रसित हो जाते हैं। कुछ बच्चे अपने आप को समाज से काट लेते हैं या सबसे दूरी बनाना शुरू कर देते हैं। उन्हें जहाँ भी बहिष्करण की संभावना दिखती है उससे वे बिल्कुल अलग हट जाते हैं (Buhs, Ladd & Herald, 2006)। दलित बच्चे स्कूल में बहिष्करण अनुभव करने पर स्कूल छोड़ देते हैं। बहिष्करण की वजह से दलित बच्चों की शिक्षा और भविष्य अत्यधिक प्रभावित होता है।

8- fu"d"k vkj flQkfj'k

राष्ट्रीय स्तर पर दलित और गैर दलित समूह में शिक्षा का अंतर बड़ा है। बिहार में दलित की शैक्षणिक स्थिति बदतर है। हाल के कुछ वर्षों में दलित लड़कियों का प्राथमिक स्कूल में नामांकन लड़कों से बेहतर रहा है। माध्यमिक या उच्च माध्यमिक स्तर पर दलित बच्चों और गैर दलित बच्चों के नामांकन में भारी अंतर हो जाता है। सरकार द्वारा कई योजनाएं चलाई जा रही है जिससे नामांकन स्तर पर कुछ फायदा दिख रहा है अपितु आवश्यकता और बजटीय आवंटन में काफ़ी अंतर है। आवंटित बजट का ठीक से उपयोग नहीं हो पाता है। सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पूँजी से वंचित दलित बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने में काफ़ी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। स्कूल में, समाज में और हमउम्र बच्चों से उन्हें जातिगत भेदभाव झेलना पड़ता है। सरकारी स्कूल में गिरती गुणवत्ता की वजह से उच्च जाति व वर्ग के बच्चे निजी स्कूलों की तरफ रूख कर रहे हैं और सरकारी स्कूल दलित और पिछड़े वर्ग के बच्चों के लिए सीमित हो गए है। दलित बच्चों के शैक्षणिक विकास में विभिन्न कारक बाधक है। इन सबका उनके शिक्षा में प्रर्दशन और भविष्य की संभावनाओं पर बुरा असर पडता है। उनमें आत्मविश्वास की कमी, हीन–भावना, अवसाद और शिक्षा के प्रति अरुचि उत्पन्न होता है और वे पढ़ाई बीच में छोड़ देते हैं व परीक्षा में अच्छा प्रदर्शन नहीं करते हैं। इसका दुष्प्रभाव जीवन पर्यन्त होता है।

यह अध्ययन दलित बच्चों में शिक्षा के स्तर को सुधारने और भेदभावरहित स्कूल व्यवस्था बनाने के लिए निम्नलिखित सिफारिशें करता हैः–

- बच्चों को एक अच्छा इंसान बनाने पर प्राथमिक ज़ोर देना और ऐसे कार्यक्रमों को बढ़ावा देना जिससे गैर–दलित व दलित बच्चों में सौहार्द और मैत्री भाव का विकास हो।
- शिक्षकों को प्रशिक्षित करना कि वे किस तरह वंचित समुदाय के बच्चों के साथ व्यवहार करे और पढ़ाई में सहयोग करें। उन्हें इन बच्चों के अभिभावकों से अच्छे संबंध स्थापित करना होगा जिससे वे बच्चों के पढ़ाई और विकास पर ध्यान रख सकें और एक दूसरे का सहयोग कर सकें।
- कक्षा और स्कूल में समावेषी वातावरण बनाने के लिए विभिन्न तरीकों को आजमाने की ज़रूरत है। विभिन्न जाति के बच्चें, विभिन्न धर्म के बच्चें आदि को एक साथ कक्षा और विभिन्न कार्यो में संलग्न करना होगा। इससे जाति, धर्म व लैंगिक दूरी को ख़त्म किया जा सके।
- दलित बच्चों को दूसरे बच्चों की तरह समान दर्जा देना होगा और सम्मान देना होगा। उनके परिवार और सामाजिक व सांस्कृतिक विभेद को समान महत्त्व देना चाहिए।

नोटः– यह लेख जेवियर इन्स्टीट्यूट ऑफ सोशल रिसर्च और डॉ. मार्टिन पोरस के सहयोग से 2013–2015 के मध्य विस्तृत सर्वेक्षण पर आधरित है।

References

Atkinson, A. B. (1998). Social exclusion, poverty and unemployment. In J. Hills (Ed.), *Exclusion, employment and opportunity* (pp. 1-20). London: Centre for Analysis of Social Exclusion (CASE), London School of Economics and Political Science. Retrieved from http:èèsticerd.lse.ac.ukèdpsècaseècpèPaper4.pdf

Bhattacharjee, S. (2013). Deprivation and social exclusion of the Dalits: An anthropological observation. In S. Bhattacharjee (Ed), *Social, economic and political exclusion of Scheduled Castes & Scheduled Tribes* (pp. 332-352). Delhi: Manglam.

Borooah, V. K., Sabharwal, N. S., Diwakar, D. G., Mishra, V. K., & Naik, A. K. (Eds.) (2015). *Caste, discrimination, and exclusion in modern India*. New Delhi: Sage.

Buhs, E. S., Ladd, G. W., & Herald, S. L. (2006). Peer exclusion and victimization: Processes that mediate the relation between peer group rejection and children's classroom engagement and achievement? *Journal of Educational Psychology, 98*(1), 1-13. Doi:http:èèdx.doi.orgè10.1037è0022-0663.98.1.1

Crocker, J., Major, B., & Steele, C. M. (1998). Social stigma. In D. Gilbert, S. Fiske, & G. Lindzey (Eds.), *Handbook of social psychology*, vol. 2 (pp. 504–553). Boston, MA: McGraw-Hill.

दलित बहिष्करण : एक रपट 2007–2008, पटना : सामाजिक बहिष्करण एवं समावेशी नीति अध्ययन केन्द्र, पटना विश्वविद्यालय

Economic Survey (2016), Government of Bihar, Patna.

Educational Statistics at a Glance (2016), Government of Bihar, Patna.

Government of India (2001). *Bihar. Data highlights: The Scheduled Castes. Census of India 2001.* Office of the Registrar General, Government of India. Retrieved from http:èècensusindia.gov.inèTables_PublishedèSCSTèdh_sc_bihar.pdf

Kabeer, N. (2006). Social exclusion and the MDGs: The challenge of 'durable inequalities' in the Asian context. *Promoting growth, ending poverty–Asia 2015*. International conference conducted by Institute of Development Studies and Overseas Development Institute. Retrieved from http:èèwww.eldis.orgèvfileèuploadè1èdocumentè0708èDOC21178.pdf

Kalapura, Jose (2016). "Dalit Experinece of Exclusion with Special Reference to Education in Bihar," *Jharkhand Journal of Development and Management Studies,* Vol. 14, Nos.3 & 4, pp. 7067-7082.

Kalapura, Jose (ed) (2017). *Education of the Marginalised Communities in Bihar: Exploring Financial Inclusion,* Xavier Institute of Social Research, Patna.

Kantha, Vinay K. (2009), *Exclusion in Education: A Preliminary Enquiry into Elementary Education of Dalit Children in Bihar,* Patna: Centre for Sutdy of Social Exclusion & Inclusive Policy, Patna University, pp. 14-23.

Major, B., & Eccleston, C. P. (2004). Stigma and social exclusion. In D. Abrams, J. Marques, & M. A. Hogg (Eds.), *Social psychology of inclusion and exclusion* (pp. 63-87). New York: Psychology Press.

Mangubhai, J. P. (2013). *25% is our right: Examining SCèST exclusion through budgets in school education.* New Delhi: Centre for Social Equity and Inclusion & Swadhikar. Retrieved from http:èèwww.slideshare.netèBabitaN88èinstitutional-exclusion-ineducationfinallibre

Michael S. M. (2007). Introduction. In S. M. Michael (Ed.), *Dalits in modern India: Vision and values* (2nd ed.) (pp. 13-41). New Delhi: Sage Publications.

Moore, R. (2012) Capital. In M. Grenfell (Ed.), *PieÙke Bourdieu, key concepts* (pp. 98-113). New Delhi: Acumen Publishing and Rawat Publications.

Navarsarjan Trust and RFK Centre for Justice and Human Rights. (2010). *Understanding untouchability: A comprehensive study of practices and conditions in 1589 villages.* Ahmedabad, Gujarat. Retrieved from http:èènavsarjan.orgèDocumentsèUntouchability_Report_FINAL_Complete.pdf

NCDHR. (2007). *Realising Dalit children's right to education.* New Delhi: National Campaign on Dalit Human Rights.

Poras, Martin. S. (2011). *A study on social capital and participation in rural governance of the dalit communities in three districts of Bihar.* Unpublished Ph. D Thesis, Department of Social Work, University of Madras, Chennai.

Rama Krishna, V. S., & Ramana Murty, K. V. (2013). Educational inclusion of SCs and STs in India. In S. Bhattacharjee (Ed), *Social, economic and political exclusion of Scheduled Castes & Scheduled Tribes* (pp. 116-131). Delhi: Manglam.

Report on Economic Exclusion of Weaker Sections of Society with Speical Reference to Bihar 2008-2009, Patna: Centre for Sutdy of Social Exclusion & Inclusive Policy, Patna University, 2008

Room, G. (1995). *Beyond the threshold: The measurement and analysis of social exclusion.* Bristol: Polity Press.

• • •

ekuoh; vfèkdkjksa dk u;k ig#vk % lks'ky ehfM;k

çfrHkk•

संकेतों, वाणी तथा अनेक माध्यमों से अपनी भावनाओं का प्रकटीकरण प्रकृति द्वारा मानव को प्रदत्त सर्वोत्तम उपहार है। क्रमशः चित्र, संगीत, काव्य आदि माध्यमों से मनुष्य की भावनाओं का प्रकटन उदात्त ऊँचाइयों तक पहुँच गया। समय के प्रवाह में रेडियो, टेलीविजन, कम्प्यूटर, इन्टरनेट, टेलीफ़ोन तथा मोबाइल आदि अभिव्यक्ति की इस विकासमान यात्रा के पड़ाव बने।

इसी क्रम में वर्तमान युग की एक क्रांतिकारी खोज है सोशल मीडिया, जिसने वर्तमान पीढ़ी की सोच, वाणी और कार्य पद्धति सभी को बदल कर रख दिया है। क्या है सोशल मीडिया? वस्तुतः सोशल मीडिया पारस्परिक संबंध हेतु इन्टरनेट अथवा अन्य माध्यमों द्वारा निर्मित आभासी समूहों को संदर्भित करता है, यह न केवल व्यक्तियों तथा समूहों के सहभागी बनने के एक माध्यम के रूप में सामाजिक संबंध हेतु उपयोग में आता है, बल्कि डिजिटल संसाधनों को सामाजिक रूप से उपलब्ध कराने हेतु मंच भी मुहैया कराता है।

सोशल मीडिया के कई रूप हैं, जिनमें इन्टरनेट फ़ोरम, वेब लॉग, सामाजिक ब्लॉग, माइक्रोब्लॉगिंग, विकीज, सोशल नेटवर्किंग, पॉड कास्ट फोटोग्राफ, चित्र, चलचित्र आदि सभी आते हैं। इनमें सोशल नेटवर्किंग विश्व में इन्टरनेट पर होने वाली प्रमुखतम गतिविधि है जिसके सशक्त माध्यम से इन्टरनेट सुविधा से जुड़े लोग दुनिया के एक कोने से दूसरे कोने में बैठे लोगों से संवाद एवं विचार–विमर्श कर सकते हैं। न केवल अपने विचारों को दुनिया के समक्ष रख सकते है बल्कि दूसरों के विचारों और महत्त्वपूण र्ा वैश्विक हलचलों से भी अवगत हो सकते हैं।

सोशल मीडिया का जन्म 1995 ई. में हुआ माना जाता है, जब 'क्लासमेट्स डॉट्स कॉम' नामक एक नेटवर्किंग साइट का प्रारम्भ हुआ। अभी भी सक्रिय इस साइट के जरिए स्कूलों, कॉलेजों तथा मिलिट्री आदि के लोग एक दूसरे से जुड़ सकते थे। इसके पश्चात् 1996 में 'बोल्ट डॉट कॉम' अस्तित्व में आया तथा 1997 में एशियाई–अमेरिकी कम्यूनिटी के लिए 'एशियन एवेन्यू' का जन्म हुआ, किंतु इस क्षेत्र में क्रांति का सूत्रपात हुआ फरवरी, 2004 में 'द फेसबुक' के उद्भव के बाद, जिसे मार्क जुक़रबर्ग ने बनाया तो था हार्वर्ड विश्वविद्यालय के छात्रों के लिए किन्तु 2005 में यह दूसरे कॉलेजों, विश्वविद्यालयों की सीमाएँ लांघता हुआ 'फेसबुक' के नाम से विश्व में छा गया।

वर्तमान में सक्रिय सैंकड़ों नेटवर्किंग साइट्स में से फेसबुक, व्हाट्सअप, ट्विटर, ऑरकुट, माई स्पेस, पिन्ट्रेस्ट, लिक्ड इन, फ्लिकर, इंस्टाग्राम सर्वाधिक लोकप्रिय हैं।

• आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

इनमें भी फेसबुक पर कुल 2 अरब लोग सक्रिय हैं, जिनमें से 24 करोड़ भारतीय हैं। वैश्विक स्तर पर प्रति मिनट फेसबुक पर 5,10,000 कमेन्ट किए जाते हैं, 2,93,000 स्टेट अपडेट होते हैं और 1,36,000 फोटो अपलोड़ किए जाते हैं।

कहा जा सकता है कि आज सोशल मीडिया जीवन–शैली को बदलते हुए हमारी आवश्यकताओं, कार्य–पद्धतियों, रुचियों–अभिरुचियों सभी के सूत्रधार की भूमिका में आ पहुँचा है।

यथा विदित है, सोशल मीडिया की सर्वप्रमुख पहचान एक संवाद मंच के रूप में है, जहाँ एक–दूसरे को बिना देखे, बखूबी परिचित हो चले लोग अपने विचार, सुख–दुख, काम, सपने सभी कुछ साझा करते हैं। यहीं बिना किसी शोर–शराबे और प्रचार के, सोशल मीडिया सामाजिक सम्बन्धों के शिथिल होते ताने–बाने को दुरुस्त करता नजर आता है। इसके माध्यम से न केवल घर बैठे तमाम अनजान लोगों को ही परिचय के दायरे में ले आया जाता है, बल्कि कर्तव्य–निर्वाह के बोझ तले दुनिया की भीड़ में कहीं खो गए स्कूल और मोहल्ले के बचपन के दोस्तों को भी ढूंढ निकाल कर जोड़ लिया जाता है और मजेदार यह तथ्य कि यह जुड़ाव तुरंत व वास्तविक समय में होता है और फिर बातचीत, बार–बार जुड़ाव व समूहीकरण संभव हो पाता है।

इस प्रकार एक ऑनलाइन समुदाय की संकल्पना सच हो चली है, जिसमें लोग रियल टाइम में सारी चीजें 'डाक्यूमेन्ट' भी कर रहे होते हैं और 'शेयर' भी।

अकेलेपन और अवसाद से जूझ रहे लोगों, विशेषकर बुजुर्गो के लिए यह एक वरदान साबित हुआ है, जो घर से दूर रह रहे 'बच्चों को 'रूबरू' देख पा सकने के साथ–साथ ज़रूरत पड़ने पर सहायता भी प्राप्त कर पाते हैं।

सोशल मीडिया के माध्यम से जिस मानवीय अधिकार को सर्वाधिक बल प्राप्त हुआ है, वह है vfHk0;fDr dh Lor=rk का अधिकार। इससे जनसाधारण को अभिव्यक्ति हेतु स्वतंत्र मंच प्राप्त हो गया है, वह भी बिना किसी औपचारिक शिक्षण अथवा डिग्री की आवश्यकता के जिस लेखन कार्य पर पहले गिने–चुने लोगों का वर्चस्व था, अब उससे आम जन भी जुड़ गया है। देखा जाए तो इसमें सक्रिय प्रत्येक व्यक्ति ही स्वतंत्र पत्रकार की भूमिका में है, जहाँ वह स्वयं ही लेखक, सम्पादक, प्रकाशक, विज्ञापनकर्ता और वितरण है। 'मीडिया' शब्द का प्रयोग भी सोशल मीडिया को पत्रकारिता के अंश के रूप में स्वीकार करता है जिसमें पत्र–पत्रिकाओं के कार्यालयों के चक्कर लगाए बिना ही लेख, व्यंग्य, कविता कार्टून लोगों तक पहुँच जाते हैं। प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया भी समय की नब्ज पहचान कर इसे पर्याप्त महत्त्व प्रदान करते हैं और इसके प्रसिद्ध (वायरल) तथ्यों को ख़बर बनाकर अपने पाठकों और दर्शकों तक पहुंचाते हैं।

वाक् और अभिव्यक्ति की यह स्वतंत्रता मात्र अपने विचारों के प्रसार तक ही सीमित नहीं है। लाइकिंग, शेयरिंग, रिट्वीटिंग आदि द्वारा दूसरों के विचारों के प्रचार–प्रसार का कार्य भी बखूबी सोशल मीडिया द्वारा किया जाता है।

बेहतरीन सोच और सामाजिक समझ के दायरे को विकसित करके सोशल मीडिया विविध ykdrkf=d vfèkdkjk के प्रति दुनिया को जागरूक करने में सफल हुआ है और नव–निर्माण के लिए संघर्ष के माध्यम से आत्मीयता, एकजुटता और व्यापक बदलाव का जरिया सिद्ध हुआ है। एक जैसी मानसिकता के लोग जुड़कर सामाजिक–राजनैतिक सरोकारों को पूरा करने का प्रयत्न करते हैं। सोशल मीडिया के माध्यम से न केवल दशकों से सशक्त लोकपाल की ख्वाहिश दिल में रखे भारतीयों ने अन्ना हजारे के आन्दोलन और अनशन को समर्थन देकर इसे व्यापक रूप से फ़ैलाने में अपना योगदान दिया, बल्कि उनके अहिंसक संघर्ष को यू–ट्यूब आदि पर देखकर लाखों विदेशियों ने भी इसे समर्थन और सहयोग दिया।

इसी प्रकार 2012 के निर्भया कांड में दोषियों को सजा दिलाने में एकजुट हो उठे लोगों और परिणामतः तीव्र हुई न्यायिक प्रक्रिया का श्रेय सोशल मीडिया को ही है। वैश्विक संदर्भो में भी मिस्र के तहरीर चौक और ट्यूनीशिया की जैस्मीन क्रांति में सोशल मीडिया की भूमिका असंदिग्ध है।

ykdr= dk etcr cuku e सोशल मीडिया की भूमिका महत्पूर्ण सिद्ध हो रही है क्योंकि जनता की आवाज़ शासन तक पहुंचाकर सोशल मीडिया ने उसे समाज और जनहित के मुद्दों पर कार्य करने हेतु त्तपर किया है। नारी सशक्तीकरण, शिक्षा, पर्यावरण, स्वच्छता, भ्रष्टाचार विरोध और अपराध–मुक्ति के विषय में अलख जगाकर न केवल इसने मानवाधिकारों को धार प्रदान किया है बल्कि दलित, आदिवासी और स्त्री–विमर्शी के साहित्यिक रूपों द्वारा मानवाधिकार पर बहस भी तेज़ की है।

l'kklu के लिए भी सोशल मीडिया बेहतर औजार सिद्ध हो रहा है। 'ऑक्सफोर्ड इन्टरनेट इन्स्टीट्यूट के प्रोफेसर विलियम एच. डटन का सोशल मीडिया को 'लोकतंत्र के पांचवें स्तम्भ' के रूप में देखना बिल्कुल सही प्रतीत होता है, जब हम देखते हैं कि भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालय सोशल मीडिया पर सक्रिय रहकर जनता द्वारा रखी गई शिकायतों, समस्याओं और सुझावों पर त्वरित कार्रवाई द्वारा न केवल अपनी कार्य प्रणाली को दुरुस्त कर रहे हैं, बल्कि अपनी छवि को भी बेहतर बना रहे हैं। रेलवे और विदेशी मामलों के मंत्रालय इसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं। स्वयं प्रधानमंत्री जनता से संवाद हेतु 'राइट टू पी.एम.' 'माई गाँव' इत्यादि पोर्टल्स पर सक्रिय हैं।

lekurk dk vfèkdkj का पोषण भी सोशल मीडिया द्वारा बखूबी हो रहा है, जहां भिन्न–भिन्न धर्म, जाति, लिंग, और भाषा से जुड़े लोग वैचारिक आग्रहों से समान मंच पर आ पा रहे हैं और इस नाते वैयक्तिक सामाजिक सुख–दुःख साझा कर पा रहे हैं।

सोचने–समझने, अपनी क्षमता बढ़ाने, सपने देखने और उन्हें पूरा करने के समान अवसरों द्वारा भी सोशल मीडिया समानता के अधिकार की गरिमामय पूर्ति का अवसर प्रदान करता है।

जहाँ तक vkfFkd vfekdkjk का प्रश्न है, व्यापार हेतु भी सोशल मीडिया का प्रभावी उपयोग हो रहा है क्योंकि यह समग्र विपणन लागत को कम करने में सहायता करता है। संभावित ग्राहकों को भी संगठित कर व्यापार में वृद्धि का प्रयास किया जा सकता है। एक प्रकार से सोशल मीडिया के रूप में प्रचारकों को अपना उत्पादन बेचने की नई जगह प्राप्त हो गई है। फेसबुक पर उपभोक्ताओं का वर्गीकरण भिन्न–भिन्न मानकों पर किया जाता है जिसमें उनकी आय रुचि, लिंग, गतिविधियों आदि के अनुरूप विज्ञापन।

कोई भी तकनीकी विकास अपने साथ जोखिम भी लेकर आता है। सोशल मीडिया भी उसका अपवाद नहीं है। इस सम्बन्ध में सोशल मीडिया से जुड़े कुछ जोखिम उल्लिखित किए जा सकते हैं।

यथा, सोशल मीडिया का अत्यधिक और अनियन्त्रित उपयोग एक गंभीर लत में परिवर्तित हो जाता है। विशेष रूप से न केवल किशोर और युवा वर्ग का बेशकीमती समय प्रोफाइल चैक करने और अपडेट करने जैसी लत में बर्बाद हो रहा है बल्कि निरन्तर इन गतिविधियों में उनकी लिप्ता मस्तिष्क को शिथिल कर थकान, तनाव, चिड़चिड़ापन, एकाग्रता में कमी, शारीरिक क्षमता में कमी आदि को आमंत्रण देती है। आभासी दुनिया में लीन उनके पारिवारिक–सामाजिक दायरे का दिनों–दिन घटते जाना भी इस चिन्ता को बढ़ाता है।

अनेक बार सोशल मीडिया पर विविध विचारधाराओं के समर्थकों और विरोधियों की खेमेबन्दी हो जाती है और दूसरों की भावनाओं को आहत करने वाले पोस्ट आपसी द्व ेष, उत्तेजना और असहिष्णुता बढ़ाते हुए विभिन्न समूहों में तनाव का कारण बन जाते हैं। बिना सोचे–समझे किए जाने वाले पोस्ट भी अनेकशः कटुता बढ़ा देते हैं।

सोशल मीडिया साइट पर पारिवारिक–व्यावसायिक जानकारियां अपडेट करते ही गोपनीयता और निजता में सेंध की आशंका प्रबल हो जाती है। चित्रों और जानकारियों के बुरे तत्वों द्वारा दुरुपयोग की आशंका के साथ–साथ पहचान की चोरी, विवरण की चोरी, साइबर धोखा–धड़ी, हैकिंग और वायरस हमलों तथा आतंकवादी घटनाओं की आशकाएं बढ़ चली हैं। विध्वंसक तत्व उपयोगकर्ताओं की निजी जानकारियों द्वारा उनका मनोवैज्ञानिक आंकलन कर उन्हें गुमराह करने में सफल हो जाते हैं, जिससे न केवल जामिया मिलिया जैसी देश अहित की घटनाएं जन्म ले सकती हैं, बल्कि 'ब्लू व्हेल' जैसे खेलों द्वारा उपभोगकर्ता स्वयं को ही जोखिम में डालने और अपना जीवन समाप्त करने जैसी घटनाओं को अंजाम दे डालते हैं।

निस्संदेह सोशल मीडिया के साथ जुड़ आए इन ख़तरों को हम अनदेखा नहीं कर सकते है, किन्तु इस कारण हम सोशल मीडिया के अपार फायदों से भी स्वयं को वंचित नहीं कर सकते। इससे वंचित होने का अर्थ विकास के क्रम में पीछे लौटना होगा।

हमें यह देखना होगा कि कोई भी तकनीकी विकास लाभ—हानि दोनों के लिए होता है। अब यह हम पर है कि हम उसका उपयोग किस रूप में करते हैं। सुरक्षा मानकों पर कार्य करना सरकार एवं सुरक्षा—एजेन्सियों का दायित्व है, किन्तु हम नागरिकों के भी अपने दायित्व हैं। हमें यह समझना होगा कि यह ज्ञान का भंडार है, जिसका उपयोग बुद्धिमत्ता से किया जाना चाहिए।

'अति सर्वत्र वर्जयेत्' का कथन तकनीकी के विषय में भी सत्य है। अतः सोशल मीडिया के इस्तेमाल हेतु समय तय कर इसका उपयोग सीमित किया जा सकता है। इससे आराम, सामाजिक मेल—मिलाप तथा अन्य सकारात्मक गतिविधियों के लिए समय निकालना संभव होगा।

इसी प्रकार, किसी भी विचार असहमत होने पर अपनी विरोध शालीन शब्दों में दर्ज़ किया जा सकता है। हमें याद रखना होगा कि अभिव्यक्ति की अपनी स्वतंत्रता का उपयोग करते समय दूसरों की निजता और स्वतंत्रता का सम्मान करना हमें सीखना होगा। यह उसके अपने और अपनों के हित में भी होगा जैसा कि हरबर्ट स्पेन्सर भी कहते हैं कि कोई व्यक्ति पूर्णतः स्वतंत्र नहीं हो सकता, जब तक सभी स्वतंत्र नहीं हो जाते। कोई व्यक्ति पूर्णतः सुखी नहीं हो सकता, जब तक सभी सुखी नहीं हो जाते।

l nHk

1- Media and culture : Rajesh Kumar, Sumit Enterprises, Delhi
2- Ethics in Media Communication : A Practical Guide for Students, Scholars and professionals, Sumit Enterprises, New Delhi
3- संचार माध्यमों का प्रभाव, ओमप्रकाश सिंह, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली
4- आम आदमी और सूचना का माध्यम, डॉ. हनुमान, पत्रिका प्रकाशन, जयपुर
5- संचार माध्यम और सांस्कृतिक वर्चस्व, हरबर्ट आई. शीला ग्रंथशिल्पी, नई दिल्ली
6- आम आदमी की नई ताकत बना सोशल मीडिया, रवीन्द्र प्रभात, जनसंदेश टाइम्स
7- www.researchgate.netèpublicationè263325419
8- http:èèdx.doi.orgèdoi: 10.1509
9- http:èèpewinternet.orgèreportsè2011ètechnology-and-social-network.aspx
10- http:èèdev.twitter.comèdoesèapièstreaminh

• • •

n l jk d fy, f t ;k tku okyk thou gh ykHkçn g

– Albert Einstein

?kjy fglk l efgykvk dk lj{k.k

ykykjke tkV•

vfuyk••

हिंसा मानव के सामाजिक विकास में सदैव चुनौती के रूप में रही है। समाज के आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं पारिवारिक विकास के साथ हिंसा के रूप बदलते गए। समाज में हिंसात्मक कार्य राज्य प्राप्ति के लिए या आधिपत्य के लिए मुख्य रूप से दिखाई देते थे वहीं कालांतर में परिवार व समाज में आधिपत्य स्थापित करने के लिए भी दृष्टिगोचर होने लगी है। हिंसा की बढ़ती प्रवृत्ति मानव के अस्तित्व को लगातार संकट में खडा कर रही है। आज सम्पूर्ण मानव समाज हिंसक गतिविधीयों को झेल रहा है। वर्तमान में हिंसा का एक व्यापक स्वरूप परिवार के साथ भी जुड़ गया है। परिवार की हिंसात्मक गतिविधि एवं समाज की हिंसात्मक प्रवृतियों का सम्बंध एक–दूसरे के साथ जुड़ा हुआ है। परिवार के साथ जुड़ी हुई हिंसा को हम घरेलू हिंसा के रूप में देख रहें है। घरेलू हिंसा का सम्बंध लिंग (जेंडर) आधारित संरचना के साथ जुडा हुआ है। इस लिंग (जेंडर) आधारित भेदभाव के कारण एक वर्ग विशेष को विशेषाधिकार मिल चुके है और वह अनधिकृत रूप से काबिज हो गया हैं। अनधिकृत रूप से काबिज वर्ग अपनी सत्ता को बनाए रखने के लिए हिंसा का सहारा लेता है। सामाजिक संरचना में भी इस आधिपत्य को मान्यता देने का एक सामाजिक वातावरण तैयार किया गया है।

लिंग आधारित भेदभाव में पुरूष वर्ग का आधिपत्य अधिंकाश समाजों में है। भारतीय समाज में इस आधिपत्य का एक व्यापक स्वरूप पुरूष मानसिकता के रूप में देखा जा रहा है। इस पुरूष मानसिकता के कारण महिलाओं के साथ व्यापक पैमाने पर हिंसा हो रही है। इस हिंसा ने पारिवारिक संबंधों को भी प्रभावित किया है तथा पारिवारिक संबंध में बिखराव आया है। पारिवारिक हिंसा को ही सामान्य अर्थ में घरेलू हिंसा कहते है। पारिवारिक हिंसा को भारतीय संदर्भ में गंभीर हिंसा के रूप में स्वीकार करने में संकोच किया जाता है या उसे नजर अंदाज़ कर दिया जाता है क्योंकि पारिवारिक हिंसा को व्यक्तिगत हिंसा एवं सामान्य पारिवारिक घटना के रूप में देखने का नजरिया (दृष्टिकोण) विकसित कर रखा है। साथ ही महिलाओं को पारिवारिक हिंसा को सहन करने के लिए प्रेम, शांति, त्याग, बलिदान एवं मातृत्व जैसी उपाधियों के साथ जोड दिया गया है तथा सामाजिक संस्थाओं ने समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से भारतीय समाज में महिलाओं को पुरूषों के मुकाबले नाजुक, कमज़ोर, दया का पात्र बना

• सहायक आचार्य, उदयपुर स्कूल ऑफ़ सोशल वर्क, जर्नादन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय उदयपुर।

•• व्याख्याता, डॉ अनुष्का विधि महाविद्यालय, उदयपुर,

दिया है। इस सामाजिक व्यवस्था के कारण पुरुष व महिला के मध्य सामाजिक भेदभाव की व्यवस्था स्थापित कर दी गई। इसलिए पारिवारिक हिंसा की प्रवृत्ति लगातार बढती गई। इस संस्थागत व्यवस्था में घरेलू हिंसा लगातार अपना पैर पसारती रहीं है।

भारतीय समाज में महिलाओं को पुरूषों के समकक्ष संवैधानिक दर्जा दिया गया है किन्तु परिवार व समाज में उसे दोयम दर्जे की स्थिति में जीना पड़ता है। कहने के लिए तो आधी ज़मीन आधा आकाश महिलाओं के पास है किन्तु वास्तविक स्थिति का पता एक परिवार एवं समाज में महिला पुरूष की समानता एवं असमानता, हिंसा एवं अहिंसा, श्रम विभाजन, अधिकारों की उपयोगिता एवं आधिपत्य की अवस्था का विश्लेषण करने मात्र से स्पष्ट हो जाता है कि महिलाओं की स्थिति कैसी है, यही कारण है कि महिला के प्रति परिवार तथा समाज में घरेलू हिंसा एवं शोषण होता रहा है[1] ।

इन्टरनेशनल सेन्टर फोर रिसर्च ऑन वीमेंन की नंदिता भाटना ने अपने लेख में कई चौकाने वाले तथ्य दिए हैं कि महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के अखिल भारतीय आंकड़े बेहद खतरनाक प्रवृत्ति का संकेत दे रहे हैं। पिछले पाँच साल में महिलाओं के विरुद्ध अपराधों की संख्या में वृद्धि हुयी है। घर के अन्दर भी महिलाओं के विरुद्ध हिंसा करने वाले उनके पति और रिश्तेदार शामिल होते है, महिलाओं पर घर में हिंसात्मक प्रहार करने वालों में इन लोगों की संख्या सबसे अधिक है।[2]

महिलाओं पर होने वाली हिंसा के तथ्यों पर एक नजर डालने पर निम्न परिदृश्य उभर कर सामने आता है–[3]

- चार में से एक महिला अपने जीवनकाल में घरेलू हिंसा का शिकार होती है।
- यह अनुमान है कि प्रतिवर्ष 1.3 मिलियन महिलाएं अपने जीवन साथी द्वारा शारीरिक हमले की शिकार होती हैं।
- घरेलू हिंसा से पीड़ित व्यक्तियों में 85 प्रतिशत महिलाएं होती हैं।
- ऐतिहासिक रूप से घरेलू हिंसा से पीडित महिलाएँ अपने परिचित का शिकार होती हैं।
- अधिकतर घरेलू हिंसा के मुकदमें पुलिस में दर्ज़ नहीं होते हैं।
- 30–60 प्रतिशत लोग घर में बच्चों को भी हिंसा का शिकार बनाते है।
- एक तिहाई महिला वध जो कि पुलिस में दर्ज़ हुए है वो उनके जीवनसाथी/मित्र ने किए थे।

1 देवसरे, विभा, *घरेलू हिंसा : वैष्विक संदर्भ,* आर्य प्रकाशन मण्डल दिल्ली, 2008

2 देवसरे, विभा, घरेलू हिंसाः वैष्विक सन्दर्भ, आय प्रकाशन मण्डल नई दिल्ली, 2008,पृं.सं.114

3 www.ncadv.org dated 12è1è13

- प्रति 6 में से 1 महिला व प्रति 33 में से 1 पुरुष या तो बलात्कार या उसके प्रयास का शिकार होते हैं।
- 20 प्रतिशत घरेलू हिंसा से पीड़ित महिलाओं को सिविल संरक्षण आदेश मिलता है।

jk"Vh; ifjokj LokLF; lo{k.k] Hkkjr (तृतीय)[4] के सर्वेक्षण में पाया गया कि अशिक्षित महिलाएँ अपने पति द्वारा हिंसा की शिकार ज़्यादा होती हैं। बिहार ऐसा राज्य है जहाँ शारीरिक या लैंगिक हिंसा (37 प्रतिशत) सबसे ज़्यादा हुई जबकि हिमाचल प्रदेश की महिलाओं को भारत के अन्य राज्यों की तुलना में कम हिंसा का सामना करना पड़ता है। सर्वेक्षण में यह स्पष्ट हुआ कि ग्रामीण महिलाएँ (40.2 प्रतिशत) हिंसा का अधिक सामना करती है जबकि शहरी क्षेत्रों में (30.4 प्रतिशत) महिलाएँ ही हिंसा की शिकार हुई हैं। महिला हिंसा जम्मू कश्मीर (12.6 प्रतिशत), मेंघालय (13.1 प्रतिशत), नागालैण्ड (15.4 प्रतिशत), सिक्किम (16.5 प्रतिशत), और केरल (16.4 प्रतिशत) देखी गई है।

d- nhik jlhn ¼2014½[5] ने अपने अध्ययन में घरेलू हिंसा के क्षेत्र में महिलाओं की सामाजिक क़ानूनी सहयोग की स्थिति को जानने का प्रयास किया जिसमें उन्होंने अपने अनुसंधान से निम्न निष्कर्ष निकाले–

- 82.8 प्रतिशत महिलाओं ने स्वीकार किया कि घरेलू हिंसा की स्थिति में माता–पिता के सहयोग या उनकी शक्ति की बहुत ज़रूरत होती है।
- पड़ोसियों से सहायता प्राप्त करने वाली महिलाओं का प्रतिशत 44.2 है।
- पुलिस से सहायता प्राप्त करने वाली महिलाओं का प्रतिशत 95.8 है।
- 95.4 प्रतिशत महिलाओं ने अपने पति या ससुराल वालों के विरुद्व प्रताड़ना की शिकायत दर्ज़ करवाई है।
- घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम के सम्बन्ध में जानकारी रखने वाली महिलाएँ 58.3 प्रतिशत थीं।
- 37.1 प्रतिशत महिलाओं ने स्वीकार किया कि उनके वकील द्वारा पारिवारिक न्यायालय में जाकर तलाक लेने की सलाह दी है तथा 48.3 प्रतिशत महिलाएँ वकील की सेवा से सन्तुष्ट थीं। 54.2 प्रतिशत महिलाओं ने स्वीकार किया कि वकील के हस्तक्षेप से ही उन्हें हिंसा से मुक्ति मिली है।

परिवार व समाजरूपी सामाजिक संस्थाओं ने समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम

---

4 *http:èèrchiips.orgènfhsèindex.shtml*

5 *Rasheed, K Deepa(2014):* A study on socio legal support system in protecting the women victims of domestic violence;. *(Ph.D), Mahatma Gandhi University, Kottayam.*

से भारतीय समाज में महिलाओं को पुरुषों के मुकाबले नाजुक, कमज़ोर व दया का पात्र बना दिया है तथा पुरुष व महिला के मध्य सामाजिक भेदभाव स्थापित कर दिया। इसी सामाजिक व्यवस्था ने यह मान लिया कि महिला बाल्यावस्था में पिता के नियन्त्रण में, विवाह पश्चात पति के नियन्त्रण में तथा वृद्धावस्था में पुत्र के नियन्त्रण में रहने की तथाकथित व्यवस्था निहित स्वार्थों के तहत स्थापित कर दी गई है। इस संस्थागत व्यवस्था में घरेलू हिंसा लगातार अपना पैर पसारती रही है। यह व्यवस्था निहित स्वार्थों के तहत कर दी गई है। पारिवारिक हिंसा को ही घरेलू हिंसा कहा जाता है। घरेलू हिंसा का सम्बंध परिवार के भीतर होने वाली हिंसा से है चाहे वह हिंसा शारीरिक या मानसिक क्यों न हो। घरेलू हिंसा का अर्थ और अधिक विस्तृत रूप से समझने के लिए निम्न परिभाषाएं देख सकते है –

l;Dr jk"V l?k[6] 1993 के अधिवेशन 'महिलाओं के विरुद्ध होने वाली हिंसा की समाप्ति, 1993 में महिलाओं के विरुद्ध घरेलू हिंसा को निम्नानुसार परिभाषित किया गया हैं–"ऐसा कोई भी कृत्य जो लिंगभेद के आधार पर किया गया है और जिसका परिणाम किसी महिला को शारीरिक, लैंगिक या मानसिक क्षति पहुंचाता है या पहुंचा सकता है तथा किसी महिला को जिसमें ऐसे कृत्य करने की धमकी हो या ज़बरदस्ती उसकी स्वतन्त्रता, चाहे वह उसके व्यक्तिगत या सामाजिक जीवन से जुड़ी हो को समाप्त करता है।"

chynkl cuke jru nkl[7] (2010)के वाद में यह माना गया कि घरेलू हिंसा न केवल मौखिक और भावात्मक दुरुपयोग के माध्यम से मानसिक उत्पीड़न बल्कि भावात्मक और आर्थिक दुरुपयोग को भी शामिल करता है।

?kjy fglk l efgykvk dk lj{k.k vfèkfu;e[8] की धारा–तीन में घरेलू हिंसा को निम्न रूप से परिभाषित किया गया जिसमें घरेलू हिंसा को शारीरिक हिंसा तक सीमित नहीं रखा बल्कि मानसिक, लैंगिक, मौखिक, भावात्मक एवं आर्थिक हिंसा को भी घरेलू हिंसा में सम्मिलित किया गया हैं

?kjy fglk l efgykvk dk lj{k.k vfèkfu;e] 2005] fu;e 2006 dk lf{kIr fo'y"k.k :

ऐसी महिलाओं के जो कुटुम्ब के भीतर होने वाली किसी प्रकार की हिंसा से पीड़ित हैं संविधान के अधीन प्रत्याभूत अधिकारों के अधिक प्रभावी संरक्षण और उससे सम्बन्धित या उसके आनुशंगिक विषयों का उपबन्ध करने के लिए घरेलू हिंसा

6 Daga,s., *Domestic violence Against wome: Indian Scenario cf* www.regional.org.au dated on 24è02è2013

7 बलू दास बनाम रतन दास, II (2010) डी.एम.सी. 769 (गौ.)

8 अधिसूचना संख्या 1776(ई) दिनांक 17.10.2016, भारत के राजपत्र, असाधारण, भाग–3, खण्ड–3 को प्रकाशित

से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम बनाया गया है। यह पहला अधिनियम है जिसमें व्यथित व्यक्ति को परिवार के भीतर ही उसे संरक्षण देने का प्रयास किया गया है। इससे पूर्व भी विभिन्न क़ानूनों में संरक्षण की व्यवस्था की गई, किन्तु इस तरह एक ही अधिनियम में व्यथित व्यक्ति को रहने का शारीरिक, मानसिक हिंसा से रोकथाम, आर्थिक संरक्षण तथा चिकित्सकीय सुविधा की व्यवस्था की गई है। अब व्यथित व्यक्ति को अलग–अलग अधिकारों/संरक्षण के लिए पृथक्–पृथक् अधिनियमों में वाद लाने की आवश्यकता नहीं रही। अधिनियम को सिविल प्रकृति का बनाया गया। इस अधिनियम को व्यावहारिक रूप से लागू करने के लिए विभिन्न अभिकरणों को इसका सहभागी बनाया गया है। अधिनियम को 37 धाराओं में विभाजित कर इसका विश्लेषण किया गया। अधिनियम का उद्देश्य घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम–2005, सन् 1994 की वियना घोषणा और बिजिंग पत्र के प्रारुप के अनुसार विधायी बनाने का प्रयास रहा है। यह अधिनियम संविधान के अधीन प्रत्याभूत किए गए महिला अधिकारों को संरक्षित करने तथा परिवार के भीतर होने वाली समस्त प्रकार की हिंसाओं से उन्हें संरक्षण देना तथा हिंसाओं से मुक्त करना है।

ifjoknk dk vè;;u %&

महिलाओं के साथ होने वाली हिंसा की रोकथाम तथा उसे सम्मानजनक जीवन जीने के अवसरो की उपलब्धता के संदर्भ में स्थिति को जानने के लिए उदयपुर जयपुर एवं जोधपुर के न्यायालय में विचाराधीन परिवादों का उद्देश्यपूर्ण निर्देशन पद्धति से चयन करके परिवादों का अध्ययन किया गया। अध्ययन द्वारा घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम की क्रियान्वयन स्थिति को जानने का भी प्रयास किया गया। जिसमें से सांकेतिक रूप से पांच अध्ययनों को इस हेतु चुना है। जो इस प्रकार है :–

ifjokn& 1

माननीय अपर सिविल न्यायाधीश महानगर मजिस्ट्रेट संख्या–4 जोधपुर में अधिवक्ता के मार्फ़त श्रीमती रवीना (बदला हुआ नाम) द्वारा अपने ससुराल पक्ष के ससुर, सास तथा अन्य के विरुद्ध एक परिवाद सन् 2012 में लगाया गया तथा 2015 तक इसकी सुनवाई जारी है। अभी तक इस परिवाद में माननीय न्यायालय द्वारा सुनवाई हेतु अभी तक 53 पेशी की तारीख दी जा चुकी है। तीन वर्ष इस परिवाद को हो चुके हैं। मूल परिवाद के साथ अन्तरिम राहत का परिवाद भी प्रस्तुत किया गया था। लगभग एक वर्ष तथा 23 पेशी के पश्चात् अन्तरिम राहत का परिवाद निस्तारित किया गया जिसमें प्रार्थीया का परिवाद सबूतों के अभाव में खारिज कर दिया गया हस्तगत अधिनियम के निर्धारित प्रारुप में अधिवक्ता द्वारा आवदेन प्रस्तुत नहीं किया गया। अधिवक्ता द्वारा निर्धारित प्रारुप के कुछ अंशों को ध्यान में रखते हुए दावा तैयार किया गया। प्रार्थीया द्वारा धारा–18 के अन्तर्गत संरक्षण आदेश, धारा–18 में निवास आदेश, धारा–20 में

मौद्रिक अनुतोश तथा धारा–21 में अभिरक्षा आदेश के लिए प्रार्थना की गई है, जिसमें से एक भी आदेश प्रार्थीया के पक्ष में जारी नहीं हुआ है।

परिवाद में संरक्षण अधिकारी के संबंध में लिखा है कि संरक्षण अधिकारी नहीं है। उसके पश्चात् माननीय न्यायालय ने भी संरक्षण अधिकारी से घरेलू घटना रिपोर्ट नहीं मांगी तथा अन्तरिम राहत के आवेदन के निस्तारण में भी उसकी रिपोर्ट की आवश्यकता नहीं महसूस की गई। घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005 के तहत इस आवेदन को फौजदारी प्रकरण माना गया है। परिवाद का अध्ययन करने से यह स्पष्ट है कि दोनों अधिवक्ताओं परिवाद को लम्बित रखने के लिए जिम्मेंदार है। परिवाद के निस्तारण में देरी का एक कारण निस्तारण से जुड़े पदाधिकारियों का अवकाष पर रहना तथा अधिवक्ताओं की हड़ताल भी रहा है।

सम्पूर्ण परिवाद का अध्ययन करने से स्पष्ट है कि परिवाद निर्धारित प्रारुप में न होने के कारण तथा अधिवक्ता का घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार कार्यवाही का प्रयास न करना, घरेलू घटना रिपोर्ट के अभाव में अन्तरिम राहत का आदेश खारिज होना तथा माननीय न्यायालय द्वारा इस परिवाद को एक सामान्य प्रक्रिया के तहत निस्तारित किया जाना आदि इस परिवाद का निस्तारण अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत निर्धारित समयावधि में नहीं हो सका। प्रार्थीया के अधिवक्ता द्वारा परिवाद को अधिनियम के प्रावधानों को सही तरीके सें नहीं उठाने के कारण प्रार्थीया को राहत नहीं मिल सकी जबकि अधिनियम में स्पष्ट है कि यदि प्रार्थीया विवाह के पष्चात् सास–ससुर के साथ रही थी तो उसे सास–ससुर या अन्य के मालिकाना हक वाले मकान में रहने का अधिकार है। परिवाद के तैयार करने में अधिनियम के प्रावधानों पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। अन्तरिम राहत का आवेदन भी निर्धारित प्रारुप में प्रस्तुत नहीं किया गया है। घरेलू घटना रिपोर्ट इस अधिनियम के अन्तर्गत वाद के निस्तारण में महत्त्वपूर्ण है जबकि इस पर किसी भी पक्ष द्वारा ध्यान नहीं दिया गया है। परिवाद में संरक्षण अधिकारी, पुलिस तथा परामर्ष दाता की भूमिका नहीं थी।

ifjokn& 2

घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005 के अन्तर्गत रेखा (बदला हुआ नाम) द्वारा 1.11.2010 माननीय अतिरिक्त मुख्य मजिस्ट्रेट क्रम. सं. 2 उदयपुर के समक्ष एक परिवाद प्रस्तुत किया गया। परिवाद के साथ ही अन्तरिम राहत का परिवाद भी प्रस्तुत किया। प्रार्थीया द्वारा अपने अधिवक्ता के माध्यम से यह परिवाद प्रस्तुत किया गया है। अधिवक्ता द्वारा अधिनियम के निर्धारित प्रारुप के मुख्य बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए तैयार किया गया है। माननीय न्यायालय द्वारा एक अधिवक्ता को संरक्षण अधिकारी के रूपा में नियुक्त किया गया। लगभग छः वर्ष से यह परिवाद लम्बित है। प्रार्थीया द्वारा इस विचाराधीन अवधि में पाँच बार अन्तरिम राहत का आवेदन किया

है जिसमें न्यायालय द्वारा प्रार्थीया को उसके निवास स्थल पर किसी भी प्रकार की दखलबाजी न हो उसकी राहत दी गई। प्रार्थीया द्वारा माँगे गए अन्य राहतों को निरस्त फरमाया गया। प्रार्थीया द्वारा इस परिवाद में अपने पति के साथ–साथ एक महिला को भी प्रतिपक्ष बनाया गया जिसमें माननीय न्यायालय ने तथ्यों के अभाव में प्रतिपक्ष के रूप में उसका नाम हटाने का आदेश दिया। सम्पूर्ण विवाद के निस्तारण में अभी तक माननीय न्यायालय द्वारा 61 पेशी दी चुकी है। सम्पूर्ण विवाद के निस्तारण का अध्ययन करने से स्पष्ट है कि प्रार्थीया द्वारा अन्तरिम राहत के जितने भी आवेदन प्रस्तुत किए वो अधिनियम के अन्तर्गत निर्धारित प्रारुप में प्रस्तुत नहीं हुए हैं तथा तथ्यों के अभाव के कारण निरस्त फरमाये गए हैं।

भरण–पोषण का आदेश इसलिए नहीं दिया गया, क्योंकि प्रतिपक्ष द्वारा आयकर के दस्तावेज़ तथा शेयर बाज़ार के दस्तावेज़ लगाकर यह साबित कर दिया कि प्रार्थीया की आय है। इसी तरह मारपीट व अन्य प्रकरणों में भी कोई आदेश तथ्यों के अभाव में नहीं प्राप्त हो सके। परिवाद के अधिकांशः राहत के आवेदन निरस्त फरमाये गए हैं। परिवाद के निस्तारण में अधिक समय लगने का एक मुख्य कारण मूल परिवाद के न्यायालय द्वारा अभी तक पाँच बार अन्तरिम राहत की प्रार्थना का निस्तारण किया जा चुका है। परिवाद के प्रस्तुत तथ्यों से स्पष्ट है कि विवाद का मुख्य कारण आपसी अनबन, शक, महिला मित्र होना तथा नषा आदि है। परिवाद विवाह के लगभग 25 वर्ष के पश्चात् प्रस्तुत हुआ है तथा अपने दोनों पुत्रों के अलावा परिवार का अन्य सदस्य नहीं है। मूलतः यह विवाद वैवाहिक सम्बन्धों में बिखराव के कारण हुआ है तथा वर्तमान में दोनों पृथक–पृथक आवास पर रहने के बावजूद भी एक दूसरे पर आरोप–प्रत्यारोप लगाये हैं। इसी कारण से न्यायालय ने अधिकांशः अन्तरिम राहत के आवेदन को निरस्त फरमाया है। सम्पूर्ण परिवाद में पुलिस की भूमिका नहीं देखी गई है तथा राज्य सरकार द्वारा नियुक्त संरक्षण अधिकारी परिवाद की प्रक्रिया में कहीं भूमिका में नहीं रही है।

ifjokn& 3

दिव्या (बदला हुआ नाम) द्वारा घरेलू हिंसा से महिलाओं संरक्षण अधिनियम 2005 के अन्तर्गत सन् 2008 में एक परिवाद अपने पति सास तथा ननद के विरुद्ध प्रस्तुत किया। विवाह के लगभग छः वर्ष पश्चात् यह परिवाद दर्ज़ करवाया गया। वर्तमान में उसके एक पुत्र है। माननीय न्यायिक मजिस्ट्रेट शहर उत्तर क्रम सं.–2 उदयपुर द्वारा इस परिवाद में 104 पेशी सुनवाई हेतु दे चुका है। परिवाद के साथ अन्तरिम राहत के परिवाद का निस्तारण लगभग सात माह में किया गया। यह परिवाद अधिनियम के निर्धारित प्रारुप को ध्यान में रखते हुए तैयार किया गया है जबकि अन्तरिम राहत का आवेदन निर्धारित प्रारुप में प्रस्तुत नहीं किया गया। प्रार्थीया द्वारा अधिनियम की धारा–18 के अन्तर्गत संरक्षण आदेश, धारा–19 में निवास का आदेश, धारा–20 में मौद्रिक अनुतोष का आदेश पारित करने की प्रार्थना की गई।

अन्तरिम राहत का निस्तारण करते हुए माननीय न्यायालय ने बयान, महिला सुरक्षा एवं सलाह केन्द्र की रिपोर्ट तथा प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर प्रार्थीया को अन्तरिम राहत के रूप में 5000/–रुपये प्रतिमाह भरण–पोषण के रूपा में देने का आदेश दिया गया प्रार्थीया के स्त्रीधन को आदेश के एक माह के भीतर लौटाने तथा उसकी रसीद न्यायालय में प्रस्तुत करने का आदेश दिया गया। भरण–पोषण की राशि प्रार्थीया के न्यायालय में प्रस्तुत परिवाद की तारीख से ही देने का आदेश दिया। वर्तमान में मूल दावे पर बहस चल रही है। सम्पूर्ण परिवाद का अध्ययन करने से स्पष्ट है कि परिवाद लगभग निर्धारित प्रारुप में होने तथा संरक्षण अधिकारी की रिपोर्ट प्रस्तुत होने के कारण अन्तरिम राहत लगभग सात माह में प्राप्त हो सकी।

प्रार्थीया को विपक्षीगण रखना चाहता है, किन्तु प्रार्थीया की सुरक्षा के कारण माननीय न्यायालय ने विपक्षीगण के इस तर्क को स्वीकार नहीं किया। (न्यायालय ने उस तर्क को भी अस्वीकार कर लिया जिसमें प्रार्थीया द्वारा पूर्व में भारतीय दण्ड संहिता की धारा–498 (क) के अन्तर्गत दर्ज़ परिवाद के सम्बन्ध में रखा गया था)। उक्त परिवाद के निस्तारण अन्तरिम राहत के रूप में पुत्र की शिक्षा तथा स्वयं की चिकित्सा तथा खाने–पीने व अन्य मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु भरण–पोषण राशि का निर्धारण किया गया है। आदेश के क्रियान्वयन हेतु पुलिस विभाग को इसकी प्रतिलिपिनहीं भेजी है। सम्पूर्ण परिवाद की सुनवाई प्रक्रिया में परामर्शदाता तथा पुलिस की भूमिका नगण्य रही है।मूल परिवाद के निस्तारण में देरी का मुख्य कारण सुनवाई अवधि के दौरान प्रस्तुत विभिन्न प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया जाना तथा अधिवक्ताओं का उन्हीं प्रार्थनापत्र की सुनवाई पर विशेष ध्यान देना रहा है।

ifjokn& 4

प्रेमलता (बदला हुआ नाम) ने अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट क्रम. सं. 2 उदयपुर में घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 के अन्तर्गत मूल परिवाद के साथ अन्तरिम राहत का परिवाद भी दिनाँक 4.5.2013 को प्रस्तुत किया। माननीय न्यायालय द्वारा लगभग 21 पेशी सुनवाई हेतु दी जा चुकी है। प्रार्थीया को अभी तक किसी भी तरह की राहत नहीं मिली है। प्रार्थीया द्वारा अपने पति के विरुद्ध ही परिवाद प्रस्तुत किया गया है। प्रार्थीया के नौ वर्ष का एक लड़का है जो विपक्षी अर्थात् पति के पास है। प्रार्थीया द्वारा परिवाद के माध्यम से अधिनियम की धारा–18 के अन्तर्गत संरक्षण आदेश, धारा–19 में निवास का आदेश, धारा–20 में मौद्रिक अनुतोष तथा धारा–21 में पुत्र की अभिरक्षा आदेश की प्रार्थना की गई। विवाद के लगभग चार वर्ष पश्चात् यह परिवाद प्रस्तुत किया गया है। परिवाद को निरस्त करने के लिए एक प्रार्थना पत्र माननीय न्यायालय को प्रस्तुत किया गया जिसमें यह तर्क दिया गया कि परिवाद एक वर्ष से अधिक समयावधि के पूर्व का विवाद है तथा लगभग चार वर्ष से दोनों पृथक्–पृथक् निवास कर रहे हैं, ऐसी स्थिति में प्रार्थीया द्वारा प्रस्तुत घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005 के अन्तर्गत विपक्षी के विरुद्ध परिवाद नहीं

लाया जा सकता है। लगभग 2 वर्ष के पश्चात् माननीय न्यायालय ने विपक्षी के इस प्रार्थनापत्र को अस्वीकार कर निरस्त फरमाया। सम्पूर्ण परिवाद का अध्ययन करने से स्पष्ट है कि मूल परिवाद तथा अन्तरिम राहत का परिवाद इसलिए निस्तारित नहीं हो सका, क्योंकि विपक्षी द्वारा परिवाद को निरस्त करने का प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया गया जिसका निस्तारण पहले होना था।

प्रार्थीया का परिवाद निर्धारित प्रारुप में नहीं होना इस बात का द्योतक है कि प्रार्थीया को अधिनियम की विस्तृत जानकारी नहीं है और न ही प्रार्थीया के अधिवक्ता ने संरक्षण अधिकारी की नियुक्ति करवायी। सम्पूर्ण परिवाद में संरक्षण अधिकारी की भूमिका नहीं होना निर्धारित प्रारुप का अभाव, परामर्षदाता व पुलिस की भूमिका नगण्य रही। दोनों पक्षों की ओर से अधिवक्ता द्वारा पैरवी की गई हैं।

ifjokn& 5

घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम, 2005 के अन्तर्गत सायरा ने अपने पति, ससुर, सास तथा अपने देवर के विरुद्ध एक परिवाद अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट क्रम.सं. 2 में प्रस्तुत किया गया है। परिवाद निर्धारित प्रारुप में तैयार करने की कोशिश की गई। परिवाद में प्रार्थीया द्वारा अधिनियम की धारा–18 के अन्तर्गत संरक्षण आदेश, धारा–20 के अधीन आर्थिक अनुतोष धारा–21 में सन्तान की अभिरक्षा आदेश के लिए आवेदन किया गया। प्रार्थीया द्वारा धारा–19 के अन्तर्गत निवास हेतु आदेश की प्रार्थना नहीं की गई। इनका वैवाहिक जीवन मुस्लिम रीति रिवाज से 1994 में प्रारम्भ हुआ। वर्तमान में दो पुत्र व एक पुत्री है जो प्रार्थीया के साथ प्रार्थीया के माता–पिता के निवास स्थल पर रह रहे हैं। सन् 2009 में पति व पत्नी के मध्य हुए विवाद के कारण दोनों स्वतन्त्र रहने लगे। अन्तः प्रार्थीया द्वारा 12.8.2010 को घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 के तहत परिवाद दर्ज़ किया गया। इससे पूर्व उसने भारतीय दण्ड संहिता 1860 के 498(क), 406 व 323 में वाद दर्ज़ करवाया साथ ही साथ अपराध की धारा–125 के तहत भरण–पोषण का दावा प्रस्तुत किया। सम्पूर्ण परिवाद की सुनवाई हेतु माननीय न्यायालय द्वारा 55 पेशी दी जा चुकी है। सम्पूर्ण परिवाद का अध्ययन करने से स्पष्ट है कि परिवाद में संरक्षण अधिकारी की नियुक्ति नहीं की गई। इसकी माँग प्रार्थीया के अधिवक्ता द्वारा भी नहीं की गई। संरक्षण अधिकारी की नियुक्ति के अभाव में अभी तक घरेलू घटना रिपोर्ट तैयार नहीं हो सकी। परिवाद के निस्तारण में पुलिस तथा परामर्शदाता की भूमिका कहीं पर भी उल्लेखित नहीं है।

परिवाद के निस्तारण में देरी का मुख्य कारण यह रहा है कि विपक्षी पेशी की तिथियों पर उपस्थित नहीं हुआ है। बार–बार चेतावनी के बाद भी विपक्षीगण पेशी पर उपस्थित नहीं हुए। अन्तः न्यायालय ने दिनांक 9.7.2015 एक पक्षीय कार्यवाही करने की तिथि निर्धारित की जिस पर विपक्षीगण ने एकपक्षीय कार्यवाही को अपास्त करने के लिए एक आवेदन किया। उक्त आवेदन का निस्तारण करते हुए न्यायालय ने

विपक्षीगण पर 3000/–रुपये हर्जाना राशि प्रार्थीया को देने का आदेश दिया तथा यह हर्जाना राशि प्रकरण के विलम्ब करने की क्षतिपूर्ति के रूप दिया गया तथा न्यायालय ने यह आदेश भी दिया कि विपक्षीगण ऐसा कोई भी अनावश्यक प्रार्थना पत्र न्यायालय में प्रस्तुत नहीं करेंगे जो परिवाद को निस्तारण करने में देरी करता है। जुलाई 2015 तक इस परिवाद में प्रार्थीया को अन्तरिम या स्थायी राहत नहीं मिल सकी। परिवाद के निस्तारण में देरी का एक मुख्य कारण यह भी रहा कि मुख्य परिवाद के अलावा पेशी की तिथि पर नवीन प्रार्थना पत्र प्रस्तुत कर दिए जाते हैं। उक्त प्रार्थना पत्र के निस्तारण के कारण ही मुख्य परिवाद के निस्तारण में देरी हो रही है तथा परिवाद में घरेलू घटना रिपोर्ट तथा परामर्शदाता के अभाव में न्यायालय को सम्पूर्ण प्रक्रिया को सुनना पड़ रहा है।

fu"d"k

उपर्युक्त वैयक्तिक अध्ययनों को प्रतीकात्मक आधार पर प्रस्तुत किए गए है। जो परिस्थितियों के साक्ष्य है। प्रश्न यह है कि ऐसी हिंसा का निदान क्या हो सकता है इस आधार पर घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम के क्रियांवयन की स्थिति का प्रीक्षण किया जा सकता है। भारत में घरेलू हिंसा की रोकथाम के लिए 2005 में घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम बनाया गया तथा इसके क्रियान्वयन के लिए नियम 2006 में बनाये गए। इस अधिनियम में घेरलू हिंसा की रोकथाम के लिए कई क़ानूनी प्रावधानों एवं संरक्षण आदेशों की व्यवस्था की गई। साथ ही साथ इस अधिनियम को क्रियान्वित करने के लिए कई अभिकरणों को जोड़ा गया। अधिनियम के अन्तर्गतही विभिन्न अभिकरणों की शक्तियों एवं भूमिका को रेखांकित किया गया है। इस अधिनियम में घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम के क्रियान्वयन स्थिति का पता लगाने का प्रयास किया है। न्यायालय के निर्णयों से संरक्षण अधिकारी की निश्क्रिय भूमिका उजागर होती है। न्यायालय में संरक्षण अधिकारी की उपस्थिति नहीं होने के कारण न्यायालय के आदेश से महिलाओं को समय पर राहत नहीं मिल रही है।

- वैयक्तिक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि संरक्षण अधिकारी के सम्बन्ध में व्यथित महिलाओं को जानकारी नहीं है। संरक्षण अधिकारी की सूचना का प्रचार-प्रसार नहीं हुआ है। व्यथित महिला को संरक्षण अधिकारी के बारे में जानकारी नहीं होने के कारण उन्हें अधिवक्ताओं पर निर्भर रहना पड़ रहा है।
- संरक्षण अधिकारी की निष्क्रिय भूमिका के कारण व्यथित महिलाओं के परिवाद निर्धारित प्रारुप में प्रस्तुत नहीं हो पा रहे हैं। न्यायालय में प्रस्तुत परिवादों के अध्ययन में संरक्षण अधिकारी की निष्क्रिय भूमिका उजागर होती है।
- न्यायालय द्वारा लिखी गई कार्यवाही के विवरण से ही स्पष्ट है कि घरेलू हिंसा

के परिवाद में संरक्षण अधिकारी की भूमिका का निर्वाह नहीं हो पा रहा है। संरक्षण अधिकारी उक्त कार्यवाही में नदारद पाये गए।

- सेवाप्रदाता को घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम के अन्तर्गत घरेलू घटना रिपोर्ट तैयार करने का दायित्व सौंपा गया है उस दायित्व का निर्वाह न्यायालय में दर्ज़ परिवादों की तुलना में नाममात्र हुआ है।
- न्यायिक निर्णयों में कहीं पर भी सेवाप्रदाता को इंगित नहीं किया गया है न सेवाप्रदाता की भूमिका के सम्बन्ध में कोई तथ्य सामने आया।
- न्यायालय की कार्यवाही विवरण में सेवाप्रदाता का कहीं पर भी उल्लेख नहीं है। अतः सेवाप्रदाता की न्यायालय में उपस्थिति लगभग शून्य रही है।
- वैयक्तिक अध्ययन से भी यह तथ्य उभरकर आया है कि सेवाप्रदाता की भूमिका सेवाप्रदाता के रूप में कहीं पर भी नहीं देखी गई।
- न्यायिक कार्यवाही विवरण में पुलिस की भूमिका के संदर्भ में कोई भी तथ्य उल्लेखित नहीं है। घरेलू हिंसा के संदर्भ में कभी भी पुलिस न्यायालय में उपस्थित नहीं हुई है।
- परिवादों में पुलिस की भूमिका को लेकर कोई टिप्पणी नहीं की गई है किसी भी परिवाद में व्यथित महिला द्वारा पुलिस को आदेषित करने सम्बन्धी राहत/ अनुतोष नहीं मांगा जाता है।
- घरेलू हिंसा के एक चौथाई परिवादों के नोटिस पुलिस द्वारा तामील करवाये जाते हैं।
- न्यायालय में विचारधीन परिवादों में अधिकांश व्यथित महिलाओं द्वारा अधिवक्ता की नियुक्ति कर रखी है। अधिवक्ता की नियुक्ति में तीन तरह से हुई है। पहली स्वयं व्यथिता द्वारा, द्वितीय महिला सुरक्षा एवं सलाह केन्द्र द्वारा तथा तृतीय विधिक सहायता प्राधिकरण द्वारा हुई है।
- अधिवक्ता द्वारा घरेलू हिंसा के सम्बन्ध में जो परिवाद तैयार कर न्यायालय में प्रस्तुत किए हैं, वो लगभग निर्धारित प्रारुप में प्रस्तुत नहीं किए है। अधिवक्ता द्वारा सामान्य परिवादों की भाँति उक्त परिवाद तैयार किया जाता है या फिर निर्धारित प्रारुप का कुछ हिस्सा सम्मिलित करते हुए अपने हिसाब से ही प्रारुप को तोड़ मरोड़ कर परिवाद तैयार किया जाता है।
- संरक्षण अधिकारी के संदर्भ में अधिवक्ता द्वारा कोई मांग न्यायालय में नहीं रखी जाती है। अधिकांश परिवादों में संरक्षण अधिकारी के संदर्भ में अधिवक्ता मौन दिखाई दिए। संरक्षण अधिकारी की नियुक्ति में अधिवक्ताओं की कोई रुचि नहीं है।

- अधिवक्ता द्वारा लगभग समान घटना क्रम को रेखांकित कर अधिकांश परिवाद न्यायालय में प्रस्तुत किए जाते हैं। अधिवक्ता द्वारा परिवाद में परिवादियों की पीड़ा को वास्तविक स्वरुप में कम प्रस्तुत किया जाता है। परिवाद तैयार करने में अधिवक्ता अपनी निर्धारित परिपाटी एवं धारणा को ज़्यादा महत्त्व देते हैं।
- जिन परिवादों में घरेलू घटना रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की गई उन परिवादों में घरेलू घटना रिपोर्ट को लेकर ज़्यादा संवेदनशील नहीं रहते हैं।
- न्यायालय की कार्यवाही विवरण में अधिवक्ता की भूमिका एवं संवेदनशीलता बहुत ही कम दिखाई पडती है। अधिवक्ता त्वरित न्याय के लिए कोई रुचि नहीं दिखाते हैं। आमतौर पर केवल दोनों पक्ष के अधिवक्ता पेशी की तारीख लेने में ज़्यादा रुचि रखते हैं।
- अधिवक्ता घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम के प्रावधानों का उपयोग करने में ज़्यादा रुचि नहीं रखते हैं।
- अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार परामर्श दाता की नियुक्ति करवाने में अधिवक्ता द्वारा किसी भी प्रकार की मांग नहीं रखी जाती है। न्यायालय का इस ओर कभी भी ध्यान केन्द्रित नहीं करवा जाता है।
- न्यायालय के अधिकांश निर्णय परामर्श रिपोर्ट के अभाव में ही पारित हुए हैं।
- न्यायालय में प्रस्तुत परिवाद द्वारा शत् प्रतिशत व्यथित महिलाओं ने भरण–पोषण अर्थात् आर्थिक अनुतोष की राहत माँगी है। भरण–पोषण साथ-साथ तीन चौथाई महिलाओं ने क्षतिपूर्ति आदेश अनुतोष के रूप में की राहत मांगी है। पीड़ित महिलाएँ एक से अधिक अनुतोष चाहती हैं।
- घरेलू हिंसा सम्बन्धी मूल परिवादों के निस्तारण में काफ़ी समय लग रहा है। अन्तरिम राहत के प्रार्थनापत्र में मूल परिवाद के निस्तारण से कम समय लग रहा है, किन्तु त्वरित न्याय नहीं मिल पा रहा है।
- घरेलू हिंसा सम्बन्धी परिवादों में घरेलू घटना रिपोर्ट प्रस्तुत करने हेतु आवश्यक निर्देष न्यायालय द्वारा जारी नहीं किए जाते हैं जिसके कारण संरक्षण अधिकारी अपने क़ानूनी दायित्वों का निर्वाह करने से बच रहे हैं।
- संरक्षण अधिकारी की न्यायालय में उपस्थिति को लेकर न्यायालय संवेदनशील नहीं हैं। संरक्षण अधिकारी की अनुपस्थिति को नजर अन्दाज किया जाता है।
- न्यायालय द्वारा घरेलू हिंसा के मामले में पुलिस को पर्याप्त निर्देष नहीं दिए जाते हैं जिसके कारण पुलिस घरेलू हिंसा के मामले में सक्रिय भूमिका नहीं निभा पाती हैं।

- अधिवक्ता द्वारा निर्धारित प्रारुप में परिवाद प्रस्तुत नहीं करने पर भी न्यायालय कोई टिप्पणी नहीं करता है। निर्धारित प्रारुप में परिवाद नहीं होने के कारण न्यायालय को निर्णय लेने में काफ़ी समय लगता है। न्यायालय का इस क्षेत्र में काफ़ी लचीला व्यवहार देखा गया।
- न्यायालय द्वारा व्यथित महिलाओं को जो अनुतोष दिए जा रहे हैं उनके क्रियान्वयन हेतु न्यायालय सक्रिय नहीं हैं। अधिकांश निर्णयों में केवल प्रार्थी का ही एक प्रति उपलब्ध करवाने का आदेश दिया जाता है। निर्णय में संरक्षण अधिकारी, सेवाप्रदाता एवं पुलिस को जिम्मेदारी सम्बन्धी आदेश नहीं देने कें कारण वे उनकी भूमिका के निर्वहन से मुक्त हो जाते हैं।
- घरेलू हिंसा सम्बन्धी परिवाद तैयार करने के महत्त्वपूर्ण भूमिका संरक्षण अधिकारी की है, किन्तु उक्त भूमिका का निर्वहन अधिवक्ता व महिला सुरक्षा व सलाह केन्द्र द्वारा किया जा रहा है।
- घरेलू हिंसा से व्यथित अधिकांश महिलाओं द्वारा अपने परिवाद में एक से अधिक रिश्तेदारों के विरुद्ध प्रताड़ना का आरोप लगाया है। सर्वाधिक आरोप पति, सास–ससुर, ननद, जेठ एवं जेठानी आदि पर लगाए हैं। कुछ मामलों में मामा–ससुर, फुफा ससुर को भी सम्मिलित किया हैं।
- घरेलू हिंसा की शुरुआत सर्वाधिक मामलों में पति–पत्नी द्वारा चरित्र पर शक करने से होती है। लगभग यह आरोप सभी वैयक्तिक अध्ययन एवं परिवादों में लगाया गया है।
- लगभग सभी परिवादों एवं वैयक्तिक अध्ययनों में दहेज मांगने के तथ्य सामने आए हैं। इससे भी 2 लाख से लेकर 10 तक नकद देने की मांग सर्वाधिक पायी गई है।
- घरेलू हिंसा के पश्चात् व्यथित महिलाओं को निवास स्थल से बेदखल करने की प्रवृत्ति सर्वाधिक पायी गई है।
- अधिकांश व्यथित महिलाएँ घरेलू हिंसा के पश्चात् अपने पीहर में निवास कर रही हैं।

l>ko ,o j.kuhfr;k &

1. घरेलू हिंसा संरक्षण अधिनियम से जुड़े संरक्षण अधिकारियों, सेवा प्रदाताओं, अधिवक्ताओं एवं मजिस्ट्रेटो को एक व्यावहारिक प्रशिक्षण देकर इसकी मूल भावना एवं उद्देश्यों से अवगत कराने की आवश्यकता है।
2. अधिनियम के मूल सहयोगी तथा परिवादिया व न्यायालय के मध्य कड़ी के स्तम्भ

संरक्षण अधिकारी को उनकी नैतिक एवं क़ानूनी जिम्मेदारियों के निर्वाहन का पाठ पढ़ाने की नितान्त आवश्यकता है।

3. राजस्थान सरकार को अधिनियम को व्यावहारिक रूप में लागू करने के लिए अन्य राज्यों की भांति स्वतन्त्र संरक्षण अधिकारियों की भर्ती करके उन्हे इस दायित्व के निर्वाह की भूमिका देने की आवश्यकता है।

4. घरेलू हिंसा से महिलाओं के संरक्षण अधिनियम के अन्तर्गत प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए उन्हें अन्य अधिनियमों की न्यायिक प्रक्रिया का हिस्सा बनाने से रोकना होगा।

5. न्यायिक मजिस्ट्रेटों को इस अधिनियम को संवेदनशीलता के साथ सुनने, निर्णय करने में पहलकदमी करनी चाहिए।

6. पुलिस विभाग को इस संबंध में प्रशिक्षण देने, प्रार्थी को संरक्षण अधिकारी तक पहुंचाने तथा न्यायालय के आदेशो की पालना कराने में अपनी भूमिका में संवेदनशीलता होने की आवश्यकता है।

• • •

Hkkjrh; fpfdRlk O;oLFkk % ,d fo'ys"k.k

jtuh xkslkbZ•

'एक है अनार सौ है बीमार' यह मुहावरा भारतीय समाज में सदियों से प्रचलित हैं। अनार एक फल हैं जिसे पौष्टिकता से भरपूर माना जाता हैं। बीमार व्यक्ति के लिए यह फल लाभकारी होता हैं क्योंकि फल में मौजूद पौष्टिक तत्व शरीर के पोषक तत्वों की कमी को दूर करता है। यह मुहावरा कब से समाज में प्रचलन में आया इसकी कोई प्रमाणिक जानकारी तो नही है पर इस पंक्ति का आशय यह है बीमार व्यक्तियों की संख्या तो बहुत ज़्यादा है लेकिन उनके उपचार के लिए फल एक ही हैं। यह कहावत भारत की आम जनता और स्वास्थ्य प्रणाली से संबंधित चिकित्सीय सुविधाओं पर सटीक बैठती है। क्योंकि अभी भी अत्य आधुनिक चिकित्सा प्रणाली केवल बडे शहरों तक सीमित है। ग्रामीण, जनजातीय क्षेत्रों में चिकित्सीय सुविधओं का गंभीर सुविधाओं अभाव हैं। आबादी के धनत्व के हिसाब से बड़े अस्पतालों का निर्माण नहीं हुआ हैं।

जीवन के लिए आवश्यक मूलभूत सुविधाओं पर देश के हर नागरिक का अधिकार हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ने विज्ञान, तकनीक, चिकित्सा विज्ञान में सराहनीय उन्नति की है। लेकिन यह चिंता का विषय हैं कि चिकित्सा विज्ञान में उन्नति करने के पश्चात् तथा देश में दक्ष डॉक्टरों की अच्छी खासी संख्या में उपलब्धता होने के उपरांत भी देश का एक बड़ा वर्ग बीमार होने पर सही समय पर चिकित्सीय सुविधाऐं नहीं मिलने के कारण बीमारी से जूझता रहता हैं या असमय ही काल के ग्रास में समा जाता है। हम इक्कीसवीं सदी के भारत की कल्पना करते है। तकनीक, विज्ञान से समृद्व भारत। पर यह चिंतन का विषय हैं कि देश में आज भी कई बच्चे कुपोषण से ग्रस्त होते हैं। प्रसव के दौरान उचित प्रसूति सुविधा नहीं मिलने के कारण जच्चा–बच्चा की मृत्यु तक हो जाती है। ग्रामीण, दूर दराज के क्षेत्रों में लोग झोला छाप डाक्टरों या नीम हकीमों के पास इलाज के लिए जाते हैं क्योंकि इन क्षेत्रों में कोई अस्पताल या डाक्टर ही नही है। ग्रामीण इलाकों में स्वास्थ्य सेवाओं/सुविधाओं का अत्यंत अभाव है। ऐसे में स्वस्थ तथा विकसित भारत की कल्पना करना व्यर्थ है। अस्वस्थ होने पर हर नागरिक का यह मौलिक अधिकार है कि वह भी स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ उठाए।

भारत में यदि चिकित्सा सेवाओं के संदर्भ में बात की जाए तो इसमें भी गरीबी और अमीरी का अंतर साफ दिखाई पड़ता है। इसमें भी समाज दो भागों में विभक्त है। अमीर व्यक्ति आधुनिक चिकित्सा से युक्त निजी अस्पतालों में, जहाँ इलाज के लिए महँगी फीस ली जाती हैं अपना उपचार आसानी से करा लेते हैं वहीं गरीब व्यक्ति की पहुँच से ये अस्पताल बहुत दूर होते हैं क्योंकि निम्न वर्ग के पास इतना पैसा नही होता कि यहाँ अपना उपचार करा सकें। समाज में फैली आर्थिक असमानता यहाँ भी स्पष्ट रूप

• स्वतंत्र लेखिका, गाजियाबाद

से देखी जा सकती है। भारत में वर्तमान समय में नागरिकों के लिए उपलब्ध स्वास्थ्य सेवाओं तथा चिकित्सा प्रणाली की क्या दशा हैं और अभी इसमें सुधार की कितनी आवश्यकता हैं इस तथ्य को निम्नलिखित कारकों से समझा जा सकता है।

1. **vR;vkèkqfud fpfdRlh; ;=k rFkk mPp rduhdh fpfdRlh; lqfoèkkvk ls ;qDr vLirkyk dk doy cM+s 'kgjk rd lhfer gkuk–** भारत भू–भाग तथा जनसंख्या की दृष्टि से विशालकाय देश है। महानगरों, छोटे शहरों, कस्बों से लेकर ग्रामीण क्षेत्रों में एक बड़ी जनसंख्या निवास करती हैं। लेकिन जब बात आधुनिक चिकित्सीय सुविधाओं से युक्त अस्पतालों की होती है तो यह अस्पताल छोटे शहरों, ग्रामीण क्षेत्रों में वास करने वाले नागरिको की पहुँच से दूर ही होते है। इसका सटीक उदाहरण अखिल भारतीय आयुविज्ञान संस्थान है जो कि भारत का सबसे बड़ा सरकारी अस्पताल हैं। अनुभवी डाक्टरों तथा चिकित्सा तकनीक से युक्त विभिन्न गंभीर बीमारियों की चिकित्सा में अग्रणी पंक्ति में स्थित यह अस्पताल देश की राजधानी दिल्ली में स्थित है। दूसरे राज्यों, कस्बों से लेकर सुदूर भारत में बसे लोग यहाँ अपनी गंभीर बीमारियों के इलाज के लिए आते हैं। चूँकि यह सरकारी अस्पताल है इसलिए इसमें मध्यम तथा निम्न आय वर्ग के मरीज भी बड़ी संख्या में इलाज के लिए आते है। सबसे बडी समस्या दूसरे राज्यों से आने वाले मरीजों को उठानी पड़ती हैं। गंभीर बीमारियों से जूझ रहे व्यक्ति के साथ उसके परिवार का सदस्य भी मरीज के साथ उसकी देखरेख, तीमारदारी के लिए आता हैं। इलाज की पूरी प्रक्रिया में सप्ताह या महीनें लग जाते हैं जिससे मरीज के साथ–साथ उसके साथ आने वाले तीमारदार को भी रहने–खाने की समस्या से जूझना पड़ता है। आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्ग को तो इन समस्याओं से और दो–चार होना पड़ता हैं। होटल आदि में रहने के लिए इस वर्ग के पास इतना पैसा या धन नही होता कि वह वहाँ का किराया आदि चुका सकें। सीमित बजट में दवाईयों आदि का खर्च भी वहन करना पड़ता है। चूँकि अत्य आधुनिक चिकित्सा उपकरणों, विभिन्न स्वास्थ्य सेवाओं के कारण भारत का यह सबसे बड़ा अस्पताल हैं जिसके कारण स्थानीय मरीजों के अतिरिक्त पूरे भारतवर्ष से यहाँ मरीज इलाज के लिए आते है। इस कारण यहाँ मरीजों की भारी भीड़ रहती है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है मरीजों को बीमारियों के साथ–साथ कितनी समस्याओं से जूझना पड़ता होगा। यह उदाहरण प्रमाणित करता हैं कि बेहतर स्वास्थ्य सेवाओं के लिए देश के अन्य क्षेत्रों में निवास करने वाले नागरिको को महानगरो के अस्पतालो पर ही निर्भर होना पड़ता है। इसका कारण यही है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के 69 वर्ष बाद भी सरकारें अति आधुनिक चिकित्सा से युक्त अस्पताल का निर्माण देश के अन्य क्षेत्रों (ग्रामीण, कस्बे, सूदर बसे जिले आदि) में कराने में असफल रही हैं। जिससे इन क्षेत्रों मे बीमार पड़ने वाले मरीजों को भारी दिक्कतों का सामना करना पड़ता हैं।

2. tutkrh; xzkeh.k ifjos'k esa vf'k{kk] LokLF; lsokvksa dh deh rFkk vèkfo'okl ds dkj.k rkaf=d ;k >kyk Nki MkDVjksa ij fuHkZj gksuk%&

ग्रामीण भारत में अशिक्षा, अंधविश्वास तथा स्वास्थ्य सेवाओं के प्रचार प्रसार में कमी के कारण लोग अपने घर के बीमार सदस्य को उपचार के लिए झोला छाप डाक्टरों के पास लेकर जाते है। झोला छाप डाक्टर आम बोल चाल में उस व्यक्ति को कहा जाता हैं जिसके पास किसी भी प्रकार की चिकित्सीय डिग्री नही होती। इसके उपरांत भी वह व्यक्ति गरीब, अशिक्षित लोगों की अज्ञानता का लाभ उठाकर छोटे गली मोहल्लों, ग्रामीण इलाकों में अपनी चिकित्सीय दुकान खोल लेते है। अपनी फीस भी यह मामूली रखते है जिससे निम्न आय वर्ग वाले इनके इलाज की ओर आकर्षित हों। झोलाछाप डाक्टर बड़े शहरों में भी मिलते है। इससे अंदाज़ा लगाया जा सकता हैं अयोग्य व्यक्ति द्वारा बीमार व्यक्ति का इलाज करना कितना खतरनाक हो सकता है। मरीज की जान भी जा सकती हैं। एक पुरानी कहावत भी इस तथ्य को पुख्ता करती है नीम हकीम ख़तरा–ए–जान। समाज में फैले अंधविश्वास के कारण बीमार व्यक्ति के घरवाले अस्पताल जाने की बजाए मरीज़ को तांत्रिक बाबाओं के पास झाड–फूंक करवाने ले जाते है। ये उनकी अंधभक्ति होती हैं। उन्हें पूर्णतः विश्वास होता हैं कि बाबाओं के झाड–फूँक से मरीज भला चंगा हो जाएगा। जहाँ रहन – सहन, जीवन को और अधिक सुविधाजनक बनाने के लिए तकनीक का विकास विस्तार हो रहा है। वहीं समाज में फैले अंधविश्वास अशिक्षा के कारण गंभीर बीमारियों में भी मरीज़ के परिवारगण इन बाबाओं पर विष्वास करते है। गंभीर बीमारियों में उच्च्य चिकित्सीय व्यय के कारण भी गरीब व्यक्ति किसी बड़े अस्पताल में मरीज का इलाज कराने की अपेक्षा जान जोखिम में डालने वाली इस खतरनाक प्रक्रिया को अपनाते हैं। देश के दूर दराज क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं की स्थिति और भी भयावह है। इसमें भारत के ग्रामीण इलाकों के अतिरिक्त जंगलों के आस–पास वास करने वाली जनजाति भी सम्मिलत है। जहाँ आधुनिक चिकित्सा प्रणाली तो दूर की बात हैं, सामान्य स्वास्थ्य सेवाओं का भी अभाव हैं। इस तथ्य को इस उदाहरण द्वारा समझा जा सकता हैं। यहाँ हम भारत के पहाड़ी राज्य उत्तराखण्ड के पौड़ी जिले को उदाहरण स्वरूप लेते है। पौड़ी जिले के मुख्य कस्बा श्रीनगर एवंम स्वंय पौड़ी में बड़े सरकारी अस्पताल है। पौड़ी जिले में ही कितने गाँव होगें जो चिकित्सीय सुविधाओं के लिए इन अस्पतालों पर निर्भर है। भौगोलिक दुर्गमता के कारण अचानक बीमार पड़ने या चोटिल होने पर तत्काल इन अस्पताल तक नही पहुँचा जा सकता। हालांकि अब कई गाँव मोटर मार्ग से जुड़े हैं। फिर भी अनिश्चतता बनी रहती हैं। कई बार इन अस्पतालों में आधुनिक चिकित्सीय उपकरण उपलब्ध नही होने पर, डाक्टर की कमी आदि के कारण मरीज़ को राज्य की राजधानी देहरादून स्थानान्तरित कर दिया जाता हैं। इस उदाहरण से दूर–दराज़ बसे गाँवों की चिकित्सीय सुविधाओं की कमी का अंदाज़ा आसानी से लगाया जा सकता हैं कि गंभीर रूप से बीमार या चोटिल व्यक्ति को सही समय पर उपचार नही मिलने के कारण उसकी जान

को कितना बड़ा ख़तरा हो सकता है। यह देश की विडंबना हैं कि इक्कीसवीं सदी के भारत में अभी भी मरीज़ इलाज के लिए अस्पतालों के चक्कर काटने में ही बीच में दम तोड़ देता हैं। कमोबेश यही स्थिति भारत के सभी राज्यों के ग्रामीण क्षेत्रों की हैं। प्रशासन को अब इस दिशा में गंभीरता से सोचना चाहिए। स्वास्थ्य योजानाओं का कार्यरूप इस तरह बनाया जाना चाहिए कि देश के किसी भी क्षेत्र में वास करने वाले हर नागारिक के पास स्वास्थ्य सेवा अविंलब पहुँचे। इसके लिए सभी राज्य सरकारों को पहल करनी चाहिए। अपने–अपने राज्य की आबादी के क्षेत्रों को चिन्हित कर उसी के अनुसार स्वास्थ्य केन्द्रों/अस्पतालो का निर्माण करना चाहिए।

3. fpfdRl dk dh gMrky] cgky ejht%& हमारे देश में अक्सर लोगों को कहते सुना जा सकता हैं किसी भी परिस्थिति में मध्यम वर्गीय या गरीब आदमी ही मरता है। अलग–अलग घटित घटनाओं के संदर्भ में अक्सर यह बात कही जाती हैं। गरीब, मज़दूर, मध्यम आय वर्ग वाला समाज का तबका ज़्यादातर इलाज के लिए सरकारी अस्पतालों पर निर्भर रहता हैं। क्योंकि यहां फ़ीस नहीं के बराबर होती है। सरकारी अस्पतालों में मरीजों की भारी भीड़ जुटती हैं। लंबी–लंबी कतारें होती है। कम आय वर्ग के लोगों के लिए यह अस्पताल तथा यहाँ के डाक्टर ईश्वर से कम नही होते लेकिन स्थिति तब भयावह हो जाती हैं जब अपनी माँगे मनवाने के लिए अस्पताल के चिकित्सक हड़ताल पर चले जाते हैं। अपना मत रखने का सबको अधिकार हैं लेकिन ऐसी परिस्थिति में बीमार व्यक्ति की दशा और खराब हो जाती हैं। हड़ताल के कारण सही समय पर उपचार नही मिलने के कारण बीमार व्यक्ति दम तक तोड़ देता है। समाचार पत्रों में अक्सर चिकित्सीय हड़ताल तथा उसके कारण मरीज़ की मृत्यु की ख़बरें छपती हैं। यहाँ यह प्रश्न उठता हैं इन मौतों का जिम्मेदार कौन हैं? सरकार, प्रशासन, अस्पताल या चिकित्सक। यह एक गंभीर विषय है। दुखद है कि किसी भी सरकार ने इस दिशा में ठोस प्रयास नहीं किया है। यहाँ कुछ प्रश्न उठते हैं:–

1. क्या चिकित्सीय क्षेत्र में जहाँ किसी के जीवन को बचाना ही मुख्य ध्येय हों, हड़ताल की अनुमति होनी चाहिए?
2. अस्पताल पहुँचे मरीज़ का हड़ताल के कारण उपचार नही करना क्या मरीज़ के मौलिक अधिकार का उल्लंघन नही है।
3. क्या प्रशासन तथा चिकित्सीय मंडल के बीच एक स्वस्थ संवाद कायम नही होना चाहिए जिससे चिकित्सक अपने मत को सही प्रकार से प्रशासन के सामने रख सके जिससे हड़ताल की नौबत ही नही आए। इसके लिए दल या कमेटी गठित की जा सकती है।

4. अपनी माँगे मनवाने का क्या हड़ताल ही एकमात्र विकल्प है? चिकित्सा क्षेत्र से जुड़े चिकित्सकों को भी इस विषय पर गंभीरता से मनन करना चाहिए क्योंकि उनकी यह मानवीय पहल किसी का अनमोल जीवन बचा सकती है। उपर्युक्त बिंदुओं पर गंभीरता से विचार होना चाहिए।

4. fpfdRlh; {k= e c<rk 0;olk;hdj.k& हमारे समाज में डाक्टर को ईश्वर का दर्जा दिया जाता हैं। कहते है ईश्वर के बाद डाक्टर ही वह व्यक्ति होता है जो मरते हुए इंसान को अपनी चिकित्सीय दक्षता से नया जीवन देता है। इसलिए चिकित्सीय पेशे को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता हैं। परोपकार की भावना इसमें निहित है। परिवर्तन के इस युग में बदलते सामाजिक, आर्थिक ढाँचे के कारण यह क्षेत्र भी व्यवसायीकरण के दौर से अछूता नही रहा हैं। यह क्षेत्र भी ज़्यादा से ज़्यादा आमदनी उत्पन्न करने का जरिया बन गया हैं। इसके ताजा उदाहरण है, गली, मौहल्लों, कस्बों, शहरों में निजी चिकित्सालय, नर्सिगं होम जहाँ महँगी फीस लेकर इलाज किया जाता है। अस्पताल की जगह, चिकित्सीय सुविधाओं आदि को ध्यान में रखकर ही इन निजी अस्पतालों की फीस निर्धारित होती हैं। फीस निर्धारण का पूरा अधिकार अस्पताल के निजी मालिकों का ही होता है। इसी के अन्तर्गत आधुनिक चिकित्सीय सुविधाओं से युक्त महानगरों में स्थित निजी बड़े अस्पताल आते हैं। ये अस्पताल गरीब व्यक्ति की पहुँच से बाहर ही होते हैं। जब स्वास्थ्य सेवाओं पर हर व्यक्ति का अधिकार है तो गंभीर बीमारियों में प्रयुक्त होने वाले आधुनिक चिकित्सीय उपकरणों, दवाईयों पर गरीब पृष्ठ भूमि से आने वाला बीमार व्यक्ति इनसे वंचित क्यों रहता है? यहाँ निजी मालिकों द्वारा यह तर्क दिया जाता हैं कि निजी खर्चे पर वह अस्पताल के भवन का निर्माण करते हैं। अति आधुनिक चिकित्सीय उपकरण कई बार विकसित देशों से आयतित होते हैं। ऐसे में कम फीस या मुफ्त में इलाज नही किया जा सकता। निजी अस्पताल व्यवसाय की दृष्टि से ही खोले जाते हैं। इसलिए जो मरीज़ यहाँ की महँगी फीस वहन कर सकता है। उसी का इलाज इन अस्पतालों में होता है। आप ने कई बार अपने आस–पास यह सुना होगा अमुक व्यक्ति के गंभीर रूप से बीमार होने पर उसके इलाज में घर का सारा जेवर, सामान या घर तक बिक गया। भारत में अति आधुनिक चिकित्सा प्रणाली इतनी महंगी क्यों है? जिसका वहन केवल एक खास वर्ग ही कर पाता है। वर्तमान समय में जनसंख्या के अनुपात में क्या देश में स्वास्थ्य सेवाएँ, चिकित्सीय सुविधाऐं सभी नागरिकों के लिए जिसमें कि उच्च्य, मध्यम, निम्न वर्ग सम्मिलत है, समान रूप से उपलब्ध है? इस प्रश्न का उत्तर बहुतायत में 'नहीं' होगा। उपर्युक्त तथ्य इस बात की पुष्टि करते हैं। ऐसे में इस दिशा में सरकारों को सभी नागरिकों के लिए ठोस चिकित्सा प्रणाली लागू करने की आवश्यकता है। देश में चिकित्सीय सुविधाओ तथा स्वास्थ्य सेवाओ को और अधिक बेहतर बनाने के लिए इन सुझावों पर अमल किया जा सकता हैः–

d- xkeh.k {k=k e MkDVjk dh fu;fDr%& सरकार को स्वास्थ्य योजनाऐं बनाते समय इस बात का मुख्य रूप से ध्यान रखना चाहिए कि ग्रामीण, सुदूर क्षेत्रों में कुशल डॉक्टरों की तैनाती हों जिससे इन क्षेत्रों में वास करने वाले नागरिकों को बीमार पड़ने की दषा में कुशल चिकित्सक से इलाज मिल सके। इसके लिए गाँवों में ज़्यादा से ज़्यादा स्वास्थ्य केन्द्र खोले जाए तथा इन केन्द्रों पर कुशल डॉक्टरों, स्वास्थ्य कर्मियों की नियुक्ति की जाए।

[k- LokLF; lokvk ;ktukvk dk ipkj ilkj fd;k tk,%& हर साल देश में नई स्वास्थ्य योजनाएँ बनती है। इन योजनाओं को सफल तभी कहा जाएगा जब ये जन–जन तक पहुँचे और प्रत्येक नागरिक इससे लाभाविन्त हों। इसके लिए यह आवश्यक हैं इन योजनाओं/सेवाओं का अधिक से अधिक प्रचार प्रसार किया जा सकें। यहाँ पोलियो उन्मूलन अभियान का सफल उदाहरण दिया जा सकता है। "दो बूंद जिन्दगी की" इस नारे का यह अभियान सर्वप्रथम 1988 में आरम्भ हुआ और आज हम "पोलियो उन्मूलन अभियान को सफल होते देख रहे है। इसलिए कहा जा सकता है योजना का सफल होना तभी मान जाएगा जब वह जन–जन तक पहुँचे।

x- f'k{kk dk ipkj ilkj%& झोल छाप डॉक्टरो/बाबा तांत्रिकों द्वारा मरीजों का जो शोषण होता है उसका एक मुख्य कारण अशिक्षा भी है। अज्ञानता, अंधविश्वास के कारण ही लोग उनके चंगुल में फंस जाते है। इसलिए शिक्षा का प्रचार–प्रसार भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम होगा क्योंकि व्यक्ति जब शिक्षित होगा तो वह अपने अधिकार, योजनाओं, स्वास्थ्य सेवाओं को और अधिक ढंग से जान पाएगा।

?k- LoPNrk vfHk;ku%& यह हम सब भली प्रकार जानते है कि अच्छा स्वास्थ्य और स्वच्छता दोनों एक दूसरे के पूरक है। कई बीमारियाँ गंदगी साफ सफाई नही रखने के कारण ही उपजती है। स्वच्छता के प्रति लापरवाही बीमारियों के रूप में प्रकट होती हैं। दूषित खाना तथा पानी, आस–पास गंदगी लोगों को अक्सर बीमार कर देता हैं। स्वास्थ्य सेवाओं के प्रसार के साथ–साथ लोगों को स्वच्छता के प्रति भी जागरूक करना चाहिए। अक्सर स्कूल में मिलने वाले मिलावटी या दूषित भोजन करने से छात्रों के बीमार पड़ने की ख़बरे समाचार पत्रों में आती है। सरकार को इन घटनाओं के लिए जिम्मेदार व्यक्तियों के प्रति कड़ी क़ानूनी कार्यवाही करनी चाहिए। मिलावटी खाद्य सामग्री को बेचने वालो के प्रति कड़े क़ानून का प्रयोग करना चाहिए। क्योंकि मिलावटी खाद्य पदार्थ भारत में कई गंभीर बीमारियों का कारण बन रहे है।

M- cM vLirky rFkk LokLF; dUnk dk fuek.k%& ग्रामीण, जनजातीय, सुदूर क्षेत्रों में बसने वाले नागरिकों से लेकर महानगरों में निवास करने वाले नागरिकों

तक एक ऐसी स्वास्थ्य योजना तैयार की जाए जिसमें भारत के किसी भी क्षेत्र में रहने वाले व्यक्ति को बीमार पड़ने की स्थिति में तुरंत तथा अविलंब इलाज मिल सकें। इसके लिए सरकारों को राज्य, जिला, गाँव, कस्बों को विभाजित कर इन क्षेत्रों में सरकारी अस्पताल का निर्माण करना चाहिए जो सभी चिकित्सीय सुविधओं से युक्त हों। आज़ादी के घनत्व के हिसाब से प्रत्येक राज्य में स्वास्थ्य केन्द्रों का निर्माण होना चाहिए।

p- xjhc fuEu vk; oxl ds ykxks ds fy, LokLF; chek ;kstuk%& प्रशासन को निम्न आय वर्ग के लोगों के लिए स्वास्थ्य बीमा योजना का आंरभ करना चाहिए। हालांकि वर्तमान समय में कुछ बीमा योजनाएँ निम्न आय वर्ग के लिए बनाई गई है। इन योजनाओं को सफल तभी कहा जाएगा जब इस वर्ग से आने वाले अधिक से अधिक लोग स्वास्थ्य बीमा योजनाओं से लाभाविन्त हों। इसके लिए यह आवश्यक है कि ज़मीनी स्तर पर इन योजनाओं का प्रचार प्रसार हो।

N- tPpk cPpk dsUnks ij izf'kf{kr LokLF; dfel;ks dh fu;qfDr gks%& आज भी भारत के ग्रामीण जनजातीय क्षेत्रों में प्रसव दाईयों द्वारा किया जाता है। अप्रशिक्षित दवाईयों द्वारा किया गया प्रसव माँ तथा बच्चे की जान को खतरे मे डाल सकता है। ऐसे में प्रशासन को चाहिए कि वह महिलाओ को इस दिशा में जागृत करें। गाँव के स्वास्थ्य केन्द्रो पर प्रशिक्षित नर्सो, दाईयों की नियुक्ति हों। जिससे प्रसव के समय होने वाली मृत्यु दर को रोका जा सके।

t- laosnu'khy lekt rFkk ekuoh; igy%& सरकारें नागरिकों के लिए कल्याणकारी स्वास्थ्य योजनाऐं बनाती है। कागजों पर बनी इन योजनाओं को तभी सफल माना जाएगा जब ज़मीनी स्तर पर स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार हों। यह सिक्के का एक पहलु है। सरकारें अपना काम करती हैं। स्वस्थ समाज में रहने के नागरिकों के भी कर्त्तव्य होते हैं। आज हमारे समाज को संवेदनशीलता की सबसे ज़्यादा आवश्यकता हैं। सड़क दुर्घटना में जान गँवाने वालों का आंकड़ा देश में दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। इसमें से ज़्यादातर मृत्यु उन घायलों की होती है जिन्हें समय पर अस्पताल पहुँचाने में देरी होती है। सड़क पर घायलों को देखकर आँख मूंद कर आगे बढ़ जाना समाज की असंवेदनशीलता को दर्शाता है। यदि सड़क दुर्घटना में घायल व्यक्तियों की समय पर अस्पताल पहुँचाया जाए तो सड़क दुर्घटना में जान गँवाने वालो का आंकड़ा घट सकता है। ज़्यादा मुनाफ़ा कमाने के चक्कर में खाद्य पदार्थो में मिलावट, नकली दवाईयाँ देश में अब आम बात है। इसकी रोकथाम के लिए कड़े क़ानून है पर मिलावट का व्यवसाय करने वाले ये कारोबारी कभी यह सोचते है कि उनके इस कार्य से कितने परिवारों के चिराग बुझ जाते हैं। कितने लोग गंभीर बीमारियों से ग्रस्त होते हैं। वर्तमान समय में हमारे समाज, समाज में रहने वाले सभी नागरिकों को मानवता के आधार पर

संवदेनशील होने की आवश्यकता हैं। क्योंकि यह मानवीय पहल किसी की जान बचा सकती है।

हम स्वस्थ भारत की कल्पना करते है और ये तभी संभव है जब देश का प्रत्येक नागरिक स्वस्थ हो क्योंकि स्वस्थ नागरिकों से ही स्वस्थ देश का निर्माण होता है।

• • •

iR;{k udn gLrkarj.k vkSj Ñf"k

vf'ouh dqekj•

ifjp; :–

भारत एक कृषि प्रधान देश है। जहाँ अभी भी लगभग साठ प्रतिशत जनसंख्या कृषि या उससे सम्बन्धित कार्यों से सम्बन्धित है। इस प्रकार किसी भी प्रकार की लोक नीति देश के एक बड़े हिस्से के साथ एक बड़े जनसंख्या समूह को भी प्रभावित करती है। यहाँ यह भी ध्यान देने वाली बात हैं कि कृषि कई अन्य उद्योगों के लिए आधर का भी कार्य करती है। हम जानते हैं कि भारत विविधताओं से भरा देश है और यह विविधता कृषि के सन्दर्भ में भी है। यहाँ कृषि में फसल उत्पादन, सिंचाई के तौर तरिकें, भूमी उपयोग कृषि तकनीक, भूमी जोत का आकार, खाद्य उपभोग इत्यादि के स्तर पर कापफी ज़्यादा विविध्ता पाई जाती है। इस कारण कोई भी लोक नीति किसी एक जगह या सन्दर्भ में सफल हो तो यह आवश्यक नहीं है कि वह अन्य दूसरे सन्दर्भो में भी उतने ही परिमाप के साथ सफल ही सिद्ध हो।[1] इसी सन्दर्भ में प्रत्यक्ष नकद हस्तांतरण तथा उसके उपरान्त कृषि के समक्ष खड़ी होने वाली चुनौतियों को देखेंगे।

सभी प्रकार के नकद हस्तांतरण का एक प्रमुख उद्देश्य गरीबी को कम करना होता है।[2] हांलाकि इनमें अन्तर है कि किस प्रकार इन उद्देश्यों को प्राप्त किया जाता है। नकद हस्तान्तरण तंत्रों के एक वर्ग का वर्णन करता है। जिसके द्वारा लाभकों को किसी विशेष वस्तु को खरीदने योग्य आख्रथक रूप से मदद दी जाती है बजाय खुद वस्तु को देने से। [3] विशेषतः यह वस्तु हस्तांतरण से अलग होता है जहाँ राज्य एजेंसियां किसी खास उपभोग सामाग्री या सेवाओं के वितरण या विक्रय में प्रत्यक्ष रूप से संलग्न रहती है जो कि सामान्यतः बाज़ार कीमतों से कम होती है।[4]

नकद हस्तांतरण को अलग–अलग रूपों में देखा जा सकता है वे अशर्तीय या फिर शर्तीय हो सकते हैं। एक अशर्तीय नकद हस्तांतरण लाभकों को नकद के उपयोग के उफपर कोई प्रतिबंध नहीं लगाता है। लाभक यह निर्णय करने के लिए स्वतंत्रा होते हैं कि वे उन्हें किस प्रकार से खर्च करना चाहते हैं। ये हस्तांतरण सार्वभौमिक या किसी खास उप–जनसंख्या जैसे कि गरीब बूढ़े गर्भवती महिला इत्यादि को चिन्हित करने

• सहायक प्रोफेसर, सत्यवती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

1 Ashok kotwal, milind murugkas, bharat Ramaswami. 'PDS Forever?' *Economic & Politcal weekly*, Vol XLVI No 21 May 21, 2011, PP. 72-76

2 Prancesca Bastagli.2011. 'Conditional cash transfess as a tool of social policy', *EPW*, Vol XLVI No 21, May 21-2011 PP. 61-66

3 Sudha Narayan. "A Case for reframing the cash Transfer debate in India*", EPW,*. Vol XLVI No 21, May 21, 2011 PP. 41-48

4 ibid

वाला हो सकता है।[5] भारत में यह पहले से ही कई योजनाओं जैसे कि वृद्धावस्था पेंशन, बेरोजग़ारी भत्ता इत्यादि में सपफलतापूर्वक लागू है। शर्तीय नकद हस्तांतरण योजना आवश्यक रूप से नकद का हस्तांतरण करती है, जो कि घरेलू वर्गो को लक्ष्य करती है, उनके अनिश्चित या विशेष व्यवहारिक प्रतिक्रियाओं के ऊपर।

भारत सरकार ने विगत वर्षो मे नकद हस्तांतरण को विशिष्ट पहचान संख्या से जोड़कर कई योजनाओं में शुरू कर दिया है।[6] सरकार की योजना उसके कोष पर सबसे भारी पड़ रही खाद्यान्न और फर्टिलाइजर सब्सिडी को इस एजेंडा में शामिल करने की है। चूंकि खाद्याान फर्टिलाइजर तथा अन्य सब्सिडी का कृषि से गहरा सम्बन्ध है। इस कारण प्रत्यक्ष नकद हस्तांतरण के कारण कृषि पर पड़ने वाले चुनौतियों का विश्लेषण करने की आवश्यकता है।

ie[k pukfr;k%&

- **ykHkdk dh igpku[7] :–**

प्रत्यक्ष नकद हस्तांतरण होने की दिशा में किसानों का लाभकों के रूप चिन्हित करने में एक गंभीर प्रशासनिक समस्या का सामना करना पड़ सकता है। चूंकि भारत में कृषि जोत भूमि के आधार पर किसानों के प्रकार एंव रूपों में कई प्रकार के अन्तर पाए जाते हैं। यहाँ कृषि में एक बड़े भाग के रूप में वे छोटे किसान संलग्न है जो मुख्यतः बटाई पर भूमि लेकर खेती करते है।[8] ऐसी स्थिति में प्रत्यक्ष नकद हस्तांतरण के रूप में एक बड़ी समस्या वास्तविक किसानों को लक्ष्य करने में हो सकती है। यदि नकद हस्तांतरण का आधार भू–स्वामित्व को बनाया जाएगा तो किसानों का एक बड़ा हिस्सा इससे महरूम हो सकता है। वहीं दूसरी ओर एक असफल भूमि सुधार के आलोक में वास्तविक भूमि के हिसाब से नकद हस्तांतरण करना भी एक अच्छी खासी चुनौती होगी। यदि इसका आधार गरीबी रेखा से नीचे को बनाया जाता है तो भी इससे कृषकों का एक बड़ा हिस्सा अछूता रहने की संभावना है क्योंकि भारतीय कृषि कार्य का एक बड़ा भाग मध्यम तथा बड़े किसानों द्वारा किया जाता है।[9] वहीं दूसरी तरफ परिवारों की वास्तविक संख्या तथा इसका निर्धारण ही एक गंभीर विवाद का विषय है। कुल मिलाकर इससे कृषि उत्पादकता प्रभावित होने का ख़तरा बना रहेगा।

- **udn gLrkrj.k e fjlko] foe[khdj.k rFkk Hk"Vkpkj ,o Ñf"k %&**

प्रत्यक्ष नकद हस्तांतरण के शुरुआत का पूरा आधार ही वस्तु हस्तांतरण में होने

5 ibid

6 इंडिया टुडे, 19 दिसम्बर, 2012 पृ.–19

7 Devesh Kapur. "The Shift to cash Transfers: Running better but on the wrong road?" *EPW* Vol XLVI No 21 May 21, 2011, PP 80-85

8 ibid

9 ibid

वाले रिसाव, विमुखीकरण तथा भ्रष्टाचार को काबू करना है। किन्तु विभिन्न देशों का अनुभव इस दिशा में आँखे खोलने वाला है कि इन आरोपों से प्रत्यक्ष नकद हस्तांतरण भी अछूता नहीं रहा है।[10] प्रत्यक्ष नकद हस्तांतरण को विमुखीकरण से बचाने के लिए यह तर्क दिया जा रहा है कि नकद हस्तांतरण महिलाओं को लक्षित कर के किया जाए।[11] किन्तु हमें भारतीय कृषि के वास्तविक पहलुओं का भी ध्यान रखना होगा जहाँ महिलाएं कृषि में मुख्यतः कृषक मज़दूर के रूप में ही संलग्न है। कृषि सम्बन्धित खरीद–फरोखत से सम्बन्धित कार्य मुख्यतः पुरूषों के हाथों में है तथा कृषि सम्बन्धित निणर्यों में भी उसी की प्रमुख भूमिका होती है। ऐसी स्थिति में कृषि के परिप्रेक्ष्य में प्रत्यक्ष नकद हस्तान्तरण के विमुखीकरण को रोकना एक बड़ी चुनौती होगी।

- iR;{k udn gLrkarj.k ,o mRiknu ykxr

प्रत्यक्ष नकद हस्तांतरण होने से निश्चयतः कृषि में उत्पादन लागत बढ़ेगी फिर इसी के अनुरूप फसल खरीद मूल्य को भी बढ़ाने की माँग होगी जो कि अन्तः छोटे किसानों को प्रभावित करेगा तथा इसका फायदा केवल बड़े किसानों को होगा। अशोक मित्रा यहाँ तर्क देते हैं कि चूंकि छोटे किसान कृषि के बेमौसम समय में मुख्यतः अनाज खरीद के लिए बाज़ार पर ही निर्भर रहना पड़ता है इसके साथ–साथ कृषि मज़दूरी में लगे गरीब कृषकों की मज़दूरी मूल्यवर्ष के अनुपात में नहीं बढ़ेगी।[12] इसके साथ–साथ कृषि उत्पादन की अनिश्चितता की स्थिति में ;बाढ़, सूखा छोटे किसान सबसे अधिक ऐसी स्थिति में प्रभावित होगे। इसके अलावे इस बात का भी यहाँ ध्यान रखना होगा कि फसलों के उत्पादन में वर्ष के परिणाम स्वरूप छोटे किसान एवं गरीब लोगों के पास इतना नकद हस्तांतरण होना चाहिए जिससे वे सब्सिडी प्राप्त अनाजों के अलावा गैर–सब्सिडी प्राप्त अनाजों को खरीदने में भी सक्षम हो सके।[13]

- iR;{k udn gLrkarj.k] cktkj vkj Ñf"k :–

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत राज्य एजेंसिया खरीद, भंडारण तथा वितरण के कार्यो में संलग्न रहती हैं। किन्तु प्रत्यक्ष नकद हस्तांतरण के पृष्ठभूमि में राज्य इन कार्यो से पीछे हट जाएगा तथा ऐसी स्थिति में बाज़ार की भूमिका बढ़ेगी।[14] इससे बाज़ार अपने फायदों के लिए कीमतों को घटाया या बढ़ाया करेंगी। इससे कृषि के समक्ष वही सारी चिंताए खड़ी होगी जो एफडीआई के सम्बन्ध में उठाई जाती रही हैं।

10 Sudha Narayan P-45

11 Ashok Kotwal, Milind Murugkar, Bharat Ramaswami. 'PDS Forever?' *EPW* Vol XLVI No 21 May 21, 2001.PP 72-76

12 Ashok Mitra cited in Ashutosh Varshney: *Democracy, development and countryside: Urban-susal struggle in India,* New delhi, cambridge Univesity press, 1995, pp 120-125

13 See Amartya sen's Interview, The Hindu, Jan 10, 2013

14 Ashok Kotwal............ P- 74

बाजार की बढ़ती भूमिका के परिप्रेक्ष्य में यह भी संभव है कि कृषि फसलों के निर्धारण में बाज़ार की भूमिका बढ़ जाए। इससे ऊंची कीमतों को देखते हुए खाद्य फसलों की तुलना में नकदी पफसलों को बढ़ावा मिल सकता है। जिससे खाद्य पफसलों की कम पैदावार एक अलग प्रकार की समस्या को ही भारत के सामने खड़ा कर देगी।

fofoèk Ñf"k i!.kkyh vkSj iR;{k udn gLrkarj.k%&

भारत में कृषि प्रणाली के सम्बन्ध में कई विविधताएँ पाई जाती है। यहाँ विभिन्न क्षेत्रों में कृषि फसल उत्पादन, भूमि जोत के आकार–प्रकार सिंचाई के तौर–तरीकों, तकनीक, उपभोग स्तर इत्यादि के सन्दर्भ कई असमानताएँ है। इन असमानताओं की अनदेखी कर की गई प्रत्यक्ष नकद हस्तांतरण कृषि उत्पादन को प्रभावित करेगा। उदाहरणस्वरूप बिहार के अधिकांश भाग में कृषि के लिए सिंचाई के वैकल्पिक स्त्रोंत के रूप में डीजल से चालित पम्पसेट पर किसानों की निर्भर रहना पड़ता है ऐसी स्थिति में बिना कोई अन्य वैकल्पिक व्यवस्था किए डीजल को सब्सिडी मुक्त करना या प्रत्यक्ष नकद हस्तांतरण को समरूप बनाना क्षेत्र–विशेष के कृषकों के लिए अन्यायसंगत होने के साथ–साथ कुल कृषि उत्पादकता को भी प्रभावित करेगा।

fu"d"k

इस प्रकार प्रत्यक्ष नकद हस्तांतरण की प्रक्रिया भारत में एक संक्रमण काल से गुज़र रही है। इसे एक सार्वभौमिक नीति के रूप में लागू करने से बचा जाना चाहिए। प्रत्यक्ष नकद हस्तांतरण के कारण भारतीय कृषि के समक्ष खड़ी होने वाली चुनौतियों का भी गहरा विश्लेषण किए जाने की आवश्यकता है। क्योंकि इस एक नीति से प्रभावित होने वाले में अधिकांश जनसंख्या कृषि से सम्बन्धित है। अन्यथा सचमुच बिना किसी रणनीति के नीति का चुनाव, हार के पहले का शोर होगा।

Û Û Û

xkj[kiqj d cgku

ljkt tB•

iLrkouk सद्य घटित गोरखपुर अस्पताल त्रासदी के जख्मों पर हम भले ही कैसी ही मरहम लगाएँ पर यह दुर्घटना विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू. एच. ओ.) की इस बात को दर्पण पर बने प्रतिबिम्ब की भांति साफ करती है कि विश्व भर में कम से कम एक अरब लोग आवश्यकतानुसार स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं को प्राप्त करने में अब भी असमर्थ हैं। इन असमर्थों में अंतरिक्ष में छलांग लगाने का दावा करने वाले और विकास दर बढ़ाने वाले देशों के बच्चे तक शामिल हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन अपने संविधान से यह भी घोषणा करता है कि स्वास्थ्य मानव का आधारभूत अधिकार है और यह कि वह सभी को स्वास्थ्य के उच्चतम स्तर की प्राप्ति सुनिश्चित करने के लिए भी प्रतिबद्ध है। इस प्रकार संगठन के 'सार्वभौमिक स्वास्थ्य पहुंच' द्वारा जाति, धर्म, राजनीतिक विश्वास और सामाजिक–आर्थिक स्थिति के भेदभाव के बिना शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को प्राप्त करना हर मनुष्य का अधिकार है। संयुक्त राष्ट्र संघ प्रत्येक व्यक्ति को वित्तीय कठिनाई से पीड़ित हुए बिना स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए ''सार्वभौमिक स्वास्थ्य पहुंच'' की घोषणा सुनिश्चित करता है। सार्वभौमिक स्वास्थ्य पहुंच का अर्थ किसी देश के किसी भी भाग में बसे नागरिकों की आय के स्तर, सामाजिक स्थिति, लिंग, जाति या धर्म के भेद बिना स्वास्थ्य पहुंच का न्यायसंगत उपयोग सुनिश्चित करना है। इसका उद्देश्य वहन करने योग्य, उत्तरदायी, गुणवत्तापूर्ण यथोचित स्वास्थ्य सेवाओं के आश्वासन को सुनिश्चित करना है। इसमें रोकथाम, उपचारात्मक देखभाल व पुनर्वास देखभाल शामिल हैं।

स्वास्थ्य का अर्थ व्यक्ति के शरीर तथा मानसिकता का स्वस्थ होना है। इसके लिए स्वच्छ वातावरण की आवश्यकता होती है। स्वस्थ स्वास्थ्य का भावार्थ समस्त बीमारियों अथवा उपहतियों से उन्मुक्त रहना है। स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) द्वारा दी गई परिभाषा का उद्धरण उचित प्रतीत होता है। इसमें कहा गया है, ''स्वास्थ्य का संबंध सम्पूर्ण रूप से शारीरिक, मानसिक और सामाजिक रूप से स्वस्थ रहने से है, स्वास्थ्य केवल शारीरिक असमर्थता अथवा रोग मुक्त से ही संबंधित नहीं है। स्वास्थ्य का वास्तविक अर्थ ''स्वास्थ्य के सर्वोच्च मापदण्डों का उपभोग किए जाने से है, स्वास्थ्य प्रत्येक मानव प्राणी का मानव अधिकार है। इसका उपयोग जाति, राजनैतिक विश्वास, आर्थिक और सामाजिक दशाओं के भेदभाव के बिना किया जाना चाहिए।'' मानसिक और शारीरिक स्वरूप के उत्तम स्वास्थ्य की अनिवार्यता व्यक्तित्व के विकास के लिए अपरिहार्य है।

स्वस्थ और उत्तम स्वास्थ्य, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक जीविकोपार्जन, भवन

• शिशु स्वास्थ्य पर शोध–अनुसंधाता (राजस्थान)

निर्माण, भोजन ग्रहण, स्वच्छ वातावरण, समुचित कार्य की शर्तें और विभिन्न स्वतंत्रताओं का उपभोग उदाहरणार्थ–प्रसन्न रहने का अधिकार, समता का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, संरक्षा का अधिकार, किसी भी धर्म का अनुपालन और संघ का गठन, सामाजिक संरक्षा, मानवीय तथा उपयुक्त व्यवहार का अधिकार, अभिरक्षा और कारावास में सभ्यता का अधिकार, निष्पक्ष और त्वरित न्याय अधिकार और समाज में किसी भी परिस्थिति में मानव अधिकारों की संरक्षा के लिए पथ–प्रदर्शन का कार्य करता है। स्वस्थ स्वास्थ्य सदैव स्वस्थ विचारों का सृजन करता है। इसलिए यह कहना उचित और सम्यक् प्रतीत होता है कि उत्तम स्वास्थ्य समाज की समृद्धि है।

इस प्रकार व्यक्तिव विकास के लिए उत्तम स्वास्थ्य की अनिवार्यता है तो समाज की समृद्धि व देश के विकास के लिए भी स्वास्थ्य अपरिहार्य है। दूसरी तरफ स्वास्थ्य प्राप्ति के बाधक तत्त्वों में केवल गरीबी ही नहीं है बल्कि अज्ञानता, जागरूकता की कमी, सामाजिक पिछड़ापन, शोषण चक्र, भौगोलिक स्थिति, भ्रष्टाचार आदि भी शामिल हैं। हमारे देश का एक बड़ा हिस्सा गरीबी में जीवन यापन कर रहा है तथा दूसरे बाधक तत्त्व भी मौजूद हैं। ऐसी स्थिति में स्वास्थ्य के अधिकार में कई आयाम, यथा–पोषण, स्वच्छता, जल, स्वच्छ पर्यावरण व स्वास्थ्य की देखभाल का अधिकार आदि शामिल हो जाते हैं।

LokLF; ,o vfèkdkj % हमारे यहां राज्य के नीति–निर्देशक तत्त्वों के अनुच्छेद–39(ई) और अनुच्छेद–21 में प्रत्येक मनुष्य को स्वास्थ्य का अधिकार प्रदान करने की कल्पना की गई है। इसके अलावा अनुच्छेद–42 में व्यक्त है कि राज्य काम की न्यायसंगत और मानवीय स्थितियां सुनिश्चित करने तथा मातृत्व राहत सुनिश्चित करने के लिए प्रावधान करेगा। साथ ही साथ दूसरा अनुच्छेद–47 कहता है कि राज्य अपने नागरिकों का जीवन स्तर तथा पोषण स्तर ऊपर उठाने और जनस्वास्थ्य को बेहतर बनाने को अपना एक प्राथमिक कर्त्तव्य मानेगा। खासतौर पर वह चिकित्सकीय उपयोग को छोड़कर स्वास्थ्य के लिए नुकसानदेह नशीले पेय और दवाइयों के सेवन को रोकने का प्रयास करेगा।

उपर्युक्त निर्देशक सिद्धान्तों को अध्याय–4 के अनुच्छेद–21 में वर्णित मौलिक अधिकारों के साथ पढ़ा जाना चाहिए। इसमें स्वास्थ्य तथा स्वास्थ्य रक्षा के अधिकार को शामिल किया गया है तथा उन्हें जीवन के अधिकार का अभिन्न अंग माना गया है।

मानवाधिकार की सार्वभौमिक घोषणा, 1948 के अनुच्छेद–25 के अनुसार–''अपने तथा अपने परिवार की तंदुरुस्ती तथा स्वास्थ्य के लिए पर्याप्त जीवन–स्तर का अधिकार सभी को है, जिसमें भोजन, वस्त्र–धारण, आवास तथा चिकित्सा सुविधा, बीमार और अशक्त होने पर सुरक्षा का अधिकार भी शाामिल है।'' 1978 में यूनीसेफ तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा आयोजित प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में

पारित आल्माअटा घोषणा में भी यही बात कही गई थी। सम्मेलन में पुनः पुष्टि की गई कि स्वास्थ्य मानसिक तथा शारीरिक तंदुरुस्ती की अवस्था है और यह केवल रोग या अशक्तता का न होना ही नहीं है। सर्वोत्तम स्वास्थ्य प्राप्त करना व्यक्ति का मौलिक अधिकार है, जिसे कार्यान्वित करने का कार्य स्वास्थ्य क्षेत्र के साथ–साथ कई अन्य सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों का भी है। आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा का अनुच्छेद–12 प्रत्येक को सर्वोत्तम शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त करने का अधिकार देता है।

उपर्युक्त प्रावधानों व वैश्विक उपकरणों के कारण यह स्पष्ट है कि राज्य अपनी सार्वजनिक स्वास्थ्य नीति व उसके कार्यान्वयन से स्वास्थ्य की उपलब्धि सुनिश्चित करेगा। हमारे यहां उच्चतम न्यायालय के साथ–साथ समय–समय पर अन्य निकाय भी स्वास्थ्य की देखभाल के लिए आवाज़ उठाते हैं। लेकिन अधिकतर लोग इससे वंचित रह जाते हैं। बजट में स्वास्थ्य–रक्षा के लिए प्रावधान किए जाते हैं, फिर भी अन्य विकासशील देशों की तुलना में हमारे देश में पर्याप्त स्वास्थ्य सेवाएं नहीं हैं। आज हम स्वास्थ्य सेवाएं हासिल नहीं कर पाते, दवाइयां नहीं खरीद पाते और महिलाओं, बच्चों, जनजातियों, गरीबों, दलितों आदि की स्वास्थ्य संबंधी आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाते। स्वास्थ्य सेवा में कमी का कारण तकनीकी बाधा नहीं, बल्कि गरीबी और नगण्य स्वास्थ्य रक्षा प्रणाली है। इसीलिए अधिसंख्य लोग स्वास्थ्य के मौलिक अधिकार का उपभोग नहीं कर पाते हैं। सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्य–17 व सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्य–8 के कुछ बिन्दु भी स्वास्थ्य से संबंधी विभिन्न आयामों से संबंध रखते हैं। इन लक्ष्यों की कोशिश में भी हम पिछड़ते रहे हैं। उदाहरण के लिए संयुक्त राष्ट्र की सहस्त्राब्दी लक्ष्यों पर रिपोर्ट कहती है कि भारत में 30 करोड़ लोग निरक्षर और 23 करोड़ से ज़्यादा कुपोषण के शिकार हैं। कुछ स्वैच्छिक संगठनों की समर्पण भावना, यूनीसेफ जैसी एजेंसियों की सक्रियता, उच्चतम न्यायालय के हस्तक्षेप आदि के परिण ाामस्वरूप स्वास्थ्य संबंधी जागरूकता और अपने अधिकार के प्रति सजगता बढ़ी है। उच्चतम न्यायालय ने अपने संक्षिप्त विचारण में जिले तथा सबडिविजन स्तर पर विशेष चिकित्सकों सहित अच्छे अस्पतालों की मौजूदगी, रोगी को बड़े अस्पतालों में ले जाने के लिए ऐंबुलेंस की व्यवस्था, आपात स्थिति का सामना करने के लिए अस्पतालों में पर्याप्त सुविधा का होना आदि आवश्यक बताया है।

uhfr % सन् 2000 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने स्वास्थ्य सेवाओं के कुछ मानक तय किए थे। इन मानकों में सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता प्रथम है, जिसके अन्तर्गत साफ पीने का पानी, साफ–सफाई युक्त अस्पताल, प्रशिक्षित चिकित्साकर्मी और जरूरी दवाएँ शामिल हैं। स्वास्थ्य सेवाएँ लोगों की शारीरिक और आर्थिक स्थिति के अनुसार उनकी पहुंच में हों, यह दूसरा मानक है। इसी प्रकार स्वास्थ्य सेवाएं चिकित्सा के नैतिक मानदण्डों के अनुरूप हों और गुणवत्ता पर आधारित हों, यह तीसरा मानक है। हमारी अब तक की स्वास्थ्य नीतियों (2002) का मुख्य उद्देश्य सार्वजनिक स्वास्थ्य

व्यवस्था के विकेन्द्रीकरण को बढाकर जनसाधारण के बीच बेहतर स्वास्थ्य मानकों, यथा–उपलब्धता, पहुंच, गुणवत्ता को प्राप्त करना है। केन्द्र सरकार के योगदान द्वारा कुल सार्वजनिक निवेश में वृद्धि किए जाने की नीति रहती है, जिससे राज्य स्तर पर प्रभावी सेवाएँ प्रदान करने की क्षमता बढ़े। स्वास्थ्य सेवाओं में निजी क्षेत्र का सहयोग भी लिया जाना है।

उपर्युक्त मानकों और नीति के सन्दर्भ में भारतीय स्वास्थ्य प्रणाली के वर्तमान निष्पादन को निम्न बिन्दुओं में लिखा जा सकता है–

1- स्वास्थ्य के लिए मानवीय संसाधन

2- सेवा उपलब्धता– 1) पहुंच, निरंतरता व संगठन,
2) तृतीयक व आपात सेवाएँ
3) देखभाल की गुणवत्ता
4) सामुदायिक भागीदारी और ग्राहकों के अधिकार।

3- जन स्वास्थ्य

4- दवाओं, आहार और चिकित्सा पद्धति का विनिमयन

5- प्रबंधन और अभिशासन

6- वित्तीय संसाधनों की बढ़ोतरी

7- स्वास्थ्य सूचना प्रणाली

8- औषधियों, टीकों और अन्य उपभोज्य वस्तुओं की उपलब्धता

9- उपलब्ध वित्तीय संसाधनों का कुशलता के साधन के रूप में उपयोग।

dk;kZo;u % हमारी स्वास्थ्य नीति 2015 के मसौदे पर जनता से विचार आमंत्रण की मंशा यही रही है कि इस नीति के आधार पर जनता को स्वास्थ्य का जो क़ानूनी अधिकार मिलेगा, वह शिक्षा के अधिकार की तरह मौलिक अधिकार होगा। वर्तमान में हमारी सरकार 12वीं पंचवर्षीय योजना की अवधि में सभी नागरिकों को सार्वभौमिक स्वास्थ्य पहुंच प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है। योजना आयोग द्वारा सार्वजनिक स्वास्थ्य पहुंच पर एक उच्च स्तरीय विशेषज्ञ समूह (HLG) का गठन किया गया था। वित्तीय सुरक्षा की पहल का प्रमुख उद्देश्य आधारभूत सुविधाओं की उपलब्धता, कुशल स्वास्थ्य कर्मचारियों की संख्या और वहन करने योग्य दवाओं और प्रौद्योगिकियों की आवश्यकताओं की पहचान करना था। इस प्रकार ''सार्वजनिक स्वास्थ्य पहुंच'' के अन्तर्गत संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा प्रतिपादित तीनों मानक, यथा–उपलब्धता, पहुंच व गुणवत्ता शामिल हैं।

प्रत्येक मनुष्य को सभ्य जीवन मानकों, यथा–स्वास्थ्य और परिवार की तंदुरुस्ती, भोजन, वस्त्र, आवास और चिकित्सा की देखभाल प्राप्त करने का अधिकार है। इसके साथ ही आकस्मिकताओं, यथा–बेरोजग़ारी, बीमारी, दुर्घटना, अपंगता, विधवापन, बुढापा की देखभाल भी आवश्यक है। सार्वजनिक स्वास्थ्य पहुंच के दोहरे लाभ से स्वस्थ समुदाय व मज़बूत अर्थव्यवस्था विकसित होती है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में ''सार्वजनिक स्वास्थ्य पहुंच'' के लिए निम्न सिद्धान्त अपनाए गए हैं–

1- सार्वभौमिकता

2- इक्विटी

3- बहिष्कार या भेदभाव का अभाव

4- व्यापक देखभाल–तर्कपूर्ण व गुणवत्तापूर्ण

5- वित्तीय सुरक्षा

6- रोगियों के अधिकारों का संरक्षण

7- मज़बूत सार्वजनिक स्वास्थ्य केन्द्र प्रावधान

8- उत्तरदायित्व और पारदर्शिता

9- सामुदायिक भागीदारी

10- स्वास्थ्य सेवाओं तक लोगों की पहुंच।

उपर्युक्त सिद्धान्तों के सन्दर्भ में सार्वजनिक स्वास्थ्य पहुंच कार्यक्रम के संभावित लाभ निम्न प्रकार गिनाए जा सकते हैं–

1- जनसंख्या के स्वास्थ्य में सुधार

2- कुशल, उत्तरदायी और पारदर्शी स्वास्थ्य प्रणाली

3- गरीबी में कमी

4- वृहद् उत्पादकता

5- नौकरियों में बढोतरी

6- वित्तीय सुरक्षा

7- अधिक से अधिक इक्विटी।

orleku fLFkfr % देश में संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रथम मानक उपलब्धता की दृष्टि से उपलब्ध संसाधन समुचित तो नहीं कहे जा सकते पर ये काफ़ी हैं। उदाहरण के

रूप में यदि भारत सरकार के योजना आयोग दसवीं पंचवर्षीय योजना 2002–07, खंड–2 तथा केन्द्रीय स्वास्थ्य सूचना ब्यूरो, स्वास्थ्य सेवा महानिदेशालय, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा जारी भारत की स्वास्थ्य सूचना 2000 एवं 2001 संबंधी सारणी का विश्लेषण किया जाए तो हम पाते हैं कि पिछले दशक में स्वास्थ्य रक्षा संबंधी संसाधनों और स्वास्थ्य कर्मियों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। 1991 में अस्पतालों की संख्या 11,174 (57 प्रतिशत निजी) थी जो सन् 2000 में बढ़कर 18,218 (75 प्रतिशत निजी) हो गई है। सन् 2000 में देश में 12.5 लाख डॉक्टर तथा 8 लाख नर्सें थीं। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक 1800 व्यक्ति पर एक डॉक्टर उपलब्ध था। यदि देशी चिकित्सा पद्धतियों तथा होमियोपैथी चिकित्सा पद्धति सहित अन्य पद्धतियों को भी शामिल कर लिया जाए तो प्रत्येक 800 व्यक्ति पर एक डॉक्टर उपलब्ध है। इससे 1500 की आबादी पर एक डॉक्टर की अनुमानित अपेक्षा न केवल पूरी होती है, बल्कि और बेहतर हो जाती है। हर वर्ष लगभग 15,000 स्नातक डॉक्टर तथा 5,000 स्नातकोत्तर डॉक्टर प्रशिक्षित होकर निकलते हैं। इस प्रकार स्वास्थ्य रक्षा की उपलब्धता का मामला डॉक्टरों या दवाइयों की कमी के बजाय प्रबंधन का मामला अधिक बन जाता है।

भारतीय प्रशासनिक सेवा की अधिकारी अरुणा शर्मा अपने एक अध्ययन में लिखती हैं–''ग्रामीण इलाकों की आबादी की तुलना में अस्पताल के बिस्तरों का अनुपात शहरों की तुलना में 15 गुणा कम है। शहरी आबादी की तुलना में गांवों की आबादी पर डॉक्टरों का अनुपात छह गुणा कम है। शहरी क्षेत्रों में सरकारी स्वास्थ्य व्यय की तुलना में˶ गामीण इलाकों में जन स्वास्थ्य पर प्रतिव्यक्ति व्यय सात गुना कम है। हालांकि स्वास्थ्य रक्षा पर किया जाने वाला व्यय सकल घरेलू उत्पाद का 6 प्रतिशत है, लेकिन कुल व्यय में राज्य का व्यय केवल 0.9 प्रतिशत है। शेष व्यय लोग स्वयं अपने संसाधनों का उपयोग कर करते हैं। इस प्रकार देश में होने वाले समस्त स्वास्थ्य व्यय का महज 17 प्रतिशत राज्य वहन करती है और 82 प्रतिशत व्यय लोग अपनी जेब से करते हैं। भारत की जनस्वास्थ्य संरचना की सबसे महत्त्वपूर्ण इकाई प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र है। हाल ही के एक सर्वेक्षण में पाया गया कि केवल 38 प्रतिशत प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों में ही आवश्यक कर्मचारी हैं और केवल 31 प्रतिशत केन्द्रों में ही सभी जरूरी आपूर्तियां (इसे आवश्यक सामग्री निवेश के 60 प्रतिशत के रूप में पारिभाषित किया गया है) की जाती है। आश्चर्य तो यह है कि केवल तीन प्रतिशत प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों में ही 80 प्रतिशत आवश्यक सामग्री–निवेश सुलभ है।''

वे आगे लिखती हैं, ''केन्द्रीय सरकार के प्रायोजित कार्यक्रम, राज्य क्षेत्र के कार्यक्रम जैसे सरकारी कार्यक्रमों में सभी चीजों के लिए प्रावधान है। इनमें एएनएम में दांई के प्रशिक्षण से लेकर जागरूकता पैदा करने तक, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों का निर्माण (राज्य, केन्द्र क्षेत्र, ग्रामीण विकास, दानकर्ता एजेंसियों द्वारा), दवाइयों की आपूर्ति (यूएनसेफ, महिला एवं बाल कल्याण विभाग आदि द्वारा), गर्भवती माताओं के लिए

परिवहन, गरीबी रेखा से नीचे के लोगों का स्वास्थ्य बीमा आदि जैसे अनेक कार्यक्रम शामिल हैं। अतः यह दूरी के कारण पहुंचने की समस्या, संरचना की कमी, दवाओं की कमी का मामला है।''

संयुक्त राष्ट्र संघ के दूसरे व तीसरे मानक के अन्तर्गत सभी हितसाधकों व सभी आयामों को न लेकर महिला व बाल मृत्यु दर, कुपोषण और वंचित वर्ग के बारे में संक्षिप्त विचार करते हैं।

1- efgyk@cky eR;q nj % भारत में कई देशों की अपेक्षा महिलाओं और बच्चों की मृत्युदर काफ़ी अधिक है, जिससे यह पता चलता है कि यहां स्वास्थ्य की देखभाल की स्थिति ठीक नहीं है। भारत में प्रसव के दौरान मातृ–मृत्यु दर (एमएमआर) 1999 में 437 थी जो 2013 में घटकर 212 हो गई। यह आंकड़ा अनुमान किया जाता है कि 2015 तक 140 तक पहुंच पाया होगा जो लक्ष्य 105 से दूर है। भारत में एक–तिहाई से भी कम महिलाओं को प्रसवपूर्ण पूरी देखभाल प्राप्त होती है। इसी प्रकार ग्रामीण क्षेत्र में केवल एक तिहाई महिलाओं का ही सुरक्षित प्रसव होता है। दूसरी ओर शहरी क्षेत्रों में निजी अस्पताल फल–फूल रहे हैं जो अनावश्यक तौर पर सिजेरियन ऑपरेशन करते हैं। भारत दुनिया के उन 10 देशों में शामिल है, जहाँ दुनिया की 58 प्रतिशत मातृमृत्यु होती है। 2013 में शिशु जन्म व प्रसव जटिलताओं पर हुई विश्व की कुल मातृमृत्यु का 17 प्रतिशत (2.89 लाख में 50 हजार) मातृमृत्यु भारत में हुई। शिशु वधु रोक के प्रयास व ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन आदि से मातृमृत्यु दर को लक्ष्य तक लाने का प्रयास जारी है। भारत में 7.2 प्रतिशत शिशु मृत्यु–दर है जो गम्भीर चिंता का विषय है। भारत में औसतन 1000 जन्मे बच्चों में से 72 शिशु की मृत्यु हो जाती है। कुछ राज्यों में तो यह 146 तक है, सिर्फ़ केरल में 12 है। केरल में जन्मा बच्चा वाशिंगटन में जन्मे बच्चे से अधिक वर्षों तक जीवित रह सकता है। सहस्त्राब्दी लक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में देखें तो हमारे देश में 1990 में 5 वर्ष से कम उम्र के बच्चों की मौतों की संख्या 33.3 लाख थी, जो 2013 में घटकर 13.4 लाख हो पाई है। 1990 में शिशु मृत्युदर प्रति हजार बच्चों पर 88 थी जो 2013 में 41 हुई है। नवजात बच्चों की मृत्युदर 51 से घटकर 29 रही है।

2- dqiks"k.k % पोषण की सुरक्षा वह स्थिति जब व्यक्ति हर समय पर्याप्त और जरूरी मात्रा में गुणवत्तापूर्ण भोजन का वास्तव में उपयोग कर पाता हो। जीवन को सक्रिय व स्वस्थ रूप में जीने के लिए जरूरी है कि भोजन में विभिन्नता, विविधता, पोषक तत्त्वों की मौजूदगी और सुरक्षा निहित हो। इसके साथ ही स्वच्छतापूर्ण पर्यावरण व पर्याप्त स्वास्थ्य और उससे जुड़ी सेवाएं भी जरूरी हैं।

देश में सफल हरित क्रांति, खाद्यान्न के पर्याप्त भण्डार के बावजूद पांच वर्ष से कम आयु के 53 प्रतिशत बच्चे (लगभग 6 करोड़) कुपोषित हैं। यहां कम वजन के बच्चों का जन्म होना भी आम बात है। भारत में यह 33 प्रतिशत है जबकि दक्षिण कोरिया और चीन में 9 प्रतिशत, थाइलैंड में 6 प्रतिशत और इण्डोनेशिया में 8 प्रतिशत है।

देश में कुपोषण के कारण होने वाली मौतें काफ़ी अधिक हैं। इसके मुख्य शिकार बच्चे, गर्भवती महिलाएं, बूढ़े व्यक्ति और कमज़ोर वर्गों की महिलाएं हैं। इनके अच्छे स्वास्थ्य के लिए न केवल अच्छे पौष्टिक भोजन की अपितु अपेक्षित दवा की भी आवश्यकता है।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर खाद्य सुरक्षा (भोजन) और पोषण की अवधारणा का उपयोग साथ–साथ होने लगा है। हमारे यहां भी भोजन का अधिकार बुनियादी अधिकार है। केवल अनाज से थाली भरना पर्याप्त नहीं माना जा सकता, अतः सरकार भोजन का अधिकार को सुरक्षित करने के लिए संरक्षणात्मक नीति बनाकर थाली में विविधता लाएं ताकि पेट भी भरे (भूख मिटे) पर साथ ही पोषण भी मिले।

हमारा ''राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा क़ानून, 2013'' जनसाधारण को गरिमामय जीवन व्यतीत करने के लिए सस्ती क़ीमत पर पर्याप्त मात्रा में गुणवत्तापूर्ण खाद्य की सुलभता को सुनिश्चित करके मानव जीवन चक्र के मार्ग में खाद्य और पोषण संबंधी सुरक्षा और उनसे संबंधित या उनके अनुशांगिक विषयों के उपबंध हेतु लागू किया जा चुका है। यह क़ानून एकीकृत बाल विकास परियोजना कार्यक्रम, आंगनबाड़ी आदि उपकरणों की मदद से कुपोषण की स्थिति से उबारने में बहुत प्रभावी होगा, बस केवल क्रियान्वयन के पक्ष को मज़बूत रखना होगा।

पोषण सुरक्षा के लिए हमारे संविधान के अनुच्छेद–21 व 47, मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (1949) की धारा–25, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय सहमति दस्तावेज़ की धारा–11 (1966), संयुक्त राष्ट्र संघ के बालक अधिकार समझौते (CRC) 27.1 व 27.3 और सीडा की धारा–12 अलग–अलग तरीके से खाद्य–पोषण सुरक्षा के बारे में राज्य की जिम्मेदारी तय करते हैं।

3- ofpr oxl % भारत की जनसंख्या में जनजातीय लोग, विशेष रूप से पहाड़ी क्षेत्रों तथा जंगलों के आस–पास जो दुर्गम क्षेत्रों में रहते हैं, केवल 8 प्रतिशत हैं लेकिन देश में मलेरिया से होने वाली 60 प्रतिशत मौतें यहीं होती हैं। उन्हें स्वास्थ्य की देखभाल के बारे में न तो कोई जानकारी होती है और न ही उनकी इस तक पहुंच होती है। ये कुपोषण के साथ–साथ महामारी के भी शिकार होते हैं। यह कटु सत्य है कि सामाजिक–आर्थिक दृष्टि से कमज़ोर वर्ग, जैसे–महिलाएँ, गरीब, दलित, आदिवासी और भूमिहीन लोग बुनियादी स्वास्थ्य सेवाओं से भी वंचित हैं। यद्यपि निःशुल्क दवा योजना जैसी योजनाओं से राहत की उम्मीद मिली है, फिर भी इनके लिए चल–अस्पताल जैसी योजना शुरू की जानी चाहिए, जिसमें अपेक्षित पराचिकित्सा सुविधाएं, संरचनात्मक ढांचा आदि हो जो महीने में कम से कम एक बार इन गांवों में जाए, उन्हें स्वास्थ्य सेवा प्रदान करे और वहां उपलब्ध भोजन की पौष्टिकता तथा पर्यावरण, साफ–सफाई और अन्य ज़रूरतों के बारे में बताएं ताकि उनके स्वास्थ्य में सुधार हो सके। इस वर्ग के लिए एक संगठित यूनिवर्सल एक्सेस सिस्टम के तहत

व्यापक स्वास्थ्य देखभाल प्रदान करके ही स्वास्थ्य रक्षा के अधिकार को सुनिश्चित किया जा सकता है। स्वास्थ्य देखभाल एककों को पूर्ण रूप से सुविधायुक्त बनाने के लिए वहां स्वास्थ्य सुविधाएं, प्रशिक्षित चिकित्साकर्मी, आवश्यक दवाएं आदि प्रदान की जाएं। सभी सुविधाएं विशेष रूप से कमज़ोर और गरीब वर्ग को मिले। न्यायमूर्ति वाई. भास्कर राव इस संबंध में लिखते हैं–''उच्चतम न्यायालय ने अपने संक्षिप्त विचारण में कुछ बातों का होना आवश्यक बताया है, जैसे–तत्काल चिकित्सा प्रदान करने के लिए पर्याप्त चिकित्सा सुविधा का होना, जिले तथा सबडिविजन स्तर पर विशेष चिकित्सकों सहित अच्छे अस्पतालों की मौजूदगी, केन्द्रीय संचार प्रणाली, रोगी को बड़े अस्पतालों में ले जाने के लिए ऐंबुलेंस, आपात स्थिति में डॉक्टर युक्त ऐंबुलेंस का होना तथा आपात स्थिति का सामना करने के लिए अस्पतालों में पर्याप्त सुविधा का होना। सभी निर्णयों में शीर्ष न्यायालय ने स्पष्ट किया कि स्वास्थ्य का अधिकार मौलिक अधिकार है जो राज्य को सभी लोगों को स्वास्थ्य प्रदान करने के लिए बाध्य करता है। राज्य तथा केन्द्र के चिकित्सा तथा स्वास्थ्य संबंधी सभी अधिकारियों का यह कर्त्तव्य है कि न्यायालय के इस निर्णय का अनुपालन करें।''

i:o'fÙk;k| % देश की वर्तमान सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओ के क्षेत्र में रिश्वत व भ्रष्टाचार के रूप में ''गोरखपुर अस्पताल के ऑक्सीजन सिलेंडरों की यात्रा'' की उपस्थिति भी है तो ऐसे लोग भी हैं जिन्हें न तो स्वास्थ्य के अधिकार के बारे में पता है, न ही उनकी कोई देखभाल करने वाला है, लगभग उपेक्षित है। दूसरी तरफ उजला पक्ष यह भी है कि स्वास्थ्य की देखभाल के अधिकार को वास्तविक बनाने और देश के कोने–कोने में स्वास्थ्य संबंधी जानकारी प्रदान करने के लिए स्वैच्छिक संगठन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। ये संगठन जनता के साथ–साथ राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की भी 'आंख और कान' हैं। संवैधानिक समीक्षा समिति की रिपोर्ट में भी स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका का उल्लेख किया गया है।

अंत में कह सकते हैं कि स्वास्थ्य नीति 2015 की प्रतीक्षा में खड़े भारत में स्वास्थ्य सेवाओं के सार्वजनिक क्षेत्र में अब सटीक कार्यान्वयन की महती आवश्यकता है।

lUnHk%&

1- न्यायमूर्ति वाई. भास्कर राव : स्वास्थ्य का अधिकार : समाज के समक्ष चुनौती

2- अरुणा शर्मा : स्वास्थ्य सेवाएं–एक मानव अधिकार

• • •

eu ge'kk ; ik;k g dh dMh l tk ;k U;k; dh ryuk e n;k T;knk
ehB Qy nrh g

– Abraham Lincoln

dgkuh

lcz ,d ,slh lokjh gS] tks viu s lokj dks dHkh fxjus ugha nsrh %
u fdlh ds dnekas e sa vkSj u fdlh dh utjkas ls

— अज्ञात

दबी-दबी लहरें

मधु कांकरिया•

सुबह ! मेरे क्षितिजों में विस्तार करती एक और सुबह ! रांची से करीब एक सौ तीस किलोमीटर दूर गुमला स्थित विशुनपुर के जंगल की ओर खुलती खिड़की के बंद पल्लों को खोल ही रही थी कि देखा कोने में दुबके दो–दो सांप। मैं चीखी सांप–सांप। पास में सोयी मंगला झट से उठी और करीब साढ़े तीन फीट लम्बे उस सांप को हाथ से ही पकड़ लिया उसने। मैं अवाक – अरे क्या कर रही हो, काट लेगा। मकई के दानों जैसे दांतों से खूबसूरत मुस्कुराहट बिखेरती वह जामुनी सुंदरी कहने लगी – काटेगा कैसे, उसका मुंह तो मेरी हथेली में बंद है। मैंने कहा और वह दूसरा सांप? हँसते हुए बोली वह सांप नहीं उसकी केंचुल है, सांप इसी प्रकार कोने में दुबक कर ही अपनी केंचुल छोड़ता है। सांप को हाथ से पकड़ वह जंगल की ओर निकल गयी।

करीब आधा घंटे बाद लौटी वह। लौटते ही उसने उस केंचुल को हाथ में उठाया। उतनी ही, आधी इंच चौड़ी पानी रंग की। हल्का सा पीलापन लिए सफेद सी पारदर्शी केंचुल। बीच बीच में चकते। ताज्जुब! पढ़ा जरूर था कि सांप अपनी पुरानी केंचुल छोड़ देता है। पर इस प्रकार की होती है केंचुल ! डरते झिझकते मैंने छूआ उस केंचुल को। मंगला बताती रही, 'पेट से चलता रहता है इसलिए पुरानी केंचुल मरी चमड़ी की तरह हो जाती है और नयी बन जाती है तो मुंह से वह इसे फाड़ कर बाहर निकल आता है। सच प्रकृति ने सबको गुजारे लायक दिया है...कहते हुए उसने केंचुल को अपने गमछे में रख लिया। मैंने पूछा– क्या तुम इसे बेचोगी? हाथ नचाते हुए वह बोली – आप शहरी लोग बेचने और मुनाफा कमाने के अलावा कुछ सोच नहीं सकते क्या? मैंने इसे रख लिया क्योंकि एक तो बच्चे को सूखा रोग होने पर सांप की केंचुल की माला गले में पहना देने से सूखा रोग दूर हो जाता है और दूसरा घर में सांप की केंचुल रखना शुभ होता है, कहते हैं कि इससे घर में समृद्धि आती है।

कितने विश्वासों अविश्वासों में जीता है यह समाज.. सोचते हुए मैं नहाने चली गयी। कूएँ से पानी ला मंगला ने कमरे में ही बने छोटे से नहानघर में रख दिया। नहानघर से निकलने के बाद मैं अपने गीले कपडे सुखाने लगी तो देखा मंगला मेरी ब्रा को बहुत ध्यान से देख रही थी। मैंने मजाक में पूछा चाहिए तुम्हे ? वह शर्मा गयी। हमने तो ब्लाउज भी इन सालों में ही पहनना शुरू किया है, मेरी माँ तो ब्लाउज भी नहीं पहनती थी, अभी भी नहीं पहनती है, कहती है कि लाज आती है।

– तो क्या तुम्हें भी ब्रा पहनने में लाज आती है ? पल्लू का कोना मुंह में ठूंसते हुए जबाब दिया उसने,

---

• प्रसिद्ध कहानीकार एवं लेखिका

– नहीं वो बात नहीं ,हमारा आदमी भी कहता है कि शहर से लाएगा मेरे लिए, पर मैं ही रोक देती हूँ, हमारे समाज में कोई नहीं पहनता ये सब..

– तो तुम शुरू कर दो।

वह हंसी, एक झिझकती हुई हंसी शहर जाऊंगी तो पहनूंगी।

ब्लाउज पहनने में भी किसी को क्या लाज आ सकती है ?सोच कर भी सोच नहीं पायी। एक समय था कि मर्यादाशील औरतें ब्रा नहीं पहनती थी इसे भी उत्तेजना का कारण समझा जाता था और दक्षिण भारत में दलित औरतों ने अपने स्तन ढकने के अधिकार के लिए एक लम्बी लड़ाई लड़ी। कैसी कैसी मानसिकता ? किसने गढ़ी ये मानसिकता ? सोचते सोचते जाने कब लग गयी आँख कि एकाएक जोरों से आवाजे आई लगा जैसे कोई नगाड़ा पीट रहा है। नहीं चाहते हुए भी पास में सोयी मंगला को कुहनी मार उठाया– कैसी आवाजें आ रही हैं ? क्या कोई पुलिसिया एन्कांटर है माओवादियों के साथ ? वह आँखें फाड़े मुझे देखती रही। फिर निराश होते हुए बोली कि दीदी यह तो कनस्तर पीटने की आवाज है शायद किसी के खेत में कोई बड़ा जंगली जानवर घुस गया होगा।

– बाप रे .. तो जानवर तो यहाँ भी आ सकता है ?मैं डर से पीली पड़ रही थी।

– नहीं दीदी, जानवर घुप्प अँधेरे में आते हैं, खेत में आते हैं। यहाँ एक तो सारी रात हलकी बत्ती जलती है और दूसरा यहाँ दरवाजे बंद रहते हैं। यहाँ पूरी सुरक्षा है।

– तो जानवर इस प्रकार भगाए जाते हैं कनस्तर पीट पीटकर?

– हाँ, जैसा जानवर वैसा उपचार, कई बार मशाल जला कर, आग दिखाकर भी उसे भगाया जाता है। तीर गुलेल चलाकर भी भगाया जाता है।

,,

विशुनपुर से कलकत्ता लौटने की मियाद धीरे–धीरे पूरी हो रही थी। हर सुबह मैं उगती और रात होते न होते अस्त हो जाती। अब बचे बस दो दिन। सुबह होते ही एक पागल उम्मीद हरहरा उठती कि शायद आज मुलाकात हो विशुनपुर के गांधी जंगल कुमार से लेकिन रात होते न होते टहनी सी टूट जाती उम्मीद और मायूसी मुझे अपने आगोश में ले लेती। मेरी निराशा का रंग गाढ़ा होता जा रहा था कि क्या उस अभेद्य किले को खोल पाऊंगी मैं कभी जिसका नाम है कि जंगल कुमार ! जिसे रोज थोडा थोडा दूर दूर से देखती हूँ मैं और थोड़ी थोड़ी उनके भीतर प्रवेश करती रहती हूँ।

आज एक और मुसीबत ! मंगला घर जल्दी जाना चाहती थी। आज की रात और अगले दिन की छुट्टी चाहती थी। उसने रात के कुछ जूठे बर्तन घिसे और देर तक उन्हें चमकाती रही, मैंने उसे बर्तन मलने से रोका कि मैं मल लूंगी, मेरे जूठे बर्तन मत

मला कर। जबाब और भी अनोखा आया कि मुझे मजा आता है, स्टील के इन बर्तनों को चमकाने में। कितनी जल्दी चमक जाते हैं ये। मैं फिर हैरान ! किस दुनिया में आ गयी हूँ मैं ? कितना अलग है इसका मजा हम शहरियों से। मजा न घूमने में, न सिनेमा देखने में, न टीवी देखने में, न खरीददारी करने में। इसे मजा आता है स्टील के बर्तन चमकाने में इतना कि घर जल्दी जाना है फिर भी बर्तन चमकाने में कोई हड़बड़ी नहीं। मंगला के जरिये आदिवासी के निजी जीवन में झाँकने का भी मुझे अवसर मिला। मंगला के हाथ हमेशा चलते रहते थे, मुझसे बात भी करती तो खाली नहीं बैठ पाती थी वह, कभी करोसिया चलाती रहती तो कभी चटाई बुनती रहती.. मैंने एक बार कहा कि तुम जरा सा भी आराम नहीं करती। जबाब और भी विचित्र दृ यह आराम ही तो है दीदी। तो फिर काम क्या होता है ? काम होता है कि पत्थर तोड़ना, लकड़ी चीरना, सर पर ईंट ढोना, खेतों में घास काटना, ठेकी चलाना, पानी भरना ..

मुझे रात में मंगला के रहने से बहुत सहारा मिलता था। शाम होते ही यहाँ असहनीय सन्नाटा छा जाता। जंगल कुमार के दिए ट्रांजिस्टर के अलावा दिल बहलाने का कोई साधन नहीं था मेरे पास। मेरे और मेरे बाहर के संसार के बीच वह एक खिड़की की तरह भी थी। रात के सन्नाटे भरे धुंधले अंधेरों में जब भी मुझे पेशाब करने निकलना पड़ता, मंगला के साथ होने से मैं रास्ता भटकती नहीं थी, वह तुरंत लालटेन जला मेरे साथ निकल पड़ती थी। खुशहाल भारती में बिजली के मरियल लट्टू जगह जगह टंगे हुए थे लेकिन देर रात सारी बत्तियां बुझा दी जाती थी,इसलिए डर और भी ताकतवर हो जाता था। यद्यपि वैसा डर नहीं था पर मैंने सुना था कि रात यहाँ दीवार फांद कर कई बार पुलिस से बचने के लिए माओवादी छिपने चले आते हैं। यह भी सुना कि कई बार भालू और भेडिया भी रात को आने की फिराक में रहते हैं। मोटे मोटे चूहे तो दिन में भी मेरे कमरे में घमा चौकड़ी मचाए रहते। मैंने मंगला को अपने डर के बारे में बताया तो वह हंस पड़ी कि दीदी खुशहाल भारती के भीतर कुछ डर नहीं हैं फिर भी आप को डर लगे तो मैं अपनी बहन तिरकी को आप के पास सुला दूँगी।

वह एकटक मेरी ओर देख रही थी।

– तिरकी? यह क्या नाम है? यह भी किसी पेड़ का नाम है क्या?

– नहीं तिरकी चिडिया को कहते हैं।

– बस एक रात की ही तो बात है फिर तुम्हे कष्ट नहीं दूँगी। मैंने हल्का सा जोर दिया।

सर नीचा कर उसने बताया, दीदी ये दो रात ही मेरी साल भर की कमाई है, क्या बताएँ आपको हमरा आदमी आज आ रहा है, पूरे नौ महीने बाद दिल्ली से... मैं नहीं जाऊगी तो बारह बारह घंटे की लम्बी लम्बी रात वह अकेले काट नहीं पाएगा और

हडिया (देशी दारु) पी पी टन्न पड़ा रहेगा। उसकी आँखों की कोर में अटके आंसू पर मेरी नजर गयी। मैंने बात बदल दी।

– तुम्हारा आदमी दिल्ली रहता है..? मैंने अभी तक जितने आदिवासियों से बात की थी उन्होंने दिल्ली तो दूर की बात,अपने गाँव और आसपास के गाँव और टोलों के अलावा किसी शहर का नाम तक नहीं सुना था, यहाँ तक कि वे भारत तक का नाम नहीं जानते थे। हाँ कुछेक ने पाकिस्तान का नाम जरूर सुना था.. और यह कह रही है कि इसका आदमी दिल्ली से आया है। मेरे लिए यह जानकारी की एक और नयी परत थी। जाने क्यों मन में लहर सी उठी कि क्या इसका पति झारखण्ड की उस युवा पीढ़ी से है जो अब थोडा बहुत पढ़ लिख कर बजाय खेती या अन्य पम्परागत कामों के शहरों में मजदूरी के लिए जाने लगी थी।

– कितनी जमात तक पढ़ा है तेरा आदमी ,मेरे पूछते ही गर्व से उसका चेहरा चमक उठा। नाक फुलाते हुए कहने लगी कि डेढ़ डेढ़ सौ मीटर की दो दो नदियाँ पार कर लोहरदगा की सरकारी इस्कूल में जाता था रघुबर पढने को।

– दो दो नदियाँ पार कर।

– पांच जमात के बाद सबसे नजदीक स्कूल वहीं थी। पहाड़ी जिन्गी की कठोरता आप मैदान वाले नहीं समझेंगे।

– पर वह दिल्ली गया ही क्यों?

– क्या बताएं दीदी, वह फिर अपने में खो गयी.उदासी की एक हलकी परत बदली सी उसके चेहरे पर छा गयी।

– बताओ।

– दीदी, आपने क्या नगु बिरजिया का नाम सुना है, हम उन्ही के परिवार से हैं। वे मेरे परदादा ससुर थे। वे हेमोटाइट पत्थर (कच्चे लोहे) को भट्टी में गला कर लोहा बनाते और उस लोहे से संडासी, त्रिशूल, हसुआ, खुरपी, तलवार.. क्या क्या नहीं बनाते थे। बहुत जान होती थी उस लोहे में, उसमें जंक भी नहीं लगता था। पूरा गाँव ही नहीं, हाडूप गाँव तक लेते थे हमसे खेती के फाल, खुरपी, त्रिशूल, संडासी, औजार वगैरह। अभी तक वह भट्टी रखी है। उसके ऊपर लिखा है कि असुर भट्टी।

नगु बिरजिया.. नाम मेरे जेहन में टंगा रहा। शायद यह वे ही नगु बिरजिया थे जिनके लिए मैंने कुछ साल पूर्व किसी अखवार में पढ़ा था या विशुनपुर के ही किसी आदिवासी के मुख से सुना था, मुझे ध्यान नहीं आ रहा था। पर जितना मुझे पता था उसके अनुसार देशज तकनीक से लौह बनाने वाले वे अंतिम शिल्पकार थे। मगध साम्राज्य से लेकर आजादी की लड़ाई तक में बिरजिया और असुर लोगों ने लौह

तकनीक के बलबूते अपनी पहचान बनायीं थी। वे उस बिरजिया समुदाय के प्रतिनिधि थे। कहा जाता है कि मगध नरेश ने लड़ाई के लिए अस्त्र शस्त्र का निर्माण इन्ही असुर और बिरजिया लोगों से करवाया था। उसी परिवार की वर्तमान पीढ़ी मजदूर बन गयी?

– तो बंद क्यों किया? मैंने पूछा तो वह नदी की बहती कल कल धारा की तरह अपनी राम कहानी गाने सुनाने लगी।

– का बताएँ दीदी, हमारा लोहा और लोहे का सामान थोडा महंगा बनता था, बाजार में टाटा के लोहे का सस्ता सामान मिलने लग गया। तब लोगन क्यों खरीदेंगे हमारा समान। सामान नहीं बिकता था। हमारे दादा ससुर ने सरकार से गुहार भी लगायी कि हमें थोड़ी सुविधा दे दीजिये हम फिर से जी उठेंगे। ई टाटा बाटा ने हमारा ही ज्ञान चुराया है। सरकार ने दिल्ली के विज्ञान भवन में उन्हें सम्मानित किया लेकिन सुविधा नहीं दी। गुहार लगाते लगाते वे चले गए। हमारे ससुर को दिन के चार किलो चावल के हिसाब से मजदूरी मिलती थी बाद में वे खुशहाल भारती में काम करने लगे। जंगल कुमार उनदिनों बायो गैस प्लांट लगवा रहे थे वहीं उन्हें काम मिल गया। हमारे आदमी को कभी दिल्ली तो कभी रांची में मजदूरी मिल जाती है, दिन का ११० रुपल्ली मिल जाते है इतना तो दूसरे के खेत में काम करने पर भी नहीं मिलता, माइंस में भी मजदूरी के मिलते हैं दिन का सौ रुपल्ली। सो वे दिल्ली में मजदूरी करने चले जाते हैं। बस करमा और सरहुल पर्व पर घर आते हैं... बोलते बोलते दुःख का दूसरा संस्करण उसके चेहरे पर छप गया था।

मैंने मुलायम मुलायम स्वर में फिर पूछा,

– पति के दिल्ली जाने से इतनी दुखी हो तो रोका क्यों नहीं उसे इतनी दूर जाने से?

उसने गर्दन उठा ताका मेरी ओर,.. तनिक विश्राम बाद फिर बोली,

– रोकती क्यों ? मैं तो मना रही थी कि उसे भी मौका मिले, गाँव के सभी जुवान लडकन तो चले गए थे, उसके सभी संगी साथी चले गए थे, यहाँ तो सुबह पांच बजे से रात तक हड्डी तोड़ मेहनत के बाद भी खाने के लाले पड़े रहते थे। दिन के बारह बजे के पहले कभी खाना नसीब नहीं होता। बल्कि हम तो दातुन ही बारह बजे करते। कोई मोटा सा चूहा धम से मेरे पास कूदा। मैं चीखी। वह हंस पड़ी कि आप शहरी बड़े डरपोक होते हैं। कुछ नहीं करेगा। मैंने फिर पूछा,

– तो क्या तुम सुबह चाय नहीं पीते?

– चाय? उदास हंसी बिखेरते हुए कहा उसने कि कभी कभी मेले ठेले में साल दो साल में चाय नसीब हो जाती है। गेंहू भी कहाँ खा पाते हैं, बड़ा आदमीं लोगन का खाना है वह। अब मेरा आदमी दिल्ली में रोज गेहूं की रोटी खाता है, बाबू लोग की

तरह पेंट पहनता है और चाय पीता है। हमें पैसे भेजता है इसलिए अब हमारे यहाँ भी काली चाय बनती है। कभी कभी गेहूं की रोटी भी बनती है।

– गेंहू? चाय ? पेंट ?? मैं किस दुनिया में हूँ? पहली बार मेरी कल्पना लज्जित हुई। गरीबी सूखी रोटी खिलाती है अमीरी घी चुपड़ी। यह तो मैं जानती थी। लेकिन गेंहू अमीर है। दाल और चाय अमीर है, सब्जी अमीर है....गरीबी का यह रंग मेरी कल्पना के बाहर था और तो और इनके भगवान् भी श्रीहीन थे.. न भव्य मंदिर न भव्य पोशाक न सर पर ताज न मोर मुकुट.. न कोई मूरत... भगवान् के लिए कोई छोटा मोटा आलया तक नहीं। सखुआ के पेड़ के नीचे गाड़ दिया कोई पत्थर, लिख दिया उस पर 'सिंगा बोंगा' और बना दिया उसको भगवान् या कोई पेड़ की डाली.. कुछ लाल फूल.. किसी कोने में सिन्दूर और फूल ..सब भगवान् के रूप बहरहाल गर्दन को झटका दे पूछती हूँ मैं।

– तो तुम किस अनाज की रोटी खाते हो ?

– धान, बाजरा, ज्वारी तो कभी मंडुआ, मकई और गोंदली। मकई का भात बनाकर खाते हैं। बनाली का बाजार दूर पड़ता इसलिए ठेकी पर मकई को कूट लेते हैं। ठेकी पर ही धान से चावल निकालते हैं। नहीं दाल के साथ नहीं,दाल वह भी उरद और कुल्थी की दाल महीने में एकाध बार खाते हैं। सबसे अधिक मकई ही खाते हैं। मकई खत्म हो जाती तो मंडुआ। मंडुआ खाते खाते पखाना इतना सख्त हो जाता कि दिन भर पेट भारी रहता... बोलते बोलते उसने बात बदली.. पांच बज गए होंगे दीदी। धूप आँगन से सरककर दीवार पर चढ़ गयी। मैंने उसे अनसुनी करते हुए फिर पूछा,

– और क्या करता है तेरा आदमी?

– नयी नयी चीजें देखता है। हमें बताता है। बिजली के पंखे के नीचे सोता है। बस दुःख है तो यही कि संग साथ नहीं रहने मिलता।

– बिजली का पंखा? तुमने देखा है?

– मैंने यहाँ खुशहाल भारती में देखा, जंगल कुमार के कमरे में देखा। मेरा आदमी कहता है शहर चल तुझे भी पंखे और बत्ती में सुलाऊँगा, मैं पूछती हूँ कब ले चलेगा तो चुप हो जाता है। यहाँ तो हम ढिबरी में रात गुजारते हैं, उसके लिए भी कैरोसिन तेल का टोटा पड़ा रहता है, जैसे तेल नहीं घी हो। रात गहराते ही बुझा देते हैं ढिबरी कि बेशी तेल न जले, एक बार ढिबरी बुझाने गयी कि कैसे तो धक्का लग गया और ढिबरी का जलता तेल मेर पाँव पर गिर पड़ा तो मेरे ससुर कहे कि इतना तेल बर्बाद किया उन्हें यह चिंता नहीं थी कि मेरा पाँव जल गया, अब मेरा आदमी पूरी रात बिजली के लट्टू में रहता है।

– अकेला ?

— नहीं, आठ लोगन के साथ एक कमरा में रहता है। इसीलिए तो मुझे नहीं ले जाता, मैं सब समझती हूँ। हरेक को किराया देना होता है। मुझे ले गया तो दो का किराया देना पड़ेगा।

बाप रे ! मैं स्तब्ध थी संसार की भयावह सच्चाइयों से। हर दिन एक नया परिचय हो रहा था मेरा। कल सिर्फ कुछ खानेवाले पत्तों के लोभ में एक आदिवासी युवती हादसे में अपने प्राण गँवा बैठी और आज का यह सत्य? कहाँ ठहरते हैं इनके दुखों के आगे मेरे दुःख? मैंने कभी नहीं सोचा था कि इस तरह का भी जीवन हो सकता है? मुझे अपच हो रहा था। मैंने और पूछना बंद किया। बस उसे देखती रही.. उसकी आँखों में पति मिलन के स्वप्न अंखुआ रहे थे। उसे रोकना उसपर अन्याय करना होता। मैंने अपने को रोका और उसे जाने दिया कि बस एक रात की ही तो बात थी, अगली सुबह मुझे रांची एक्सप्रेस से कोलकाता के लिए रवाना हो ही जाना था। जाने की व्यवस्था 'खुशहाल भारती' के कार्तिक दा के जिम्मे थी।

नयी पीढ़ी की मंगला ने जाने के पहले छोटे से शीशे में अपने चेहरे का मुआयना किया। बाल ठीक किये, फिर बैग से फेयर एंड लवली का छोटा सा पाऊच निकाल क्रीम को अपने चेहरे पर मला। मैं हैरान दृ तो तुम्हे कहा से मिला यह ? रघुबर ने दिया था, मुझसे कहा इसको लगा तू भी गौरी हो जाएगी। दिल्ली से लाया होगा, मेरे मुंह से निकला। नहीं दीदी यहाँ हाट में भी मिलता है। हाट में? हाँ, हर सप्ताह यहाँ हाट लगती है, आस पास के सभी गाँव के लोग दस दस मील चलकर हाट से सामान खरीदते हैं। हम एक साथ सप्ताह भर के खाने का सामान खरीद लेते हैं। सब चीज मिलती है वहां। धान ज्वारी, सब्जी, हडिया, ताड़ी, चप्पल, खिलौने, कपड़ा, मिल की साड़ी, बर्तन, रस्सी, घड़े पाउडर, क्रीम, साबुन, कंघी, इत्र फुलेल, लिपिस्टिक से लेकर गाय, भैंस, बकरी तक बिकती है और हाँ दीदी, फेयर एंड लवली भी मिलता है।

वाह ! बिजली चाहे नहीं पंहुची हो पर यहाँ भी पंहुच गया फेयर एंड लवली। पर फेयर एंड लवली के लिए पैसे बच जाते हैं?

वह शर्मा गयी — मेरा आदमी कहता है, फेयर एंड लवली लगाएगी तो तुझे भी दिल्ली में कोई छोटी मोटी नौकरी मिल जाएगी। सच दीदी, उसने अपनी आँखों से टीवी में देखा था कि एक लड़की ने फेयर एंड लवली लगाया और उसे तुरंत नौकरी मिल भी गयी। मेरा आदमी कहता है नहीं तो यहाँ जिन्दगी भर दूसरों के खेत में आलू दृप्याज ही रोपती रहना या बोक्साइट के खदान में ही जवानी गलाती रहना अपनी बहन की तरह। इसलिए सब्जी का पैसा बचाकर खरीद लेती हूँ।

— बिना सब्जी के रोटी कैसे खा सकती हो?

— कम सब्जी से काम चला लेते हैं। क्या करूं, हमरा आदमी कहता है कि पेट में खाया कोई नहीं देखता, पर शहर में नौकरिया के लिए समार्ट और सुन्दर दिखना

जरूरी है। फिर मैडम सब्जी तो हम इन सालों में खाने लगे हैं जबसे जंगल कुमार ने बिशुनपुर की सब्जियों को बिशुनपुर में ही बेचना शुरू किया है। उसके पहले तो हम कोय्नार के पत्ते उबालकर उसी से चावल खाते थे। हमारी सारी सब्जिया हाथों हाथ बिककर लोहरदगा बाजार में में चली जाती थी। यहाँ तो हाल यह था कि दस आदमी भी घर में आ जाए तो सब्जी के लिए लोहरदगा जाना पड़ता था।

– ऐसा क्यों?

– जंगल कुमार ने सिखाया कि पहले खाने की सोचो, बाद में बेचने की सोचो।

– तुमने बोक्साइट के खदान की बात कही थी। क्या तुम्हारा कोई काम करता है बोक्साइट के खदान में?

– मेरी बहन मैडम। देर रात तक काम करना पड़ता है, क्या बताएं मैडम कई बार वहां औरतों के साथ कुकर्म भी हो जाता है। खुद मेरी बहन पेट से हो गयी थी हरामी था कांट्रेक्टर तिवारी,साले को बाघ खा जाए, भेडिया उठा के ले जाए। जंगल कुमार ने बहुत चेष्टा करी उसको अन्दर करवाने की.. नियम बनबाने की कि औरतन को रात में काम न करना पड़े, पर हम काम नहीं करेंगे तो खाएंगे क्या?

– तुम पहुँचोगी तब तक तो घुप्प अँधेरा हो जाएगा, जंगल से होकर गुजरोगी, कोई भालू या भेड़िया मिल गया तो ? तुम्हे डर नहीं लगेगा?

वह हंस दी कि मैडम मुझे डर न अंधेर से लगता है, न जानवरों से।

– तो किससे लगता है डर?

– मुझे डर लगता है इंसानों से। मेरी बहन की जिन्दगी किसने खराब की? न अँधेरे ने, न भालू ने, न भेडिये ने। भालू हमारे इलाके में आता है, क्यों ? क्योंकि हमने उससे उसका जंगल छीन लिया। खुशहाल भारती के पीछे की खाली जगह पर हम लोगों ने बड़ी वैरायटी वाली मूंगफली की फसल लगाई थी, बिरसा बोल्ड मूंगफली लेकिन पौधे अभी तैयार भी नहीं हुए थे कि खुशहाल भारती के बच्चों ने उसे खाना शुरू कर दिया। मैंने मना किया तो श्रम निर्त्तन की सहायिका चन्द्रमति कहने लगी – भालू चोर है, सारी फसल खाकर नष्ट कर रहा था तो वह खाए उससे अच्छा है कि हम ही खा ले। तब जंगल कुमार ने कहा दृ चोर भालू नहीं चोर हम हैं, आज जहाँ यह खेत है, पहले वह भालू का घर था, तब हम उसे चोर नहीं दोस्त कहते थे। हमने उससे उसका घर छीन लिया,तो भालू कहाँ जाएगा? जंगल कुमार को खतरा किससे है? न अँधेरे से न जानवरों से ? उन्हें खतरा है उनसे जो हमसे हमारा घर जंगल छीन रहे हैं लेकिन हम भालू की तरह चुप नहीं रहेंगे। नहीं तो बदली परिस्थिति में हमें भी चोर कहा जाएगा।

मैं चुप ! चुपचाप देखती रही उसे, उसके तेवर। उसने दरवाजे के पीछे से एक पोलीथिन बैग निकाला और उसके अन्दर में जतन से रखी अपनी चप्पल बाहर की, अपनी फटी बिबाइयों वाले पैरों को उसमें डाला और चल दी।

– हलके हील की यह चप्पल भी क्या तुम्हारा रघु लाया है ? वह हंस दी। आपको लगता है कि हर चीज दिल्ली से ही आती है ? नहीं, उन दिनों तेंदू पत्ते बेचकर मैंने पचास रुपल्ली कमाए थे। यह चप्पल मैंने अपनी सहेली से वे ही पचास रुपल्ली और दो जोड़ी मुर्गी के बदले में ली।

जाते जाते उसने हाथ हिलाया,पेड़ लगाने वाले हाथों से सुन्दर उसके हाथ ! मैं देखती रही सोचती रही – फूल, पत्थर और मयूर पंखों से खुद को सजानेवाली आदिवासी की यह एकदम ताजा पीढ़ी सचमुच अब बदल रही थी। देख रही थी क्षितिज के पार। पहचान रही थी अपने दुश्मनों को।

• • •

lHkh thfor çkf.k;ksa dks çfr lEeku vfgalk gS

– Lord Mahavir

e'xr".kk

रीतामणि वैश्य•

, d

पिछले कुछ दिनों से दसवीं के रिजल्ट को लेकर पूरे अंचल में सनसनी फैली हुई है। सनसनी आज उत्तेजना में बदल गई है। मदरसा का रिजल्ट भी एक साथ घोषित होगा। दिन के ग्यारह बजे रिजल्ट निकल रहा है। पर शहर से रिजल्ट गाँव पहुँचने में दोपहर के दो तो बज ही जाएंगे। गाँव के लोगों के लिए आज का एक पल एक युग–सा लग रहा है। सबकी नजरें अफरीदा पर टिकी हुई हैं।

चर अंचल के मुसलमान संप्रदाय के इस गाँव के लोग पहली बार परीक्षा के परिणाम को लेकर उद्ग्रीव हुए हैं। यह शिक्षा को लेकर उनकी सजगता के कारण नहीं है, बल्कि कारण कुछ और है। दूसरे चर अंचलों की सभी विशेषताएँ कि गरीबी, अशिक्षा, अंधविश्वास आदि इस गाँव में भी मिलती हैं। नया है तो सिर्फ आसिफ मास्टर का अद्भुत विचार। पिछले कुछ वर्षों तक इस गाँव के लोग बच्चों को स्कूल भेजने की जरूरत महसूस ही नहीं करते थे। लड़कियों का तो सवाल ही नहीं उठता। पर अब युग बदल चुका है। मिनिस्टर ने चौक में एक मदरसा बैठाया है। दो–चार परिवार बच्चों को स्कूल भेजने लगे हैं। वैसे इन बच्चों के नाम तो दूर–दूर के कई स्कूलों में भी भर्ती हैं। सरकार ने मास्टरों की नौकरी पक्की करने के लिए स्कूल में पढ़नेवाले बच्चों की लिस्ट मांगी थी। तब स्कूल के शिक्षकों ने घर–घर घूमकर बच्चों के नाम इकट्ठा किए थे। कुछ स्कूल तो रातों रात खुले गए थे, रातों रात शिक्षकों की नियुक्ति हुई थी और रातों रात नौकरी पक्की करने की मांग भी सरकार से की गई थी। इस पूरी प्रक्रिया में गाँव के पंचायत से लेकर अफसर, मंत्री सबका सहयोग था और सबने अच्छा लाभ उठाया। तभी वहाँ के बच्चों के नाम उस क्षेत्र के सभी स्कूलों में दाखिला कर दिये गए थे। इन्हीं बच्चों के उपयोग से स्कूल सरकारी हुए थे और शिक्षकों को तंख्वाह मिली थी। दोपहर के सरकारी भोजन का मासिक हिस्सा इन बच्चों के घरवालों को स्कूलों की तरफ से भेज दिया जाता है।

आसिफ मास्टर गाँव के पुराने मास्टर हैं, उनका नाम है यहाँ। वे जब जहाँ मौका पाते हैं, लोगों को बच्चों को स्कूल भेजने के लिए समझाते हैं। पर उनके सुझाव का कोई असर लोगों पर पड़ते दिखाई नहीं देता। उनका यह स्वभाव लोग पसंद नहीं करते। बच्चे अगर स्कूल में जाएंगे, तो कमायेगा कौन, खायेंगे क्या? एक दिन जहरुल ने उनका अच्छा अपमान किया था। मास्टर स्कूल के किसी काम के लिए सुबह ही शहर के लिए निकले थे। सात बजे की बस को पकड़ने के लिए मास्टर चौक में खड़े

• सह–आचार्य, हिन्दी विभाग, गुवाहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी

हैं। जहरुल भी अपनी सात–आठ साल की बेटी को लेकर वहाँ आ पहुँचा। मास्टर ने उससे पूछा–'इतनी सुबह बच्ची को लेकर कहाँ निकला जहरुल?'

'शहर के लिए निकला हूँ मास्टर।'

कोई काम होगा ?'

'एक अच्छी खबर है। हमारे यहाँ के मिनिस्टर के वहाँ इसे काम मिला है। महीने में दो सौ देंगे।'

'तुम लोग दूसरों का ही बोझ ढोते रहोगे क्या ? अपने बारे में कब सोचोगे ? अभी इनके पढ़ने का समय है।'

'ये सब बातें हमारे लिए नहीं हैं। महीना खत्म होते न होते पैसा तुम्हारे घर आ जाता है। हमारे बच्चे काम नहीं करेंगे तो हम खाएँगे क्या?'

'बच्चों को काम में लगाना कानूनन अपराध है। इन्हें पढ़ाने का सरकारी कानून है, जानता है न तू? सरकार इसे पढ़ाएगी। इनसे काम करवाना गुनाह है।'– आवेश में मास्टर बोले। उनकी आवाज में आक्रोश था।

'तो सरकार से कहकर तुम हमारे पेट भरने का बंदोबस्त करा दो। खुदा कसम मैं अपने दसों बच्चों को तुम्हारे स्कूल में दाखिला कर दूंगा।'– हल्की सी हँसी के साथ जहरुल बोला। मास्टर को चुभाने के लिए उसने ये सब कह दिया था ताकि आगे मास्टर उसे कुछ न कह पाये। जहरुल अपनी छोटी लड़की को भी कहीं काम में रखने के फिराक में था।

अशिक्षित जहरुल के अकाट्य तर्क के सामने मास्टर चुप हो गए थे। मानवाधिकार, शिक्षा का अधिकार, बाल श्रम पर पाबंदी आदि बातों से इन लोगों का दूर–दूर तक रिश्ता नहीं है। जीवन नदी के तेज धार में किसी तरह जीवित रहनेवाले जहरुल जैसों का व्यावहारिक ज्ञान सब प्रकार के अधिकार और कानून के ऊपर अवस्थान करता है। समस्याओं को सतही स्तर पर देखकर नीति बनाने से समाधान नहीं मिलता। तह तक जाकर मूल में ही उनका उपचार करना होता है। पर नेताओं को राजनीतिक जीवन में टिके रहने के लिए समस्याओं को उसी प्रकार जिंदा रखना जरूरी होता है,जिस प्रकार बीमा से लाभ उठाने के लिए नियमित रूप से किस्त देते रहना जरूरी होता है।

मास्टर ने अपने समाज की सभी ध्यान–धारणाओं को चुनौती देकर बेटी अफरीदा को पड़ोस के गाँव के सरकारी स्कूल में दाखिला करा दी थी। अफरीदा इस गाँव की स्कूल जानेवाली पहली लड़की थी। इस घटना के बाद मास्टर की अच्छी खिल्ली उड़ी थी....मास्टर का दिमाग खराब हो गया कि बेटी को पढ़ाने के लिए दूसरे गाँव में भेज रहा है। औरत जात है, घर में रहे, चूल्हा–पानी का काम सीखे और कहीं किसी के

माथे डाल दे, बात खत्म। क्या जाने कहाँ क्या गुल खिलाएगी। गाँव की इज्जत मिट्टी में मिलाकर रहेगी। लड़की कब हाथ से फिसल जाएगी बाप को पता ही नहीं चलेगा। उस दिन बड़ा मजा आएगा।

मास्टर का स्पष्ट विचार था कि उनकी बेटी भी समय के साथ कदम मिलाकर आगे बढ़ेगी, वह गाँव की दूसरी लड़कियों से अलग पहचान बनाएगी। मास्टर के इस निर्णय ने गाँववालों के अहं को चोट पहुँचाई थी। तभी से सबकी निगाहें अफरीदा पर टिकी थीं। और अफरीदा ने भी अपने परिवार के संस्कार से एक आदर्श लड़की के रूप में खुद को गढ़ा था। मास्टर अब तक सिद्ध करते आए हैं कि बेटी को लेकर किया गया उनका निर्णय बिलकुल सही था। पर आज वे अधीर हैं। यदि बेटी का रिजल्ट अच्छा नहीं हुआ तो इस गाँव में उनलोगों का जीना हराम हो जाएगा।

जब अफरीदा का रिजल्ट गाँव पहुँचा, गाँववालों की बोलती बंद हो गयी। गलियों में बतियाते लड़कों, औरतों और बूढ़ों के झुंड अकस्मात अदृश्य हो गए। रिजल्ट आने के साथ ही सब मास्टर के घर के सामने आतिशबाजी करेंगे, इसी विचार से लड़कों ने बम का जुगार कर रखा था। सबको अनुमान था कि अफरीदा पास नहीं करेगी और इसके लिए गाँववालों ने दुआ भी की थी। पर सभी अटकलों पर विराम चिह्न लगाकर अफरीदा ने बड़े ही अच्छे अंकों के साथ दसवीं पास किया। मास्टर की छाती चौड़ी हो गयी। बेटी ने सफलता के इनाम के रूप में बाप से शहर में पढ़ने की गुहार लगाई। मास्टर ने हामी भरकर उसे शहर के सबसे बड़े कॉलेज में दाखिला दिलाने का निर्णय लिया। पारंपरिक विचार वाले मास्टर के माँ–बाप ने पोती का विवाह कराने का आग्रह किया। लड़की है, इतना पढ़ेगी तो निकाह करनेवाला भी नसीब नहीं होगा। मास्टर ने किसी की नहीं सुनी।

बड़े शहर में पढ़ने से बेटी का भविष्य चमक जाएगा, इस पर मास्टर को कोई संदेह नहीं था। उन्होंने बेटी का भविष्य प्रत्यक्ष किया...अफरीदा ने अच्छी तरह सारी परीक्षाएँ पास की, वह डॉक्टर बनी है, मास्टर ने एक अच्छे डॉक्टर के साथ उसका निकाह कराया है, अफरीदा के कारण मास्टर के खानदान का मान बहुत बढ़ गया है।

शहर के बड़े कॉलेज में अफरीदा की दाखिला हो गयी। कॉलेज के हॉस्टल में उसे छोड़ने जाकर उन्होंने वार्डन से मुलाकात की 'मेरी बेटी आज से आपकी बेटी है। मैं अपने घर की इज्जत आपके हवाले छोड़ रहा हूँ। आप अफरीदा का ख्याल रखिएगा।'

'हॉस्टल की हर लड़की मेरी अपनी बेटी ही हैं। माँ–बाप मेरे भरोसे में यहाँ छोड़ जाते हैं। यहाँ जो भी आती है, भविष्य बनाकर जाती है। अगर आपकी बेटी खुद ठीक रहे, उसे कोई कुछ नहीं कर पाएगा। आप निश्चिंत रहिए।'

मास्टर ने वार्डन से आज्ञा ली। वहाँ से निकलते समय गेट में मास्टर की भेंट चौकीदार से होती है। वह हॉस्टल का सबसे पुराना चौकीदार है, अब बूढ़ा हो गया

है। पिछले पैंतीस साल से वह इन लड़कियों की देखभाल कर रहा था। मास्टर ने उसकी अनुभवी आँखों को पढ़ा और कहा– 'मेरी बेटी आज से यही रहेगी। आप इस का ख्याल रखिएगा। पहली बार यह घर के बाहर अकेली रहने आयी है।' मास्टर ने बूढ़े की मुट्ठी में सौ रुपये का एक नोट थमा दिया। अफरीदा से विदा लेते समय उनकी आँखें भर आयीं। वे कुछ नहीं बोल पाये और बेटी की तरफ देखे बिना ही चल दिये। उन्होंने पीछे से सिसकने की आवाज सुनी।

nk

हॉस्टल का माहौल अफरीदा को अजीब सा लगा। तीन मंजिले उस इमारत में छोटे–छोटे कई कोठे हैं। एक–एक कोठे में पाँच–पाँच लड़कियाँ रहती हैं। सबके लिए एक मेज, एक कुर्सी, एक छोटा–सा पलंग हैं। उसके लिए अपना घर, घरवाले और गाँव के बदले इस कोठे, हॉस्टल और शहर को अपनाने का समय था। उसे माँ याद आयी और आखों से आँसू टपकने लगे। माँ के शब्द उसके कानों में गूंजने लगे कि 'तूने चाहा, इसीलिए हम इतना दूर तुझे भेज रहे हैं। शहर की बात है। सावधानी से रहना, घर की इज्जत का ख्याल रखना।'

बाजार से बाप ने जो जरूरी सामान बाल्टी, मग, साबुन, तकिया, तोशक आदि उसके लिए खरीदे थे, सब उसके पलंग के पास ढेर होकर पड़े थे। इन सबमें ही अफरीदा को बाप अनुभूत हुए। उसके कोठे में और एक नई लड़की आई थी, वह भी अपना सामान समेट रही थी। उसका चेहरा भी उदास था, घर छोड़ने का दर्द उसे भी सता रहा था।

टक् टक् टक् ! दरवाजे पर पड़ी टोकर से दोनों नवागता सिहर उठीं। दोनों ने आँखें पोंछ लीं। दरवाजे से एक लड़की अंदर घुस आई– 'खराब लग रहा है न ! लड़कियाँ जब हॉस्टल आती हैं, तब घर छोड़ने के दुख में रोती हैं, जब घर जाती हैं, हॉस्टल छोड़ने के दुख में रोती हैं। हम जहाँ रहते हैं, वह जगह हमारी अपनी हो जाती है। जल्दी ही यह माहौल तुम्हें अच्छा लगने लगेगा। प्रेयर का समय हो रहा है। घंटी लगने पर बाहर फील्ड में आ जाना। उसके बाद डाइनिंग हाल में जान पहचान होगी।'

इतना कहकर लड़की निकल गई। इन दोनों नवागताओं के दिल धड़कने लगे। जरूर यह सीनियर होगी, रैगिंग के लिए बुलाया होगा। अचानक अफरीदा का चेहरा खिल गया। क्योंकि रैगिंग करना आजकल एक अपराध है। ऊपर से वार्डन का क्वार्टर भी डाइनिंग हाल के पास ही है। इसीलिए वे सुरक्षित हैं। अफरीदा ने नई रूममेट से बात करनी शुरू कर दी। वह बिजली है,वह भी अंदरूनी गाँव से आई है। घंटी लगते ही दोनों प्रेयर के लिए बाहर निकलीं। हॉस्टल से सटे मस्जिद से आए अजान से अफरीदा का मन शांत हो गया.....अल्लाह हु अकबर....। उसने ओढ़नी माथे तक खींच ली। अजान के तुरंत बाद पंक्तियों में खड़ी लड़कियों ने प्रेयर शुरू किया–

कृपा सागर, दैवकी नन्दन, पूरिओ मानर काम।

भकतर संग, सदा न छाड़ोक, मुखे तुवा गुण नाम।।

पुरानी छात्राओं के साथ अफरीदा समेत नई छात्राओं ने भी कृष्ण–स्तुति में योगदान दिया। अगला कार्यक्रम डाइनिंग हाल में था। चाय के साथ वहाँ मीटिंग शुरू हो गई। तीसरे वर्ष की एक छात्रा ने खुद को मनिट्रेस बताकर हॉस्टल के नियम के बारे में बताया। जरूरत पर उसे बात करने के लिए कहा गया और जान–पहचान के बाद मीटिंग खत्म हुई।

धीरे–धीरे अफरीदा इस नए माहौल से परिचित होने लगी। सुबह की चाय, गुसलखाना रखना, नहाना, भात खाना, कॉलेज जाना, शाम का प्रेयर, रात को माँ–बाप से फोन में बातें करना, फिर रात का खाना और सोना यही हॉस्टल के दैनिक कार्यक्रम की सूची है। हॉस्टल में गुसलखाना रखने का अद्‌भुत नियम है। जो पहले पानी से भरा हुआ बाल्टी गुसलखाने में रखती है, नहाने का पहला हक उसी का होता है। इसी तरह भोर से गुसलखाने में बाल्टी रखने का सिलसिला शुरू हो जाता है और बाल्टियों की लंबी पंक्ति लग जाती है। बाल्टी के नंबर के अनुसार लड़कियाँ नहाने जाती हैं। जरूरी अवस्था में अगर किसी को पहले जाना पड़े, तो उसे अपने बाल्टी से पहले जितनी बाल्टियाँ हैं, उनके मालिकों की अनुमति लेनी होती है। डाइनिंग हॉल में पहले सीनियर खाना खाती हैं, उनकी मर्जी से टी.वी. के चेनल बदलते हैं।

अफरीदा इस्लाम में विश्वास रखनेवाली एक चरित्रवान लड़की है। शहर की आबो–हवा से वह परिचित हो रही है। वह अपने सहपाठियों के हावभाव से दंग रह जाती है। उसे समझ नहीं आता कि क्यों माँ–बाप को वे बाइक खरीदने के लिए विवश करते हैं, क्यों पचीस–तीस हजार रुपयों का मोबाइल उन्हें चाहिए, बीस रुपये में कैंटीन में पेट भरकर खाने की व्यवस्था होने पर भी क्यों वे रेस्टोरेंट में सैकड़ों रुपये खर्च करते हैं, क्यों शुक्रबार को क्लास छोड़कर ये सिनेमा हॉल भरते हैं, क्यों पार्कों में ये एक दूसरे से चिपकते बैठते हैं। उसके सोच और वर्ताव ने पहले एक महीने में ही दूसरे छात्र–छात्राओं से उसकी अलग पहचान बन गई, पुराने ख्यालों की लड़की का लेबेल उस पर चिपक गया। कॉलेज और हॉस्टल दोनों जगहों में वह अकेली पड़ गयी।

हॉस्टल की लड़कियों के अड्डे का मूल विषय प्रेम होता है। प्रेमिकों के फोन में वे रात काट देती हैं। पहले स्वप्नभंग और फिर विरह में निद्राहीन रात काटनेवाली लड़कियाँ उसे पागल–सी लगती थी। मान–अभिमान, संसार गढ़ने और तोड़ने की कल्पना में विभोर छात्राएँ उसे प्रभावित करने लगीं।जो जिस माहौल में रहता है, उसके अनुकूल उसकी मानसिक स्थिति होती है। अब अफरीदा को लगने लगा है कि प्रेम पागलपन नहीं है। सोच–समझकर किया गया संबंध प्रेम नहीं होता, गणित होता है। शायद इसीलिए अनेक प्रेमीयुगलों के उम्र, शिक्षा, सौन्दर्य, जात–पात आदि में बेमेल पाया जाता है।

रात का खाना खाकर अफरीदा कमरे में घुसी ही थी कि सीनियर रूममेट जुली ने उसे अपने पास बुलाया। अफरीदा के साथ उसका अच्छा संबंध है– 'अफरीदा, बॉयफ्रेंड चाहिए क्या?'

अफरीदा सिहर उठी।

'मेरा वो है न, उसने बताया था। मुस्लिम लड़का है। उसे एक लड़की चाहिए, मतलब गर्लफ्रेंड। उसने तुझे देखा है, पसंद भी किया है।'

अफरीदा कुछ बोल नहीं रही थी।

'अरे पगली, देखने में हर्ज क्या है? कहाँ तेरे गाँव में ऐसा लड़का मिलेगा? अच्छा लगा तो चलाते रहना, नहीं तो छोड़ देना। तेरा घर यहाँ से बहुत दूर है, किसी को पता भी नहीं चलेगा। फिर घर जाके जिससे मर्जी शादी कर लेना। यहाँ अच्छा टाइम पास हो जाएगा।'

जवाब दिये बगैर ही वह अपने पलंग तक गई। उस रात अफरीदा को नींद नहीं आई। उसने जिंदगी में पहली बार कुछ अलग सी अनुभूति का एहसास किया। उसे आज जवानी का मतलब मालूम–सा हुआ। उसने सोचा। शायद प्यार ऐसे ही होता है।

दो दिन बाद वेलेनटाइन डे है। हॉस्टल की सभी लड़कियाँ अपने–अपने प्रेमियों को शुभकामना देने के लिए अपने हाथों से विविध कलाकारियों से कार्ड बनाए हैं। अपने हाथों से कार्ड बनाने के दो कारण हैं–पहला उनके पास इतने पैसे नहीं होते और दूसरा तोहफे में अपने हाथ का स्पर्श होने का मजा ही कुछ ओर है। चौदह फरवरी को कॉलेज और हॉस्टल दोनों सुनसान हो जाते हैं। सभी पार्क, रेस्टोरेंट और सिनेमा घरों में भीड़ करते हैं। शाम तक हॉस्टल का रसोइया सारा खाना डास्टबिन में फेंकता हुआ बड़बड़ा रहा था–'देश के आधे लोग भूखे मर रहे हैं और यहाँ इतना खाना फेंका जा रहा है। खाना थोड़ा भी कम होने से लड़कियाँ हंगामा करती हैं। इतना अत्याचार करती हैं, कुछ बोलने से भड़क जायेंगी। खाना खाती भी नहीं और पकाने को मना भी नहीं करती। पता नहीं कौन–सी शिक्षा ये ले रही हैं! पढ़–लिखकर ये क्या करेंगी?'

लड़कियाँ एक रंगीन दिन की समाप्ति के बाद हॉस्टल पहुँचीं। शाम को डाइनिंग हॉल में सब लड़कियाँ अपने–अपने दिन का अनुभव एक दूसरे से सांझा कर रही थीं। दिन कहाँ कैसे काटा, क्या खाया, तोहफे में क्या दिया और क्या पाया, ये सब बातें हो रही थीं। अफरीदा और अफरीदा जैसी कुछ लड़कियाँ चुपचाप ये सब देख और सुन रही थीं। अफरीदा इन लड़कियों के भाव–जगत में विचरण कर रही थी कि इतने में एक सीनियर लड़की ने उसे टोका–'अफ्री, तू भी बता न। क्या किया तूने दिन में?' उसके कुछ बोलने से पहले किसी की आवाज आई– 'ये बोर क्या करेगी, खाया और सोया होगा, पढ़ा भी होगा ! ये क्या जाने वेलेंटाइन डे किस वैज्ञानिक का नाम है !

किसी को कुत्ते ने काटा है क्या कि इससे प्यार करेगा?' ठहाके से पूरा हॉल गूंज उठा। मजाक में कही गई ये बातें उसके दिल में तीखे तीर की तरह चुभ गईं। वह घायल पक्षी की तरह छटपटती हुई अपने कमरे में चली गई।

हॉस्टल का माहौल कुछ अलग तरह का होता है। हॉस्टल में समाज की छवि मिल जाती है, यह समाज का छोटा संस्करण सा होता है। हर एक लड़की अपने परिवार के संस्कार के साथ यहाँ आती है। कुछ लड़कियाँ खाने–पीने और घूमने–फिरने में समय बिताती हैं, तो कई खेल–कूद में। कई गाने–बजाने में, तो कई पढ़ाई में आगे आती हैं। पढ़ने में तेज लड़कियों को ही हॉस्टल में दाखिला मिलता है। कम उम्र में लड़कियाँ यहाँ आती हैं, तो उनका हृदय साफ–सुथरा और निर्मल होता है। चीजों को वे सहज–सरल ढंग से देखती हैं। कहीं कुछ जटिलता उन्हें दिखाई नहीं देती। वे अपने मन का मालिक होती हैं। जो चाहे कह दिया, जो चाहे कर दिया। अभी झगड़ा और एक पल बाद गले लगना, गाली–गलौज,मजाक, खिल्ली उड़ाना ... ये सब हॉस्टल के नियमित दृश्य हैं। कब किस की बारी आती है,कहा नहीं जा सकता। आज सबके सामने अफरीदा की अच्छी खिल्ली उड़ गई। निसंगता में कटे उबाऊ दिन और फिर शाम की इस ग्लानि को वह झेल नहीं पा रही थी। वह अस्थिर थी, व्यथित थी। उसने दिमाग को ठंडा करके पूरे परिवेश में अपनी जगह को टटोला। उसने पाया कि शायद इस परिवेश में वह मेल नहीं खाती। उसकी सहेलियाँ अपने प्रेमियों के साथ यहाँ–वहाँ जाती हैं। वे इनका ख्याल रखते हैं। ये जोड़ियाँ बहुत खुश देखे जाते हैं,देखने में भी अच्छे लगते हैं । इस के विपरीत वह निसंग और नीरस जिंदगी काट रही है। अफरीदा के दिल में एक बात घर करने लगी....प्रेम....हाँ प्रेम...जीवन में प्रेम करना जरूरी है। निसंग होकर जीना मुश्किल होता है। सहेलियों की कटूक्ति वह और नहीं सहेगी। उसमें भी दूसरी लड़कियों की तरह गुण हैं,जिससे कोई न कोई प्रेम की याचना करे। उसके मन में एक तृष्णा जगी...कोई उसे भी चाहे,उसका ख्याल करे। जवानी को अनुभव करने का हक उसे भी है। उसने तय किया कि वह प्रेम का रास्ता अपनाएगी। प्रेम और पढ़ाई दोनों को वह समांतराल रूप में आगे बढ़ाएगी। वह अब और पुराने ख्यालों की लड़की बनके नहीं रहना चाहती। उसने जुली की ओर देखा। पूरा दिन घूम–फिरकर आने के बाद वह थक चुकी थी, खाने–पीने का झंझट भी नहीं थी, तो वह सो गई थी। उसने जुली को बुलाया–'जुली दी ...जुली दी।'

'सोने दे।'–भड़ककर जुली बोली।

'मुझे आपसे कुछ बातें करनी थीं।' –संकुचित होकर उसने कहा।

'कल बात करूंगी। अभी मेरा दिमाग मत खा।'

'बात यह है कि आपने जो उस दिन एक लड़के की बात की थी, मेरे लिए...वह... 'अब जुली की नींद टूट गई। 'मैं उनसे एक बार मिलना चाहती हूँ'।

'ओहो। तो तू भी पटरी पर आ गई। ठीक है यदि वह अब भी खाली है तो बात पक्की समझ। बस एक पार्टी देनी होगी।'

जुली फिर से सो गई। अफरीदा उस रात सो नहीं पायी। उसने खुली आँखों से नई जिंदगी का सपना बुनना शुरू किया। अगले दिन हॉस्टल में यह खबर आग की तरह फैल गई कि अफरीदा भी बॉयफ्रेंड की तलाश कर रही है। उस दिन का अड्डा अच्छा जमा था। अफरीदा के लिए खबर यह थी कि लड़का इन दिनों बड़ा व्यस्त है। कुछ दिनों के बाद ही वह अफरीदा से मिल पाएगा। प्यार में उथले अफरीदा के दिल में पानी फेर दिया। इस तरह लगभग दो महीने चले गए और पहले जुली से बीच–बीच में उसे उसकी खबर मिलती रही, फिर दोनों के बीच फोन में बातचीत शुरू हो गयी और उससे मिलने से पहले ही उसने अफरीदा के दिल पर अपना घर जमा लिया।

पूजा के बंद में घर जाने से अगले दिन लड़के ने खुद फोन कर अफरीदा से मिलने की इच्छा जताई। अफरीदा की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। उसके कानों में उसके प्यार भरे शब्द गूँजते रहे.....'मैं तुम्हें लेने आऊंगा। तैयार रहना...'। वह उसे कल लेने आएगा, उसने उसे अपने किसी दोस्त के घर ले जाने की बात की थी। पहले किसी के घर जाने की बात उसे ठीक नहीं लगी थी। किसी अनजाने के साथ अनजानी जगह में उसके घरवाले कभी कहीं जाने नहीं देते। ऊपर से उससे भी वह पहली बार मिलने जा रही है। फिर अफरीदा को लगा कि वह तो अब अपना ही है और उसका दोस्त अपरिचित कैसे हुआ? विश्वास पर ही तो दुनिया कायम है। विश्वास की मजबूत नींव पर बनाए हुए रिश्ते का महल भी मजबूत होता है। शंका पर आधारित कोई रिश्ता आगे नहीं बढ़ सकता। मन में विश्वास लिए हाथ में हाथ धरे ही प्रेम मंजिल तक पहुँचता है। यूं भी इतने दिनों के बाद उसने मिलने के लिए बुलाया है, तो मना करने से बात बिगड़ सकती है। यह मौका वह खोना नहीं चाहती। उसका प्रस्ताव वह ठुकरा नहीं सकती। सुबह के इंतजार में करवट बदलकर उसने रात काट दी। रात में उसने एक कविता भी लिख डाली–

काश मुझे पता होता...
काश मुझे पता होता कि ये हसीन पल प्रेम की देन है
तो मैं प्रेम से अब तक दूर न भागती...
काश मुझे पता होता हृदय के ज्वारों के लक्ष्य तुम हो
तो मैं तुम्हें खोज लाती....कहीं से भी
तुम रोशनी हो मेरी जिंदगी की,रोशन करो मुझे
आकंठ पानी में डूबी फिर भी प्यासी हूँ, तृष्णा ने मुझे निगल लिया है...
मैं पतंगा बन जलती रहूँ तुम्हारे लिए। जिंदगी भर

कविता खत्म होते–होते उसने भी हल्की सी झपकी ली।

सुबह जल्दी उठकर उसने खुद को तैयार किया। एक पवित्र रिश्ते की ओर वह बढ़ रही है,इसीलिए पहनने के लिए उसने एक सफेद साड़ी निकाल ली। समय से पहले ही तैयार होकर हॉस्टल के गेस्ट रूम में बैठ उसका इंतेजार करने लगी। ठीक समय पर उसे लेने लड़का हॉस्टल का गेट पहुँचा। गाड़ी से उतरकर एक लाल रंग का गुलाब अफरीदा की ओर आगे बढ़ाता हुआ वह बोला– 'मेरे जीवन में तुम्हारा स्वागत है।' अफरीदा का मन खिल उठा। हाँ, वही उसकी कल्पना का पुरुष है...। उसने भी जीवन की पहली हलचल, पहली अनुभूति को कविता के रूप में एक लिफाफे में बंद करके उसे दी। गाड़ी में चढ़ने से पहले अफरीदा ने हॉस्टल की ओर मुड़ कर देखा। लड़कियाँ अफरीदा को ही देख रही थीं। सबकी ओर उसने नजर दौड़ाई...मानो कह रही हो...देखो मेरा आशिक मुझे गाड़ी से लेने आया है। मैं तुम किसी से भी कम नहीं हूँ। इतने में अफरीदा की नजर बूढ़े चौकीदार पर पड़ी। अफरीदा का बाप जब भी हॉस्टल आते हैं, इस चौकीदार को बेटी का ख्याल करने के लिए आग्रह कर जाते हैं। बूढ़ा अफरीदा को देख रहा था उसे आश्चर्य हुआ, इससे पहले कि वह अफरीदा को कुछ कहे अफरीदा ने उससे कहा– 'काका मैं जा रही हूँ।' और वह गाड़ी में चढ़ गई। बिजली गति से चलती हुई गाड़ी पल भर में बूढ़े की आँखों से ओझल हो गई।

rhu

पूजा के बंद में अफरीदा घर गई थी। तीन महीने बीत गए और वह अब तक हॉस्टल नहीं आयी। हॉस्टल की किसी से उसकी बात भी नहीं हुई है। कई लड़कियों ने उसे फोन किया था,पर उसने किसी का फोन नहीं उठाया। उसके बाप ने यह जानकारी दी रखी थी कि उसकी तबीयत ठीक नहीं है। उसकी पहली परीक्षा अच्छी हुई है। वार्षिक परीक्षा के लिए अफरीदा के बाप के कहने से जुली ने प्रपत्र भरा दिया था। चार दिन बाद परीक्षा है, अब तक भी अफरीदा की कोई खबर नहीं है। जुली को पहले शंका थी और उसे अब विश्वास होने लगा कि अफरीदा के साथ कुछ न कुछ तो हुआ है। पर क्या हुआ है वह समझ नहीं पा रही थी।

मनुष्य का जीवन नदी की धारा की तरह है वह कभी रुकता नहीं। रास्ते में कितने ही बांध न दिये जाएँ, उसे अपना रास्ता चुनना होता है। हॉस्टल के हल्के फुल्के माहौल के हँसी–मजाक ने अफरीदा के जीवन की गति बदल दी। रंगीन जीवन का सपना देखनेवाली लड़की अब बिलकुल रंगहीन हो चुकी थी। गतिशीलता जिंदगी है और स्थिरता मृत्यु है। समय के थपेड़ों को जीतकर आगे बढ़ जाना ही जीवन का दूसरा नाम है। मृगतृष्णा मृग का भ्रम है, अपराध नहीं। जरूरी नहीं कि मृग एक बार रेगिस्तान में फँस जाए तो वह तालाब, नदी का पानी कभी न खोजे।

इतवार का दिन था। सुबह आठ बजे आसिफ मास्टर हॉस्टल आ पहुँचे। वे वार्डन से अफरीदा का हॉस्टल सीट वीथड्रॉ करने के लिए आए थे। मास्टर की बातों से वार्डन चौंक पड़ी–'–आप लड़की की पढ़ाई क्यों रोक रहे हैं?'

'मैं कहाँ उसे मना कर रहा हूँ ! वह अगर खुद नहीं पढ़ेगी मैं क्या कर सकता हूँ?'

'उसने क्यों मना किया?'

'वह कुछ नहीं बताती। जब से यहाँ से गई है, उसने चुप्पी साध ली है। पता नहीं कौन सा गुनाह किया था कि ये दिन देखने पड़ रहे हैं!' मास्टर की आवाज भर आई। उन्होंने आँखें पोंछ लीं।

'मैं उससे एक बार बात करना चाहती हूँ।'

'आपके सामने हाथ जोड़ता हूँ, आप ऐसा न करें।'

वार्डन ने बार–बार मास्टर से कहा कि लड़की के साथ गलत हो रहा है। पर बच्चों के लिए माँ–बाप से बढ़कर शुभचिंतक कौन हो सकते हैं? कहते हैं दुनिया में माँ–बाप अपनी संतान को और शिक्षक अपने छात्र को अपने से आगे बढ़ता हुआ देखकर खुश होते हैं। यहाँ अफरीदा के भविष्य को लेकर मास्टर और वार्डन दोनों के विचार अलग–अलग थे। मास्टर वार्डन को समझा नहीं पा रहा था और वार्डन को मास्टर नासमझ लग रहे थे। मास्टर ने कहा–'पूजा के बंद में जब से वह घर गई थी, तब से उसने किसी से बात नहीं की, खाना–पीना छोड़ दिया। हम सब ने उसे पूछा, बहलाया, फुसलाया पर कुछ काम न आया। भाभी, फूफी, चाची, दादी, नानी, सहेली सबने उससे साझा करने की कोशिश की। उसके मुंह से एक भी शब्द निकला। हकीम, ओझा सब हार मान गए। सूखकर आधी हो गई है। पत्थर–सी वह बैठी रहती है, आँसू की झड़ी लगी रहती।'

वार्डन को वीथड्रॉ स्वीकार करना पड़ा। वार्डन के मन में मास्टर की बातें आ रही हैं। एक उज्ज्वल सितारा बुझ गया। भोली मासूम अफरीदा के साथ ऐसा क्या हुआ कि वह गूंगी हो गई। अगली सुबह उन्होंने अफरीदा के कमरे की लड़कियों को तुरंत बुला लिया। चारों लड़कियां वार्डन के सामने एक ही पंक्ति में खड़ी हो गईं। अनुसंधानमूलक स्वर में वे बोलीं– 'अफरीदा जब से यहाँ से गई है, वह न खाती है, न पीती है। उसने हॉस्टल छोड़ दिया है। तुम्हें पता है ?'

'हाँ मेम सुना है।' किसी एक ने उत्तर दिया।

'क्यों कुछ बताओगी भी?' चारों लड़कियाँ चुप हैं। 'उसके साथ यही कुछ हुआ होगा! कहीं तुमलोगों के साथ.....'

हॉस्टल का अनुशासन बड़ा कड़ा है। गलतियों के लिए कड़ी से कड़ी सजा दी जाती है। उन लोगों ने देखा कि वार्डन छोड़ने वाली नहीं है।

'घर जाने से एक दिन पहले वह एक लड़के से मिलने गयी थी। पहले जुली ने मुँह खोला।' फिर एक–एक कर सब बोलने लगीं।

'वह पहली बार उससे मिलने गई थी। 'अबकी बार बिजली बोली।

'सुबह वह अफरीदा को ले गया था। उसकी गाड़ी में और भी लड़के हमने देखे थे।' तीसरी लड़की ने कहा।

'शाम को देर से वह पहुँची थी। आते ही वह सो गई, हमसे बात नहीं हुई। अगली सुबह हमारे उठने से पहले ही वह घर जा चुकी थी।' चौथी लड़की ने दबे स्वर में कहा।

इतनी जानकारी वार्डन के लिए काफी थी। जो बात आसिफ मास्टर छुपाने की कोशिश कर रहे थे, लड़कियों के मौन होठ उसी का बयान कर रहे थे। लड़कियाँ चली गईं और वार्डन अपनी कुर्सी पर जड़वत बैठ गईं।

'kCnkFk %

1 यह एक असमीया प्रार्थना है, जिसका तात्पर्य है— दैवकी के नन्दन कृपा का सागर हैं, वे मनोकामना की पूर्ति करें। भक्तजनों का संग कभी न छूटे, मुँह से तुम्हारे गुण का ही बखान हो।

• • •

हजारों दियों को एक ही दिए से, बिना उसका प्रकाश कम किये जलाया जा सकता है, खुशी बांटने से खुशी कभी कम नहीं होती

–गौतम बुद्ध

dfork

lHkko dh lhek tkuus dk ,d gh rjhdk g\ %
vlHkko ls vkxs fudy tkuk

– अज्ञात

cr flg

कर्मानन्द आर्य

बेटी ने आबरू खो दी
छाती पर कोयला सुलगाया सिरफिरों ने
जालिम बुरा होता है
जुल्म सहने वाला और बुरा होता है

बेटी ने आबरू खो दी
यह सिर्फ अखबार की पंक्तियाँ नहीं हैं
साक्षात मौत है
सभ्यता के मुहाने पर खड़े मनुष्य की
धरती की आखिरी चीख
मरुथल की आखिरी प्यास
आँखों की आखिरी नमी
सब सूख चुका है जैसे

बलात्कृत हुई थी पांच नदियों की जमीन
उस लड़की के साथ
सतलुज, व्यास का रेतीला पथ सूख गया था
रावी एक जगह
झेलम एक जगह
चिनाव दूसरी जगह बार–बार हो रही थी हवस का शिकार

पञ्च प्यारे चीखते थे
मेरा पंजाब लौटा दो
बख्श दो हमारी बेटियों को
उनके आँचल में शूल नहीं फूल ही फूल हैं

2–

नदियाँ मर जाती हैं
भले संसार में
चुप रहते हैं मनसबदार
उनका पानी बाजार में तैरता है
टपकता है नसों में

3–

मर जाते हैं लोग
जिनकी छाती पर रखा हुआ कोयला दहकता है
खून की एक धार धरती के एक कोने से दूसरे कोने तक
जज्ब होती रहती है
लोथड़े में तब्दील हो जाती है स्त्री योनि
चिता की आग बन जाती हैं बेटियाँ
एक बाप लड़ता है
कटे हुए पैरों को निहारता है बार बार
खून की धार धरती के एक कोने से दूसरे कोने तक
जज्ब होती रहती है
बंत सिंह लड़ता है
बिखरे हुए खून के धब्बों के लिए गाता है गीत
बेटी की चिता को लेकर घूमता है अपने गीतों में
सुनाता है अपना राग
बचपन के उन लाल सिंदूरी कदमों को सहलाता है
पिता के कई कदमों में
एक कदम उसका भी था
(बंत सिंह पंजाब का एक दलित सिख जिसे अपनी बेटी के बलात्कार के प्रतिरोध के कारण सवर्णों ने हाथ पैर काट दिया जो आज भी अपनी न्याय के लिए गीत गाता है.)

• • •

vè;kjkg.k g ;g

प्रांजल धर

रास्ते का पत्थर है जीवन
उस समाज में
जहाँ बड़े गिलास हैं, प्रमाण हैं
बड़े जीवन की भव्यता के,
और दमकता लिबास
सबूत है आदमी की महानता का
लिबास में जड़े रत्नों से
बू आती, किसी बाल मजदूर के थकने की
उसके अधिकारों के जलने की,
जो मानव होने के कारण उसे मिलने थे।

साँसों की आवक–जावक की तरह
साँय–साँय करती लम्बी–लम्बी महानगरीय कारों
के हॉर्न
रद्दी बीनते और अखबार बेचते बेघर–बार
बच्चों के मानव–अधिकार और जीवन संगीत हैं,
उनके सिर पर उनके रिक्शाचालक पुरखों के
बोझिल अतीत हैं।

ओस की बूँदों को पता नहीं कब से
चौड़ी–चिकनी सड़कों पर सो रहा
फुटपाथ का रहनवार
अमृत की बूँदें समझ रहा है...
हर बार चकाचौंध रोशनी के
महानगरीय द्वन्द्वों में
नए सिरे से उलझ रहा है।
गुलाब खिला, चहक उठे पक्षी,

उग आई सूरज की लाल–लाल टिकिया
सवेरा हुआ, सब कुछ सुलझता जा रहा है
बस उसकी जिंदगी में मेहनतकश लोगों के
अधिकारों का व्याकरण उलझता जा रहा है।
पहले से डेढ़ गुना ज्यादा वजन
लादकर, पहले से दूने समय तक
खींचता है रिक्शा
...हो चला है अब कमजोर, बीमार
चढ़ता ही जा रहा है
साथियों से लिया हुआ लंबा उधार
जिंदगी ऋणात्मक होती जा रही है
अध्यारोहण है यह समय के जलजलों का।

दंगों से बेघर हुए परिवार की नवेली दुल्हन के
बहुत सारे स्वप्न
ध्वस्त हो जाते एक झटके में
धमाके के बाद खंडहर में तब्दील हुए
आलीशान महल–से।
लपालप निकलकर लील लेती उसके परिवेश को
हादसों की लंबी जीभ
वह अब चिर–अधिकारहीन, अस्तित्वहीन।

अध्यारोहण है यह बौद्धिकों की स्वार्थ पताकाओं का।
अपने ही देश में पराए हैं
वंचनाबोध से ग्रस्त नवयुवक कुछ,
उनके मानवाधिकारों की तो बात ही दूर है,
जिनका अस्तित्व ही संकट में रहा सदैव।
जला दी गयीं हैं कुछ प्रेमिकाएँ बगल वाले गाँव में
अपने ही घरों मेंय
सह नहीं पाती कोई कार्यकारिणी
पूर्वोत्तर के पहाड़ी अक्षांशों में

दूर तक पसरे विध्वंसक सन्नाटे को,
चुप्पियों का कब्रिस्तान ही संविधान है जहाँ का।

अध्यारोहण है यह बौद्धिकों की स्वार्थ पताकाओं का।
सभी लोगों ने अपने संगमरमर से लैस
घरों के आगे दो मीटर तक अवैध कब्जा
जमाया हुआ है, और निगल ली गयीं हैं
दूसरों के अस्तित्व की सम्भावनाएँ
कारें खड़ी करने और गमले रखने के लिए
चर्चित महानगरों में।
तलाशती है विकल्प अपने,
एक छोटी–सी कुपोषित बच्ची,
गुलाब के काँटों से खेलती है।
अध्यारोहण है यह
चूँकि ऐसे वीभत्स दौर आए बीच–बीच में
जब हमारी गर्दन पकड़कर
ली गयी हमसे सहमति जबरन
कि सबसे सेकुलर चीज मौत ही होती है,
जाति, धर्म, लिंग, क्षेत्र या भाषा वगैरह के भी ऊपर।

हालात ने आत्महत्या की चादर में लिपटी
उस मायावी मृत्यु से रू–ब–रू कराया,
जो हत्या हुआ करती अकसर।
और हत्या पर तो खुद आवरण होता
हिंसक वध का, और वध पर मुक्ति का शायद।
कितने ही परदों के नीचे दबी होती
प्याजनुमा परतों वाली मृत्यु की हकीकत
एक–एक करके उघाड़ती जिन्हें पुलिस और अदालतें
पड़ोसी, परिवारीजन।
अध्यारोहण है यह तमाम परिभाषाओं का।

• • •

yky lk

मनोज कुमार झा

पाँवों की जो छाप अपने घर में
वहीं छाप छोड़ कर जाते अपने घर
गंगा के मैदान का एक वृद्ध
कांपते कहता है–विस्थापन
उसकी हड्डियों के जोड़ दुखते हैं

कई बार कई लोगों से उसने कहा था
गांव के घरों में कॉलबेल नही होते

कुछ दिनों से वह कह रहा है
मैं इस घर का कॉलबेल हूँ
पता नहीं–घर के बाहर का हूँ या भीतर का

मुझे कुछ नहीं चाहिए
जब आवाज दूँ तो रुकें बटोही
भीतर से आये लोटा भर जल
और जब तक रहूँ
नहीं कटे यह नीम का पेड़।

• • •

,d lH;rk ;s Hkh

उपांशु

जब कनैल की सूई सी पत्तियाँ
झिलमिलाते लैम्पपोस्ट का सहारा बनती हैं, कौन सुनता है
सड़क द्वारा त्याग दी गई गिट्टी को
उनकी परछाई में पा लेती है जो

अपने होने भर का स्थान? और श्याम गगन पर
जब बादलों की कढ़ाई की जाती है, कौन बीड़ा उठाता है
चाँद द्वारा सोख ली गई
लहू का जो दिन ढलते ही आसमान पर
बस, पसर ही जाता है? अमूमन रातों का मुन्तजिर

किसी भी शहर में
सबसे ज्यादा केवल रोजमर्रा के पलायन से ही
आजीज आकर नहीं बल्कि अलग–अलग चेहेरों पर
थपेड़े खाकर भी गुबार ही होता है

हर बारिश के साथ जो चिपकता ऐसा है गोया
सड़क ही हो जाना चाहता हो, त्यागी हुई
गिट्टियों से धुलकर एक अथाह समग्र का हिस्सा, अरण्य काय
ताकि बारिश हो जाने के बाद, सुबह के माहौल का सन्नाटे से

अलहदा हो जाने के बाद, सभ्यता के
जाग जाने के बाद
पर्यटनशील चक्कों का
सड़कों पर घर्षण
मजबूर न कर दे चेहरों पर
थपेड़े बन पलायन को।

• • •

dpkVrk g dN

vfpr

दुनिया में ज्यादातर काम कर लिए जाते हैं
किसी को पता चलने दिए बिना.
क्रियाओं के पीछे क्या है,
ये अन्वेषण सम्भव नहीं हो पाता,
सब छितरा जाता है कि
सच अब हो चुका भूत बिचरता है कई कई जगह
और प्रतिष्ठित कहीं नहीं होता.
कितनी आवाजें कभी बाहर नहीं आ पाती
कितने कदम कैद रह जाते हैं
कितने बेताल टंगे रहते हैं पीछे.
कि तुमने सुना कि कितने लापता हैं?
कि कितने बेच दिए गये बंद कमरों के लिए ?
कि कितने बंद कमरे हैं जमीन के नीचे ?
कोई बम गिरा कहीं, दूर,और
उसकी आवाज रोज मन में तड़पती है कई कई बार
कोई लहर उठी तड़तड़ करती, वहशी, और
कितना कुछ खामोश हो गया एक बार में.
कि एक पत्थर उठाया किसी ने और रख दिया है मेरी पीठ पर.
मेरा हृदय कैद है मेरी देह में, दुखता हुआ, बंद दरवाजे से टकराता अपना सिर.
जैसे ही नींद आती है, ग्लानि भी आती है साथ, इतने इतने दरबदर दुनिया में
और मैं सो रहा हूँ, अपना हाथ प्रेयसी की पीठ पर रखे हुए.

• • •

fuokl u
¼dfn'k dfork½

vCny ik'ko
अनुवाद : अंचित

जब निर्वासन फैलता है तूफान के जैसे
मेरी शांति के खुले मैदान में,
जब उदासी अपने पंख फैलाती है और
एक कौवे की तरह, बैठी रहती है,
मेरे दरवाजे,
मैं अपने दुःख की बर्फी ले पंखों वाली गौरैया को लिए
चलता जाता हूँ, चलता जाता हूँ,
जब तक मुझे कोई बच्चा नहीं मिलता
और उसकी आँखों की रौशनी से
उस गौरैया को फिर से उड़ना नहीं सिखा देता.
फिर भी, मेरी प्रिय,
कितनी बार ही मैंने देखा है
जब इस शहर के बच्चे दुःख करते हैं
वो, कैसे छोटे बतखों के जैसे
नहाने चले आते हैं,
तुम्हारी आँखों की झील में.

• • •

lM+d ds fHk[kkjh vkj Hkn ykx

vuUr feJ

सड़क के भिखारी
अब वे कुबेर के वहां तो
जा नहीं सकते,
इन्द्र के वहां भी
लक्ष्मीपति विष्णु के पास भी नहीं,
शिवजी के पास जाएंगे भी तो क्या,
विरादरी का सवाल है, बिलगेट्स, अम्बानी, बिरला, टाटा
की दान की संस्थाओं में
उनका पंजीकरण नहीं है,
कोई भी कार्ड नहीं है उनके पास
न बी.पी.एल.
न आधार,
न पैनकार्ड,
न कोई आइडेंटिटी प्रूफ
इसलिए उन्होंने सड़क को
किसी कोने में बदलकर
एक ठीहा बनाकर
कटोरा लेकर बैठने का
संकल्प ले लिया है,
सैंकड़ों लोगों के गुजर जाने के बाद
कोई दयावश
कोई दान से मिलने वाले
स्वर्गादिक लोभवश
कोई लज्जावश
कोई दिखाने के लिए
उनके कटोरों में डाल देता है,
कुछ सिक्का
या कई सिक्के

या कोई छोटे मूल्य का कागज का रुपया
वे रटी–रटाई
कृतज्ञता की भाषा बाइबिल के पवित्र वचन की तरह बोलते हैं
लोग आगे बढ़ जाते हैं।
सड़क के भिखारी
कभी नहीं जाते किसी बड़ी कोठी पर
क्योंकि गार्ड भीख नहीं देता
सिर्फ मालिक के पक्ष में
तर्क देने की उसकी नौकरी है,
सड़क के भिखारी
मंदिर, मस्ज़िद, गुरूद्वारे, तीर्थ
और दूसरे धार्मिक स्थलों के,
भिखारियों की तुलना में ज्यादा आम भिखारी हैं,
जिन्हें धार्मिक संसदों में
रहने का मौका नहीं है,
सड़क का भिखारी
सड़क से भीख नहीं
गुजरने की भीख भी नहीं
सिर्फ एक किनारे की मांग से
संतुष्ट है,
जैसे आम जनता
रोटी, दवाई पाकर संतुष्ट हो जाती है,
पर भिखारी सड़क का
कभी भी नहीं हुआ खुशहाल
बड़े–बड़े प्रतापी राजाओं के शासन से लेकर
आज के लोकतंत्र तक,
क्या भिखारी निराला की कविता से लेकर
आज तक इसी तरह नायकत्व पाएगा,
जिसकी कोई नायिका नहीं होती,
उसके कटोरों में पड़ी

थोड़ी सी लक्ष्मी ही नायिका है,
जिसे वह रोटी के बदले किसी भी
दुकानदार को देने में कोई
अनैतिकता नहीं मानता।
भीख और भिखारी
भद्‌दे शब्द हैं भद्र लोगों के लिए
पर भद्र लोग क्या हैं
भिखारी के लिए
यह, भिखारियों के अलावा
कोई नहीं जानता।

• • •

nkuk ek>h

fo'oukFk Álkn frokjh

दाना की नहीं
दैत्य की कथा यह
भ्रम नहीं था दाना को
न किसी से आशा
न किसी पर गुस्सा
भाव था, लगाव था
पराजय थी, खामोशी थी
लपेटने लगा दाना
जब अमंग की मृत काया, चटाई में
लजा गई पृथ्वी
अपनी धीरज पर
झुका दाना जिस पल
अमंग के बेजान शरीर को उठाने
झुकती–सी लगी सामने की दीवार
गिलहरियां चौंक कर देखने लगीं
गौरैयों ने चहचहाना बंद कर दिया
दारुण दृश्य था यह दरवाजों, खिड़कियों
मेजों, कुर्सियों
गमलों के लिए
अवाक् थे तीमारदार
आधुनिक और परम्परावादी
पिता के कंधे पर माँ
चटाई में लिपटी, निर्जीव
देख रही बेटी
उदास, निराश, हताश
अपनी नियति
मरा नहीं था अतीत
वर्तमान था दाना के कंधे पर

और पैरों में भविष्य
आहत सर्प सा रेंगता हुआ
बोझ तो था
मगर कंधे कृतज्ञ थे स्मृतियों में
कितनी दूर है गांव मेलघरा
क्या दाना के प्यार से, संकल्प से भी दूर?
आकाश मार्ग से जाती हुई
पार्वती ने शिव से कहा
नाथ, ऐसे ही तो भटके होंगे आप
कंधे पर लेकर मेरा शव, त्रिलोक में
सिसकते बोलीं पर्वत पुत्री
तीसरे नेत्र से देखिए, देव
भद्रपद के घने बादल छाए हैं नीचे
दुःख बहुत है मृत्युलोक में।

———————————————

कालाहांडी (उड़ीसा) के मेलघरा गांव का निवासी दानामांझी अपनी पत्नी के इलाज के लिए 60 किलोमीटर दूर भवानी पटना के सरकारी अस्पताल पहुंचा। 24 अगस्त, 2016 को अमंग की मृत्यु हो गई। पैसे नहीं थे दाना के पास, अतः एम्बुलेंस नहीं मिली। उसने चादर और चटाई में अमंग के मृत शरीर को लपेटा और कंधे पर उठा कर चल पड़ा गांव की ओर। पीछे उसकी 12 वर्ष की बेटी थी। 12 किलोमीटर पैदल चलने के बाद किसी दयावान ने स्थानीय अधिकारियों को फोन करके उसके लिए एम्बुलेंस का प्रबंध किया।

• • •

vc u p|i jg ikÅxh

y{eh tk; loky vxzoky

जो तूने किया वो
न मैं कर पाऊंगी।
कुछ भी हो मैं
अब न चुप रह पाऊंगी।
बचपन में देख मेरी
चहचहाट और खिलखिलाहट
तूने मुझे लाज–शर्म का
गहना पहनाया और मुझे
चुप रहना ही सिखाया।
अब तक तो रही खामोश
और इन गहनों का बोझ उठाया।
जीवन भर तूने जो सहा
वो न मैं सह पाऊंगी
अब न मैं इन गहनों का
बोझ कभी उठाऊंगी।
जो सिखाया तूने मुझे
अपनी बेटी को कभी न
मैं वो सिखाऊंगी।
अपनी मासूम कली को
यह जंजीरें न पहनाऊंगी
कुछ भी हो मैं
अब न चुप रह पाऊंगी।
यह अंगना कुछ दिन का है
और पति का घर ही ठिकाना है
यह शिक्षा मैं उस मासूम को
न दे पाऊंगी।
शादी के बाद भी उसकी मैं

मां का फर्ज निभाऊंगी।
यह अंगना भी उसका हो
हक उसे दिलाऊंगी।
खुशी को उसकी मैं
हर परंपरा तोड़ जाऊंगी।
हो सका तो इस समाज के
खिलाफ आवाज भी उठाऊंगी
कुछ भी हो मैं
अब न चुप रह पाऊंगी।
ससुराल जाकर अपमान का अश्क
पीना उसे न सिखाऊंगी।
स्वाभिमान और आत्मसम्मान
से जीना मैं उसे सिखाऊंगी
ससुराल के तानों से उसका
जीवन बचाऊंगी
दहेज के लालचियों से
उसका बंधन छुडाऊंगी।
कुछ भी हो हर हाल में
जीवन उसका खुशहाल बनाऊंगी।
कुछ भी हो मैं
अब न चुप रह पाऊंगी।

• • •

vufnr [kM

lQyrk ds fy, vko';d gS fd lQy gksus dh bPNk]
vkids vlQy gksus ds Hk; ls cM+k gks

— अज्ञात

LokLF; ds vfèkdkj dh pqukSfr;k%
U;k;ky;h ,oa oSf'od ifjos'k

,fyfl;k ,yh ;kehu

lkjka'k

यह आलेख स्वास्थ्य के अधिकार तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य के नियामक तत्व के बारे में कानूनी चर्चा और स्वास्थ्य पद्धति में सुधार तथा वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज (यूएचसी) के बारे में विकासात्मक विमर्श के बीच की खाई को पाटने का प्रयास करता है। यह स्वास्थ्य तथा स्वास्थ्य पद्धति के लिए स्वास्थ्य को एक अधिकार के रूप में परिभाषित करने के अवधारणात्मक प्रभाव और उसके फलस्वरूप स्वास्थ्य के बारे में निर्णय लेने हेतु न्यायालय की प्रतिबद्धता को निर्धारित करता है। यद्यपि टूट चुकी स्वास्थ्य पद्धति में सुधार करना अन्याय को कटु बना सकता है परंतु यह आलेख इस बात पर बल देता है कि व्यवस्थित दृष्टिकोण को अपनाकर न्यायापालिका वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज पर समस्तरीय एवं समतलीय दोनों प्रकार की समानता को बढ़ावा दे सकती है और साथ ही निजी स्तर के संस्थानों के लिए और अधिक प्रभावी विनियमों को विकसित कर सकती है। न्यायपालिका सरकार के राजनीतिक अंगों के लिए अपने निर्णय नहीं बदलती, बल्कि नियामक प्रतिबद्धताओं के आलोक में सरकार के कार्य उचित एवं न्यायपूर्ण हों, इसे सुनिश्चित करने में मदद कर सकती है। स्वास्थ्य के अधिकार को गंभीरता से लेने पर वह स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य की देखभाल को सामाजिक नागरिकता की एक मूल्यवान संपदा के रूप में विवेचित करती है, न कि किसी उदार दान या बाजार के रूप में और ऐसा करते हुए वह मानव जाति, जो मात्र निष्क्रिय रोगियों या देखभाल प्राप्त करने वाले उपभोक्ता के रूप में नहीं होती, उनके कल्याण हेतु सामाजिकता के निर्माण में एक सक्रिय अभिकर्ता के रूप में समझ को प्रतिबिंबित करती है।

1- çLrkouk

वस्तुतः विश्व के प्रत्येक देश ने कम से कम एक संधि को अनुसमर्थित किया है जिसमें स्वास्थ्य के अधिकार के बारे में दायित्वों का निर्देश दिया गया है। उन संधियों में राज्यों का दायित्व है कि स्वास्थ्य का अधिकार प्रदान करने हेतु पर्याप्त उपायों को अपनाए और इस प्रयास में वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज का अनुसरण करना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। अधिकारों की उपयुक्तता के आधार पर अपनाया गया दृष्टिकोण वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज के अत्यावश्यक अनुसरण को पृष्ठांकित एवं प्रोत्साहित कर सकता है।[1]

कानून को दीर्घ काल से स्वास्थ्य के केंद्रीय निर्धारक के रूप में कार्य करने वाला माना गया है, जो अच्छा हो या बुरा, न केवल न्यायालय द्वारा विवादों के निपटारे के

माध्यम से बल्कि संस्थानों के निर्माण तथा सामाजिक मानदंडों के अभिमुखीकरण के माध्यम से भी कार्य करता है और साथ ही समाज में विपरीत स्थितियों की रूपरेखा को भी परिभाषित करता है। यदि अधिकांश नहीं तो अनेक बड़ी सार्वजनिक स्वास्थ्य संबंधी प्रगति ने टीका लगाने से लेकर कार्यस्थल में सुरक्षा और मोटर वाहन तथा ट्राफिक नियमों से लेकर तंबाकू नियंत्रण तक में कानून के उपयोग को शामिल किया है।[2] सार्वजनिक स्वास्थ्य पर कार्य करने वाले विद्वान आज स्वास्थ्य संबंधी अनुसंधान के प्रभाव तथा अधिकार–संबंधी अपेक्षाओं, जैसे ज्ञात सहमति तथा शारीरिक सुस्वस्थता से उत्पन्न होने वाले कार्यक्रमों से परिचित हैं। मानवाधिकार के विद्वान तथा कुछ उल्लेखनीय न्यायालयों ने विधियों, नीतियों तथा कार्यक्रमों के फंदों के बारे में समान रूप से जागृति पैदा की है, जो या तो किसी विशेष समूह के बारे में भेदभाव करता है या स्वास्थ्य संबंधी अधिकारों का हनन करता है या दोनों ही करता है। इन नीतियों एवं कार्यक्रमों में मनोचिकित्सा के संस्थानों में अमानवीय या अपमानजनक ढंग से इलाज करना, कुछ खास तरह के लोगों का न चाहते हुए भी बंध्याकरण करना, गोपनीयता का जानबूझ कर उल्लंघन करना, स्वास्थ्य संस्थानों में गर्भवती महिलाओं को हथकड़ी लगाना तथा गर्भपात जैसे कुछ खास क्रियाकलापों या सेवाओं का अपराधीकरण शामिल हैं।[3]

हालांकि, अभी हाल ही में ऐसा हुआ है कि संविधानीकरण की एक लहर ने विद्वानों को सेवाओं एवं दवाओं सहित स्वास्थ्य के अधिकार को न्यायिक रूप से लागू किए जाने के विशिष्ट प्रश्न और स्वास्थ्य में न्यायपालिका की उचित भूमिका के बारे में व्यापक प्रश्न पर ध्यान देने के लिए प्रेरित किया है।[4] इन दो क्षेत्रों में व्याप्त संवादहीनता ने कुछ गलतफहमी तथा त्रुटिपूर्ण विवेचनों को जन्म दिया है। उदाहरण के लिए इसमें यह दावा भी है कि स्वास्थ्य के अधिकार में प्रत्येक व्यक्ति को सभी प्रकार की हकदारिता की तत्काल उपलब्धता को अवश्य शामिल किया जाए, चाहे उसके संसाधन जो भी हो, जो कि वह नहीं करता, और यह कि स्वास्थ्य में पारंपरिक प्राथमिकता का निर्धारण विशेष रूप से सभी प्रकार की अधिकतम स्वास्थ्य संबंधी सुविधाओं से संबंधित है, जो वह नहीं है।[5] इस आलेख में केवल अनुशासनों के बीच ही नहीं, बल्कि विशिष्ट ज्ञानवान समुदायों के बीच भी एक सेतु निर्माण करने में सहयोग करने का प्रयास किया गया है क्योंकि विभिन्न अनुशासन अभी भी शायद ही एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

यह आवश्यक है कि परस्पर सार्थक संवाद स्थापित किया जाए क्योंकि स्वास्थ्य के अधिकार पर कानूनी दबाव न केवल हाल के दशकों में नाटकीय ढंग से बढ़ा है बल्कि वह टिकाऊ विकासात्मक लक्ष्यों (एसडीजी) के आलोक में उनके महत्व को लगातार बढ़ाएगा भी और इस ढांचे में वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज की उपलब्धता को प्राथमिकता प्रदान करेगा।[6] विश्व स्वास्थ्य संगठन ने वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज की परिभाषा करते हुए कहा है –''सभी व्यक्ति गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य संबंधी सेवाएँ प्राप्त करेंगे, जो उनकी जरूरत को पूरा करेगी और उन्हें उन सेवाओं के लिए भुगतान करने हेतु आर्थिक

कठिनाइयों से नहीं गुजरना पड़ेगा।''[7] वस्तुओं एवं सेवाओं (और फलतः संसाधन) पर दावे के अधिकार पर विवाद निस्संदेह वही भूमिका निभाएगा जो भूमिका वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज व्यावहारिक रूप में निभाता है, खासकर उन देशों में जिन्होंने अपने घरेलू कानून में स्वास्थ्य के अधिकार को प्रतिष्ठित किया है।

यद्यपि मानवाधिकार शब्द का प्रयोग टिकाऊ विकासात्मक लक्ष्यों (एसडीसी) के एजेंडे के संबंध में क्रमिक रूप से अधिक किया जाता है, परंतु वह उच्च–स्तरीय बैठकों में प्रायः शब्दाडंबर से थोड़ा अधिक भर होता है जिसकी स्थिति पटाखे से निकली चमक जैसी होती है, जिसका स्थायी अस्तित्व नहीं होता। एक बड़ा खतरा यह है कि जब उसे एक नारे के रूप में सीमित कर दिया जाता है तो मानवाधिकार की भाषा केवल अमानवीयता के गंधरहित रूप का ही काम करती है जो एसडीजी के कार्यान्वयन में शामिल कर दिए जाने का खतरा पैदा करती है, न कि हमें नए कार्यक्रम को अपनाने के लिए बाध्य करती है ताकि विश्व में वास्तविक प्रगति दिखाई दे सके। इस आलेख में स्वास्थ्य के अधिकार को गंभीरता से लेने हेतु सार्वजनिक समझ तथा विभिन्न अनुशासनों के विद्वानों की चर्चाओं के बीच फैली खाई को पाटने का प्रयास किया गया है ताकि स्वास्थ्य का अधिकार व्यवहार में आ सके। इस आलेख में स्वास्थ्य के अधिकार तथा वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज की अवधारणाओं पर संक्षिप्त चर्चा करने के बाद दूसरे भाग में एक गंभीर प्रश्न यह उठाया गया है कि स्वास्थ्य को अधिकार के रूप में समझने के फलस्वरूप किस प्रकार स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य पद्धति को समझने का हमारा नजरिया बदल जाता है। मेरा मानना है कि स्वास्थ्य के अधिकार को गंभीरता से लेने का अर्थ है कि पहले हम स्वास्थ्य को, स्वास्थ्य की देखभाल को एक विशेष नैतिक महत्व के विषय में रूप में ग्रहण करें, जिसका आशय है कि यह कोई वाणिज्यिक वस्तु नहीं है जिसे कीमत निर्धारित करके बांटा जा सके। दूसरा, अधिकार के रूप में स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य की देखभाल और स्वास्थ्य की पूर्व शर्तों के रूप में सार्वजनिक स्वास्थ्य के बारे में हमें यह समझ पैदा करनी होगी कि वह सामाजिक प्रभावों तथा देश के भीतर एवं देशों के बीच शक्ति के संबंधों पर आधारित होता है।[8] उदाहरण के लिए इसमें वर्ग, लिंग तथा जाति के संबंध तथा वे संस्थान जो स्वास्थ्य के संबंध में सामाजिक निर्धारक, जैसे गतिविधियों एवं सूचनाओं की आजादी तथा गैर–भेदभाव से संबंधित होते हैं, वे सभी शामिल है। किंतु उसके लिए एक उचित स्वास्थ्य पद्धति की भी अत्यंत आवश्यकता होती है। स्वास्थ्य पद्धति की न्यायपूर्णता का महत्वपूर्ण अंग है प्रक्रिया की वैधता, जिसके माध्यम से प्राथमिकताओं का निर्धारण किया जाता है और इसीलिए अधिकार में शामिल हकदारिता की रूपरेखा को परिभाषित किया जाता है।

स्वास्थ्य पद्धति को सामाजिक संघर्ष (जो प्रजातंत्र के निर्माण हेतु हैं) के स्थल के रूप में समझने के फलस्वरूप सामाजिक समीक्षा की समझ पैदा होती है जो स्वास्थ्य के संबंध में सार्वजनिक ताकत के प्रयोग की वैधता तथा नियमितता को सुनिश्चित करती है। तीसरे भाग में मैंने यह विचार रखा है कि यह प्रश्न नहीं है कि स्वास्थ्य पद्ध

ति के मामले में न्यायालय की कोई भूमिका है या नहीं, बल्कि किस प्रकार स्वास्थ्य के अधिकार को लागू करने से वैश्विक स्वास्थ्य के कवरेज पर और उसके परे भी उनके निर्णयों में समानता हो सकेगी, न कि उससे क्षति पहुँचेगी। विश्वभर से संगृहीत उदाहरणों के आधार पर मैंने यह माना है कि न्यायिक दृष्टिकोण, जो औपचारिक रूप से समानता को अग्रसर करता है, जो स्वास्थ्य की दृष्टि से समस्तरीय समानता के बराबर होता है, जो स्वास्थ्य की दृष्टि से समतलीय समानता के बराबर होता है, वह वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज को प्राप्त करने और साथ प्रजातंत्र को बढ़ावा देने में समानता, उत्तरदायित्व और सार्थक सार्वजनिक सहभागिता को बढ़ाता है।

विश्व के उस भाग में जहाँ सत्तावादी लोग सरकारी अभिप्रायों के प्रति आँख बंद करके विश्वास करने की मांग करते हैं, न्यायपालिका की महत्वपूर्ण जिम्मेदारीपूर्ण भूमिका कानून एवं नीतियों के औचित्य को अर्जित करने में है जिससे उस अबाधित स्वनिर्णय पर नियंत्रण किया जा सके, जो पूरे विश्व में स्वास्थ्य पद्धति में सार्वजनिक शिथिलता और निजी लोभ को पैदा करता है।[9] उस संसार में जहाँ उदार अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था वैश्विक नव उदारतावाद में लोप हो गया है और स्वास्थ्य समानता को विध्वंस कर दिया है, वहाँ सबके सम्मान, स्वास्थ्य और समावेशी प्रजातंत्र के बीच संपर्क के बचाव का महत्व वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज को प्राप्त करने की दिशा में किए जाने वाले प्रयास से भी आगे की बात मानी जाएगी।

LokLF;] LokLF; i)fr rFkk oSf'od LokLF; dojst ds fy, LokLF; ds vfèkdkj dk rkRi;Z&

d- vkjfEHkd lw= % LokLF; dk vfèkdkj rFkk oSf'od LokLF; dojst

अंतरराष्ट्रीय कानून के तहत और साथ ही देशीय संवैधानिक कानून के अधीन, जहाँ इसे मान्यता दी गई है, स्वास्थ्य का अधिकार का आशय स्वस्थ होने का अधिकार नहीं है।[10] न ही वह सभी प्रकार की कल्पनीय वस्तु एवं सेवा का अधिकार है। अंतरराष्ट्रीय कानून में स्वास्थ्य के अधिकार का उल्लेख प्रमुखतः आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा (आईसीइएससीआर) के अनुच्छेद[12] में किया गया है, जिसमें ''शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के उच्चतम प्राप्य मानक'' का निर्धारण किया गया है तथा राज्यों को उत्तरदायित्व दिया गया है कि वे जल, स्वास्थ्य–रक्षा एवं पोषण तथा पेशेवर एवं परिवेशगत स्वास्थ्य सहित स्वास्थ्य के अधीन आनेवाली पूर्व शर्तों के संबंध में सभी उपयुक्त उपायों को सुनिश्चित करें और ''साथ ही ऐसी स्थिति उत्पन्न करें, जिसमें बीमारी की स्थिति में सभी प्रकार की चिकित्सीय सेवा एवं चिकित्सीय देखभाल उपलब्ध हो सके।''[11] देशी संविधानों में अनेक देश स्वास्थ्य का अभिप्राय स्वस्थ परिवेश या शौचालय संबंधी स्वच्छता के उपायों से ग्रहण करते हैं।[12] हालांकि व्यवहार में अनेक सार्वजनिक स्वास्थ्य संबंधी उपायों, जैसे जल अलग मंत्रालयों की परिधि में आते हैं। पुनः संघीय पद्धति में कुछ उत्तरदायित्व, जिसमें प्रायः सेवा प्रदान करना भी

शामिल है, राज्य या प्रांतीय स्तर पर सौंपे जाते हैं, जबकि अन्य राष्ट्रीय स्तर पर बने रहते हैं। अंतरराष्ट्रीय कानून के तहत ऐसे दायित्व राष्ट्रीय सरकार को अंतरराष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं से मुक्ति नहीं देते, जो वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज से गंभीर रूप से संबंधित हैं क्योंकि स्वास्थ्य पद्धति लगातार विकेंद्रित होती जा रही है।[13]

अंतरराष्ट्रीय कानून तथा अधिकांश देशी कानूनों के अधीन स्वास्थ्य के अधिकार के अनेक पहलू ''अधिकतम... उपलब्ध संसाधनों'' के अनुरूप उत्तरोत्तर उपलब्धता के अध्यधीन होते हैं, जिसमें अंतरराष्ट्रीय सहयोग एवं समर्थन के माध्यम से उपलब्ध संसाधन शामिल हैं।[14] यह संरचना, जिसकी चर्चा आलेख में आगे की जाएगी, वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज की उत्तरोत्तर उपलब्धता की अवधारणा के अनुरूप है। हालांकि वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज एवं स्वास्थ्य के अधिकार के बीच संबंध स्थापित करते समय सार्वजनिक स्वास्थ्य से जुड़े पेशेवरों के लिए यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि वे यह समझें कि अधिकार विशिष्ट वस्तुओं एवं सेवाओं के पर्याय नहीं हैं। अधिकार के संबंधों के बंडल हैं जो शक्ति पर राज्य के एकाधिकार द्वारा समर्थित है। अतः स्वास्थ्य के अधिकार में स्वतंत्रता एवं हकदारिता दोनों शामिल होती हैं। स्वतंत्रता में शामिल है किसी व्यक्ति के स्वास्थ्य एवं शरीर पर नियंत्रण करने का अधिकार ... और यह अधिकार किसी भी हस्तक्षेप से मुक्त होना चाहिए ... हकदारिता में शामिल है स्वास्थ्य की सुरक्षा की पद्धति का अधिकार, जो लोगों को स्वास्थ्य के उच्चतम स्तर को प्राप्त करने के अवसर की समानता प्रदान करता है।[15]

अंतरराष्ट्रीय कानून के अधीन अब यह मान लिया गया है कि कोई 'नकारात्मक' या 'सकारात्मक' अधिकार नहीं होता, बल्कि प्रत्येक अधिकार, जो नागरिक हो या राजनीतिक और साथ ही आर्थिक हो या सामाजिक, अनेक सरकारी उत्तरदायित्वों का निर्माण करता है ताकि प्रत्यक्ष उल्लंघन, जैसे किसी खास समूह के प्रति भेदभाव से अधिकार को बचाया जा सके किसी अन्य पार्टियों, जैसे निजी वाणिज्यिक संस्थाओं द्वारा अधिकारों के उल्लंघन से सुरक्षा प्रदान की जा सके और उसकी उत्तरोत्तर प्राप्ति के लिए सभी उचित उपायों को अपनाकर अधिकारों की पूर्ति की जा सके।[16] पुनः ''आवश्यक प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल'' वस्तु एवं सेवाओं के कुछ न्यूनतम उपायों से संबंधित ''प्रमुख उत्तरदायित्वों'' को मुहाना स्तर माना जाता है जिसके नीचे स्वास्थ्य का अधिकार निरर्थक हो जाएगा और इसीलिए आईसीइएसआर में शामिल सभी राज्यों पर तत्काल उत्तरदायित्व सौंपा गया है, भले ही उनके पास संसाधनों की कठिनाई हो।[17]

वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज की परिभाषा देते हुए संयुक्त राष्ट्र ने उसमें ''प्रवर्धन, निवारण, इलाज, पुनर्वास तथा प्रशमन'' साथ ही बेहतर जल स्रोत, पर्याप्त शौचालय स्वच्छता तथा तम्बाकू के उपयोग की मनाही को शामिल किया है।[18] अतः वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज से आशय है न केवल बीमा कवरेज बल्कि प्रभावी कवरेज, अर्थात देखभाल तक। पुनः यद्यपि एक खतरा है कि वह मोटे तौर पर स्वास्थ्य की देखभाल पर बल देता है, वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज का आशय चिकित्सीय देखभाल के परे स्वास्थ्य

की पूर्वावस्था, जैसे स्वच्छ शौचालय भी है।[19] वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज में वित्तीय जोखिम के विरुद्ध सुरक्षा भी शामिल है क्योंकि स्वास्थ्य की देखभाल की लागत काफी हद तक संयुक्त राष्ट्र से लेकर भारत तक अनेक देशों में दिवालियापन और कंगालीपने तक पहुँचा देती है।

वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज की ओर बढ़ने पर तीन आयामों को ध्यान में रखना पड़ता है।

lkr% fo'o LokLF; lxBu] LokLF; i)fr foÙkiks"k.k % of'od LokLF; doj:t dk jkLrk 13 ¼2010½

कोई भी देश प्रस्थान रेखा से प्रारंभ नहीं करता। अर्थात प्रत्येक बड़े बॉक्स के भीतर कुछ छोटे बॉक्स होते हैं और वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज को प्राप्त करने के लिए इस विकल्प की आवश्यकता होती है कि तीन कुल्हाड़ों के साथ कैसे बढ़ें। अतः वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज की उत्तरोत्तर प्राप्ति हेतु केवल एकदेशीय निर्णय की नहीं बल्कि अनेक विकल्पों को शामिल करना पड़ता है, जैसे (1) प्राथमिकता प्राप्त सेवाओं का विस्तार (2) कवरेज में अधिकाधिक लोगों को शामिल करना तथा (3) अपनी ओर से भुगतान को कम करना।[20] स्वास्थ्य के अधिकार को उत्तरोत्तर रूप से प्राप्त करने के लिए इन सभी निर्णयों से सामना करने की जरूरत होती है।

पुनः टिकाऊ विकासात्मक एजेंडा के अधीन वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज और अन्य लक्ष्य तथा उद्देश्य भी वैश्विक होने चाहिए, वे न केवल गरीब देशों पर वे लागू हों जैसा कि सहस्राब्दि विकास लक्ष्य (एमडीजी) हैं और इसलिए वैश्विक व्यवस्था के उन नियमों में परिवर्तन से उन्हें जोड़ा जाता है जो गरीब देशों में गरीबों के लिए काफी अहितकर हैं। उन्हें परस्पर निर्भरता के रूप में भी समझने की जरूरत है। अतः परस्पर निर्भरता तथा मानवाधिकार के ढांचे में अधिकारों की अदृश्यता की तरह नए विकासात्मक एजेंडे में स्वस्थ जीवन से संबंधित लक्ष्य 3 को लक्ष्य 16 के साथ–साथ अन्य लक्ष्यों के आलोक में पढ़ा जाना चाहिए, जो कानून के नियम तथा पारदर्शी तथा उत्तरदायी संस्थानों से संबंधित हैं।[21]

[k- LokLF; dk le>us dk fy, LokLF; dk ,d vfèkdkj ekuus dk fufgrkFk

इन अनुशासनों में संवाद प्रायः प्रारंभ से ही गायब रहा है जब अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार के वकील न केवल स्वास्थ्य के अधिकार के अस्तित्व का दावा करते हैं, बल्कि उसकी विषय–वस्तु का भी, जो केवल सकारात्मक अंतरराष्ट्रीय कानून के हल्के वैधिक विवेचनों पर आधारित होता है।[22] सार्वजनिक स्वास्थ्य के विशेषज्ञ, वे चाहे अर्थशास्त्री हों या नैतिकतावादी इन स्पष्ट तौर पर निरंकुशतावादी तथा अव्यावहारिक उद्घोषणाओं को साम्राज्यवादी वास्तविकताओं या नैतिक ढांचे में प्रकट होने का प्रश्न उठाते हैं।[23] निश्चित रूप से मानवाधिकार में हम इस बात का ध्यान रखें कि कठोरता के साथ लागू की गई निश्चयात्मकता और मानवतावादी प्रफुल्लता पर्याप्त सिद्धांतीकरण

को प्रतिस्थापित नहीं कर सकती क्योंकि अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार कानून के कमजोर ढांचे को सहारा देने वाली स्थितियाँ भी आज की दुनिया में पूरी तरह अनिश्चित हैं।[24] आधुनिक अंतरराष्ट्रीय कानून का निश्चयात्मीकरण और राजनीतिक पद्धति का प्रजातांत्रीकरण पिछली आधी शताब्दी से एक दूसरे को बार–बार प्रभावित करता रहा है। संकीर्णतावादी राष्ट्रीयतावाद के हाल के उत्थान ने इन कुछ वैश्विक मानकों के लिए एक नई राजनीतिक अर्थव्यवस्था निर्मित की है।[25] और जब अंतरराष्ट्रीय पाठों एवं स्वास्थ्य पद्धति की वास्तविकताओं और लोकोत्तीय आधार पर उनके बीच एक बड़ी खाई हो तो यह जरूरी लगता है कि यह बताया जाए कि क्यों स्वास्थ्य को एक अधिकार माना जाए और विचार तथा कार्य दोनों में रूपांतरण किया जाए जो वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज की दृष्टि से और उसके परे भी आवश्यक है।[26]

1- fo'k"k ufrd egRo

अमर्त्य सेन के विवरण में, जिसे मैं साझा करना चाहती हूँ, स्वास्थ्य एक अधिकार है का दावा करना पूरे निश्चय के साथ यह कहना है कि स्वास्थ्य का एक विशेष मूल्य या नैतिक महत्व है।[27] अतः यदि वह एक अधिकार है तो इसका आशय यह है कि स्वास्थ्य और स्वास्थ्य की देखभाल केवल एक पण्यवस्तु नहीं है जिसे बाजार और मूल्य प्रक्रिया के अनुरूप आबंटित किया जा सके। इस गहन दृष्टि में स्वतः अनेक विविक्षाएँ पैदा होती हैं कि हम किस प्रकार स्वास्थ्य के औचित्य के बारे में सोचते हैं। अर्थात् यदि स्वास्थ्य और उसकी देखभाल केवल एक वस्तु मात्र है जिसे बाजार की प्रक्रिया के द्वारा आबंटित किया जा सकता है तो औचित्य इस बात पर बल देता है कि आप क्या भुगतान करते हैं या आप क्या भुगतान कर सकते हैं। यदि यह मामला हो तो इससे हमें चिंतित नहीं होना चाहिए यदि धनवान लोग निश्चित रूप से किसी भी अवस्था या बीमारी में श्रेष्ठतम सेवा प्राप्त कर सकेंगे जबकि गरीब लोग बुनियादी सेवाओं के लिए भी अत्यंत भीड़ वाले एवं अल्प सुविधाओं से युक्त संस्थानों में भर्ती किए जाएंगे या वे न्यूनतम बीमा योजना के अंतर्गत शामिल किए जाएंगे, जिसमें आवश्यक सेवाओं का भी केवल एक अंश मात्र उपलब्ध होगा। यद्यपि यह परिकल्पनीय स्थिति कुछ देशों में ही उत्पन्न होती है, परंतु वह सहजतया अनुचित प्रतीत होती है।[28] अर्थात स्वास्थ्य संबंधित देखभाल के लिए उन्हें अनेक असमानताओं का सामना करना पड़ता है जैसा कि प्रथम श्रेणी और इकोनोमी श्रेणी के हवाई जहाज में यात्रा के बीच असमानता होती है और जो अंतर स्वास्थ्य बीमा और वाहन बीमा के बीच होता है।[29] अन्य वस्तुओं से भिन्न, जिनके मूल्य पूरी तरह से बाजार द्वारा निर्धारित होते हैं, स्वास्थ्य व्यक्ति को उस शक्ति के प्रयोग के योग्य बनाता है ताकि वह ऐसे जीवन को प्राप्त कर सके जैसा वह चाहता है साथ ही वह अपने समुदाय तथा समाज में पूरी तरह योगदान कर सके।[30] अतः यदि स्वास्थ्य एक अधिकार है तो वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज को प्राप्त करना निश्चित रूप से स्वास्थ्य के लिए उचित वित्तपोषण पर आधारित होना चाहिए, जिसका अर्थ होगा कि व्यक्ति का इलाज उसकी जरूरत के अनुरूप हो न कि उस प्रकार से जितने के लिए

वह भुगतान कर सकने के लिए सक्षम है।[31]

स्वास्थ्य का विशेष महत्व हजारों वर्ष पहले दार्शनिकों द्वारा स्थापित किया गया था, जिसका संबंध मूलतः व्यक्ति को उन्नत जीवन जीने योग्य बनाना है। उदाहरण के लिए ईसा पूर्व पांचवी शताब्दी में डेमोक्राइटस ने उल्लेख किया था कि बिना स्वास्थ्य के कोई भी चीज व्यर्थ है और रीन डेस्कार्ट का प्रसिद्ध कथन है कि स्वास्थ्य सबसे मौलिक संपदा है।[32] सेन के उदाहरण में स्वास्थ्य व्यक्ति को कुछ निश्चित आवश्यक कार्यों एवं क्षमताओं का उपभोग करने योग्य बनाता है। नार्मन डेनियल्स रायलसिन के कथनानुसार स्वास्थ्य और उसकी देखभाल अवसर की कई प्रकार की उपयुक्त समानता प्रदान करता है।[33]

2- lkekftd çHkko % lkekftd fuèkkZjd rFkk mfpr LokLF; i)fr

स्वास्थ्य के अधिकार का दावा करने का एक दूसरा निहितार्थ यह है कि स्वास्थ्य एवं उसकी चिकित्सीय देखभाल तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य की पूर्व शर्तें दोनों सामाजिक प्रभाव के अध्यधीन होते हैं।[34] हम व्यक्तिगत प्रतिभा या योग्यता, जैसे कलात्मक योग्यता, के लिए अधिकार नहीं रखते। न ही स्वास्थ्य के अधिकार की कोई सार्थकता है यदि स्वास्थ्य एकांतिक रूप से जीवविज्ञान या व्यक्तिगत व्यवहार का मामला हो। किंतु आनुभविक मामलों के रूप में समाज के बीच या समाजों के बीच स्वास्थ्य या बीमारी का संवितरण गंभीर रूप से सामाजिक और शक्ति के संबंधों द्वारा प्रभावित होता है।[35] अतः उदाहरण के लिए 1980 में यूके के ब्लैक रिपोर्ट में ''पेशेवर वर्गों के बीच मृत्यु दर में उल्लेखनीय अंतर'' पाया गया और यह निष्कर्श दिया गया कि ''वर्ग संरचना रू गरीबी, कार्य अवस्था तथा विभिन्न रूपों में उसके अपहरण के परिणामस्वरूप इसे काफी अच्छी तरह समझा जा सकता है।[36] अभी हाल ही में 2008 में विश्व स्वास्थ्य संगठन के स्वास्थ्य पर सामाजिक निर्धारकों पर निर्मित आयोग ने कहा कि ''भयंकर अकालमृत्यु के लिए उत्तरदायी बीमारी लोगों के जन्म लेने, बड़े होने, जीने, कार्य करने की स्थितियों तथा उम्र के कारण बड़े अंचल में उत्पन्न होती है।''[37]

सामाजिक–आर्थिक असमानता ही एकमात्र कारण नहीं है जिसकी वजह से स्वास्थ्य की भिन्न–भिन्न स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। उदाहरण के लिए ब्रासु लिंक, जो फेलन तथा अन्य लोगों ने दर्शाया है कि जाति एवं लिंग तथा यौन अभिमुखीकरण "रोग के मूल कारण" होते हैं जो व्यापक असमानता को दर्शाते हैं और विभिन्न प्रकार की निवारण ीय अवस्थाओं में आबादी के बीच लंबे समय से विद्यमान है।[38] स्वास्थ्य का अधिकार पहचान के आधार पर मृत्यु–दर एवं अस्वस्थता–दर की इस प्रकार की अप्राकृतिक स्थिति पर प्रश्न उठाता है और सरकार के ऊपर जवाबदेही तय करता है कि वह ऐसे कानूनों एवं नीतियों को समाप्त करे जो निषेध के आधार पर भेदभाव पैदा करता है[39] और अधिकांशतः जिसे हिंसा माना जाता है, जैसे लिंग आधारित हिंसा। उसे भेदभाव के प्रदर्शन के रूप में समझा जा सकता है।

यदि न्याय इस बात को केंद्र में रखकर किया जाता है कि क्यों कुछ लोग व्यवस्थित रूप से दूसरों की तुलना में नीचे रहते हैं तो विकासवादी न्याय को हमारी प्रतिक्रिया के केंद्र में रखा जाना चाहिए। पुनः अधिकार के रूप में स्वास्थ्य के प्रति न्याय को बढ़ावा देने हेतु राज्य के स्तर पर कार्रवाई की अपेक्षा होगी जो स्वास्थ्य क्षेत्र के आगे बढ़कर कार्य करेगा और इन आर्थिक, सामाजिक, तथा राजनीतिक निर्धारकों को ध्यान में रखेगा, जिसमें भेदभाव को समाप्त करना तथा अन्य सामाजिक एवं आर्थिक अधिकारों, जैसे शिक्षा तथा नागरिक अधिकारों एवं राजनीतिक अधिकारों, जैसे सूचना, गतिविधि एवं अभिव्यक्ति का अधिकार शामिल है। निश्चित रूप से इनमें से अधिकांश कारक संबंधों से पैदा होते हैं जो किसी एक राज्य तक सीमित नहीं हैं।

तथापि स्वास्थ्य के अधिकार के विचार को गंभीरता से लेने पर एक न्यायपूर्ण स्वास्थ्य पद्धति की जरूरत होती है।[40] स्वास्थ्य को अधिकार समझने के लिए सेन की दृष्टि में समाज में संस्थानों की उचित व्यवस्था अपेक्षित है ताकि अवसरों की उचित समानता या क्षमताओं के उचित संवितरण को पैदा किया जा सके। जैसा कि डैनियल स्पष्ट करते हैं, "स्वास्थ्य की देखभाल की जरूरत को पूरा करने हेतु अवसरों के संवितरण का महत्वपूर्ण प्रभाव होता है, अतः स्वास्थ्य की देखभाल करने वाले संस्थानों का संचालन अवसरों की समानता के उचित सिद्धांत द्वारा किया जाना चाहिए।"[41] अतः अन्य बातों के साथ–साथ स्वास्थ्य के अधिकार पर आधारित वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज को प्राप्त करने हेतु अपनाए गए दृष्टिकोण में यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि स्वास्थ्य पद्धति उचित प्रकार से वित्तपोषण के अतिरिक्त सांस्कृतिक तथा नैतिक रूप से स्वीकार्य तथा गुणवत्तापूर्ण देखभाल की गारंटी प्रदान करने वाली हो।[42]

ग. स्वास्थ्य पद्धति के लिए स्वास्थ्य को अधिकार मानने का निहितार्थ

अनेक मानवाधिकार के विद्वानों द्वारा, जिनमें स्वास्थ्य के अधिकार पर प्रथम स्पेशल रैपोर्टियर पॉल हंट शामिल हैं, स्वास्थ्य के अधिकार में स्वास्थ्य पद्धति के केंद्रीय महत्व को मान्यता दिए जाने के बावजूद मुख्यधारा के सार्वजनिक स्वास्थ्य समुदाय स्वास्थ्य पद्धति को मोटे तौर पर वस्तु एवं सेवाएं प्रदान करने वाले उपकरण के रूप में मानते रहे हैं और ऐसी बाधाएँ खड़ी करते रहे हैं जिन्हें विभिन्न संदर्भों में तकनीकी जरूरतों के अनुरूप पुनर्व्यवस्थित किया जा सकता है।[43] जब स्वास्थ्य को अधिकार के रूप में माना जाता है तो उसका निहितार्थ है कि स्वास्थ्य पद्धति 'केंद्रीय सामाजिक संस्थान' के रूप में कार्य करे, जो सामान्य मूल्य एवं सिद्धांतों के माध्यम से समाज के विभिन्न खंडों को आपस में जोड़े या उन्हें अलग करे और लोगों के जीवन के अवसरों तथा समाज में पूरी तरह से सहभागिता करने की योग्यता को परिभाशित करे।[44] इसका यह भी निहितार्थ है कि प्राथमिकताओं एवं सन्निविष्टियों को परिभाषित करने की प्रक्रिया निश्चित रूप से लोकतांत्रिक दृष्टि से वैध हो, साथ ही तकनीकी दृष्टि से सुदृढ़ भी। निष्कर्षतः यह स्वास्थ्य संबंधित मुद्दों की समीक्षा करने में न्यायालयों की वैध भूमिका की समझ पैदा करता है।

1- dæh; lkekftd lLFkku ds :i esa LokLF; i)fr ftlesa U;k;lxr gksus dk eY; lfUufo"V gksrk g

यदि स्वास्थ्य पद्धति को एक केंद्रीय सामाजिक संस्थान के रूप में माना जाता है तो उसका डिजाइन और कार्य निष्पादन प्रजातंत्र की अनिवार्यताओं के अनुरूप होना चाहिए, जैसा कि लिन फ्रीडमैन ने कहा है, "स्वास्थ्य के दावे अर्थात सेवाओं एवं अन्य अवस्थाओं की हकदारिता के वैध दावे, जो स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक हैं।" "लोकतांत्रिक समाज में नागरिकों की संपदा" के रूप में समझे जा सकते हैं।[45] मैं फ्रीडमैन के "नागरिकता" शब्द के प्रयोग को सामाजिक नागरिकता के अर्थ में ग्रहण करती हूँ अर्थात वे जो किसी समुदाय या समाज के सदस्य के रूप में कार्य करते हैं, भले ही प्रव्रजन की स्थिति कुछ भी हो– न कि वैध नागरिकता की बहिष्कारक अवधारणा के रूप में जो वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज द्वारा शामिल किए जाने वाले लोगों पर विचार करने हेतु आवश्यक है। एक ऐसे विश्व में जो उन लोगों से भरा हुआ है जिनकी वैध स्थिति अनिश्चित है। निश्चित रूप से एक बार जब हम स्वास्थ्य पद्धति को मौलिक सामाजिक संस्थान के रूप में देखते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वे वैश्विक बनाम लक्षित पद्धतियों के बारे में, प्राथमिक देखभाल में निवेश बनाम उप–धर्मसंघी अस्पतालों में, उस तरीके से जिसमें निजी संस्थानों में रोगियों की गोपनीयता तथा प्रतिष्ठा का आदर किया जाता है वहां इच्छा से नियामक मूल्यों को प्रतिष्ठित करते हैं।[46]

ऐतिहासिक रूप से सामाजिक न्याय के लिए किए गए संघर्ष ने प्रायः समाज में कामगारों के अधिकारों के विस्तार हेतु श्रमिक आंदोलन के एक भाग के रूप में तथा कुछ खास प्रकार की आबादी या सामान्य पुरुषों एवं महिलाओं को बेहतर जीवन पद्धति प्रदान करने हेतु विभिन्न राजनीतिक नेताओं की राजनीतिक प्रतिबद्धता के रूप में स्वास्थ्य पद्धति के लिए संघर्ष को शामिल किया है।[47] जैसा कि ऐने–एमानुले बर्न तथा लॉरा नर्वी ने कहा है, लैटिन अमेरिका में स्वास्थ्य पद्धति को परिभाषित करने हेतु किए गए संघर्ष को "नीति निर्माताओं के कार्य के रूप में ही नहीं समझा जाना चाहिए, जो टेक्नोक्रैटिक मॉडल का प्रयोग करके उसे निर्मित करते हैं, बल्कि शताब्दियों से चले आ रहे बेहतर जीवन स्तर की प्राप्ति के लिए अत्यधिक शक्तिशाली ताकतों के विरुद्ध आंदोलन तथा कार्यपद्धति तथा सामाजिक स्थितियों के लिए आंदोलन शामिल हैं– और उनकी प्रगति, गतिरोध, असफलता तथा उपलब्धियों के रूप में भी समझा जाना चाहिए।"[48] विसेंट नवारो ने दावा किया है कि यूनाइटेड स्टेट्स में राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रम का अभाव कॉर्पोरेट वर्ग की ताकत का परिणाम था, जबकि इसकी तुलना में अधिकांश यूरोपीय देशों ने व्यापक, वैश्विक स्वास्थ्य देखभाल कार्यक्रमों का विस्तार कर लिया था।[49] अतः सामाजिक संस्थान के रूप में स्वास्थ्य पद्धति को समझने के लिए यह समझना जरूरी है कि वे विकल्प जो उनके डिजाइन एवं संगठन को परिभाषित करते हैं वे भी प्रासंगिक शक्ति तथा राजनीतिक संघर्ष पर आधारित होते हैं। पुनः, अवसर की उचित समानता में अपरिहार्य रूप से वाणिज्यिक हितों पर नियंत्रण अपेक्षित होता है

ताकि स्वास्थ्य के अधिकार पर आधारित वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज की उत्तरोत्तर प्राप्ति हो सके।

अधिकार के रूप में स्वास्थ्य को परिभाषित करने से वह हकदारिता प्रभावित होती है जिसे सरकार स्वास्थ्य पद्धति के अधीन सरकार प्रदान करने हेतु (और वित्तपोषित करने हेतु) उत्तरदायी है। शायद किसी अन्य अधिकार शिक्षा एवं घर जैसे अधिकार सहित, जो लागू किए जाने वाले स्वास्थ्य के अधिकार की चौहद्दी है –– की तुलना में स्वास्थ्य के अधिकार, जिसमें स्वास्थ्य की देखभाल तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य की पूर्वशर्तें शामिल हैं, को लगातार विकसित हो रही प्रौद्योगिकी तथा आर्थिक, जानपदिक–रोगविज्ञान तथा जनसांख्यिकीय प्रवृत्तियों के मद्देनजर निरंतर अधिक सावधानीपूर्वक ध्यान में रखा जाना चाहिए।

2- LokLF; dk çorZuh; vfèkdkj dh :ijs[kk dks ifjHkkf"kr djus dh çfØ;k(oSf'od LokLF; dojst dk fy, çkFkfedrk fuèkkZj.k

वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज के मामले में स्वास्थ्य के अधिकार के संबंध में दो प्रश्न हैं : तत्काल प्रवर्तनीय क्या है और उत्तरोत्तर प्राप्ति के लिए प्रक्रिया क्या है? पहला प्रश्न है कि सीइएससीआर के जेनरल कमेंट 3 (1990) तथा कुछ संवैधानिक न्यायालयों के संवैधानिक न्यायशास्त्र दोनों में व्यक्त महत्वपूर्ण न्यूनतम या "न्यूनतम केंद्र" की अवधारण ाा अत्यधिक गरीबी तथा आर्थिक एवं सामाजिक अधिकारों के अभाव के कारण सम्मान की क्षति को पूरा करने के लिए राज्य के तत्काल दायित्व के महत्वपूर्ण आदर्श का निर्धारण करती है।[50] यह बहुत ही सूक्ष्म न्यूनतम शब्द भी, यद्यपि "आवश्यक प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं" का उल्लेख करते हुए कहा गया है, स्पष्टतः नैतिक सिद्धांत और वर्तमान श्रेष्ठ सार्वजनिक स्वास्थ्य ज्ञान द्वारा निर्देशित होना चाहिए।[51] किंतु नैतिक सिद्धांत कहता है कि आबादी के उपवर्ग को उच्चतर लागत, निम्न प्राथमिक हस्तक्षेप के पहले बुनियादी, उच्च प्राथमिक हस्तक्षेप किया जाना चाहिए[52] और आईसीइएससीआर के साथ कार्यान्वयन की निगरानी करने वाली संस्था सीइएससीआर ने स्पष्टतः उद्घोषित किया है कि "निवेश असंगत रूप से खर्चीले सुधारात्मक स्वास्थ्य सेवा के क्षेत्र में नहीं होना चाहिए, जो प्रायः आबादी के कुछ थोड़े से विशेषाधिकार प्राप्त लोगों को उपलब्ध है, बल्कि वह प्राथमिक एवं निवारक स्वास्थ्य देखभाल के क्षेत्र में होना चाहिए, जो आबादी के एक बड़े समुदाय को लाभ पहुँचाता है।[53]

अगला प्रश्न है कि जिस राज्य ने बुनियादी न्यूनतम के लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है वह आगे क्या करे? यह बहुत ही स्पष्ट है कि न्यूनतम की सीमा राज्यों को अनिश्चित काल के लिए उत्तरोत्तर उचित कदम उठाने की प्रक्रिया को टालने की अनुमति नहीं देता, उस देश में भी जहाँ संसाधन काफी सीमित हैं।[54] यहाँ अंतरराष्ट्रीय सहायता और सहयोग की अवधारणा तथा उचित वित्तीय नीतियों के माध्यम से संसाधनों की उपलब्धता को सुनिश्चित करना उपयोगी है, जैसा कि सीइएससीआर से हाल की

सामान्य टिप्पणी 14 एवं 22 (2000 एवं 2016 में क्रमशः स्वास्थ्य के अधिकार तथा यौन एवं पुनरुत्पादक स्वास्थ्य के अधिकार पर) और साथ ही ट्रिटी मोनिटरिंग बडी जेनरल रिकॉमेंडेंश में निर्धारित "बुनियादी दायित्व" की अधिक व्यापक सूची में दिया गया है। ये सामान्य टिप्पणियाँ सरकारों को गैर–भेदभाव के सिद्धांतों (विधिवत तथा व्यापक समानता) और हाशिए के लोगों के लिए चिंता सहभागितापूर्ण राष्ट्रीय कार्य योजनाओं के निर्माण की जरूरत के बारे में महत्वपूर्ण सामान्य मार्गदर्शन प्रदान करते हैं, भले ही उनकी लागत के लिए संसाधन तत्काल उपलब्ध नहीं हों।

तथापि सार्वजनिक स्वास्थ्य की देखभाल के पेशे में लगे हुए व्यक्ति उचित प्रकार से यह ध्यान रखें कि संधि–निगरानी निकायों से प्राप्त ये सामान्य विवरण अकेले ही राष्ट्रीय सरकारों द्वारा प्राथमिकता निर्धारण के मामले में मानदंड को रूपायित नहीं कर सकते।

स्वास्थ्य के मामले में प्राथमिकता का निर्धारण करने के लिए कानून एवं नियमों से आगे बढ़कर कार्य करने की जरूरत है। इसमें विभिन्न हस्तक्षेपों की क्लिनिकल प्रभावकारिता तथा लागत–प्रभावकारिता जैसे उपायों पर आधारित ट्रेड–ऑफ, सबसे बुरी स्थिति को प्राथमिकता (गंभीर रूप से बीमार), तथा हाशिए के लोगों के लिए साम्यावस्था एवं चिंता दोनों के साथ–साथ स्वीकार्यता के बारे में अन्य सामाजिक मूल्य भी समाहित है। यद्यपि राष्ट्रीय सरकारों द्वारा प्रायः इन्हें व्यवस्थित रूप से लागू नहीं किया जाता, गारंटीकृत लाभ योजनाओं को उचित प्रकार से स्थापित करने तथा लगातार अद्यतन करने की प्रक्रिया और न्यूनतम सीमा से आगे बढ़ने के लिए संस्थागत स्वास्थ्य प्रौद्योगिकी मूल्यांकन (एचटीए) प्रक्रिया एवं क्रियाविधि की जरूरत होती है।[55]

मानवाधिकार का मैदान कभी–कभी संतुलन से परहेज करता है, इस आधार पर कि ऐसा करने से मौलिक रूप से अधिकार के दावे के नियामक महत्व में कटौती होती है और लागत–प्रभावकारिता जैसे उपयोग को ध्यान में रखने के आधार पर ऐसा करना वैश्विक सम्मान के दावों का अपमान होता है।[56] मैं मानती हूँ कि यह एक मूल गलतफ़हमी है, जिसे समाप्त करना दो क्षेत्रों के बीच सहयोग के लिए आवश्यक है। जब स्वच्छंद रूप से कार्य करने वाली बाजार अर्थव्यवस्था कर अपवंचना और हस्तांतरण मूल्य तथा अन्य तरीकों के कारण राज्य को अधिक राजस्व नहीं दे पाती और जब बाजार अर्थव्यवस्था बाजार समाज बन जाती है, जहाँ बाजार सामाजिक मूल्यों को बढ़ाने का साधन नहीं रह जाता और उसकी जगह 'बाजार की स्वतंत्रता' अपने आप में प्रश्नातीत हो जाती है तो वह समान सम्मान तथा अधिकार, जिसमें स्वास्थ्य का अधिकार भी शामिल है, समाप्त हो जाता है। और यह बहुत बड़ी सच्चाई है, जिससे वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज पाने की संभावना बिलकुल क्षीण हो जाती है। हालांकि स्वास्थ्य एवं अन्यत्र जिस सीमा तक बाजार प्रभावी ढंग से नियंत्रित होता है वह : (1) व्यक्ति को बेहतर जीवन जीने योग्य बनाता है और इसीलिए इसमें अपनी इच्छानुसार जीवन जीने की स्वतंत्रता होती है, तथा (2) वह राज्य के लिए अधिक राजस्व पैदा करता

है जिसका उपयोग सामाजिक कल्याण में होता है और उससे समावेशी लोकतंत्र को बढ़ावा मिलता है और वह बाज़ार मानव के सम्मान तथा सामाजिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए लाभकारी होता है। पुनः लागत–प्रभावकारिता के आंकड़े को प्राप्त करने और उसे सभी संदर्भों में लागू करने में वास्तविक चुनौतियाँ हैं, परंतु हस्तक्षेप की तुलनात्मक प्रभावकारिता से संबंधित सूचनाओं का उपयोग केंद्रीय निष्पक्षता तथा कुशलता युक्त होनी चाहिए यदि हम सही अर्थों में लोगों को स्वास्थ्य प्रदान करना चाहते हैं न कि उससे बचने हेतु बचाव नियमों को लागू करना चाहते हैं।[57] जैसा कि विश्व स्वास्थ्य संगठन के समानता और वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज पर बने परामर्शी समूह ने बल दिया है "लागत–प्रभावकारिता मानदंड की गलत क्रियान्विति भी– और उसके साथ अन्य संगत मानदंड", जैसे बदतर तथा उचित संवितरण के रूप में प्राथमिकता (जरूरत पर न कि भुगतान करने की क्षमता पर आधारित), पूरी तरह से लागत–प्रभावकारिता को नकारने से बेहतर होगा, जैसा कि सभी प्रकार की सेवाओं में लागत–प्रभावकारिता में भारी अंतर में बताया गया है।[58]

कुछ अंशों में स्वास्थ्य पद्धति में लगातार विकास के परिणामस्वरूप तथा कुछ अंशों में स्वास्थ्य पर खर्च होने वाले संसाधनों की अंतर्निहित सीमा के कारण –अच्छे स्वास्थ्य पैदा करने में स्वास्थ्य देखभाल सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारक तक नहीं रही है, सम्मान की जिंदगी को मजबूत आधार देने वाली सारी बातों को तो छोड़ ही दें। समृद्धतम देशों में भी सभी स्वास्थ्य देखभाल पद्धति कुछ खास प्रकार की प्राथमिकता निर्धारण में लगी रहती है। चूंकि कार्यक्रमों, सेवाओं, स्टाफिंग के स्तरों तथा इस प्रकार की चीजों की सापेक्षिक प्राथमिकताओं के समनुदेशन में अनिवार्य रूप से संसाधनों के आबंटन सम्मिलित होते हैं और प्राथमिकता निर्धारण का निकट संबंध राशनिंग से होता है जो स्पष्ट हो या अस्पष्ट।[59] अस्पष्ट राशनिंग देखभाल के लिए मूल्यनिर्धारण, प्रतीक्षा सूची, खास क्षेत्रों में सेवा प्रदान करने वालों का अभाव, देखभाल पर कम ध्यान देने (उदाहरण के लिए अपेक्षित इलाज के प्रतिशत के लिए अनुमोदन) तथा इसी तरह की चीजों के माध्यम से की जाती है। ये मानदंड स्वाभाविक रूप से अनुचित हैं और सेवाओं के प्राथमिकीकरण के लिए किसी नैतिक मानदंड से असंबद्ध हैं। हमें बजट को निश्चित राशि के रूप में नहीं स्वीकार करना चाहिए क्योंकि हम निष्ठुर रूप से एक राशनिंग वाली दुनिया में रहते हैं – भले ही अंतरराष्ट्रीय सहायता तेजी से बढ़ी हो और भले ही सेना के लिए प्रदत्त या भ्रष्टाचार में खत्म हो गई निधि वसूल हो गई हो।[60] जो यह कहते हैं कि राशनिंग या प्राथमिकता निर्धारण की जरूरत नहीं है वे अंतर्निहित राशनिंग को मौन स्वीकृति देते हैं, जो निरपवाद रूप से समाज में उन किस्मत के धनी लोगों का पक्ष लेते हैं जो सभी सामाजिक अक्षय निधियों का सहजता से लाभ उठाते हैं।

सारांशतः स्वास्थ्य के अधिकार को गंभीरता से लेने से प्राथमिकता निर्धारण की जरूरत से मुक्ति नहीं मिल जाती; यह अपेक्षा करती है कि मानदंड के चयन एवं श्रेणी निर्धारण की प्रक्रिया (व्यक्तिगत रोगी या इलाज नहीं) लोकतांत्रिक

रूप से वैध हो तथा वैज्ञानिक रूप से विश्वसनीय हो। जैसे कानून की उचित प्रक्रिया उचित न्याय पद्धति का मूल आधार है, उसी तरह प्रक्रियागत न्याय – वह प्रक्रिया जिसके माध्यम से प्राथमिकताओं का निर्धारण किया जाता है – स्वास्थ्य पद्धति के औचित्यपूर्ण होने का मूल आधार है। अतः स्वास्थ्य के अधिकार की प्रवर्तनीय रूपरेखाओं को परिभाषित करने में केंद्रीय प्रश्न है, जैसा कि नॉर्मन डैनियल ने पूछा है, "किस प्रकार हम स्वास्थ्य की जरूरतों को उचित प्रकार से पूरा कर सकते हैं जब हम उन सभी रूपरेखाओं को पूरा नहीं कर सकते?"[61]

प्रक्रियागत न्याय के सिद्धांतों (जैसे डैनियल के औचित्य के लिए उत्तरदायित्व) के अनुसार उसकी वैधता के लिए अपेक्षित है : (1) सार्वजनिक तथा पारदर्शी रूप से कारण ों का निर्धारण तथा प्रयुक्त किए जाने वाले मानदंड; (2) संगत कारणों पर आधारित निर्णय, जो न्यायप्रिय लोगों द्वारा स्वीकार्य हो; अर्थात औचित्यपूर्ण ढंग से स्वास्थ्य में सुधार करने वाला हो – न कि आदर्शों या किसी प्रकार का पक्षपातपूर्ण हो; (3) नए साक्ष्य या सूचनाओं के आलोक में समीक्षा की जाए तथा (4) यह अपेक्षा की जाए कि हकदारिता नियमों एवं प्रवर्तनों के अध्यधीन हो।[62] इस संबंध में स्वास्थ्य के अधिकार को गंभीरता से लेना स्वास्थ्य पॉलिसियों की बढ़ती हुई संख्या से संगति रखता है, जिसमें स्पष्ट साक्ष्य–ज्ञात प्राथमिकता निर्धारण के लिए तर्क स्पष्ट हो, जिसका निर्धारण विश्व स्वास्थ्य संगठन तथा स्वतंत्र विद्वानों द्वारा किया गया है, किंतु वह चुनौती देता है कि किस प्रकार प्राथमिकता निर्धारण कठोर तकनीकी प्रयास के रूप में पारंपरिक ढंग से किया गया है।[63]

स्वास्थ्य के अधिकार को गंभीरता से लेने के लिए जरूरी है कि उसमें "सहभागिता" निभाई जाए, न कि उसे दिखावटी रूप में प्रस्तुत किया जाए। क्योंकि जो प्रक्रिया को सही ढंग से अपनाई जाए उसमें शक्ति एवं एजेंसी को शामिल किया जाए। इसके लिए जरूरी है कि न केवल "हितधारकों के प्रतिनिधियों" को सुना जाए, जो अभिजात वर्ग के या वाणिज्यिक उद्यमों के प्रतिनिधि हो सकते हैं, बल्कि मोटे तौर पर समान व्यक्तियों के साथ सार्थक समावेशी संवाद किया जाए, जहाँ न्यायप्रिय लोगों के साथ विचार–विमर्श हो सकता है, न कि उसमें संघटकों के हितों की प्रतिस्पर्धी प्रस्तुतियाँ हों। अतः यह सुनिश्चित करने के लिए पारदर्शिता आवश्यक है कि निर्णय संगत साक्ष्य–आधारित मानदंड पर लिया जाए, न कि आदर्शों एवं लाभ चाहने वाले हितों के आधार पर, जिसके लिए सूचना की स्वतंत्रता तथा अन्य वैध गारंटी की आवश्यकता होती है, न कि मंगलकामना के शब्दों में व्यक्त "संकीर्ण हो रहे नागरिक समाज स्पेस" के भीतर केवल पूर्वनियोजित घटना होती है। प्रभावी विचार–विमर्श के लिए शक्ति विषमता को कम करने की जरूरत होती है ताकि विभिन्न गैर–सरकारी एवं सामाजिक संगठनों के सदस्य विषम समानता की पृष्ठभूमि अवस्था पर सार्थक परिचर्चा में भाग ले सकें।[64]

LokLF; ds vfèkdkj dks xHkhjrk ls ysus dh oSèkdrk ds –f"Vdks.k dk fufgrkFk

यदि स्वास्थ्य पद्धति का आशय सामाजिक मानदंड को स्पष्ट करना है, जो संवैधानिकता के साथ–साथ अन्य प्रतिबद्धताओं को प्रतिबिंबित करता है, तो वह खासकर न्यायिक समीक्षा, मानक निर्धारण, मार्गदर्शी व्यवहार तथा विवादों के निपटान में कानून की भूमिका को बेहतर ढंग से दर्शाता है। अर्थात् न्यायालय सार्वजनिक निर्णयन, सिद्धांत निर्धारण में उत्तरदायित्व तथा वैधता को सुनिश्चित कर सकते हैं जो लोकतंत्र तथा नागरिकता के हमारे आदर्शों के मौलिक तत्व हैं।"[65] स्वास्थ्य पद्धति की सामान्य यांत्रिक समझ का आंशिक रूप में परिणाम यह होगा कि, जैसा कीथ सिरेट ने कहा है "स्वास्थ्य देखभाल में अनपेक्षित दख़ल के रूप में विभाज्य निर्णयन की न्यायिक संवीक्षा को नकारने में स्वास्थ्य पॉलिसी समुदाय के अंतर्गत कार्य करने वाले बड़ी तत्परता" से लग जाएंगे, न कि सक्षम न्यायालय स्वास्थ्य के अधिकार तथा राशनिंग की जरूरत के बारे में सार्वजनिक जानकारी प्रदान करने पर बल देंगे।[66] सिरेट का कहना है कि सार्वजनिक कानून के इस तरह के प्रयोग से 'वैध समस्या' को समाप्त करके सामाजिक संस्थानों को ठीक किया जा सकेगा और उसे पुनर्निर्मित करने में सक्षमता उत्पन्न होगी।[67] निश्चित रूप से यदि स्वास्थ्य के अधिकार का विचार और उचित तथा उत्तरदायी स्वास्थ्य पद्धति की जरूरत के निहितार्थ को सुनिश्चित करने को सार्थकता प्रदान करनी है तो न्यायालय सक्षम रूप से महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएंगे, और न केवल नीति के निर्माण में, बल्कि यह सुनिश्चित करने में कि राजनीतिक अंग ऐसे कानून और नीतियों का निर्माण करते हैं जो समानता, सम्मान और इस तरह की चीजों के बारे में संवैधानिक प्रतिबद्धता का पालन करते हैं।[68] जैसा कि दक्षिण अफ्रीका के न्यायालय ने नए प्रसिद्ध ट्रीटमेंट एक्शन कंपेन मामले में उद्धृत किया है, न्यायालय राज्य के संवैधानिक दायित्वों की पूर्ति करते हुए कार्यपालक द्वारा उठाए गए कदमों के औचित्य पर जब घोषणा करते हैं तो वे कार्यपालकों के कार्यों का निष्पादन नहीं करते।"[69]

न्याय की व्यापक अवधारणा के विपरीत अधिकार में कानूनी बाध्यता शामिल होती है। आर्थिक तथा सामाजिक अधिकार, साथ ही स्वास्थ्य के अधिकार के संबंध में यह धारणा कि नागरिक एवं राजनीतिक 'विधिक अधिकार' के प्रतिकूल वे 'कार्यक्रम संबंधी अधिकार' हैं, सदैव उदारतावाद के संकीर्ण रूप में एक रियायत तथा अधिकार में शामिल आर्थिक शक्ति के नियंत्रण के अभाव को दर्शाते हैं। समय गुजरने के साथ अंतरराष्ट्रीय कानून में इस "अलग किंतु वस्तुतः समान नहीं" के विन्यास ने धोखे़बाजी के साथ असंगत तथा वास्तविक विश्व राजनीतिक अर्थव्यवस्था या दोनों से उसे सहज ढंग से अलग दर्शाया है और निश्चित रूप से यह भ्रामक अलगाव उल्लेखनीय रहा है, यद्यपि पूर्णतः नहीं और इसने अंतरराष्ट्रीय कानून को क्षति पहुँचाई है तथा सबसे बड़ी बात है कि वह अनेक देशों में राष्ट्रीय स्तर पर विद्यमान है।[70]

पिछले तीन दशकों में यह स्पष्ट हो चुका है कि आर्थिक तथा सामाजिक अधिकार, साथ ही स्वास्थ्य के अधिकार को अंतरराष्ट्रीय कानून तथा राष्ट्रीय संविधान के ढांचे या दोनों के अधीन न्यायपूर्ण माना जा सकता है या उत्तरोत्तर माना जा रहा है।[71] स्वास्थ्य के अधिकार को अनेक मध्य–आय वर्ग के देशों में न्याय की सीमा में लाने की विशेष प्रवृत्ति 1990 के दशक से विद्यमान है, यद्यपि उसका बहुत ही अलग–अलग स्वरूप रहा है।[72] कुछ देशों में, जैसे दक्षिण अफ्रीका में कुछ दर्जन सार्वजनिक हितों के मामले विशेष प्रकार के लोगों के लिए पॉलिसी सुधार से संबंधित थे, जिनमें कुछ लोग एचआईवी से ग्रस्त थे, कुछ सड़क हादसों के शिकार थे एवं कुछ कैदी थे जबकि लैटिन अमेरिका के लोगों के संदर्भ में विशिष्ट वस्तु एवं सेवाओं की हकदारिता से संबंधित लाखों प्राथमिक व्यक्तिगत कानूनी मामले थे, जिनमें अधिकांश स्वीकृत किए गए।[73] अतः मोटे तौर पर लक्षणनिर्धारण से संस्थागत डिजाइन एवं सामाजिक संदर्भ में भिन्नता मिलने की संभावना कम हो जाती है, जिसके कारण उस निष्पक्षता एवं व्यवस्थित स्वास्थ्य पद्धति में सुधार के निहितार्थ को समझना कठिन हो जाता है जो स्वास्थ्य के अधिकार के न्यायिक प्रवर्तन से अभिप्रेत है।[74]

जब सुधार को पश्चचिंतन के रूप में माना जाता है, जिसे टूटी हुई पद्धति के साथ जोड़ दिया जाता है तो न्यायिक समाधान की उपलब्धि अन्यायपूर्ण स्वास्थ्य पद्धतियों में विद्यमान असमानताओं के कारण अधिकांशतः चिढ़ाने वाली प्रतीत होती है, जिसमें व्यक्तियों को अपनी बारी छोड़कर आगे बढ़ जाने की अनुमति मिल जाती है या यहाँ तक कि बड़ी पद्धतियों के अधीन विशिष्ट व्यक्तियों पर ध्यान देते हुए सामान्य जन को अलग–थलग करके उन्हें सेवा देने में जड़ता, अदक्षता तथा उदासीनता दर्शाते हुए गुमनाम कष्ट भोगने के लिए छोड़ दिया जाता है।[75] उदाहरण के लिए 2003 के एक कुख्यात मामले में, जहाँ जेंजीम ने मुद्दई के अटर्नी को नियुक्त किया था, कोस्टा रिका के उच्चतम न्यायालय ने फैसला दिया कि विरल प्रकार के 1 गौसर रोग से ग्रस्त बच्चे को ”सेरेजाइम औषधि ... प्रदान की जाए, जिसकी वार्षिक लागत लगभग 175,000 यूएस डालर थी।“[76] ब्राजील एवं कोलंबिया में न्यायालय ने अतीत में विदेश में जाकर इलाज कराने का आदेश दिया था, भले ही वह प्रयोगात्मक हो, जैसा कि 1997 में ब्राजील के मामले में हुआ था, जिसमें डुसेने मसकुलर डिस्ट्रोफी के लिए यूनाइटेड स्टेट्स में इलाज के लिए कहा गया था।[77]

सबसे अधिक परेशान करने वाली बात यह है कि कुछ अध्ययन ने पाया है कि क्लिनिकल प्रभावकारिता, लागत–प्रभावकारिता तथा साक्ष्य के मानदंड के कारण न्यायिक अवमानना होती है या मुकदमे का लाभ संपन्न रोगियों को मिलता है, जिन्हें स्वास्थ्य लाभ के लिए पहले से ही अधिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं। इससे स्वास्थ्य पद्धति और बड़े समाज में सामाजिक असमानता को भले ही बढ़ाया न गया हो क्योंकि वह राशि आनुपातिक रूप से छोटी होती है पर वे निश्चित रूप से ऐसी असमानता को समाप्त नहीं करते।[78] यह कहने की जरूरत नहीं कि व्यक्तिगत सुरक्षा हुक्मनामा

क्रियाविधि (उदाहरण के लिए एपेरस, टुटेलस) का प्रयोग स्वास्थ्य की हकदारिता को प्राप्त करने के लिए नहीं किया जाना चाहिए, जब गुणवत्ता में कंजूसी करने, भेदभाव, गलत प्राथमिकता निर्धारण या नए साक्ष्य तथा सावधान पद्धति के चिरकालिक अभाव के कारण वे नहीं दिए जाते हैं। इनमें से अधिकांश मामलों को सही अर्थों में नियामक अंतराल के मामले के रूप में समझा जाता है, जिसे न्यायिक उत्तेजना कहा जा सकता है न कि न्यायिक सक्रियता। पुनः स्वास्थ्य को मात्र "सामूहिक अधिकार" के अंतर्गत डालना प्रतिगामी होगा, बल्कि यह देखना चाहिए कि सभी अधिकार सामूहिक और व्यक्तिगत आयाम दोनों में आते हैं।[79]

जो भी हो, जैसा कि नैतिकता एवं कानून दोनों के विद्वानों ने लगातार यह माना है कि स्वास्थ्य के अधिकार को गंभीरता से लेने के लिए न्यायालय द्वारा व्यवस्थित दृष्टिकोण अपनाया जाना अपेक्षित है, जिसके लिए मैं कहना चाहूँगा कि वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज़ में संगत समस्तरीय एवं समतलीय समानता है।[80] पुनः सरकार के राजनीतिक विभागों की ओर से उचित न्याय प्राप्त करके न्यायालय स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य पद्धति को अधिकार के मामले के रूप में सार्वजनिक भाषणों से अलग कर सकते हैं और अधिकारों के प्रभावी उपभोग एवं वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज की उत्तरोत्तर प्राप्ति के लिए उत्तरदायित्व का निर्धारण कर सकते हैं जो स्वास्थ्य क्षेत्र में केवल निगरानी और समीक्षा तथा अपने आपमें सिमटी क्रियाओं तक सीमित नहीं रहेगा बल्कि उसके आगे जाएगा।[81]

d- fofèkor lekurk rFkk leryh; lkE;koLFkk ds lcèk es U;k;ky; ds fopkj

'विधिवत समानता' –जो यह निर्धारित करती है कि कानून समान रूप से अवस्थित सभी लोगों को समान अधिकार प्रदान करे कि मानवाधिकार की वैधिक अवधारणा और वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज के अधीन समस्तरीय साम्यावस्था के बीच एक निकट संबंध है। न्यायालय ऐसी विधिवत समानता तथा समस्तरीय निष्पक्षता को सुनिश्चित करने में विभिन्न प्रकार से सकारात्मक भूमिका निभा सकता है, जिसमें हाशिए पर स्थित समुदायों पर ध्यान देना; विशेषाधिकार प्रदान करने की जगह अधिकार प्रदान करना; बजट सहित संसाधन की उपलब्धता के औचित्य की मांग करना और निजी व्यक्तियों के लिए विनियमों की अपेक्षा करना शामिल है।

1- gkf'k, ij fLFkr lenk; rFkk dkuuh HkknHkko

संयुक्त राज्य बनाम विंडसर मामले में संयुक्त राज्य के उच्चतम न्यायालय ने विवाह अधिनियम की संघीय सुरक्षा के उन अंशों पर प्रहार किया, जिसमें अन्य बातों के साथ समान–लिंग के दंपत्ति के पार्टनर और बच्चों को स्वास्थ्य लाभ प्रदान करने से वंचित किया जा सकता था।[82] प्रायः हाशिए पर स्थित समुदायों को पारंपरिक सार्वजनिक

स्वास्थ्य नीतियों में अदृश्य रखा जाता है, भले ही उन्हें विधिवत भेदभाव के सम्मुखीन न होना पड़े। अधिकारों को गंभीरता से लेने पर न्यायालय इन वंचित लोगों को स्वास्थ्य पद्धति के केंद्र में लाने में सक्षम हो सकता है और उनकी आवाज को मुखर होने की अनुमति दे सकता है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि हाशिए पर स्थित अल्पसंख्यक लोगों के साथ कानूनन भेदभाव न किया जाए और इसलिए उन्हें वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज को प्राप्त करने के प्रयासों में 'पीछे नहीं छोड़ा' जाए, वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज सहित 2030 के विकासात्मक एजेंडे की प्राप्ति महत्वपूर्ण होगी।

2- fo'k"kkfekdkj cuke vfekdkj

उन मध्य–आय वाले देशों में जहाँ हकदारिता के लिए व्यक्तिगत मुकदमा अत्यधिक है, वैश्वीकरण की संभावना पर ध्यान दिए बिना इलाजों में न्यायायिक छूट का परिणाम प्रायः 'विशेषाधिकार प्रदान' के रूप में होता है और उसके फलस्वरूप विधिवत समानता की अवधारणा को क्षति पहुंचती है तथा स्वास्थ्य के सार्थक अधिकार को बढ़ावा देने की तुलना में असमानता को बढ़ावा दिया जाता है।[83] कभी–कभी फार्मास्यूटिकल उद्योगों की औषधियों को आगे बढ़ावा देने हेतु उनके लक्ष्यों के लिए मुकदमें किए जाते हैं, जहां न्यायपालिका के लिए खासकर जरूरी हो जाता है कि वह स्वास्थ्य के अधिकार के लिए उद्देश्यमूलक दृष्टिकोण को अपनाकर न्यायशास्त्र को विकसित करे एवं समानता लाए, जिसमें यह विचार किया जाए कि क्या इलाज या सेवा में दी गई छूट जो लाभदायक योजनाओं में पहले से बाध्यतामूलक नहीं है वह स्वास्थ्य योजना के भीतर वैश्वीकृत की जा सकती है –– या उचित प्रकार से की जा सकेगी।[84] निर्णय लेने के प्रयोजन से इसके औचित्य के बारे में यह जिज्ञासा न्यायालय को अनुमति देता है कि वह सरकार के प्राथमिकता निर्धारण और योजना निर्माण के औचित्य का मूल्यांकन करे। उदाहरण के लिए प्रिवेंशन टू मदर टू चाइल्ड ट्रांसमिशन (पीएमटीसीटी) नामक प्रसिद्ध दक्षिण अफ्रीकी मामले में दक्षिण अफ्रीका के संवैधानिक न्यायालय ने यह पाया कि पीएमटीसीटी को अठारह पायलट स्थलों पर सीमित करना और पूरी आबादी को ऐसे कवरेज प्रदान करने के लिए कोई योजना नहीं होना अनुचित है। न्यायालय ने कहा कि संविधान के तहत ''सरकार अपने उपलब्ध संसाधनों के अधीन एक व्यापक और समन्वित कार्यक्रम निर्मित करे और उसे लागू करे ताकि गर्भवती महिलाओं और उनके नवजात बच्चों को उत्तरोत्तर अधिकार प्राप्त हो कि वे स्वास्थ्य सेवाएँ प्राप्त करें जिससे माँ से बच्चे में एचआईवी का संक्रमण न हो'' और ''एचआईवी के लिए गर्भवती महिलाओं को परामर्श देने तथा परीक्षण करने के लिए उचित उपाय किए जाएं, एचआईवी पोजिटिव गर्भवती महिलाओं को यह विकल्प दिए जाने हेतु परामर्श दिया जाए कि वे एचआईवी के माँ से बच्चे में संक्रमण के खतरे को कम करें और उस प्रयोजन से उनके लिए उपलब्ध इलाज की व्यवस्था की जाए।''[85]

3- of'od LokLF; dojst dh U;k;lxr çxfr dk c<kok nsus gsrq ctV dh leh{kk dh tk ldrh gS

''उपलब्ध संसाधनों'' की सीमा तथा बजट के आकार निश्चित रूप से उन सेवाओं की संख्या को, जिन्हें वैश्विक रूप से प्रदान किया जाएगा साथ ही वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज क्यूब के अन्य हितों एवं स्वास्थ्य के अधिकार की उत्तरोत्तर प्राप्ति को प्रभावित करेंगे। इसे इस प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है कि स्वास्थ्य के अधिकार में इसे भी अवश्य स्वीकार किया जाना चाहिए कि संसाधनों का एक अंतर्निहित अभाव है; इसका यह अर्थ नहीं होना चाहिए कि उसे अंकित मूल्य पर लिया जाए भले ही सरकार अपने बजट के मानदंड के बारे में दावा करे।[86] बजट निरपवाद रूप से राजनीतिक परक्राम्यता के उत्पाद होते हैं और बाहरी कारकों, जैसे औषध संबंधी नियमन तथा बौद्धिक संपदा के अध्यधीन होते हैं। उदाहरण के लिए केन्या के कोर्ट ने यह पाया कि केन्या के एंटी–काउंटरफिट एक्ट 2008 में नकली दवाओं की परिभाषा में जेनरिक मेडिकेशन को सम्मिलित करने की संभावना है, जिससे उनकी कीमत काफी बढ़ाकर तथा ऊपरी लागत को बढ़ाकर उन दवाओं की उपलब्धता को कठिन बना सकते हैं। न्यायालय ने सरकार के इस दावे की संवीक्षा की कि यह कानून रोगियों को हानि से सुरक्षा प्रदान करेगा और प्रस्तुत किए गए सभी तर्कों के आधार पर यह पाया कि कानून का प्रारंभिक लक्ष्य वस्तुतः बौद्धिक संपदा के अधिकारों की सुरक्षा करना है। कानून के कुछ भागों पर प्रहार करते हुए न्यायालय ने यह उल्लेख किया कि ''याचिकाकर्ताओं के जीवन, सम्मान तथा स्वास्थ्य के अधिकार को पेटेंट धारकों की बौद्धिक संपदा के अधिकारों की तुलना में अवश्य वरीयता दी जाए।''[87]

न्यायालय उस सीमा तक उन निर्णयों के लिए औचित्य की मांग करे, जो अधिकारों के समान उपलब्धि को प्रभावित करते हैं, खासकर कम आय वाले या हाशिए पर रहने वाली आबादी के लिए।[88] इसके अतिरिक्त लोगों को स्वास्थ्य प्रदान करने हेतु लागत का प्रभाव एक बहुत ही गंभीर मानदंड अर्थात, लागत के परिकलन के अनुसार समयानुसार बदलता रहता है और वह बाहरी कारकों के अध्यधीन होता है जैसा कि एचआईवी/एड्स के लिए जेनरिक एंटी–रेट्रोवायरल थेरपी प्रदान करने की लड़ाई के उदाहरण से स्पष्ट है।[89] अतः न्यायपालिका बजट के औचित्य के विश्लेषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है जो (बजट) प्रायः स्वास्थ्य के अधिकार सहित अन्य अधिकारों के प्रति सरकार की वास्तविक प्रतिबद्धता को प्रदर्शित करता है।

4- futh lsDVj dk fu;eu

स्वास्थ्य के अधिकार को गंभीरता से लेने के लिए अपेक्षित है कि यह सुनिश्चित किया जाए कि समस्तरीय समानता और गैर–भेदभाव निजी क्षेत्र पर लागू हो, जो अनेक देशों में देखभाल में उल्लेखनीय भागीदार होते हैं। अर्थात मिश्रित पद्धति में किसी संस्थान का उपयोग करने वाले किसी भी व्यक्ति को वही देखभाल मिलनी

चाहिए जिसके लिए वह विधिक रूप से हकदार है, ठीक उसी रूप में जिस रूप में दूसरा व्यक्ति दूसरे सेवा–दाताओं से प्राप्त करता है, जो सार्वजनिक हो या निजी। अर्जेनटाइना, भारत और अन्य देशों के न्यायालयों ने निजी संस्थानों द्वारा अबाधित देखभाल और एकपक्षीय अंतिमकालीन देखभाल से बचने में बाध्यताओं को पाया है।[90] इन मामलों में न्यायालयों ने माना है कि जब निजी संस्थान सेवाएँ प्रदान करने में राज्य के उपकरणों के रूप में कार्य करते हैं तो अधिकारों का पालन करने हेतु यह जरूरी है कि राज्य स्वास्थ्य के अधिकार (और जीवन) की हर प्रकार से सुरक्षा करे और यह सुनिश्चित करने हेतु वे इस प्रकार कार्य करें कि उससे यह सुनिश्चित हो कि उन्हें उनकी हकदारिता प्राप्त हो रही है जिसके लिए कानून गारंटी प्रदान करता है। इसके लिए जरूरी है कि प्रभावी दूरदृष्टि तथा वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज को प्राप्त करने में समान रूप से और उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से निजी संस्थानों के लिए नियम बनाए जाएं।

[k- i;kIr lekurk rFkk leryh; fu"i{krk

यह सुनिश्चित करने के लिए कि समान रूप से अवस्थित लोगों का इलाज एक ही प्रकार से हो, वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज प्राप्त करने में निष्पक्षता बरती जाए, जिसके लिए अपेक्षित है कि समतलीय निष्पक्षता हो और स्वास्थ्य के अधिकार की उत्तरोत्तर प्राप्ति के लिए जरूरी है कि पर्याप्त समानता हो। अर्थात सभी लोग जीवन में समान पृष्ठभूमि से नहीं आते और न ही उनमें सहजात क्षमता होती है जिससे स्वास्थ्य के अधिकार का उपभोग कर सकें। हम अवसरों की समानता के रेंज को बनाए रखने हेतु रॉलसियन अवधारणा को अपनाएँ या क्षमता के संबंध में सेन के दृष्टिकोण को। किंतु इसके लिए शक्ति होनी चाहिए और वह कार्य किया जाना चाहिए जो व्यक्ति के जीवन की परियोजना में महत्वपूर्ण है। इससे स्वास्थ्य के अधिकार को गंभीरता से लिया जा सकता है। इसका तात्पर्य है कि अंतर–वैयक्तिक अंतर वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज के रास्ते के विकल्प ग्रहण करने हेतु पश्चचिंतन नहीं होना चाहिए; वह हमारा प्रस्थान बिंदु होना चाहिए।[91] न्यायालय हाशिए के लोगों की चिंताओं को प्रकाश में ला सकते हैं और उन्हें लाना चाहिए; गरीबी और पहचान के अन्य कोणों के आधार पर अधिकारों से वंचना की अंतर–सामुदायिकता को रेखांकित करना चाहिए; स्वास्थ्य पद्धति के डिजाइन की समीक्षा करनी चाहिए ताकि व्यवहार में पर्याप्त समानता सुनिश्चित हो सके; वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज की दिशा में निर्णय लेने हेतु उचित तथा विमर्शी प्रक्रिया का समर्थन करना चाहिए; और समतलीय निष्पक्षता तथा पर्याप्त समानता एवं सूचना के लिए आवश्यक आधार अवस्थाओं तथा मानवाधिकार की सुरक्षा को सुनिश्चित करना चाहिए।

1- gkf'k, ij jgus okyh vkj vlqjf{kr vkcknh rFkk mudh nq[kHkky esa okLrfod ckèkk

यद्यपि एसडीजी का नारा है 'किसी को पीछे मत छोड़ो' परंतु एक खतरा है कि समतलीय निष्पक्षता पर उचित ध्यान नहीं दिया गया तो अनेक लोग निश्चित रूप से

वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज की दिशा में पीछे छूट जाएँगे। पर्याप्त समानता के लिए जरूरी है कि उनके लिए विशेष चिंता हो। यह न केवल सामाजिक आर्थिक असुविधाओं के लिए हो बल्कि उनके स्वास्थ्य के अधिकार की प्राप्ति के लिए भी हो, खासकर उन समूहों के लिए जो जैविक कारकों या सामाजिक मानदंडों के आधार पर असुरक्षित हैं या अतिरिक्त बाधाओं का सामना करते हैं।[92] अनेक देशों में न्यायालयों ने माना है कि कुछ खास तरह की आबादी अनेक की बाधाओं का सामना करती है जो पर्याप्त भेदभावमूलक होती हैं। उदाहरण के लिए कोलंबिया के संवैधानिक न्यायालय ने उन लोगों को छूट प्रदान की है जो शारीरिक या मानसिक विकृतियों से ग्रस्त हैं और साथ ही कुछ खास गंभीर अवस्थाओं से गुजर रहे हैं और उनके लिए देखभाल प्राप्त करने हेतु सामान्य प्रीमियम के भुगतान पर अत्यावश्यक रूप से ध्यान देने की अपेक्षा व्यक्त की है।[93] यह भेदभाव ऊपर के विंडसर के मामले से भिन्न है जिसमें कानून निष्पक्ष हो सकता है, किंतु उसमें असुविधाओं को भोग रहे समूहों के विरुद्ध व्यवहार में भेदभाव का प्रभाव दिखता है। उदाहरण के लिए कानाडा के एक न्यायालय ने माना है कि चिह्न भाषा का अर्थ नहीं समझाने का प्रभाव बहरे रोगियों के विरुद्ध व्यवहारतः भेदभाव के प्रभाव को दर्शाता है।[94] पुनः स्वास्थ्य का अधिकार भेदभाव की अंतर–वर्गीय प्रकृति को उद्घाटित करता है, अर्थात अक्षम व्यक्ति भेदभाव का सामना करते हैं जिससे गरीबी के साथ–साथ अक्षमता पर आधारित देखभाल में बाधाएँ उत्पन्न होती हैं।

2- LokLF; i)fr fMtkbu ,o 0;ogkj dh leh{kk

स्वास्थ्य पद्धति की डिजाइन पर विचार पर्याप्त समानता के मानदंड के आधार पर तथा वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज की प्राप्ति के साथ–साथ स्वास्थ्य की देखभाल करने वाले कार्यकर्ताओं की संख्या तथा उनके प्रशिक्षण एवं उनके अधिकार तथा उत्तरदायित्वों के संदर्भ में ही किया जाना चाहिए।[95] उन मामलों में जहाँ न्यायालयों ने गर्भपात को पूरी तरह से वैध बना दिया है, और माँ के स्वास्थ्य तथा जीवन के खतरे, जन्मगत विसंगतियों और यौन अत्याचार के आधार पर गर्भपात को अपराध नहीं माना जाता है, वहाँ भी महिलाएँ देखभाल प्राप्त करने में बाधाएँ पाती हैं। यह स्थिति अधिकार के प्रभावी उपभोग, साथ ही वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज की अवधारणा को क्षति पहुँचाती है।

जब अर्जेनटाइना के उच्चतम न्यायालय ने गर्भपात पर प्रत्यक्षतः विचार किया तो उसने सेवा प्राप्त करने हेतु प्रोटोकॉल में परिवर्तन और साथ ही स्वास्थ्य सेवाएँ प्रदान करने में आने वाली सभी प्रशासनिक एवं वास्तविक बाधाओं को समाप्त करने की मांग की, जैसे पीड़िता द्वारा अत्याचारियों के विरुद्ध आरोप दायर करने की अपेक्षा या पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत करना।[96] दूसरे देशों में जहाँ प्रबंधकों ने गर्भपात के मामले में 'नैतिक आपत्ति' के अपने अधिकार का दावा किया है, वहाँ न्यायालय ने यह स्पष्ट कर दिया कि स्वास्थ्य पद्धति के लिए कानून ने यह उत्तरदायित्व निर्धारित किया है कि वह सभी को प्राप्त हो, जिसके फलस्वरूप किसी भी संस्थान को नैतिक आपत्ति का अधिकार प्राप्त नहीं है भले ही कोई प्रबंधक उसका दावा करता है।[97]

ऐसी पद्धति डिजाइन का प्रश्न मात्र सांस्कृतिक मानदंड पर लागू नहीं होता। उदाहरण के लिए दक्षिण अफ्रीका के संवैधानिक न्यायालय ने यह माना है कि सड़क हादसे का शिकार व्यक्ति सार्वजनिक क्षेत्र में प्रभावी देखभाल नहीं प्राप्त कर सके और लोगों को स्थायी रूप से पक्षाघात के शिकार या क्वाड्रिप्लेजिक के रूप में छोड़ दिया गया क्योंकि सरकार द्वारा देय खर्च को सीमित करके सड़क हादसे के लिए निधि को मनमाने तरीके से कम कर दिया गया जिसके फलस्वरूप रोगियों को निजी क्षेत्र में आपातकालीन इलाज पाने में बाधाएँ उपस्थित हो गईं।[98]

3- i;kIr lekurk vkj leLrjh; lkE;koLFkk d fy, mfpr çfØ;k

जैसा कि ऊपर कहा गया है, स्वास्थ्य के अधिकार को गंभीरता से लेने के लिए एक कमजोर अतिसूक्ष्मवाद के परे जाना पड़ेगा तथा क्यूब के सभी एक्सेसों को पार करने हेतु उचित प्रक्रिया अपनानी पड़ेगी, जिसमें पर्याप्त समानता को ध्यान में रखना शामिल है। कोलंबिया ने (केवल वही नहीं) आज की तारीख में वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज को प्राप्त करने की प्रक्रिया में सीधे कानूनी संलग्नता का ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत किया है। स्वास्थ्य पद्धति में चिरकालिक कानूनी असफलता तथा व्यक्तिगत हकदारिता के लिए न्यायालय में बड़ी मात्रा में पड़े हुए विवादों की प्रतिक्रिया में कोलंबिया के संवैधानिक न्यायालय ने अपने महत्वपूर्ण टी 760/08 निर्णय में एक पारदर्शी तथा सहभागितापूर्ण प्रक्रिया के आधार पर और सहायता अनुदान की प्रक्रिया (जो अनौपचारिक क्षेत्र में विद्यमान थी) को अंशदायी प्रक्रिया के साथ एकीकृत करने एवं अनिवार्य स्वास्थ्य लाभ योजना को अद्यतन करने का आदेश दिया। ध्यानयोग्य है कि : (1) 1993 में कानून 100 के माध्यम से स्वास्थ्य पद्धति के निर्माण के बाद उसे व्यापक रूप से अद्यतन नहीं किया गया, जो समावेशन के लिए उपयुक्त मानदंड में अपने आपमें अपारदर्शिता को दिखाता है; (2) एकीकरण और अद्यतनीकरण के संबंध में न्यायालय का आशय केवल जोड़ना नहीं था। न्यायालय के अनुसार एकीकृत योजना के निर्माण हेतु एक अंशदायी प्रक्रिया में से कुछ मदों को समाप्त करना स्वीकार्य था, जब उन मदों को समाप्त किया जाना उचित हो; और (3) वयस्कों के लिए योजना का एकीकरण वित्तीय सुदृढ़ता को ध्यान में रखकर किया जाना था।[99]

टी 760/08 के निर्णय में एक महत्वपूर्ण बात यह थी कि न्यायालय ने एक अंतिम तारीख निर्धारित कर दी थी, जिसे सरकार द्वारा यदि पूरा नहीं किया गया तो उसे पूरा नहीं करने के लिए स्पष्टीकरण की मांग की गई; किंतु यह स्पष्ट नहीं किया कि उसमें किस प्रकार की सेवा शामिल की जाए या किसको प्राथमिकता दी जाए। बल्कि उसने विनिर्दिष्ट किया कि ; (1) जनसांख्यिकीय संरचना में परिवर्तन; (2) राष्ट्रीय जानपदिक रोगविज्ञान रूपरेखा, (3) देश में उपलब्ध उपयुक्त प्रौद्योगिकी तथा (4) पद्धति की वित्तीय अवस्था के संबंध में ''लाभ योजना को अद्यतन करने के लिए पीओएस (अनिवार्य स्वास्थ्य योजना) की व्यवस्थित जाँच अपेक्षित है।[100] पुनः न्यायालय ने लाभ योजना के अद्यतनीकरण तथा एकीकरण में सार्थक सहभागिता की अपेक्षा की,

न केवल वैज्ञानिक समुदाय द्वारा बल्कि प्रभावित लोगों द्वारा भी, जो ऊपर बताई गई प्रक्रियागत न्याय की जरूरतों के अनुरूप हो।

टी 760/08 के निर्णय में न्यायालय ने सरकार को ''पर्याप्त मात्रा में स्वविवेक के लिए गुंजाइश प्रदान किया कि वह किस प्रकार (निर्दिष्ट) लक्ष्य प्राप्त करे'', किंतु कार्यनिष्पादन के मूल्यांकन हेतु मानकों एवं प्रक्रियाओं का भी निर्देश दिया, जो उत्तरदायित्व तथा ''चुभती हुई प्रगतिशीलता'' के लिए आवश्यक है।[101] पहले के एक मामले का उदाहरण लेते हुए न्यायालय ने टी 760/08 के मामले के लिए अनुवर्ती कार्रवाई का निर्माण किया और उस अनुवर्ती कार्रवाई में सूचनाओं के संग्रहण, कोर्ट द्व ारा आरंभ में परवर्ती काल में निर्णय के अंग के रूप में दिए गए आदेश के अनुपालन की निगरानी तथा आदेश से संबंधित मुद्दों पर सार्वजनिक सुनवाई का आयोजन शामिल था।[102] यद्यपि कार्यपालक के साथ संवाद नहीं हो पाया किंतु न्यायालय की संलग्नता ने सिविल समाज में कार्य करने वालों के बड़े प्रभावशाली समूह की ''रचनात्मक सहभागिता'' के लिए अवसर प्रदान किया, जिसने निश्चित रूप से स्वास्थ्य के अधिकार पर स्वास्थ्य आधारित स्पष्टता हेतु नए सांविधिक कानून को अपनाने में उल्लेखनीय भूमिका निभाई।[103]

4- i;kIr lekurk ds fy, fLFkfr dk fuek.k % futh dk;drkvks ds fy, fu;eu

पर्याप्त समानता के लिए जरूरी है कि बहुत ही अलग–अलग बिंदुओं पर कार्य आरंभ करने वाले लोगों को स्वास्थ्य के संबंध में निर्णय लेने हेतु सूचनाएं एवं शक्ति हो। अतः स्वास्थ्य का अधिकार वस्तुतः शिक्षा एवं यौन शिक्षा जैसे अधिकारों से गहनता से जुड़ा होता है। किंतु वह निजी कार्यकर्ताओं के अन्य प्रकार के नियमनों से भी जुड़ा होता है जो जनता के स्वास्थ्य के व्यवहार पर अनियत प्रभाव डालता है और साथ ही एसडीजी के कार्यान्वयन में बड़ी भूमिका निभाता है। उदाहरण के लिए नवंबर 2016 में मैक्सिको के एक जिला न्यायालय ने स्वास्थ्य के अधिकार पर पोषकीय तत्व तथा फ्रिज में रखे गए भोजन के प्रभाव के बारे में सही सूचना न देने का मामला पाया था।[104]

कभी–कभी सरकारों के पास उपयुक्त उपाय अपनाने हेतु राजनीतिक इच्छाशक्ति होती है, किंतु वैश्विक स्तर पर भूमिका निभाने वाले लोग इसमें हस्तक्षेप का प्रयास करते हैं। उदाहरण के लिए जब उरुग्वे की सरकार ने सिगरेट की बिक्री को प्रतिबंधित करने के लिए प्लेन पैकेजिंग कानून बनाने हेतु सकारात्मक कदम उठाया तो फिलिप मॉरीस ने सरकार के विरुद्ध केस दायर कर दिया कि वह उसके लाभार्जन में दखल दे रही है। हालांकि इंटरनेशनल सेंटर फॉर सेंटलमेंट ऑफ इनवेस्टमेंट डिसप्यूट्स (आईसीएसआईडी) ट्रिब्यूनल ने विशेष रूप से माना कि राज्य के मूल्यांकन के अधिकार उसे ऐसे कदम उठाने की अनुमति देते हैं ताकि स्वास्थ्य के अधिकार की रक्षा हो सके।[105] चूंकि स्वास्थ्य के अधिकार की चिंता का उल्लेख पहली बार एक

आईसीएसआईडी मामले में हुआ था, अतः इस निर्णय ने बहुराष्ट्रीय कंपनियों के वाणिज्यिक हितों की तुलना में जनता के कल्याण तथा उसके सम्मान के प्रति राज्य के उत्तरदायित्व की प्रधानता के बारे में एक महत्वपूर्ण मिसाल प्रस्तुत किया।

fu"d"k

स्वास्थ्य के अधिकार को गंभीरता से लेने का आशय है राष्ट्रीय स्वास्थ्य पद्धतियों तथा एसडीजी के अधीन वैश्विक विकास में ''हमेशा की तरह व्यवसाय'' की विचारधारा से अलग हटना। निश्चित रूप से इसका अर्थ उस अवधारणा को त्यागना है कि स्वास्थ्य के संबंध में विश्व में प्रगति का नियंत्रण व्यावसायिक अनिवार्यताओं द्वारा होता है। जब स्वास्थ्य को अधिकार एवं न्याय का विषय समझा जाता है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य पद्धति सामाजिक एवं सत्ता के संबंधों को दर्शाती है, जो हमें सम्मान के साथ जीवन जीने के अवसर को प्रभावित करती है। अतः स्वास्थ्य के अधिकार को गंभीरता से लेने के लिए जरूरी है वित्तपोषण, देखभाल की उपलब्धता तथा उन प्रक्रियाओं में न्यायसंगति हो, जिसके माध्यम से वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज की दिशा में प्राथमिकताओं का निर्धारण किया जाता है तथा निर्णय लिए जाते हैं।

पुनः यदि स्वास्थ्य अधिकार का विषय हो तो वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज को प्राप्त करने के लिए उत्तरदायित्वों में शामिल है स्वास्थ्य के क्षेत्र में कानून को लागू किया जाना (केवल निगरानी नहीं), उसकी समीक्षा और कार्रवाई भी।[106] और ऐसी स्थिति में प्रत्येक स्तर पर स्वास्थ्य पद्धतियों में मानक मूल्यों के साथ–साथ तकनीकी निर्णय, संवैधानिक मूल्यों एवं सिद्धांतों के अभिभावक के रूप में न्यायपालिका की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है ताकि स्वास्थ्य में उत्तरदायित्व तथा लोकतांत्रिक नियंत्रण को बढ़ाया जा सके। मैंने यहाँ यह विचार रखा है कि प्रश्न यह है कि किस प्रकार और कब न्यायालय स्वास्थ्य में सामाजिक न्याय को बढ़ावा दे सकते हैं और मानवाधिकार के लिए अबाध प्रत्याशाओं का समर्थन कर सकते हैं, न कि रूढ़िवादी हथकड़ी के द्वारा स्वास्थ्य के अधिकार को बाधित करें, जिससे मजबूत समानाधिकारवादी महत्वाकांक्षांओं पर कुठाराघात होगा, जिसे लुकास मेयर तथा अन्य लोगों ने ''पर्याप्ततावाद'' कहा है और स्वास्थ्य में सामाजिक असमानता को बदतर बनाने वाला माना है।[107] पुनः उस युग में जहाँ पूरी तरह से चुनावों एवं जनमत–संग्रह पर आधारित लोकतंत्र की गुणवत्ता पर परस्पर–विरोधी प्रश्न उठाए जा रहे हैं, मैंने न्यायीकरण हेतु ऐसे सुझाव रखे हैं जो शायद सरकार की राजनीतिक शाखाओं से कानूनों, नीतियों और बजटों के औचित्य की मांग करते हुए लोकतंत्र के बड़े विमर्शीय आयामों को उद्‌घाटित करेंगे और उससे यह भी सुनिश्चित होगा कि न्यायालय अपने संवैधानिक तथा संस्थागत सीमाओं को जानते हुए कार्य करेंगे।[108]

तथापि राजनीतिक रूप से कुख्यात अछूते स्वास्थ्य क्षेत्र में संस्थापित हितों को

सुस्थापित करने तथा स्वेच्छाचारित को रोकने में जहाँ न्यायालय सकारात्मक भूमिका निभा सकते हैं और उन्होंने निभाया भी है, वहीं वे सरकार के राजनीतिक अंगों द्वारा किए जाने वाले उन कार्यों को प्रतिस्थापित नहीं कर सकते, जो यह सुनिश्चित करने के लिए जरूरी है कि प्रत्येक व्यक्ति को देखभाल प्राप्त करने का अधिकार है। न ही वे सीमा–पार साम्यावस्था को बढ़ावा देने हेतु अंतरराष्ट्रीय आर्किटेक्चर द्वारा सुधारे गए नियमों को प्रतिस्थापित कर सकते हैं। किंतु राष्ट्रीय, क्षेत्रीय तथा वैश्विक स्तर पर विभिन्न क्षेत्रों में अधिकाधिक संवाद आवश्यक है ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि एसडीजी के युग में वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज को प्राप्त करने के प्रयास संवैधानिक ढांचे तथा अंतरराष्ट्रीय कानूनी प्रतिबद्धताओं और सार्वजनिक स्वास्थ्य से संबंधित नैतिक मूल्यों के अनुरूप हो। अन्यथा मानवाधिकार का शब्दाडंबर ''विकास'' की सारहीन समझ पर वैधता की काई फैला देगा।

अंततः स्वास्थ्य के अधिकार को गंभीरता से लेना न केवल इसलिए महत्वपूर्ण है कि वह समानता के सिद्धांत को बढ़ावा देता है, बल्कि इसलिए भी कि वह वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज की प्राप्ति के प्रयासों में सहभागिता और उत्तरदायित्व को सुनिश्चित करता है। यह केवल इसलिए महत्वपूर्ण नहीं है कि वह सामाजिक नागरिकता की संपदा के रूप में स्वास्थ्य विवरण का निर्माण करता है, बल्कि इसलिए भी कि वह स्वास्थ्य पद्धति को केंद्रीय सामाजिक संस्थान के रूप में स्थापित करता है, जो सार्थक लोकतंत्र का मूल अंग है। मूल बात यह है कि इस समय यह विचार दाव पर लगा हुआ है कि हम मानव जाति के अर्थ को किस रूप में ग्रहण करते हैं, उस संसार में जहाँ लोकतांत्रिक सिद्धांत और संस्थान सत्तावादी लोकलुभावनवाद के खतरे को झेल रहे हैं जो इस बात पर बल देता है कि सरकार जनता और बाजारीकृत समाजों के लिए बात करती है, जो मानव की स्वायत्तता के क्षेत्र को उपभोक्ता की पसंद में समेट रही है। मानव जाति केवल स्वास्थ्य कार्यक्रमों का लक्ष्य भर नहीं है, न ही वह निष्क्रिय रोगी है, जो उदार दानों या विशेषज्ञ ज्ञान के उपयोग का लाभार्थी है। जैसा कि लगभग सत्तर वर्ष पहले मानवाधिकार के वैश्विक घोषणापत्र में कहा गया है कि मानव जाति के रूप में हम सभी अपनी जातियों, प्रजातियों या लिंग या राष्ट्रीय मूल – या बीमारियों से ऊपर उठकर हैं। हम ''विवेक और चेतना'' से संपन्न हैं, अपने प्रशासन में सक्रिय सहभागिता के लिए सक्षम हैं और अपने समाजों तथा अपने संसार में परिवर्तन के एजेंट हैं।[109]

1. ट्रिग्वे ऑटरसेन एवं ओले एफ. नॉर्हिम, आदि, विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्लूएचओ), मेकिंग फेयर च्वायसेस ऑन द पाथ टू यूनिवर्सल हेल्थ कवरेज (2014)

2. देखें – लॉरेंस ओ. गोस्टिन एंड लिंडसे एफ. विली, पब्लिक हेल्थ लॉ: पावर, ड्यूटी, रेसट्रेंट (तीसरा संस्करण, 2016)

3. देखें – प्रिसचिला रोड्रिक्वेज आदि, डिसैबिलिटी राइट्स इंटरनेशनल, नो जस्टिस : टार्चर, ट्रैफिकिंग एंड सेग्रिगेशन इन मेक्सिको (2015), एमनेस्टि इंटरनेशनल,

द स्टेट एज ए कैटेलिस्ट फॉर वायलेंस एगेंस्ट वुमन : वायलेंस एगेंस्ट वुमन एंड टॉर्चर एंड अदर इल–ट्रीटमेंट इन द कंटेक्स्ट ऑफ सेक्सुअल एंड रिप्रोडक्टिव हेल्थ इन लैटिन अमेरिका एंड द कैरिवियन (2016), ब्रोट डिगनाम एंड एलि वाई. अडाशी, हेल्थ राइट्स इन द बैलेंस : द केस एगेंस्ट पेरिनेटल शैकिंग ऑफ वुमन बिहाइंड बार्स, 16 हेल्थ एंड हुम. राइ. जे. 13 (2014); पायोला बरगैलो, द स्ट्रगल एगेंस्ट इनफॉर्मल रूल्स ऑन एबार्शन इन अर्जेटाइना, इन एबार्शन लॉ इन ट्रांसनेशनल पर्सपेक्टिव; केसेस एंड कंट्रोवर्सिज 143 (रिबेका जे. कूक, जोना एन. एर्डमैन एंड बर्नार्ड एम डिकेंस सं. 2014); केन्या लिगल एंड एथिकल इसुज नेटवर्क ऑन एचआईवी एंड एड्स (केलिन) एंड अन्य व. कैबिनेट सेकरेट्री एंड अदर्स (2016) (एच सी के)(केन्या) कोर्ट डिक्री. पीडीएफ, (एचआईवी से ग्रस्त लोगों पर सूचना एकत्र करने के प्रेसिडेंस के निर्देश, साथ ही एचआईवी से ग्रस्त बच्चों के नाम, गोपनीयता के संवैधानिक अधिकार का उल्लंघन तथा बच्चे के बेहतर हित में)

4. देखें लिटिगेटिंग हेल्थ राइट्स रू कैन कोर्ट्स ब्रिंग मोर जस्टिस टू हेल्थ (एलिसिया एली यामीन एंड सिरी ग्लोफेन सं. 2011); द राइट टू हेल्थ एंड द पब्लिक/प्राइवेट डिवाइड : ए ग्लोबल कंपरेटिव स्टडी (कोलीन एम. फ्लड एंड एयल ग्रॉस सं. 2014)

5. देखें बेनेडिक्ट रमबोल्ड आदि, यूनिवर्सल हेल्थ कवरेज, प्रायोरिटी सेटिंग एंड द ह्यूमन राइट टू हेल्थ, 389 लैसेट (प्रकाशन 2017)

6. देखें ट्रांसफॉर्मिंग आवर वर्ल्ड : द 2030 एजेंडा फॉर सस्टेनेबल डेवलपमेंट, जीए रिसर्च, 70/1, यू एन गायोर, 70 सेस. एजेंड आइटम्स 15 एंड 116

7. ओटरसेन एंड नॉरहेम, आदि सुपरा नोट 1 एट 1

8. देखें अमर्त्य सेन, इलिमेंट्स ऑफ ए थ्योरी ऑफ ह्यूमन राइट्स, 32 फिल एंड पब. एर. 315 (2004); एलिसिया एली यामीन, पावर, सफरिंग एंड द स्ट्रगल फॉर डिगनिटीः ह्यूमन राइट्स फ्रेमवर्क फॉर हेल्थ एंड हवाई दे मैटर (2016)

9. देखें – नॉरमैन डैनियल आदि, रोल ऑफ द कोर्ट्स इन द प्रोग्रेसिव रियलाइजेशन ऑफ द राइट टू हेल्थ : बिटविन द थ्रेट एंड द प्रोमिस ऑफ जूडिसिएलाइजेशन इन मेक्सिको, 1 हेल्थ सिस्टम एंड रिफॉर्म 229 (2015); रोबर्टो गारगेरेला, डायोलोजिक जस्टिस इन द इनफोर्समेंट ऑफ सोसल राइट्स : सम इनिसियल आर्गुमेंट्स, इन लिटिगेटिंग हेल्थ राइट्स, सुपरा नोट 4, 232; रोबर्टो लैटिन अमेरिका एन कंस्टिट्यूटोनियलिज्म, 1810–2010 : द इंजिन रूम ऑफ द कंस्टिट्यूशन (2013)

10. इंटरनेशनल कोवेनेंट ऑन इकोनोमिक, सोशल एंड कल्चरल राइट्स, एडॉप्टेड 16 दिसंबर 1966, जी ए रि. 2200, (21), यू एन गायोर, 21 सेस, आलेख 12 (1), यू एन डोक. ए/6316 (1966), 993 यू एन टी एस, 3 (3 जनवरी 1976 को लागू), अब आईसीइएससीआरटी

11. देखें – वही, आ. 2, 12

12. देखें – कंस्ट्रक्शन नेशनल आ. 41य कंस्टिट्यूशन एओ फेडरल (संविधान, ब्राजील) आ. 200; कंस्टिट्यूशन पोलिटिका डि आयोस एस्टाडोस मैक्सिकन (सी पी), आल. 4 डियारियो ऑफिसियल डि ला फेडरेशन, 5 डि फेबरेरो डि 1917 (मेक्स)

13. वियना कनवेंशन ऑन द लॉ ऑफ ट्रीटीज, आ. 29, यू एन डोकु. ए/कन. 39/27 (1969), 1155 यू एन टी एस 331 (27 जन 1980 को लागू), पुनर्मुद्रित 8 आईएलएम 679 (1969)

14. देखें – आईसीइएससीआर, सुपरा नोट 10, आ. 2

15. सामान्य टिप्पणी सं. 14, द राइट टू द हायस्ट एटेनेबल स्टैंडर्ड ऑफ हेल्थ (आ. 12, इंटरनेशनल कोवेनैंट), 8, यू एन एस्कोर, कमि. ऑन इको. सोस. एंड कल्च. राइट्स, 22 सत्र, यू एन दस्तावेज, इ/सी 12/2000/21 (2000) (इसमें आगे सामान्य टिप्पणी सं. 14 कहा गया है)

16. देखें वही, 34–37

17. सामान्य टिप्पणी सं. 3, द नेचर ऑफ स्टेट्स पार्टिज ऑब्लिगेशन, एडॉप्टेड 13–14, दिसंबर 1990, यू एन एस्कोर, कमि. ऑन इको. सोस. एंड कल्च. राइट्स, 5वां सत्र, 49वीं एवं 50वीं बैठक, यू एन दस्तावेज, इ/सी 12/1990/8 (1990)

18. विश्व स्वास्थ्य संगठन एवं विश्व बैंक समूह, वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज के संबंध में निगरानी प्रक्रिया, देश एवं वैश्विक स्तर 1, 5(2014)

19. विश्व स्वास्थ्य संगठन एवं विश्व बैंक समूह, वैश्विक स्वास्थ्य कवरेज (2016)

20. ओटरसेन एंड नॉरहेम, आदि सुपरा नोट 1 एट

21. ट्रांसफॉर्मिक ऑवर वर्ल्ड रू द 2030 एजेंडा फॉर सस्टेनेबल डेवलपमेंट, उपरि–टिप्पण ी 6

22. लीसा फॉरमैन आदि, ह्वाट डू केयर ऑब्लिगेशन अंडर द राइट टू हेल्थ ब्रिंग टू यूनिवर्सल हेल्थ कवरेज? 18 हेल्थ एंड ह्यूमन राइट ज. 23, 27–28 (2016)

23. देखें – नॉरमैन डैनियल, जस्ट हेल्थ : मीटिंग हेल्थ नीड्स फेयरली 14–15 (2008)

24. देखें – जॉन टोबिन, राइट टू हेल्थ एंड इंटरनेशनल लॉ, चौ. 1 (2012)

25. देखें – अमांदा टॉब, हाऊ स्टेबल ऑर डेमोक्रेसीज? वार्निंग साइन आर फ्लैशिंग रेड, न्यू यार्क टाइम्स, 29 नवंबर, 2016; निकलास लूहमैन , आपरेशनल क्लोजर

एंड स्ट्रक्चरल कपलिंग; द डिफ्रेंशिएशन ऑफ द लिगल सिस्टम, 13 कार्डोजो एल रिव्यू 1419 (1992)

26. मानवाधिकार के अनेक विद्वान अलग–अलग आरंभिक बिंदु ग्रहण करते हैं, जिसमें एसडीजी का विश्लेषण मानवाधिकार आधारित दृष्टिकोण या स्वास्थ्य के अधिकार के आलोक में करते हैं। उदाहरण के लिए देखें ऑड्रि आर. चौपमैन, एसेसिंग द ह्यूमन राइट्स पर्सपेक्टिव, 16 बीएमसी इंटरनेशनल हेल्थ एंड ह्यूमन रा. 33 (2016); गोरिक ऊम्स एंड रैचेल हैमोंड्स, डब्लूएचओ पॉलिसी ब्रीफ, एंचोरिंग यूनिवर्सल हेल्थ कवरेज इन द राइट टू हेल्थ, ह्वाट डिफ्रेंस उड इट मीन? (2015)

27. देखें – सेन, उपरि–टिप्पणी 8, 328–30; डैनियल्स, उपरि–टिप्पणी 23

28. ओटरसेन एंड नॉरहेम, आदि सुपरा नोट 1

29. जोनाथन वुल्फ, द ह्यूमन राइट टू हेल्थ (2012)

30. देखें – जेनिफर प्रैट रूजर, हेल्थ एंड सोशल जस्टिस (2010), डैनियल्स, उपरि–टिप्पणी 23

31. ओटरसेन एंड नॉरहेम, आदि सुपरा नोट 1 एट 9

32. रेंट डिस्क्रेटस, डिस्कोर्स ऑन द मेथड ऑफ राइटली कंडक्टग वन्स रिजन एंड सिकिंग टक्रथ इन साइंस, 6, 2 (1637)

33. देखें – सेन, उपरि–टिप्पणी 8, डैनियल्स, उपरि–टिप्पणी 23

34. सामान्य टिप्पणी सं. 14, उपरि–टिप्पणी 15

35. यामीन उपरि–टिप्पणी 8, 73–98

36. वर्किंग ग्रुप ऑन इनइक्वलिटीज इन हेल्थ, स्वास्थ्य में असमानताः अनुसंधान समूह की रिपोर्ट 206 (1980)

37. विश्व स्वास्थ्य संगठन, स्वास्थ्य के सामाजिक निर्धारक पर आयोग, पीढियों में अंतराल को खत्म करना; स्वास्थ्य के सामाजिक निर्धारकों पर स्वास्थ्य समानता के माध्यम से कार्रवाई, 1 (2008)

38. देखें – ब्रासु जी. लिंक एंड जो फेलन, सोशल कंडीशन एंज फंडामेंटल कॉजेज ऑफ डिजीज, 35, जेन. हेलेथ एंड सो. बिहैवियर 80 (1995)य मार्क एल हैजेनबुहलर, जो सी. फेलन एंड ब्रासु जी लिंक, स्टिग्मा एज ए फंडामेंटल कॉज ऑफ पोपुलेशन हेल्थ इनइक्वलिटीज, 103, एम जे पब्लिक हेल्थ 813 (2013)

39. आईसीइएससीआर, उपरि–टिप्पणी 10, आले. 2

40. पॉल हंट, इंटरप्रिटिंग द इंटरनेशनल राइट टू हेल्थ इन ए ह्यूमन राइट्स–बेस्ड एप्रोच टू हेल्थ, 18 हेल्थ एंड ह्यू. राइ. जे. 109 (2016)

41. देखे – डैनियल्स, उपरि–टिप्पणी 23, 57

42. सामान्य टिप्पणी सं. 14, उपरि–टिप्पणी 15, 12

43. देखें – स्पेशल रैपोर्टियर, द राइट ऑफ एवरीवन टू द इनज्वायमेंट ऑफ द हाएस्ट एटेनेबल स्टैंडर्ड ऑफ फिजिकल एंड मेंटल हेल्थ, यू एन गायर, 60वां सत्र, एजेंडा आइटम 73 (बी) यू एन डोकु. ए/60/348 (2005); डब्लूएचओ, एवरीबडीज बिजनेस, स्ट्रेंथेनिंग हेल्थ सिस्टम टू इंप्रूव हेल्थ आउटकम; डब्लूएचओ फ्रेमवर्क फॉर एक्शन (2007)

44. लीन पी. फ्रीडमैन, एचिविंग द एमडीजी' हेल्थ सिस्टम एज ए कोर इंस्टिट्यूशन, 48 डेव. 19, 21 (2005)

45. वही

46. एलिसिया एली यामीन एवं ओले फ्रिथजोफ नोरहीम, टेकिंगइक्वालिटी सिरियसली : एप्लाइंग ह्यूमन राइट्स फ्रेमवर्क टू प्रायरिटी सेटिंग इन हेल्थ, 36, ह्यूम. रा. क्वा. 296, 323–24 (2014)

47. एने–एमैनुअल बर्न एंड लॉरा नर्वी, द आर्ट ऑफ मेडिसिन; पॉलिटिकल रूट ऑफ द स्ट्रगल फॉर हेल्थ जस्टिस इन लैटिन अमेरिका, 385 लैंसेट 1174–75 (2015)

48. वही, 1175

49. विसेंट नैवेफो, पॉलिसी विदाउट पोलिटिक्सः द लिमिट्स ऑफ सोशल इंजीनियरिंग, 93, एम. जे पब्ल. हेल्थ 64, 64–66 (2003)

50. सामान्य टिप्पणी सं. 14, उपरि–टिप्पणी 17

51. वही (बल दिया गया)। ये पारंपरित प्राथमिक देखभाल सेवाएँ नहीं हैं, उदाहरण के लिए आपातकालीन प्रासविक देखभाल के लिए जरूरी है एक रिफ्रल नेटवर्क, किंतु एक ऐसी स्वास्थ्य पद्धति, जो इस तरह की देखभाल नहीं कर पाती वह निश्चित रूप से महिलाओं के प्रति भेदभाव करती है साथ ही स्वास्थ्य पद्धति के कार्यों की अवमानना करती है। देखें – टेक्निकल गाइडेंस ऑन द एप्लिकेशन ऑफ ए ह्यूमन राइट–बेस्ड एप्रोच टू द इंप्लिमेंटेशन ऑफ पॉलिसीज एंड प्रोग्राम्स टू रिड्यूस प्रिवेंटेबल मैटर्नल मोरबिडिटी एंड मोर्टालिटी, यू एन जीएओआर, ह्यू. रा. काउंसिल, 20वां सत्र, एजेंटा मद 2 एवं 3, यू एन डोक. ए/एचआरसी/21/22 (2012)

52. ओटरसेन एंड नॉरहेम, आदि सुपरा नोट 1, 39

53. सामान्य टिप्पणी सं. 14, उपरि–टिप्पणी 15, 19

54. सामान्य टिप्पणी सं. 14, उपरि–टिप्पणी 17, 83

55. यामीन एवं नॉरहीम, उपरि–टिप्पणी 46, 323

56. एलिसिया एली यामीन एवं रिबेका कैंटूर, बिटविन इंटरनेशनल डिस्कोर्स एंड ऑपरेशनल गाइडेंस : चौलेंजेज एंड डायमेंशन इन इंप्लिमेंटिंग ह्यूमन राइट्स–बेस्ड एप्रोचेज टू हेल्थ, 6 जे. ह्यू. रा. प्रै. 451 (2014)

57. जॉन मैली एंड जेफ रिचार्डसन, द रूल ऑफ रिस्क्यू, 56 सो. साइ. एंड मेड, 2407 (2003)

58. ओटरसेन एंड नॉरहेम, आदि उपरि–टिप्पणी 1 एट 14

59. देखें – कीथ सिरेट, लॉ, लिजिटिमेसी एंड द रेशनिंग ऑफ हेल्थ केयर : ए कंटेक्स्टुअल एंड कंपरेटिव पर्सपेक्टिव (2007)

60. देखे – डैनियल्स, उपरि–टिप्पणी 23, पृ. 25

61. वही, 3–4

62. देखे – डैनियल्स, उपरि–टिप्पणी 23, 118–19; यामीन, उपरि–टिप्पणी 8

63. देखें – उदाहरण के लिए डैनियल्स, उपरि–टिप्पणी 23, 118–19; फ्रैंक टरविंडी, ढेल्फा राजन एंड एजेंट सोशल, प्रायोरिटी सेटिंग फॉर नेशनल हेल्थ पॉलिसीज, स्ट्रेटेजीज एंड प्लान्स, स्ट्रेटेजाइजिंग नेशनल हेल्थ इन द 21 सेंचुरी; ए हैंडबुक (जेरार्ड सीमेट, दीपा राजन एंड सौम्या कंडांडले सं. 2016); अमादा ग्लासमैन, कैल्प्सो चालकिडो, उरूला जिडियोन, वोट टीरावैटानेनोन, सीन ट्यूनिस, जेसी बी बंप, एंड एंडक्रज पिकोन रिविरे, प्रायोरिटी सेटिंग इंस्टिट्यूशन इन हेल्थ; रिकोमेंडेशन फ्रॉम ए सेंटर फॉर ग्लोबल डेवलपमेंट वर्किंग ग्रुप, 7 ग्लोबल हर्ट 13 (2012)

64. यामीन, उपरि–टिप्पणी 8, 157–79

65. सिरेट, उपरि–टिप्पणी 59, 140

66. वही, 231–32

67. वही, 141

68. देखें – एलिसिया एली यामीन, प्रमोटिंगइक्विटी इन हेल्थ : ह्वाट रोल फॉर द कोटर्स? 16 हेल्थ एंड ह्यू. राइ. जे. 1 (2014), सिरिट, उपरि–टिप्पणी 59

69. ट्रीटमेंट एक्शन कंपेन एंड अदर्स बनाम मिनिस्टर ऑफ हेल्थ एंड अदर्स (1) टीपडी 1 (एसए) केस नं. 21182/2001 51 (2001), मिनिस्टर ऑफ हेल्थ एंड अदर्स वर्सेस ट्रीटमेंट एक्शन कंपेन एंड अदर्स (5) एसए 721 (सीसी) (2002) (सरकार ने अठारह पायलट स्थलों के प्रावधान को सीमित करके अनुचित प्रकार से स्वास्थ्य के अधिकार का उल्लंघन किया और सरकार को गर्भवती महिलाओं एवं उनके नवजात बच्चों के स्वास्थ्य का अधिकार को उत्तरोत्तर यह स्वीकार करना चाहिए था)

70. रोजर नार्मैन एंड सराह जैदी, ह्यू. रा. एट द यू एन : द पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ यूनिवर्सल जस्टिस (2008), देखें, यामीन, उपरि–टिप्पणी 8, 49–72

71. देखे ऑप्शनल प्रोटोकॉल टू द इंटरनेशनल कोवेनेंट ऑन इकोनोमिक, सोशल एंड कल्चरल राइट्स, एडाप्टेड 10 दि. 2008, जी ए रि. 63/117, यू एन जीएओआर, 63 सत्र, एजेंडा आइटम 58, यू एन डोकु. ए/रिस/63/117 (2008), टोबीन, उपरि–टिप्पणी 24

72. देखें – सिरी ग्लोपेन, लिटिगेटिंग हेल्थ राइट्स : फ्रेमिंग द एनालाइसिस इन लिटिगेटिंग हेल्थ राइट्स, उपरि–टप्पणी, 17

73. देखें – एलिसिया एली यामीन, राइट टू हेल्थ : चौलेंजेज ऑफ कंस्ट्रड्डक्टग फेयर लिमिट्स, ऑक्सफोर्ड हैंडबुक ऑफ कंपरेटिव कंस्टिट्यूशनल लॉ इन लैटिन अमेरिका (कोनराडो हबनर मेंडिज एंड रोबर्टो गार्गेरेला सं. प्रकाश्य); देखें – डिफेंसोरिया डेल पाब्लो डि कोलंबिया, सिंगु क्रिसिनडो एल नुमेरो डि टुटेलास एन सोलुद, डिफ्रेंशिया डिल पाब्लो कोलंबिया (7 अप्रैल, 2015), देखें – डुडले ली बनाम मिनिस्टर फॉर करेक्शनल सर्विसेस (2) एसए 144 (सीसी) (2013) (यह निष्कर्ष दिया कि जेल प्राधिकारियों ने कैदियों के स्वास्थ्य की सुरक्षा में अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन नहीं किया जब कैदियों की अवस्था कैदियों की यक्ष्मा के प्रसार के कारण थी और यह उचित उपाय किए जाने पर फैलाव का खतरा कम हो सकती था, भले ही समाप्त नहीं होता); लॉ सोसाइटी ऑफ साउथ अफ्रीका एवं अन्य बनाम मिनिस्टर फॉर ट्रासपोर्ट एंड अन्य (1) (एसए) 400 (सीसी) (द. अफ्रीका) (2011) (स्वास्थ्य सेवा के लिए चिकित्सा लागत इतना कम था कि सड़क हादसे के शिकार व्यक्ति, खासकर क्वाड्रिप्लेजिक या पक्षघात से गुजरे, निजी क्षेत्र के अस्पताल में सेवा प्राप्त नहीं कर सके और सार्वजनिक स्वास्थ्य संस्थान उनको पर्याप्त सेवाएँ नहीं दे सके जिसके कारण मासूम हादसे के शिकार व्यक्ति पर्याप्त स्वास्थ्य सेवा उपलब्ध नहीं कर सके और इसकी वजह से वे बेकार हो गए); स्वास्थ्य मंत्री बनाम इलाज कार्य अभियान, उपरि–टिप्पणी 69

74. देखें – कैथेराइन जी, यंग एंड जुलिटा लेमेट्री, द कंपेरेटिव फॉर्चुन ऑफ द राइट टू हेल्थ : टू टेल्स ऑफ जस्टिसिएबिलिटी इन कोलंबिया एंड साउथ अफ्रीका 26, हार्व, ह्यू. रा. रि. ज 179 (2013)

75. देखे – द राइट टू हेल्थ एट द पब्लिक/प्राइवेट डिवाइड, उपरि–टिप्पणी 4, ओक्टावियो लुइज मोट्टा फेराज, द राइट टू हेल्थ इन द कोर्ट्स ऑफ ब्राजील, वर्सेनिंग हेल्थ इनइक्वलिटीज? 11 हेल्थ एंड ह्यू. राइ. रिस जे 33 (2009)

76. ब्रासु एम विल्सन, कोस्टा रिका : हेल्थ राइट्स लिटिगेशनः कॉजेज एंड कनसेक्वेंसेस इन लिटिगेटिंग हेल्थ राइट्स, उपरि–टिप्पणी 4, 132, 145–46

77. फेराज, उपरि–टिप्पणी 75

78. देखे वही, सीएफ. जायो बिहेल, मारियाना पी सोकल एंड जोसफ जे एमोन, द जुडिसियलाइजेशन ऑफ हेल्थ एंड द क्वेस्ट फॉर स्टेट एकाउंटेबिलिटी : एविडेंस फ्रॉम 1262 लॉसूट्स फॉर एक्सेस टू मेडिसिन इन सदर्न ब्राजील, 18, हेल्थ एंड ह्यू. रा. रि. ज. 209 (2016)

79. सीएफ. एवराल्डो, लैंप्रिया, कोलंबिया राइट–टू–हेल्थ लिटिगेशन इन ए कंटेक्स्ट ऑफ हेल्थ केयर रिफॉर्म, इन द राइट टू हेल्थ एट द पब्लिक/प्राइवेट डिवाइड, उपरि–टिप्पणी 4, 131

80. देखे – द राइट टू हेल्थ एट द पब्लिक/प्राइवेट डिवाइड, उपरि–टिप्पणी 4, एलिसिया एली यामीन एंड फियोना लैंडर, इंप्लिमेंटिंग ए सर्कल ऑफ एकाउंटेबिलिटी : ए प्रोपोज्ड फ्रेमवर्क फॉर जुडिसियरीज एंड अदर एक्टर्स इन इनफोर्सिंग हेल्थ रिलेटेड राइट्स, 14, ज. ह्यू. रा. 312 (2015)

81. इंडिपेंडेंट एकाउंटेबिलिटी पैनल, 2016ः ओल्ड चौलेंजेज, न्यू होप : एकाउंटेबिलिटी फॉर द ग्लोबल स्ट्रेटिजी फॉर वुमन चिल्ड्रेन एंड एडोलसेंट्स हेल्थ 9–11 (2016)

82. यूनाइटेड स्टेट वर्सेस विंडसर, 133 एस. सीटी, 2675, 2695 (2013) (डीओएमओ का प्रयोजन और प्रभाव समान सुरक्षा की पांचवी संशोधन गारंटी का उल्लंघन करते हुए समान लिंग दी दंपति पर अलाभकर, एक अलग स्थिति और इस प्रकार कलंक आरोपित करे)

83. देखें – यामीन एवं नारहीम, उपरि–टिप्पणी 46, 323; कॉलीन एम फ्लड एंड आयल ग्रॉस, लिटिगेटिंग द राइट टू हेल्थ, ह्वाट कैन वी लर्न फ्रॉम ए कंपेरेटिव लॉ एंड हेल्थ केयर सिस्टम एप्रोच, 16 हेल्थ एंड ह्यू. रा. ज. 62 (2014), यामीन उपरि–टिप्पणी 8, 188–90; यामीन एंड लैंडर, उपरि–टिप्पणी 80

84. कोर्ट कंस्टिट्यूशनल, 8 डी जुलियो डि 2004, सेंटेसिया टी 654/04 (मैजिस्ट्राडो रोड्रिगो यूप्रिमी, कनकरिंग)

85. मिनिस्टर ऑफ हेल्थ एंड अदर्स वर्सेस ट्रीटमेंट एक्शन कंपेन एंड अदर्स, उपरि–टिप्पण ी 69, 135 (बल दिया गया)

86. वही, 38, सूब्राामणि व. मिनिस्टर ऑफ हेल्थ (1) एसए 765 (सीसी) (एसए) (1998) (क्रोनिक एनल खराबी वाले रोगी को डायलिसिस नहीं करने की राज्य की नीति स्वास्थ्य के अधिकार का उल्लंघन नहीं है)

87. पैट्रिसिया एसेरो ओचिएंग व. द एटर्नी जनरल, पेटिशन सं. 409, 85 (केन्या) (2009)

88. देखें कोर्ट कंस्टिट्यूशनल, 6 सेप 2000, सेंटेसिया टी 1165/00 (कोल.) (बजट में कमी की गई जिसका लक्ष्य सहायता उपदान के मामले में कमी लाना था, जिसके फलस्वरूप असुविधाग्रस्त आबादी काफी प्रभावित हुई और उनका इलाज नहीं हो सका)

89. देखें – यामीन, उपरि–टिप्पणी 8, 90–91

90. अखिल भारतीय वकील संघ बनाम दिल्ली सरकार एवं अन्य (2009) डब्लूपी (सी) सं. 5410/1997 (दिल्ली उच्च न्यायालय), 30 (भारत) (राज्य के साथ संविदा के बाद जिसमें निःशुल्क चिकित्सा प्रदान करने की बात कही गई थी, इंद्रप्रस्थ मेडिकल कॉर्पोरेशन लि. ने शीश्अपने आपमें राज्य के कारणत्व का लबादा ओढ़ लिया अतः उससे निःशुल्क चिकित्सा देने की अपेक्षा थी); नेशनल सुप्रीम कोर्ट ऑफ जस्टिस, 24 डि अक्तू. 2000, कंपोडोनिको डि वेनियाक्वा, ए सी व. मिनिस्टर ऑफ सालुद एसियन सोशल (अर्जे) (2000), (एक निजी संस्था से अपेक्षा की गई कि वह उस रोगी को स्वैच्छिक रूप से विशिष्ट चिकित्सा प्रदान करना बंद नहीं करेगा जिसके इलाज में दवा जारी नहीं रखने पर घातक खतरा होगा, जिसमें राज्य स्वास्थ्य एवं जीवन के अधिकार का प्रथम गारंटर है) संवैधानिक कोर्ट, 31 डि जुलियो डी 2008, सेंटेसिया टी–760/08 (कोल.)(इसमें दवा के जारी रखने के सिद्धांत का उल्लेख है, जो स्थापित करता है कि स्वास्थ्य सेवा की प्राप्ति अनवरत होनी चाहिए तथा बीमाकर्ता द्वारा अचानक उसे रोका नहीं जा सकता।)

91. देखें – ओटरसेन एंड नॉरहेम, आदि उपरि–टिप्पणी 1

92. सामान्य टिप्पणी सं. 20, नन–डिस्क्रिमिनेसन इन इकोनोमिक, सोशल एंड कल्चरल राइट्स (आले. 2 पैरा, 2 इंटरनेशनल कोवेनैंट ऑन इकोनोमिक, सोशल एंड कल्चरल राइट्स, एडाप्टेड 2 जुलाई, 1990, यू एन जीएओआर, 45 सत्र, एजेंडा आइटम 3,9, यू एन डोकु. इसी/12/जीसी/20 (2009)

93. कोर्ट कंस्टिट्यूशनल, (सीसी) 2015, सेंटेसिया टी–547/15 (कोल.) (पर्याप्त गुणवत्ता वाली संवैधानिक गारंटी तथा कुछ खास समूह के लिए विशेष सुरक्षा का आशय है विशेष परिस्थितियों में शुल्क की छूट)

94. तुलना करें यूनाइटे स्टेट्स व. वी विंडसर 133 एस.सीटी, 2695, विद एल्ड्रीज व. कनाडा, 3 एस.सी. आर 624 (1997)

95. विश्व स्वास्थ्य संगठन, स्वास्थ्य कार्यदल के लिए मानवाधिकार पर वैश्विक रणनीति 2030 (2016), विश्व स्वास्थ्य संगठन की स्वास्थ्य कार्यदल में स्वास्थ्य तथा विकास के मुद्दे के लिए स्वास्थ्य नियोजन एवं आर्थिक वृद्धि, पर उच्च स्तरीय आयोग (2016)

96. कोर्ट सुप्रिमा (सुप्रीम कोर्ट ऑफ जस्टिस ऑफ द नेशन), 13 मा. 2012, एफ ए आ

97. आर आर व. पोलैंड, इसीएचार, एप्लि. न. 27617/04, (2012) (स्वास्थ्य के पेशेवर अपने विवेक की स्वतंत्रता का प्रयोग करते हुए रोगियों को उन सेवाओं को प्राप्त करने से नहीं रोक सकते जिसके लिए वे हकदार हैं) पी एंड एस व. पोलैंड, इसीएचआरय. एप्लि. सं. 57675/08 (2012) (विवेक को जगाने के खंड हेतु व्यक्तिगत चिकित्सक का उपयोग और रोगियों को दूसरे अस्पताल में नहीं भेजना, तथा विवेक के खंड के अधीन संपूर्ण स्वास्थ्य सुविधाओं के लिए), कोर्ट कंस्टिट्यूशनल, (सीसी) 2009, सेंटेसिया टी–388/2009 (कोल.)

98. लॉ सोसाइटी ऑफ साउथ अफ्रीका एंड अदर्स व. मिनिस्टर ऑफ ट्रांसपोर्ट एंड अदर्स 2011 (1) एसए 400 (सीसी) (साउथ अफ्रीका)

99. कोर्ट कंस्टिट्यूशनल, (सीसी) 2015, सेंटेसिया टी–760/08 उपरि–टिप्पणी 90

100. वही, 6.1

101. मैनुअल जोस सिपेडाएसपिनोजा, ट्रांसक्रिप्ट : सोशल एंड इकोनोमिक राइट्स एंड कोलंबियन कंस्टिट्यूशनल कोर्ट 89, टेक्सास एल रि. 1699, 1702 (2011), देखें – चार्ल्स एफ. साबेल एंड विलियम एच सिमोन, डिस्टैबिलाइजिंग राइट्स : हाऊ पब्लिक लॉ लिटिगेशन सक्सीड्स 117 हैरी एल रि. 1015, 1019 (2004)

102. देखें – एलिसिया एली यामीन, कोर्ट कंस्टिट्यूशनल, (सीसी) 2015, मैक्स प्लैंक, इनसाइक्लोपीडिया ऑफ कंपरेटिव कंस्टिट्यूशनल लॉ (प्रकाश्य 2017) यह भी देखें –– इवेराल्डो लैंप्रिया कोलंबिया राइट्स टू हेल्थ एट द पब्लिक/प्राइवेट डिवाइड, उपरि–टिप्पणी 4

103. ली एस्टाटुटेरिया 1751

104. जुसियो डि एंपारो 1440/2015, जुएज ओक्टावो डि डिट्रियो ने मैटिरिया एडमिनिस्ट्रेटिव एन ला

105. फिलिप मोरिस ब्रौंड सार्ल फिलिप मोरिस प्रोडक्ट्स एस ए एंड अबल हरमैनोस एस. ए. व. ओरिएंटल रिपब्लिक ऑफ उरुग्वे, आईसीएसआईडी केस नं. एआरबी/10/7 (2016)

106. इंडिपेंडेंट एकाउंटेबिलिटी पैनल, 2016: ओल्ड चौलेंजेज, न्यू होप : एकाउंटेबिलिटी फॉर द ग्लोबल स्ट्रेटिजी फॉर वुमन चिल्ड्रेन एंड एडोलसेंट्स हेल्थ 8–12 (2016)

107. लुकास मेयर, सफिसिएंटैरिनिज्म बोथ इंटरनेशनल एंड इंटरजेनेरशनल। ए एब्सोल्यूट पोवर्टी एंड ग्लोबल जस्टिसः एंपिरिकल डेटा, मोरल थ्योरीज, इनिसिएटिव 133 (इल्के मैक, माइकल श्राम, स्टिफन क्लासेन, एंड थॉमस पोगे सं. 2009)

108. देखें – लॉन एल फुलर एं ड केनेथ ई. विंस्टन, द फॉर्म्स एंड लिमिट्स ऑफ एडजुडिकेशन, 92, हार्व. एल रि. 353 (1978)

109. यूनिवर्सल डिक्लरेशन ऑफ ह्यूमन राइट्स, एडॉप्टेड 10 दिसंबर 1948, जी ए रि. 217, (3), यू एन जीएओर, तीसरा सत्र, यू एन डोकु. ए / रिस / 3 / 217; देखें – यामीन, उपरि–टिप्पणी 8, 206–28

• • •

NOTE:

Yamin, Alicia Ely. “Taking the Right to Health Seriously: Implications for Health Systems, Courts, and Achieving Universal Health Coverage.” Human Rights Quarterly 39:2 (2017), 341-368. © 2017 Johns Hopkins University Press. Reprinted with permission of Johns Hopkins University Press.

iM] Qy vkj ik/k 'kkfr e fodfl r gkr g] flrkj] l;Z vkj pUnzek 'kkfr l xfreku jgr g] 'kkfr ge u;h lHkkouk, nrh g

– Mother Teresa

cg|lL—frokn vk|j efgykvk d vfèkdkj

#fpjk xkLokeh•

यह परिसंवाद सांस्कृतिक सापेक्षवाद एवं मानव अधिकारों पर चले आ रहे व वर्तमान में महिला अधिकारों के संदर्भ में चल रहे विवाद को पुनः परखता है। सामूहिक अधिकार व महिलाओं के अधिकार को अधिकतर एक दंद्वात्मक संदर्भ में देखा जाता है। निःसंदेह धार्मिक कट्टरपंथ महिला अधिकारों के पूर्णतया विरोधी है। बहुसांस्कृतिक समाजों में व बहुलवादी एवं धर्मनिर्पेक्ष देशों में अक्सर सामूहिक अधिकरों का महिला अधिकारों की तुलना में पलड़ा भारी रहता है। बहुलवाद की जटिलताओं की जाँच करते हुए, यह उन तरीकों की खोज करता है जिससे कि अल्पसंख्यक आवाजें रचनात्मक संवाद की अग्रिम श्रेणी में सुनी जा सकें ताकि राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर इस विवाद के दोनों समूहों के कुछ शक्तिशाली प्रवक्ता इस विमर्श को न हथिया लें। भारत के समान नागरिक संहिता विवाद ने बहुसंस्कृतिवाद के इन सब पहलुओं को को अपनाया है जिसमें प्रजातंत्रों में निहित औपचारिक और मूल एकता, धर्मनिर्पेक्षता की समस्याएं, धार्मिक अधिकार व महिलाओं के निजी अधिकार पर विवाद शामिल हैं व इस संदर्भ में उदाहरण के रुप में प्रस्तुत किए गए हैं।

विवधता, बहुलवाद, प्रधान तत्व केन्द्रित एक रुपता और असहिष्णुता का बढ़ता हुआ वातावरण पर विवाद वर्तमान समय की भारतीय राजनीति के केन्द्र बिन्दु हैं। हालांकि ज्यादातर चर्चा व्यक्तिगत स्वतंत्रता व सामूहिक अधिकारों के सिमटते हुए स्थान पर हैं, समान अचार संहिता और महिलाओं के लिए निहितार्थ पर नए सिरे से चर्चा चल रही है। रोजमर्रा की चर्चा में इससे जुड़ी कई अवधारणाएं व शब्दावली जैसी कि बहुलवाद, बहुसंस्कृतिवाद, सहनशीलता, कानूनी बहुलवाद, सार्वभौमिकता, मानव अधिकारों की सांस्कृतिक सापेक्षता को अक्सर शिथिल रुप से व एक दूसरे के स्थान पर इस्तेमाल किया जाता है। इन अवधारणाओं का स्पष्ट चित्रण एक सार्थक एवं रचनात्मक संवाद के लिए जरुरी है। वैश्विक स्तर पर एवं भारत के संदर्भ में, बहुलवाद सामूहिक अधिकार खासकर अल्पसंख्यक समुदायों के अधिकर महिलाओं के अधिकार कायम रखने एवं उनमें वृद्धि करने के रास्ते में गंभीर चुनौती प्रस्तुत करते हैं। यह पर्चा बहुसंस्कृतिवाद और स्त्री अधिकार पर हो रहे विमर्श की जाँच करता है और साथ ही उसे समान नागरिक संहिता के संदर्भ में रखकर यह स्थापित करने की चेष्टा करता है कि बहुलवाद और बहुसंस्कृतिवाद महिला अधिकारों के विरोधी नहीं है अगर राष्ट्रीय एवं वैश्विक स्तर पर एक प्रजातांत्रिक राजनैतिक वातावरण हो जो ऐसे रचनात्मक संवाद को प्रोत्साहन दे व अलोचना का सृजन भी हो सके।

सेन इस बात की छानबीन करते हैं कि भारतीय बहुलवाद में अद्वितीय अनोखा

• सहायक आचार्य, वेस्ट बंगाल नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ जूडिशियल सांइसेस, कोलकाता।

क्या है। वह कहते हैं कि भारतीय होने के नाते हमें भाषाई एवं धार्मिक परम्पराएं, विविध सांस्कृतिक एवं दार्शनिक प्रथाएं विरासत में मिली है, सो इसलिए हमें बहुलवाद अनुभव करने के लिए अधिक प्रयास नहीं करने पड़ते। पर संस्कृति की विविधता को सम्मान देने के लिए व संरक्षित करने के लिए भी प्रयास अपेक्षित हैं। वे अपनी बात का विस्तार करते हुए आगे कहते हैं कि हालांकि अनेक प्रकार की संस्कृति, भाषा, रहन–सहन, मानदंड एवं मूल्यों में कुछ अनोखा नहीं है परन्तु विविधता या बहुरुपता का विस्तार है जो अद्वितीय है। उनका मानना है कि धार्मिक वैविध्य व बौद्धिक परम्पराओं का बाहुल्य ऐसा है जो कि विश्व के ज्यादातर देशों के पास नहीं हैं। बहुत से देशों में बहुलवादी नीति लागू है जो कि भारत के पास विशेष तौर पर नहीं है। भारत का धर्म निरपेक्ष संवैधानिक ढाँचा धार्मिक एवं भाषाई अल्पसंख्यकों की रक्षा करता है व उन्हें बढ़ावा देता है– यह सब मौलिक अधिकार का हिस्सा है। उन स्थितियों में जहाँ इस धर्मनिर्पेक्षता पर, अल्पसंख्यकों पर संगठित प्रहार होते हैं व सांस्कृतिक बहुलता को प्रतिस्थापित किया जाता है एक रुपता वादी राज्यतंत्र से एकता और नागरिकता के नाम पर पुख्ता प्रयास होते हैं इन सबको चुनौती देने के, वहां तत्काल रुप से आवश्यकता है बहुलवाद के मूल्यों पर बल देने की। सेन यह मानते हैं कि विविधता के मूल्यांकन को न्यायसंगतता व न्याय की जरुरतों से कोई विशेष छूट नहीं मिली है। वे व्यक्तिगत कानून के पुनर्परिक्षण एवं पूछताछ का स्वागत करते हैं क्योंकि वास्तविक व अंर्तजातीय विषताएँ जो मौजूद हैं उनका प्रभाव निष्पक्षता एवं न्याय पर पड़ता है। इसलिए व्यक्तिगत कानून का महिलाओं के समान अधिकार पर असर पर एक महत्वपूर्ण अन्वेषण आवश्यकध्अनिवार्य है। इस तरह का पुनर्परिक्षण धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांतों को क्षति नहीं पहुंचाता। यहाँ सेन अपना दृष्टिकोण अनेक भारतीय नारीवादी विद्वानों के साथ साझा करते हैं जिन्होंने व्यक्तिगत कानून की पड़ताल पर बल दिया है क्योंकि धर्म पर आधारित कानून स्वाभाविक तौर से, न कि समान रुप से स्त्रियों के लिए अन्यायपूर्ण या अनुचित रहे हैं। पर इसका तात्पर्य एकरुपता और बहुमत प्रभुत्व का राष्ट्रीय अखण्डता की और बढ़ावा– संविधान के अनुच्छेद 44 का आधार समान आचार संहिता राज्य के निति निर्देश तत्व के रुप में (Sen 1993 / 37–46)

अमन का बहुलवाद बोध समता और व्यक्ति विशेष के संदर्भ में है। वे कहते हैं कि हालांकि समानता व व्यक्तिवाद का एक सा मूल औ उन्नति प्रक्षेप पथ रहा है आधुनिकता के आगमन के संदर्भ में, उनका आपसी संबंध नहीं है। जहाँ एक ओर समानता को उन्नत समाजों में स्वीकृत किया गया व उनका महत्वपूर्ण अंग भी माना गया वह अनौपचारिक समानता है न कि वास्तविक समानता जो कि स्वीकृत और मान्य है। समकालीन समाज आक्रामक व्यक्तिवाद से प्रतिभा का तर्क देते हुए सामूहिक असमानता या असमता के दावों को खारिज कर देते हैं। औपचरिक समानता यानि अवसर की समानता का समर्थन किया जाता है व वास्तविक समानता यानि परिणाम की समानता जो कि असमानता की संरचनाओं को संबोधित करती है उससे ज्यादा तूल दिया जाता है। अमन अपना तर्क का सार यह कह कर देते हैं कि सामाजिक

विविधता और विजातिता एक सामाजिक तथ्य है और बहुलवाद इसी की मूल्य मान्यता और उन्मुखीकरण है। उन्नत समाज वैश्वीकरण के युग में विजातीयता अपना रही हैं जहां व्यक्तिगत अधिकारों का आदर्श इन जटिलताओं से जूझने के लिए अपर्याप्त है। इसलिए यह अनिवार्य है कि एक बहुलवादी दृष्टिकोण रखा जाए जो कि समूह के अधिकारों को व्यक्तिगत अधिकारों, समता ओर गैर–भेदभाव से संतुलित करे। (अमन 2002: 46–49)

महाजन एक कदम आगे जाकर बहुलवाद एवं बहुसंस्कृतिवाद के बीच की भिन्नता के बारे में कहते हैं कि अक्सर इन दो शब्दों को एक दूसरे के पर्याय के रुप में इस्तेमाल किया जाता है। सांस्कृतिक बहुलवाद एक बहुत ही पुरातन घटक है जहाँ कई समुदाय एक राज्य में साथ–साथ मौजूद थे। पर महज उपस्थिति या मौजूदगी, सह–अस्तित्व या विभिन्न समुदायों के प्रति सहिष्णुता बहुसंस्कृतिवाद का द्योतक नहीं है, उसका सरोकार समानता से है। लेखक आगे कहता है कि बहुलवाद पूर्व आधुनिक समाजों में भी विद्यमान था, वे समाज जो श्रेणीबद्ध थे। जब तक अनुक्रम या महन्तशाही को विभिन्न व्यापक प्रतिनिधि समूहों के द्वारा स्वीकृत, तब तक सहिष्णुता और कुछ गैर प्रमुख समुदायों की सापेक्ष स्वायत्तता को स्वीकार किया गया। अनेक कानूनी प्रणालियों का अस्तित्व अपने आप में समानता का सूचक नहीं है। प्रजातंत्र समानता व गैर–भेदभाव के सिद्धांतों का अनुमोदन करता है व नागरिक अधिकार व राजनैतिक अधिकार सबको मुहैया कराने की प्रत्याभूति होता है। बहुसंस्कृतवाद सांस्कृतिक समुदायों की समानता का समर्थन करता है। नागरिकों को, विभिन्न सांस्कृतिक समुदायों के सदस्यों को बराबरी का व्यवहार, हक के, अधिकार के तौर पर मिलना चाहिए, न कि किसी दया या कृपा के आधार पर (महाजन 2002: 12–15)

महाजन बहुलवाद व बहुसंस्कृतिवाद के बीच अंतर करते हैं व भारतीय विविधता व बहुलवाद के बीच के फर्क पर जोर देते हैं। उनके लिए विविधता का तात्पर्य राष्ट्र या क्षेत्र के अंदर बहुमुखीयता या विविधा है जो कि प्रशंसा को जाग्रत तो करती है पर आगे कोई प्रतिक्रिया नहीं पैदा करती। उनके लिए बहुलवाद का तात्पर्य है कि नागरिक प्रसंग में राष्ट्र निर्णय करेगा कि 'क्या करना है' और विविधता का तात्पर्य कि बहुलवादी लोकनीति का सृजन एवं रक्षा, इसके साथ–साथ ऐसे कानून और नीतियों की व्याख्या, पूछताछ जिनसे सभी वर्गों के अधिकारों की रक्षा की अपेक्षा है। बहुलवाद के लिए आवश्यक है सार्वजनिक जगहों व संस्थानों की पुनः कल्पना जो कि विविध संस्कृतियों व अभिव्यक्तियों को सम्मिलित कर सकें व उस विविधता की परख, प्रशंसा व सही मूल्यांकन कर सकें।

हाल ही में हुए तर्क व चर्चा राज्य व गैर राज्य कर्मियों द्वारा उत्पन्न की गए बढ़ते हुए असहिष्णुता के माहौल पर केन्द्रित है। यद्यपि सहनशीलता निःसंदेह एक सदगुण है पर सही मायने में सहनशील/असहनशील का क्या अर्थ है? फुरेदी सहिष्णुता के क्लासिकी उदार आदर्श के अर्थ को जाँचते हैं। उनका तर्क यह है कि आज के संदर्भ

में सहनशीलता केवल कोरा शब्दाडम्बर बन के रह गया है, केवल सम्य शिष्टाचार और अपने असल अर्थ यानि आजादी की पुष्टी करने वाले तथ्य के रुप में नहीं। उनका तर्क यह है कि विद्रोही या द्वंदात्मक विचारों को सहन करने के लिए बहुत आत्मविश्वास चाहिए जो कि स्थितियों की सही परख से आता है। सहिष्णुता या सहनशीलता केवल गैर–आलोचनात्मक या अनुशंसा करना नहीं है, बल्कि इसे ज्यादा भागीदारी और वैचारिक पुष्टि की आवश्यकता है (फुरेदी 2011/1) सहिष्णुता का विस्तार का अर्थ है एक जैसे विचारों के लोगों का गठबंधन जो कि आजादी, स्वावलम्बन एवं प्रजातंत्र के मूल्य कायम रख सकें।

फुरेदी की सहिष्णुता पर व्याख्या के स्थानीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मानव अधिकारों के लिए निहितार्थ हैं। क्या सहिष्णुता या सहनशीलता का अर्थ है कि कोई आलोचना नहीं हो सकती या फिर धीमे स्तर पर नहीं हो सकती जब समुदाय मानव अधिकार उल्लघंन में संलग्न हों यह कहकर कि यह सब सांस्कृतिक स्वराज्य और स्वतंत्रता के नाम पर हो रहा है। क्या होता है जब सामुदायिक अधिकार व्यक्तिगत अधिकार पर खासकर स्त्रियों के अधिकारों पर विजयी होते हैं? राष्ट्र जिस प्रकार से इन प्रतिस्पर्धा करते हुए अधिकारों में संतुलन बैठाता है? किस तरह अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार व्यवस्था संचालन करती है या प्रतिक्रिया करती है जब संस्कृति, धर्म, प्रतिष्ठा, मान–सम्मान के नाम पर अत्याचार होते हैं और ये सब राज्य की सीमाओं के अन्दर? एक ओर अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार मानदण्डों को मानने का अर्थ हो राष्ट्रीय संप्रभुता और अंतर्राष्ट्रीय आलोचना एवं हस्तक्षेप का धूमिल होना जो कि मानव अधिकार उल्लघंन हो रहे हैं देश की सीमाओं के अंदर वे न्यायसंगत हैं। दूसरी ओर मानव अधिकारों को अक्सर शक्तिशाली देश एक साधन की तरह इस्तेमाल करते हैं अपने साम्राज्यवादी इरादों का विस्तार करने के लिए। इस स्थिति में हथियारबंद मानवीय हस्तक्षेप उस राज्य व उसकी अर्थव्यवस्था एवं राजनीति को नियंत्रण में लाने का एक तरीका बन जाता है और यह इस दलील पर कि हाशिये पर मुख्य रुप से अल्पसंख्यक या महिलाओं पर हो रहे सामूहिक मानव अधिकार उल्लघंन से बचाने के लिए हमें यह समझने की आवश्यकता है कि समकालीन समय में मानव अधिकारों की रक्षा केवल एक निरपराध, प्रशंसनीय उद्यम नहीं होते व मानव अधिकारों के रक्षकों को भी सावधान रहना चाहिए कि वो गलत उद्देश्य वाली ताकतों के द्वारा इस्तेमाल तो नहीं हो रहे। कहना ना होका कि संस्कृतियाँ केवल एक पत्थर का खंभा नहीं हैं वे जीवाश्म सत्ता नहीं हैं पर वे निरन्तर उद्वविकासी हैं और असंख्य तरीकों से समझी जाती है। सार्वभौमिकता और सांस्कृतिक सापेक्षवाद मानव अधिकारों के संदर्भ में कई पहले उठाए हुए सवालों को संबोधित करता है। व्यक्तिगत बनाम सामूहिक अधिकार के मुद्दे, मानव अधिकार की पश्चिमी अवधारणा, लिंग और संस्कृति का रिश्ता ये सभी इस विवाह में समझाया गया है।

lkoHkkfedrk cuke lkL—frd lki{kokn

सार्वभौमिकता बनाम सांस्कृतिक सापेक्षवाद पर चल रही चर्चा जो कि मानव अधिकार से जुड़ी हुई हैं उसके जड़े मानव विज्ञान संबंधी चर्चाओं में है जो कि इसी मुद्दे पर हैं। औपनिवेशिक मानव विज्ञानियों ने या तो दूसरी संस्कृतियों के मूल्य व रीति रिवाजों को अनोखा ठहराया या फिर उन्हें पूर्णतयः रद्द कर दिया— यह कहकर कि ये "अन्य" किसी संस्कृति के हैं। संस्कृति के इस अन्यीकरण की रुथ बेनेडिक्ट जैसी मानव विज्ञानियों ने की, उनका दावा था कि सभी संस्कृतियाँ नैतिक रुप से वैध हैं। हालाकि यह विचार अपनी संवेदनशील और संस्कृतियों की श्रेष्ठता—हीनता व प्रथाओं की श्रेठता—हीनता की रुढियों को तोड़ने के लिए सराहनीय है परन्तु यह दावे कि सभी मानव प्रथाएँ नैतिक रुप से वैध हैं गहरी समस्या खडी कर देता है जहाँ तक मानव अधिकार उल्लघंन और उन्मूलन का सवाल उठता है—इन सांस्कृतिक प्रथाओं के अंतर्गत ये सवाल उठता है। क्या गुलामी, लिंग पर आधारित भेदभाव, हिंसा, जाति पर आधारित प्रथाएं माफ की जा सकती हैं? क्यों वे एक विशिष्ट सांस्कृतिक धार्मिक स्थान पर टिकी हुई हैं? राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय मानव मानव अधिकार का कानूनू एवं दार्शनिक ढाँचा कडे तौर से संस्कृति को बहाना बनाकर किसी भी प्रकार के अधिकारों का हनन का विरोध करता है। पर सामूहिक अधिकारों और स्वराज्य, आजादी के व्यक्तिगत दावों से जो तनाव उत्पन्न होता है उसका कोई आसान हल नहीं है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर 'बिल ऑफ राइट्स' आई सी सी पी आर और आई सी ई एस सी आर लोगों के आत्म—निर्णय, जनता के स्व—निर्धारण का समर्थन करते हैं। किसी भी प्रकार के भेदभाव जिनमें सांस्कृतिक प्रथाओं पर भेदभाव सम्मिलित हैं, उस पर प्रतिबंध लगाता है।

डॉनेली का सार्वभौमिकता और सांस्कृतिक सापेक्षवाद पर मौलिक कार्य इन्हीं बहुत से प्रसंगों को संबोधित करता है।

सांस्कृतिक सापेक्षवाद के सिद्धांत के अनुसार ऐसी हर विविधताएं बाहरी लोगों के वैध आलोचना से मुक्त है, एक सिद्धांत जो कि साम्प्रदायिक स्वाराज्य व आत्म निर्णय के विचारों द्वारा दृढ़ता से समर्पित है। तथापि नैतिक निर्णय अनिवार्य रुप से सार्वभौमिक होते हैं ऐसा कांत के स्पष्ट आदेशों से पता चलता है और व्यवहारिक बुद्धि और सैद्धांतिक व स्वार्थ निष्ठ कार्य के भेद से भी पता चलता है। और अगर मानव अधिकार में इसलिए बने हैं क्योंकि हम मानव हैं तो भी अपनी परिभाषा से वह सार्वभौमिक ही प्रतीत होते हैं।

उनकी आवधारणा को एक ऐसे सांचे की तरह समझा जा सकता है जिसके चार भाग हैं, ये चार अवस्थाएं हैं— उग्र सार्वभौमिकता (2) उग्र सापेक्षवाद (3) सबल सांस्कृतिक सापेक्षवाद (4) निर्बल सांस्कृतिक सापेक्षवाद। ये अवधारणाएं निर्विवाद नहीं हैं बल्कि कई दृष्टिकोण के एक अबाध क्रम में रखी गयी हैं। पहली अवधारणा के मुताबिक नैतिक अधिकार सार्वभौमिक रुप से वैध हैं क्योंकि वे मानवता के सिद्धांत से

उत्पन्न हुए हैं और संस्कृतियां विपरीत स्थान लेकर यह दावा करता है कि संस्कृति राज करने के नैतिक अधिकार का एकमात्र स्रोत है। इन दोनों उग्र विचारधाराओं के बीच है सबल और निर्बल सापेक्षवाद। सबल सापेक्षवाद संस्कृति को राज करने के नैतिक अधिकार का प्रधान स्रोत मानता है। यह संस्कृति को मानकों, मूल्यों और नियमों का मुख्य स्रोत माना गया है और मानव स्वभाव और अधिकारों की सार्वभौमिकता की समकालिक अभिस्वीकृति भी है। निर्बल सापेक्षवाद संस्कृति को अधिकारों के एक महत्वपूर्ण स्रोत की तरह मानता है, मानव स्वभाव की सापेक्षता मानता है, एक कमजोर सार्वभौमिक स्थान मानता है और स्वीकार करता है कि कुछ मानवीय मानव सार्वभौमिक तौर पर स्वीकृत किए जाते हैं। डॉनेली सार्वभौमिकता और सांस्कृतिक सापेक्षवाद के तनाव का समाधान एक निर्बल सांस्कृतिक सापेक्षावादी स्थान ग्रहण करके सुझाते हैं व मानते हैं कि संस्कृति नैतिक मानदंड स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और सार्वभौमिक मानव अधिकार मानदंड़ो में सीमित विषयांतरकरण भी हो जाते हैं। डॉनेली आगे तर्क करते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार व्यवस्था वह मानक अपनाती है जो सांस्कृतिक अधिकारों के मान्यता होता है और विभिन्न समाजों में विविधता स्वीकार करता है पर ज्यादातर मानव अधिकार सिद्धान्तों पर विविध संस्कृतियों की आपस में सहमति स्थापित करना चाहता है। (डॉनैली 1984/400–419) मानक व्यवस्था तंत्र जैसै संधि, सम्मेलन, वाचाएँ बनाने की प्रक्रिया में तनाव रहता है जिसका सबूत है वार्ताओं के कई दौर जिनसे कोशिश की जाती है कि भाषा, अधिकारों की प्राथमिकता, घोषणाओं और आरक्षण से अधिकारों के न्यूनतम लोगों तक पहुँचा जा सके। डॉनेली व कई और विद्वान इस बात पर सहमत हैं कि सांस्कृतिक विविधता होते हुए भी समकालीन भूमंडलीकृत विश्व जिसमें अंदरूनी सूत्रों और बाहरी सूत्रों में कोई विशेष अंतर नहीं है सार्वभौमिक रुप से सैद्धांतिक तौर पर कुछ प्रथाओं का खंडन करते हैं जैसे कि गुलामी, जाति के तौर पर भेदभाव और कुछ अधिकारों पर सहमत हैं जैसे कि यातनाओं का निषेध, निष्पक्ष सुनवाई आदि (डॉनेली 1984/400–419)

डॉनेली की त्रिसूत्री योजना जिसमें धारणाओं, अवधारणाओं व कार्यान्वयन इस प्रकार से दिया गया है कि दर्शाया जा सके कि क्या सार्वभौमिक है और क्या सापेक्ष– दोनों ही सार्वभौमिक मानव अधिकारों के दायरे में–इस अवधारणा का मूल्यांकन व आलोचन गुडहार्ट द्वारा किया गया है। वे डॉनेली के काम का मूल्यांकन करते हुए कहते हैं कि मानव अधिकारों की अवधारणाएं काफी सबल सार्वभौमिकता दर्शाती हैं और अवधारणाओं और कार्यान्वयन के स्तर पर बढता हुआ सापेक्षवाद। गुडहार्ट के मुताबिक डॉनेली की यह निर्बल सांस्कृतिक सापेक्षवादी नजरिया उन्हीं के कई सूक्ष्म विश्लेषण और सवालों को अस्पष्ट करता है। हालांकि यह पर्चा गुडहार्ट की आलोचना का समीक्षण नहीं करता परन्तु उनके दिए गए सुझावों पर गौर करता है जिससे मानव अधिकार के सार्वभौमिक और सापेक्षवादी दावों पर विवाद होता है। उनका मानना है कि यह कभी न खत्म होने वाला विवाद निरर्थक है और मानव अधिकारों को सार्वभौमिक

या नैतिक कारण देना भी। गुडहॉर्ट मानव अधिकारों के विश्व स्तर पर अपनाए जाने के लिए व्यवहारिक तरीके सुझाते हैं।

वे इस बात पर बल देते है कि किस प्रकार सामाजिक आंदोलन और मानव अधिकारों के रक्षक उनकी वाक पटुता का सहारा लेकर दावों की रणनीति तैयार करते हैं। भाषा जैसे जैसे और सम्मिलित बनती जाती है मानव अधिकार किसी भी प्रकार के उत्पीड़न और प्रभुत्व फिर चाहे वो सरकारी हो या गैर सरकारी उनसे लड़ने का औजार बन जाती है इसलिए व्यापक वैश्विक अपील धारण कर लेती है। उत्पीड़न से लड़ने की मानव अधिकारों की क्षमता एवं योग्यता मानवीय गरिमा को बढ़ाने का काम करती है और अपनी वैधता एक बड़े पैमाने पर पुष्ट करने का काम भी करती है।

lkL—frd lki{kokn ,o efgykvk ds vfèkdkj

महिलाओं के मानवधिकार ये परिभाषिक पद है जिसके दो पृथक फिर भी संबंधित अर्थ हैं। पहला, इसका अर्थ है अधिकारों की श्रेणी जो राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं पर लागू होते हैं। दोनों स्तरों पर एक सामान्य, लिंग निष्पेक्ष अधिकारों का लागू होना संभव है। इनमें शुमार हैं औपचारिक अधिकार, गैर–भेदभाव और व्यक्तिगत स्वतंत्रता अनुभव करने का अधिकार जो कि मौलिक अधिकार (भाग III) भारतीय संविधान में लिखे गये हैं और भी नागरिक, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार जो कि बिल ऑफ राइट्स में समाहित हैं– जैसे कि UDHR, ICCPR, ICESCR- दूसरा, महिलाओं के अधिकार का अर्थ है औपचारिक अधिकारों से आगे जाकर एक स्त्रीवादी दृष्टिकोण से मानव अधिकारों का पुनर्गठन करना। मानव अधिकारों की एक महत्वपूर्ण स्त्रीवादी आलोचना यह है कि यह निजी/व्यक्तिवाद और सार्वजनिक विरोधाभास पर टिका हुआ है। एक लम्बे अरसे तक मानव अधिकारों का आह्वान किया जाता था। व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा के लिए–जब निजी स्वतंत्रता का हनन होता था राज्य या सरकारी अधिकारियों द्वारा यातनाओं के विरुद्ध अधिकार या जीवन का अधिकार का मूल दरअसल पुरुषों के उत्पीड़न उनके मानव अधिकार का उल्लघंन पर आधारित हैं। ऐसा सार्वजनिक स्तर पर हुआ था। घर की सीमाओं के अंदर घरेलू हिंसा इसी प्रकार कि शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और यौन उत्पीड़न उत्पन्न करती है पर ये यातना के विरुद्ध अधिकारों की श्रेणी में नहीं आ पाते क्योंकि ये गैर राज्य सरकारी लोगों द्वारा एक निजी परिवेश में किए जाते हैं। महिलाओं के अधिकार उल्लघंन के अनुभव अधिकार परिवार या समुदाय के निजी दायरे में होते हैं जो कि राज्य सरकारी न होकर व्यक्ति विशेष का द्वारा होता है इसलिए राज्य सरकार की पहचान में नहीं आता। नारीवादी अधिकारों के सिद्धांतों में चिन्हित हैं (1) मानव अधिकारों के दार्शनिक मूलों की जाँच (2) सभी प्रथाओं एवं लागू करने के तंत्रों का मूल्यांकन (3) स्त्रियों के अनुभवजन्य नजरिए से नागरिक, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों का मूल्यांकन।

विशदीकरण की परम्परा पर आधारित मानव अधिकारों का उदार आधार अक्सर एक पाश्चात्य अवधारणा पर आधारित समझा जाता है जिसका केन्द्र व्यक्तिवाद है, स्वराज्य है। विरोधात्मक आदर्शों के दावे और विरोधी दावे– ऐसी अवधारणाएं हैं जिनकी गूंज गैर–पाश्चात्य समाजों में नहीं सुनाई देती क्योंकि यह सामूहिक संबंद्ध गहरे हैं और विवादों को सुलझाने के लिए कठिनाईयां और प्रतिरोध हैं राजनैतिक और कानूनी प्रणालियों के मार्ग पर। नारीवादी विद्वान जैसे चिनकिन चार्लस्वर्थ, फिलिपस, कुमारास्वामी सभी सूक्ष्म तर्क देते हैं कि स्त्रियों के लिए मानव अधिकार का प्रचार एवं रक्षा कई कारणों के लिए मुश्किल है। मानव अधिकार का सार्वजनिक क्षेत्र है जिसमें परिचालन में कई चुनौतियाँ आती हैं जैसे कि कमजोर कार्यान्वयन तंत्र जिनमें कम राशि कोष होता है, मानव संसाधनों की कमी होती है और महिलाओं के अधिकारों को मानव अधिकारों के व्यापक ढाँचे की मुख्य धारा में लाने का प्रयास कम होता है। फिर भी ये विद्वान इस बात पर बल देते हैं कि महिलाओं के मानवाधिकार प्राप्ति में एक बड़ी बाधा है उनका वैचारिक तौर पर स्वीकृत न होना। कुमारस्वामी सही तर्क देती हैं कि बहुत से देशों में, खासकर दक्षिण एशियाई देशों में महिलाओं के अधिकारों की गूंज बहुत कम सुनाई पड़ती है। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि हम 'प्राच्य जाल' की कल्पना में फंस जाएं जो यह कहती है कि प्रगतिशील पश्चिम जो कि मुक्त, स्वायत्त, तर्कसंगत घटक है वो राज्य की संस्थाओं तक पहुँचने के काबिल है और पिछड़ा हुआ पूर्व 'अन्य' है जो कई समूहों के सम्मान की रक्षा नहीं करना जिनमें महिलाएं भी शामिल हैं। इससे विपरीत तर्क जो कि सांस्कृतिक सापेक्षवाद के नाम पर किया जाता है कि पूर्वी संस्कृतियाँ ज्यादा विकसित हैं वे संघों, समूहों का ज्यादा प्रमुखता देते हैं इसलिए सामूहिक और सम्मिलित संस्कृतियां हैं, कम स्वयं केन्द्रित हैं क्योंकि विरोधात्म अधिकारों के दावे करने के बजाय दोनों के कर्तव्य अच्छी तरह परिभाषित हैं सामाजिक व्यवस्था में। ये दोनों ही दृष्टिकोण बहुत हानिकारक है महिलाओं के अधिकार रक्षा की दिशा में (कुक 1994:40)

अधिकतर दोनों राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बहुसंस्कृतिवाद को स्त्री अधिकारों का विरोधी समझा जा रहा है। कई बार धार्मिक व सांस्कृतिक अधिकारों के रक्षा करते हुए अधिकार क्षेत्र व अंतर्राष्ट्रीय कानून व्यवस्था महिला अधिकारों के विपरीत प्रतीत होते हैं। हालाकि फिलीप्स का कहना है कि बहुसंस्कृतिवाद और नारीवाद प्रकृतिक सहयोगी हैं क्योंकि दोनों ही सत्ता के पदानुक्रम को चुनौती देते हैं और हाशिये पर लोगों के लिए प्रधानता के दावे करते हैं और दोनों ही समानता के सिद्धांतों की सरल मान्यतों और औपचारिक उदारवाद को चुनौती देते हैं। सूजन औकिन के अनुसार इन संघर्षों ने अब अलग रास्ते ले लिए हैं और नारीवादी आलोचकों ने बार–बार यह दोहराया है कि बहुसंस्कृतिवाद के प्रचार की कीमत महिला मानवाधिकार ने चुकाई है। (फिलिप्स 2010:2), यह केवल यूरोप, यूके व अमरीका के संदर्भ में नहीं, बल्कि भारत के संदर्भ में भी सच है।

समान नागरिक संहिता पर जो चर्चा है वह बार–बार इस ओर संकेत करती है कि अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा करने का अर्थ यह है कि महिलाओं के प्रति असमान्तर और भेदभाव वाली प्रथाएं समर्पित हो रही हैं और एक सर्वधर्मसम्भाव राज्य जो कि समानता के मौलिक अधिकार का समर्थक है और गैर भेदभाव का भी उसकी एक नैतिक जिम्मेदारी है सभी नागरिकों के लिए एक समान संहिता तैयार करने की चाहे वे किसी भी धर्म या जाति से संबंध रखते हों। फिलिप्स इस बात की चेतावनी देते हैं। वे कहते हैं कि सांस्कृतिक रुढ़ियाँ, इस्लाम का डर, अल्पसंख्यकों से खतरा महसूस करने का अहसास और सांस्कृतिक अंतरों को उजागर करने का प्रयास बहुलवाद और विविधता को बनाए रखने में, बढ़ाने में और उनको अपनाने के रास्ते में खतरा हैं। कुछ स्वार्थी ताकतें आलगाववाद का प्रयोग करके महिलाओं के अधिकारों को बढ़ावा देने के बजाय उन्हें क्षति पहुंचाती हैं। जैसे कि देखा गया UCC चर्चा में, 90 के दशक से, नारीवादी विद्वानों के वैध दावों को हिन्दु कट्टरपंथियों ने अपना लिया। जैसा कि सेन कहते हैं, निजी कानूनों की पड़ताल में कुछ फायदे तो हैं ही जैसा कि शाहबानो विवाद ने बहुत साफ दर्शाया पर उसी को एक हथियार कि तरह से इस्तेमाल करके सामाजिक और राजनैतिक वातावरण को विषाक्त किया गया, 'हिन्दु प्रभुत्व' मुस्लिम 'पिछड़ा वर्ग' को स्थापित किया गया। हाल ही में हो रहे असहिष्णुता के लगातार संगठित प्रयास, गुंडागर्दी, हिंसा ऐसे धूमिल अतीत का डरा देने वाला सूचक है। इन परिस्थितियों में जहाँ प्रजातंत्र और बहुलवाद को खतरा है, महिला अधिकारों की दिशा में बढ़ते प्रयास फिर से छीन लिए जाएंगे। बहुसंस्कृतिवाद बनाम स्त्रियों के अधिकार पर विवाद या चर्चा पश्चिम में हो रही ऐसी ही चर्चा की अनुगूंज है। फिर भी हमें ये लगता है कि यह समस्या भारत में कम पैमाने पर है। हमारी बहुलवादी प्रथाएं और संवैधानिक ढांचा यह निश्चित करता है कि नागरिकों को एक बहुसांस्कृतिक राज्य में समरुपी शक्तियों द्वारा खतरा न हो परन्तु भारत को भी इन बातों से जूझना नहीं पड़ता है जैसे सिर के पहनावे, बुरखे, पगड़ियों जो कि पश्चिमी देशों को अक्सर जिसका सामना करना पड़ता है। नागरिक समाज की प्रतिक्रिया व विरोध कई बातों में झलकता है जैसे कि सांस्कृतिक प्रयासों व रुढ़ियाँ जिनका उदाहरण मिलता है बाल विवाह व जबरजस्ती किए गए विवाह, पारिवारिक सम्मान व प्रतिष्ठा के लिए की गई हत्या, खाप पंचायतों के फैसले और नैतिक रुप से न्याय देने की प्रक्रिया यहाँ बहुत प्रयलन में हैं। यह भी माना जाता है कि यह विरोध शहरी इलाकों में ज्यादा होता है, ग्रामीण इलाकों में कम, ये भी कि अंग्रेजी मीडिया में ज्यादा होता है और क्षेत्रीय मीडिया में कम और महिलाओं के प्रति हिंसा में दोनों की प्रतिक्रिया भी भिन्न होती है। इन में से हर एक घटना भारतीय समाज में फैले इस परिवर्तन को रेखांकित करती है, और विडम्बना यह है कि इसमें भी समाज में गहरी विविधता का परिचय मिलता है जो कि उग्र राष्ट्रवादी समरुपी ताकतें नहीं दबा सकतीं। राज्य सरकार इनमें से कई मामलों में सक्रिय रुप से कार्य करती है (जैसे कि बाल विवाह एक महत्वपूर्ण समस्या है, हालांकि अभी भी लड़कियों की विवाह की औसत उम्र 15 साल है) जबकि दूसरे मामलों में जैसे कि पारिवारिक सम्मान के

लिए हत्या या सामुदायिक फैसलों के मामलों में राज्य दखल नहीं देता जबकि उसे अपराधियों के दंडित करने पर मजबूर न किया जाए। हालांकि सरकार की प्रतिक्रिया कभी जल्द कभी देर से होती है यह भी सच है कि संस्कृति और प्रथाओं को कानूनी तौर पर नहीं उकेरा जा सकता (हालाकि सामाजिक और राजनैतिक तौर पर ऐसा होता है) और न ही इससे लिंग पर आधारित हिंसा या मानव अधिकार उल्लघंन को उचित ठहराया जा सकता है। UCC लाभ पर जो चर्चा है वह महत्वपूर्ण है क्योंकि वह भेदभाव करने वाली रीतियों खासकर मुस्लिम अल्पसंख्यकों के जीवन से संबंधित है जैसे कि निकाह, तलाक, गोद लेना, रखरखाव आदि। मैं नागरिक एवं अपराधिक विधि की सीमाएं अलग कर रही हूँ यह तर्क देते हुए कि हालाकि संस्कृति और धर्म को कानूनी तौर पर लिंग पर आधारित भेदभाव करने वाली प्रथाओं में इस्तेमाल किया जाता है पर इसको लिंग पर आधारित हिंसा को उचित ठहराने के लिए इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। हाँ, यह भी सच है कि भेदभाव और हिंसा में कोई बहुत ही बड़ा फासला या फर्क नहीं है, वे एक प्रकार की अविरल धारा हैं और इसलिए किसी भी प्रकार के भेदभाव के लिए सांस्कृतिक औचित्य स्थापित करना, जिसमें लिंग पर आधारित भेदभाव को लगातार विरोध व आलोचना की आवश्यकता है न सिर्फ इसलिए कि वह हिंसा को जन्म देती है पर इसलिए कि दोनों व्यवहारिक धरातल पर जुड़ी हुई हैं।

हालांकि लिंग पर आधारित समता प्रजातंत्र एवं समरुपता का द्योतक है व प्रशंनीय है, पर महिला अधिकारों को एक ऐसे चिन्ह के रुप में उपयोग करना जिससे कई समाज व समुदाय रुढ़ीवादी एवं पिछले हुए दिखें व दूसरे आधुनिक व बेहतर–यह समस्या का कारण है।

ऐसा सांस्कृतिक रुप धारण करना अलग–अलग संस्कृतियों के बीच के फासले को दूर करके उन्हें एक समाज व एक राष्ट्र के रुप में स्थापित करता है। वह संस्कृति को पत्थर के एक स्थूल खंभे की तरह दर्शाता है, इस बात पर ध्यान नहीं देता कि संस्कृतियाँ स्थूल नहीं होती, उनमें झरझरपन होता है और चर्चा और विवाद के लिए स्थान होता है और महिलाओं एवं पुरुषों की अनुकूल पसंद इस बात पर भी निर्भर करती है कि किन बहुलवादी संदर्भों में उनका पालन पोषण हुआ है। यह सुझाव भी है कि उदार प्रजातंत्रों में बहुलसंख्यक समूहों के लोग केवल प्रभावित होते हैं संस्कृति से बल्कि वह उनके भविष्य को आकार नहीं देती है, और ऐसा इसलिए है क्योंकि वे विचारशील व्यक्ति विशेष हैं जिनमें स्वतंत्रत विचार की शक्ति है और ऐसी संस्कृतियाँ अलग–अलग विचार सुनने व समझने में ज्यादा सक्षम हैं। उनमें सहिष्णुता है। विपक्ष में अल्पसंख्यकों को तर्क संगत राज्यतंत्र समझा जाता है जो अपनी संस्कृति और धर्म के द्वारा निष्क्रिय रुप से बने हैं (फिलिप्स 2010:1–30) कोई भी विरोधी विचारधारा या संघर्ष या विवाद या चर्चा जो कि समुदायों के भीतर हों उन सबकी अवहेलना करती है ऐसी बहुसंख्यक विचारधारा। परम्परा और आधुनिकता का विरोधाभास और अधिक्रम दोनों ओर के फासले कम करने की राह में प्रयासों को निष्फल कर देता है।

विद्वानों और कार्यकर्ताओं ने लंबे समय तक विचार–विमर्श किया है कि किस प्रकार संधियां बनाई जा सकें जिनसे मानव अधिकारों की रक्षा हो सके। सवाल यह उठता है कि कौन वैध तरीके से विरोध करेगा व लिंग पर आधारित भेदभाव व हिंसा जो समुदाय में होती है उसे संबोधित करेगा? क्या 'बाहरी' आलोचना की अवहेलना की जाएगी क्योंकि वह समुदाय के बाहर के लोगों द्वारा की गई है? समुदाय के भीतर विरोधी स्वर किस हद तक सुने जाते हैं व अपनाए जाते हैं? क्या समुदाय उन विरोधी समुदाय सदस्यों को व उनकी राय को तूल नहीं देती क्योंकि वे लंबे समय से चली आ रही प्रथाओं का समर्थन नहीं कर रहे हैं। 'बाहरी' आलोचना का इस प्रकार का खंडन अल्पसंख्यक समूह के द्वारा सूचक है कि वह समरुपता के इस माहौल में अपनी सांस्कृतिक पहचान बनाए रखने के लिए ऐसा करते हैं। उनका कहना ये है कि ऐसी प्रथाओं का खंडन वे लोग करते हैं जो अल्पसंख्यक संस्कृति से अनभिज्ञ हैं। जबकि यह सच है कि बाहरी आलोचक सांस्कृतिक प्रथाओं को उनके सही रुप में न पहचान पाते हैं पर समुदाय के भीतर के लोगों का विरोध भी मुश्किल खड़ी करता है क्योंकि जो एक प्रथा विशेष से पीड़ित हैं वे उसका असमान अधिकार स्वरुप न जान पाते हैं। (फिलिप्स 2010:31) सबसे जरुरी बात यह है कि, यह चर्चा दोनों समूहों के प्रवक्ताओं के बीच होती है जो कि अक्सर वयोवृद्ध पुरुष होते हैं जिनके विचार रुढ़ीवादी होते हैं व पित्रात्मक पक्षपात के सहित। समुदाय के भीतर जो युवा व कम सशक्त युवतियाँ हैं उनकी आवाज को शांत कर दिया जाता है, इस दलील पर कि वह समुदाय की वास्तविक प्रतिनिधि नहीं हैं।

अब्दुल्लाही अन नईम और बहुत से नारीवादी विद्वान इस उलझन से बाहर आने के रास्ते सुझाते हैं। नईम सम्मान संबंधी अपराधों की चर्चाओं को सामुदायिक सम्भाषण की संज्ञा देते हैं। हालाकि वे इन अपराधों की भर्त्सना नहीं करते पर वे इन पर प्रतिबंध लगाने के तरीकों पर गौर करते हैं। वह कहते हैं कि समुदाय के बीच इन मुद्दों पर संवाद होना चाहिए व विभिन्न समुदायों के बीच में आपस में संवाद होना चाहिए ताकि अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार के मानक और पुष्ट हो सकें। (कुक 1994:174) यह एक मुश्किल प्रक्रिया है रुढ़ीवादी संदर्भों में, पर एक निरंतर संवाद हो लिंग भेद को खत्म करने में और समानता लाने में तो बहुसांस्कृतिक प्रजातंत्रों में बहुत ही सकारात्मक तरीके देखे जा सकते हैं। और जैसा कि नारीवादी विद्वान कहते हैं कि अल्पसंख्यकों में जो अल्पसंख्यक हैं उनकी आवाज को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। समुदाय के भीतर जो उभरती विरोधी आवाजे, विचारधारा एंव मत हैं वे भी सार्वजनिक स्थान पर सामने आने चाहिएं जिससे कि उनकी सांस्कृतिक तौर पर दीवार की छवि भंग हो और समुदायों में बहुलता आए। जैसा कि UCC परिचर्चा जो भारत में हुई, उसने दर्शाया कि बजाय इसके कि नेताओं, वकीलों, समुदायों के प्रवक्ताओं के घिसे–पिटे विवादों को दोहराने के, जो तर्क कम सुने जाते हैं उन्हें सामने लाया जाय। मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड के सदस्यों व मौलवियों को सुनने के बजाय, मीडिया को अखिल भारतीय मुस्लिम महिला पर्सनल लॉ बोर्ड की सदस्यों को सामने लाना चाहिए और तीन

तलाक, बाल–विवाह, महिलाओं की शिक्षा आदि पर उनके विचार मुख्यधारा से फर्क हैं। पहचाननुमा राजनीति का शिकार बनने से बेहतर है कि सांस्कृतिक विविधता को अपनाया जाए व अलग–अलग संस्कृतियों के प्रतिनिधि मिल कर लिंग पर आधारित हिंसा जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों का कोई निदान निकालें। महिलाएं अपने लिंग से तो जुड़ी ही हैं साथ ही में अन्य कई सामाजिक इकाइयां भी उन्हें जोड़ती हैं जैसे जाति, धर्म, प्रांत, उम्र आदि। यह पहचान हो जाने पर एवं यह ज्ञात होने पर कि अलग–अलग प्रांतो व अनुभवों के कारण भी महिलाओं के प्रति हिंसा व्यापक है और इसलिए मानव अधिकार अभियान व अध्ययन सक्षम बनते हैं और बहुसंस्कृतिवाद को स्वीकार करते हैं और यह भी कि कोई भी संस्कृति/प्रथा/धर्म एक अटूट सत्ता नहीं है, यह भी मानते हैं कि कई प्रकार की परिस्थितियां व कारण के कारण मानवीय व्यवहार विकसित होता है व उनका भेदभाव के प्रति नजरिया पनपता है, यह स्थापित करते हैं कि महिलाएं फिर चाहे वे किसी भी संस्कृति की क्यों न हों, वे वैश्विक स्तर पर भेदभाव व हिंसा का शिकार हैं और इस कारण से मानव होने के नाते हममें वे परिवर्तन लाने की क्षमता लाते हैं जिससे कि हम पहचान राजनीति 'हम' और 'वा' का शिकार न बनकर सर्वहित में कार्य करें। यह संवाद और नीति क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर समानता की दिशा में आंदोलनों को प्रेरित करेगी।

• • •

lk{kkRdkj

कार्य करने से पहले सोचना बुद्धिमानी, कार्य करते हुए सोचना सतर्कता
और कार्य करने के बाद सोचना मूर्खता

– अज्ञात

jk"V fuek.k gr cfu;knh f'k{kk 0;oLFkk e vkeypy ifjoru dh vko';drk

#def.k cuth•
vuokn% vfer dekj lko••

ÁLrkouk

भारत में शिक्षा एक मौलिक अधिकार है। संविधान (छियासीवां संशोधन) अधिनियम, 2002 ने भारत के संविधान में अंतः स्थापित अनुच्छेद 21(क) मौलिक अधिकार के रूप में छह से चौदह वर्ष के आयु समूह में सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान करता है साथ ही, सरकारी स्कूल सभी बच्चों को मुफ्त शिक्षा उपलब्ध करायेंगे और स्कूलों का प्रबंधन स्कूल प्रबंध समितियों (एस.एम.सी.) द्वारा किया जायेगा। निजी स्कूल न्यूनतम 25 प्रतिशत बच्चों को बिना किसी शुल्क के नामांकित करेंगे। निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा (आर.टी.ई.) अधिनियम, 2009 के अनुसार संतोषजनक और एकसमान गुणवत्ता वाली पूर्णकालिक प्रांरभिक शिक्षा प्रत्येक बच्चे का अधिकार है।

ऐसे में हमने प्रसिद्ध शिक्षाविद् तथा ÁFke ,tdds'ku Qkm.M'ku की मुख्य कार्यकारी अधिकारी डॉ. रुकमणि बनर्जी से भारतीय शिक्षा व्यवस्था के विभिन्न आयामों के संबंध में बातचीत करने की कोशिश की है। पेश है उनसे हुई बातचीत के कुछ अंशः–

Á'u% D;k vkidk ,slk Árhr ugh gkrk fd xjhch ,o vf'k{kk dk dkj.k gh lekt e vlekurk dk pØ lfn;k ls tkjh g\ Hkkjr d ifjÁ{; e tgk jkVh] diMk vkj edku dh cfu;knh t:jr Hkh lcdk ugh fey ikrh ogk ÁkFkfed f'k{kk dk gj ,d rd igpkuk dgk rd lHko g\ vkidh nf"V e vktknh d lkr n'kd ckn gekj n'k dh f'k{kk 0;oLFkk e D;k cnyko vk, g

mÙkj% पिछले सात दशकों में, भारत की शिक्षा व्यवस्था खासकर स्कूली शिक्षा के क्षेत्र में संतोषजनक एवं महत्त्वपूर्ण बदलाव आए हैं। आज, देश के हर गांव में प्राथमिक विद्यालय खुल चुके हैं। छः से चौदह वर्ष की उम्र के 96 प्रतिशत से ज्यादा बच्चों का स्कूल में दाखिला हो चुका है। हमारे यहां एक कानून है जो कम से कम प्राथमिक स्तर तक सभी बच्चों के लिए मुफ्त शिक्षा की गारंटी देता है। भारत शत–प्रतिशत

• मुख्य कार्यकारी अधिकारी, प्रथम एजुकेशन फाउंडेशन

•• अनुवादक, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

नामांकन एवं स्कूली शिक्षा प्रावधान के नज़दीक पहुंच चुका है। भारत जैसे विशाल एवं विविधतापूर्ण देश के लिए, यह एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धी कही जा सकती है।

स्कूली शिक्षा में आश्चर्यजनक वृद्धि के कई कारक हैं। एक तरफ, सरकार लगातार शिक्षा व्यवस्था में सुधार कर रही है वहीं दूसरी तरफ, माता–पिता एवं अभिभावकों की मानसिकता में बदलाव हुआ है। आज गरीब से गरीब माता–पिता एवं परिवारवालों को यह पता है कि शिक्षा के बिना, जिन्दगी में कोई उपलब्धी हासिल नहीं की जा सकती। आपूर्ति की ओर से देखें तो, बढ़ती पूंजी एवं आधारभूत संरचना के साथ–साथ शिक्षा की बढ़ती मांग ने आज हमें इस मुकाम पर पहुंचाया है। भारत ने अपने अनुभव से यह दिखा दिया है कि "सभी के लिए शिक्षा" की परिकल्पना सच की जा सकती है। भारत में शिक्षा को गरीबी एवं निरक्षरता के चक्र को तोड़ने का ज़रिया समझा जाता है। व्यापक स्तर पर "सभी के लिए शिक्षा" एक राष्ट्रीय प्राथमिकता है। परिवारिक एवं सामुदायिक स्तर पर भी शिक्षा के प्रति समयानुसार विचारधारा में बदलाव आया है। एक बार जब स्कूली शिक्षा सुगम और प्राप्य हो तथा आर्थिक रूप से भी भार न हो, तब प्रत्येक परिवार को अपने बच्चों को विद्यालय भेजना आसान हो जाता है।

Á'u% vkid vu|lkj] Hkkjr dh f'k{kk 0;oLFkk esa dkSu&dkSu ls egÙoiw.kZ cnyko fd, tkus dh vko';drk g

mÙkj% बच्चों का विद्यालय न जाना एक विचारणीय समस्या है। भारत जैसा विशाल देश इस समस्या से निज़ात पाने में सफल हो पाया है। हालांकि, एक अन्य मुद्दा भी है। मेरा अपना अनुभव, जिसकी शुरूआत बीस वर्ष पहले; प्रथम के साथ, मुम्बई की झुग्गियों में हुई। उस वक्त भी, हम एक अलग एवं लुप्त समस्या महसूस कर सकते थे। हम ऐसे बच्चों के सम्पर्क में आए जो कई वर्षों से विद्यालय में प्रवेश के बावजूद, अक्षर पढ़ना या सामान्य अंकगणित जैसी बुनियादी योग्यता भी नहीं थी। अतः वे विद्यालय में पढ़ने के बाद भी कुछ सीख नहीं पा रहे थे। यदि वे सीख भी रहे थे, कक्षा आधारित पाठ्यक्रम की आवश्यकता को पूरा नहीं कर पा रहे थे। पाठ्यपुस्तक से शिक्षाग्रहण, जैसा कि साधारणतया भारतीय विद्यालयों में किया जाता है, कक्षा में पढ़ाने का मुख्य उद्देश्य रहता है। इस तरह की शिक्षा ज्यादा से ज्यादा बच्चों को पीछे ढकेल देती है। हमारे विद्यालयों में इस तरह के बच्चों व माता–पिता के मदद का कोई ज़रिया मौजूद नहीं है; उनमें से कईयों के पास पर्याप्त शिक्षा न होने के कारण, शिक्षा ग्रहण न कर पाने की समस्या के बारे में कुछ करने या तरक़ीब ढूंढने में असमर्थ हैं। लेकिन विद्यालय में दाखिला न कर पाने की समस्या से भिन्न, शिक्षा ग्रहण न कर पाने का मुद्दा अपेक्षाकृत दृष्यमान है। आज बहुत कम बच्चे स्कूली शिक्षा के दायरे से बाहर हैं पर ज्यादातर बच्चे स्कूली शिक्षा के दायरे में भी पीछे छूट रहे हैं।

सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा का क्या अर्थ है, अवश्य ही सभी के लिए शिक्षा की आवश्यकता है लेकिन सभी को विद्यावान बनाए बिना यह निराधार है।

"सभी के लिए शिक्षा" को "सभी को विद्यावान बनाने" की दिशा में परिवर्तन हेतु शिक्षा व्यवस्था में कई बदलाव की आवश्यकता है। आज, कुछ ही विद्यार्थी विद्यालय की शिक्षा पूरी कर महाविद्यालय एवं उच्च शिक्षा ग्रहण कर पाते हैं। बाकी विद्यार्थी शिक्षा व्यवस्था को आधे रास्ते छोड़ जाते हैं। हालांकि, त्रासदी यह है कि हमारी शिक्षा व्यवस्था ने उन्हें इस काबिल नहीं बनाया है कि या तो वे अपने अध्ययन को जारी रखें या फिर अन्य अवसरों की तलाश करें। एक विकासशील राष्ट्र के रूप में बच्चों के भविष्य को एक सही मुकाम तक पहुंचाने के लिए काफी मनन–चिंतन करने की आवश्यकता है।

Á'u% f'k{kk e vkj{k.k Á.kkyh dgk rd mi;kxh ,o ÁHkkoh g\

mÙkj% मूल प्रश्न यह है कि क्या हम सच में उनकी मदद करना चाहते हैं जो ऐतिहासिक दृष्टि उपेक्षित रहे हैं? उनके उत्थान हेतु क्या किया जाए और कब किया जाए, यह एक बड़ा प्रश्न है? उच्च शिक्षा के संदर्भ में, ऐसे प्रश्नों का उत्तर देना मुश्किल होगा, लेकिन जहां तक प्राथमिक शिक्षा का सवाल है, इसका उत्तर काफी आसान होगा। हमें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि एक ग्यारह–बारह वर्ष के बच्चे को बुनियादी निपुणता जैसे समझकर पढ़ना, सामान्य गणितीय कौशलता तथा जटिल प्रश्नों को पूछने एवं अपने शब्दों में उत्तर देने की दक्षता प्राप्त हो जाए। विद्यालय से बाहर का माहौल काफी तेजी से बदल रहा है। हमारा कार्य यह सुनिश्चित करना है कि हमारे बच्चे इस बदलते माहौल का सामना आत्मविश्वास, जिज्ञासा एवं सामर्थ्य से कर सकें। कुछ बच्चों को इस मुकाम तक लाने में अधिक मदद की आवश्यकता होती है तथा यह कार्य बाल्यवस्था से ही शुरू किया जा सकता है। एक बच्चे का युवावस्था में प्रवेश करने तक उसके भीतर प्रतिस्पर्धात्मक माहौल में ढलने का सामर्थ्य विकसित हो जाना चाहिए।

Á'u% vkiu nfu;k d fofHkUu n'kk e dke fd;k gA D;k Hkkjr dh f'k{kk vkj ekuo vfèkdkjk dh pukfr;k nlj n'kk l fHkUu g\

mÙkj% दूसरे देश भी ऐसी चुनौतियों का सामना करते हैं। ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक कमियां हर जगह हैं। लेकिन सभी देशों में भिन्नता इस बात को लेकर है कि कैसे उनके देशवाासियों के मध्य मूलभूत अधिकार एवं अवसर को सुनिश्चित किया जा सके। उदाहरण के रूप में हमने अभी इस बात को लेकर चर्चा की कि शिक्षा का अधिकार केवल डिग्री प्राप्त करने तक ही सीमित नहीं बल्कि ज्ञान अर्जन का माध्यम भी है। शिक्षा प्रदान करना एक संसाधन, निवेश एवं आधारभूत संरचना का विषय है। एक भवन का निर्माण कर विद्यालय बना देने पर, यह मान लिया जाता है कि आस–पास के बच्चे उसमें पढ़ने जाएंगे ही, किन्तु सर्वांगीण विकास के लिए हमें और अधिक प्रयास करने की आवश्यकता है। दूसरे देशों में, इन प्रतिबद्धताओं को विभिन्न रूपों में देखा जा सकता है। उदाहरण के रूप में, कई देशों में, प्रवासियों या दूसरी भाषा बोलने वालों

की मदद के लिए शिक्षा व्यवस्था की मूल धारा में प्रवेश कराने हेतु कई विशेष प्रावधान हैं। वहां विशेष शिक्षकों की नियुक्ति की जाती है जो पढ़ाई में कमज़ोर बच्चों की पहचान कर उन्हें विद्यालय में ही विशेष सहायता प्रदान करते हैं। बाल्यावस्था में उचित देख–भाल एवं सटीक दिशानिर्देश, जीवन में आने वाली दुर्गमताओं व कठिनाइयों का सामना करने के लिए सामर्थ्यवान बनाती हैं।

• • •

l eh{kk

T;knk ck> y:dj pyu: oky: vDlj Mc tkr: g]
fQj pkg: og vfHkeku dk gk ;k lkeku dk

– अज्ञात

gj vk;ke ij iuh utj

vkdk{kk ikjs dkf'ko•

मानव तस्करी पूरे विश्व में एक जैसी चिंता का विषय है। जितने ज्यादा कानून बनते जाते हैं, पेचीदगियां उतनी ही बढ़ती जाती हैं। कानून एक रास्ता बंद करता है तो उसे तोड़ने वाले उसके दस उपाय निकाल लेते हैं। फिर भी कानून बनने से एक फायदा यह होता है कि लोगों के मन में भय तो समाता ही है। यह पुस्तक भी ऐसे कई पहलूओं को समेटते हुए मानव तस्करी पर तफसील से बात करती है। चूंकि यह इतना बड़ा विषय है कि इस पर कई बार लिखा जा चुका और कई माध्यमों, मंचों से इस पर लगातार बात होती रहती है। लेकिन वीरेन्द्र मिश्रा की पुस्तक इस मायनों में अलग है कि दस खंडों में विभक्त हर खंड अपने आप में संपूर्ण जानकारी देता है। यह पुस्तक न सिर्फ कानून पर बात करती है बल्कि उसकी खामियों के साथ–साथ सामाजिक नीति और उसकी न्याय प्रणाली पर भी नजर डालती है। यही वह विषय है जिन पर ज्यादा से ज्यादा बात की जानी चाहिए ताकि मानव तस्करी जैसा शब्द अतीत हो जाए। यह लिखना अतिरेक लग सकता है लेकिन मानव तस्करी को खत्म करने के लिए हर उस पहलू पर गौर करना होगा जो इसके पक्ष में छोटा सा ही सही लेकिन असावधानी का कोना छोड़ देती है।

लेखक मानव तस्करी के विभिन्न घटक से बात शुरू करते हुए उसे मानव द्वारा मानवों पर अत्याचार तक ले जाते हैं। किताब में वह एक के बाद एक विषय को उठाते हैं और उनका क्रम इतना सोचा समझा गया है कि पुस्तक में कहीं भी तारतम्यता नहीं टूटती। यही इस पुस्तक की खासियत है। सबसे महत्वपूर्ण अध्याय पीड़ितों को कमजोर बनाने वाला दबाव तंत्र और कानून के प्रवर्तन में खामियां है। दरअसल इसमें लेखक बताते हैं कि कैसे कानून का शिकंजा तस्करों के लिए छोटा पड़ जाता है। वह सिर्फ भाषणों और कोरे ज्ञान से आगे बढ़ कर इसके संदर्भ में बताता भी हैं कि इसका निवारण क्या है। यह इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि क्या हो रहा है यह कई माध्यमों से पाठक समय–समय पर जानते रहते हैं। लेकिन इसके उपाय या निवारण क्या है यह कम ही उपलब्ध है। वह विस्तार से बताते हैं कि वैचारिक शिक्षा का अभाव कैसे तस्करी

• सहायक संपादक, आउटलुक (हिन्दी), दिल्ली

की फसल को लहलहा रहा है। वह बहुत साफगोई से लिखते हैं, 'अधिकांश कानून प्रवर्तन कर्मचारियों को वास्तविक अर्थों में मानव तस्करी के बारे में सूचना या जानकारी नहीं है। मानव तस्करी किन घटकों से मिलकर बनी है, इसके बारे में उनके विचार अस्पष्ट हैं। पुलिस संगठन में उच्चाधिकारियों को भी जिसमें मुख्य रूप से कांस्टेबल, हेड कांस्टेबल, सहायक उप निरीक्षक, उप–निरीक्षक और निरीक्षक (भारतीय पुलिस पदानुक्रम के अनुसार) आते हैं, मानव तस्करी के बारे में शायद ही कोई जानकारी है। यह इसलिए भी जरूरी है कि भारत इस संकट से लंबे समय से जूझ रहा है। लेकिन इस अध्याय को पढ़ कर लगता है कि इस समस्या को सुलझाने में ही हमें अभी लंबा रास्ता तय करना है, समस्या खत्म होने की बात तो फिर बहुत बाद में आएगी। मानव तस्करी एक संगठित अपराध है और इससे निपटने के लिए तैयारी भी बहुत कड़ी करनी होगी।

बच्चे और महिलाएं मानव तस्करों के निशाने पर हमेशा से रहते आए हैं। अब इस कड़ी में ऐसे लोग भी जुड़ गए हैं जो जरूरतमंद हैं और जिन्हें काम या पैसों की तलाश है। हालांकि ये लोग अंग तस्करी के गिरोह के निशाने पर रहते हैं लेकिन मानव तस्करों की नजर इन पर भी रहती है और अवैध रूप से अंगों का व्यापार भी इसके पीछे फल फूल रहा है। लेकिन इस पर अभी विस्तृत चर्चा होना बाकी है। इस पक्ष पर भी पुस्तक में रोशनी डाली जा सकती थी।

मानव तस्करी समाज की खराब सोच का ही नतीजा है। जो स्वार्थी है वह सोच भी नहीं पाता कि वह अपने जैसे ही किसी मनुष्य को नरक में धकेल रहा है। बाल श्रमिक, भीख मांगने वाले बच्चे और जबरन वेश्यावृत्ति में धकेल दी गई लड़कियां इंसान हो कर भी उस जीवन से महरूम रहते हैं। कुछ बच्चे या युवतियां समाज के इसी रवैये के कारण चाह कर भी मुख्यधारा में शामिल नहीं हो पाते हैं। सरकार या पुलिस का काम सिर्फ छापा मार कर इन बच्चों या लड़कियों को तस्करों से मुक्त कराने से ज्यादा पुर्नवास होना चाहिए। लेकिन दुर्भाग्य से भारत में पुर्नवास की योजनाएं और काम दोनों ही बहुत धीमे स्तर पर चलते हैं। कई बार लड़कियों को मौका मिलने पर भी वे इस दलदल से बाहर नहीं आना चाहतीं क्योंकि बाहर की दुनिया में उनके लिए कोई जगह नहीं बचती। यह भेदभाव और असुरक्षित भविष्य भी मानव तस्करी के आंकड़ों को कम नहीं होने देता। अपने एक अध्याय में लेखक इसकी भी चर्चा करते हैं। वह समाज की दोहरी मानसिकता और लिंग भेद पर भी रोशनी डालते हैं। उनका मानना है, 'भेदभाव के साथ–साथ लिंग के आधार पर उत्पीड़न एक–दूसरे से संबद्ध है, जिसमें वंश, जाति और जन्म स्थान के आधार पर उत्पीड़न तथा स्थानांतरितों के खिलाफ भेदभाव भी शामिल है और इसी वजह से मानव तस्करी के प्रति संवेदनशीलता बढ़ गई है।'

मानव तस्करी के कई रूप हैं और यह कई स्तरों पर होती है। लेकिन पुस्तक के अनुसार यूएनओडीसी की रिपोर्ट बताती है कि मानव तस्करी का सबसे सामान्य रूप

(70 फीसदी) यौन शोषण है। इससे भी भयावह तथ्य यह है कि तस्करों के लिंग के बारे में जानकारी प्रदान करने वाले कुल देशों के 30 प्रतिशत में, महिला तस्करों की संख्या सबसे ज्यादा है। संसार के कुछ हिस्सों में महिलाओं द्वारा महिलाओं की तस्करी एक सामान्य प्रथा है। यानी सोच कर देखिए कि महिलाएं ही पुरुषों को अत्याचार का वह सामान मुहैया करती हैं। इस अध्याय में अंतरराष्ट्रीय आंकड़े और उदाहरण हैं जो रोंगटे खड़े कर देते हैं। निर्धन माता–पिता द्वारा अपने ही बच्चों को बेच देना, गांव की लड़कियों को रिश्तेदारों द्वारा ही तस्करों को सौंप देना, विवाह के नाम पर धोखे से लड़की का यौन शोषण करना ऐसे ही उदाहरण हैं।

यह पुस्तक कानूनी और सामाजिक पेचिदगियों के साथ–साथ धर्म, परंपरा और विश्वास पर भी बात करती है। यह इसलिए जरूरी है क्योंकि भारत में अंध श्रद्धा के मामले हर दिन आते हैं। कुछ मसले परंपरा के अंतर्गत चले आते हैं और समाज में कई ऐसे विश्वास व्याप्त हैं कि यदि ऐसा न किया गया तो वैसा होगा या ऐसा हो गया तो यह हो जाएगा। यानी कल्पना की दुनिया भारतवासियों के लिए बहुत बड़ी है। यह समीक्षा पढ़ते वक्त पाठकों को लग सकता है कि आखिर धर्म या परंपरा मानव तस्करी में क्या भूमिका निभाते होंगे। लेकिन यदि कोई पाठक पुस्तक के इस अध्याय को पढ़े तो एक नई दृष्टि जरूर विकसित करेगा। देखा जाए तो इस दृष्टिकोण से लिखा तो गया है लेकिन वह इतने टुकड़ों में है कि इसका खतरा भांपना मुश्किल होता है। परंपरागत रूप से देह व्यापार में धकेलने की कुरीति सिर्फ भारत ही नहीं बल्कि विश्व में अन्य स्थानों पर भी है। चमक–दमक लिए विकसित देश कनाडा में भी! वैसे भारत के कुछ भागों में ऐसी जातियां या समुदाय हैं जो वेश्यावृत्ति की प्रथा का पालन कर रहे हैं। साल 2017 में यह बात किसी पाठक को खटक सकती है लेकिन सच्चाई यही है कि बेड़िया और बाजार समुदाय में यह प्रथा आज भी है। समाज में यह सहज स्वीकृति है और देह व्यापार के पेशे को प्रत्सोहित किया जाता है।

मानव तस्करी एक बड़ी समस्या है इसे कौन नहीं जानता है। लेकिन इसका समाधान खोजना जरूरी है। इस समस्या को खत्म करने के लिए काम क्या किया जा रहा है यह जानना जरूरी है। लेखक एक अध्याय में विभिन्न एजेंसियों के साथ काम करने के तरीके पर प्रकाश डालते हैं और इस अध्याय से समझ आता है कि सभी स्तर पर काम करने वाली, निगरानी करने वाली, पकड़ने वाली तमाम संस्थाओं का कदम से कदम मिला कर चलना क्यों जरूरी है। यह सबसे जरूरी कड़ी है जिस पर अनिवार्य रूप से अमल होना चाहिए। वह विभिन्न एजेंसियों के साथ मिलकर काम करने की जरूरत पर तो बल देते ही हैं, साथ ही अनुभवजनित उदाहरण भी देते हैं। मानव तस्करी के वैश्विक आंकड़े डराने के लिए पर्याप्त हैं। लेखक कहीं भी सीधे तौर पर नहीं लिखते मगर उनका हर शब्द इस आंकड़े को कम करने की चिंता दर्शाता है। पुस्तक के अंत में वह न्यायालय के न्याय से बड़ी अदालत समाज की बात करते हैं।

पुस्तक के अंतिम अध्याय नैतिक न्याय की प्रतीक्षा में वह खूबसूरती से समाज की मूल अवधारणा यानी लड़कियों के प्रति अलग दृष्टिकोण की व्याख्या करते हैं। मानवाधिकारों और मानव तस्करी पर यह एक महत्वपूर्ण पुस्तक है जिसे जरूर पढ़ा जाना चाहिए।

पुस्तक का नाम : ekuo rLdjh l: l?k"k

लेखक : वीरेन्द्र मिश्रा

प्रकाशक : सेज प्रकाशन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली

मूल्य : रु. 275 /–

• • •

l|'kklu dh l|)kfrdh

vke fu'py•

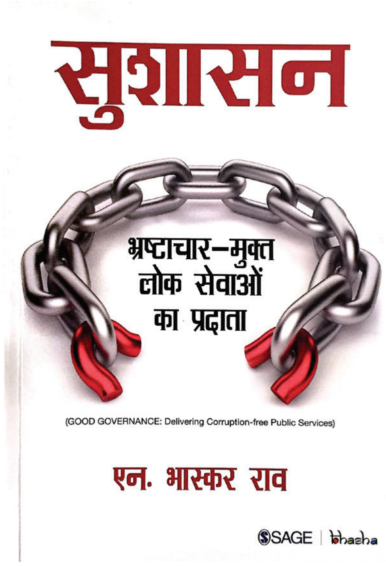

पिछले कुछ दशकों से सुशासन यानी गुड गवर्नेंस पर बात होती रही है। सार्वजनिक सेवाओं में केवल उचित मानव संसाधन एवं चुस्त दुरुस्त प्रशासन की ही दरकार नही होती बलकि पग पग पर उसमें लोक के प्रति सदाशयता झलकनी चाहिए। आज का युग तकनीकी का युग है। पारदर्शिता का युग है। इंटरनेट और सोशल मीडिया के अनेक प्लेटफार्मों के इस युग में जरा सी बात एक विकराल रूप धारण कर लेती है और प्रशासक या जन सेवक की छवि पर इसका विपरीत असर पडता है। ऐसे में सुशासन जो कि मानव संसाधन या प्रशासनिक बल को संस्कारित करने का एक अचूक मंत्र है, के बारे में एन भास्कर राव ने एक बहुत ही विशद पुस्तक लिखी है जो भ्रष्टाचार मुक्त प्रशासन के समस्त पहलुओं पर प्रकाश डालती है।

एन भास्कर राव सेंटर फार मीडिया स्टडीज के संस्थापक अध्यक्ष तथा साथ ही मार्केटिंग एंड डेवलपमेंट रिसर्च एसोसियेट्स जो एक प्रतिष्ठित बाजार अनुसंधान एवं पूर्वानुमान संस्थान है, के भी संस्थापक अध्यक्ष हैं। सामाजिक शोधों में अग्रणी एवं 40 से भी अधिक वर्षों की शोधवृत्ति से संपन्न एक ख्यात जनसंचार विशेषज्ञ भी हैं। जनसंचार के सामाजिक प्रभावों एवं बाजार संप्रेषण एवं नियंत्रित जन संचार पर कई बेहतरीन पुस्तकें लिखने वाले भास्कर राव ने सुशासन पर इतनी विशद पुस्तक लिखी है तो इसके पीछे उनके स्वतंत्रता सेनानी पिता और धर्मनिरपेक्ष मां का लालन पालन है जिनके साहचर्य एवं मूल्यवती शिक्षा दीक्षा ने भास्कर राव को नैतिक रूप से संवलित किया और सादगी से जीवनयापन का संस्कार दिया है।

सुशासन यानी गुड गवर्नेंस की फलश्रुति यह है पूरी प्रशासनिक मशीनरी ऐसी हो कि कहीं भ्रष्टाचार का नामोनिशान न हो । हालांकि यह एक आदर्शवाद या यूटोपिया ही होगा ऐसा सोचना किन्तु सुशासन का अर्थ ही ही भ्रष्टाचारमुक्त व्यवस्था जहां जनता को नियमानुकूल सेवाएं मिल सके। उसे न्याय मिल सके। उसकी शिकायतों की सुनवाई हो। सेवाओं के बदले किसी प्रकार के उत्कोच का सहारा न लेना पड़े। नेताओं

• प्रसिद्ध समीक्षक एवं लेखक, दिल्ली

के सार्वजनिक जीवन में स्वच्छता हो। प्रशासनिक प्रमुखों पदाधिकारियों के स्तर पर किसी प्रकार के भ्रष्टाचार की गुंजाइश न हो। पर यह हो पाता तो शायद ऐसी पुस्तकं लिखने की आवश्यकता ही न पडती। हम देखते हैं कि सतर्कता आयोग द्वारा विहित प्रक्रिया के अनुसार हर साल एक खास दिन सभी प्रशासनिक कार्यालयों में सतर्कता दिवस का आयोजन होता है, लोग स्वच्छ और मर्यादित नैतिक जीवन की शपथ लेते है कि वे अपनेस्तर पर समस्त राजकीय मर्यादाओं का पालन करेंगे पर सचमुच क्या ऐसा होता है। शायद यही वजह है कि एक प्रधानमंत्री ने यह बात सार्वजनिक रूप से स्वीकार की थी कि सरकार की ओर से व्यय किए जाने वाले एक रुपयेमें से केवल 20 पैसा ही जमीनी स्तर पर उन लोगों तक पहुंच पाता है जिनकेलिए वह अभीष्ट है।

पिछले कुछ दशकों में विश्व के तमाम देशों में भ्रष्टाचार ने पांव पसारे हैं। कोई भी देश इससे अछूता नही है। भ्रष्टाचार, नंबर दो के धंधे और छल फरेब के उदाहरण आए दिन देखे जाते हैं। गांधी ने जिस तरह अपने जीवन की मर्यादाओं से एक सादा जीवन रहन सहन प्रतिपादित किया था क्या आज वह देखनेमें आता है। उनका जीवन भी केवल उदाहरण भर के लिए है। सीएजी की रिपोर्टें जब आती हैं तो खुलासा होता है कि नियमों की अनदेखी कर किस तरह से जनता के पैसों का दुरुपयोग किया गया है। बर्लिन की भ्रष्टाचार आकलन एवं निगरानी संस्था ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल ने भ्रष्टाचार के मामले में दुनिया के कुल 176 देशों की सूची में भारत को 79वें स्थान पर रखा है। एशिया महाद्वीप में भ्रष्टाचार के मामले में भारत प्रथम स्थान पर है. एक सर्वे में पाया गया है कि भारत में रिश्वतखोरी की दर 69 प्रतिशत है। फोर्ब्स द्वारा किए गए 18 महीने लंबे सर्वे में भारत को टॉप 5 देशों में पहला स्थान दिया गया है। फोर्ब्स ने यह सर्वे मार्च, 2017 में प्रकाशित किया था जिसके अनुसार भारत के अलावा वियतनाम, पाकिस्तान, थाईलैंड और म्यांमार भी फोर्ब्स की टॉप 5 भ्रष्ट एशियाई देशों की सूची में शामिल हैं। भारत में स्कूल, अस्पताल, पुलिस, पहचान पत्र और जनोपयोगी सुविधाओं के मामले जुड़े सर्वे में भाग लेने वाले लगभग आधे लोगों ने कहा कि उन्होंने कभी न कभी रिश्वत दी है। भ्रष्टाचार रोकने की दिशा में सिविल सोसाइटी व मीडिया की भूमिका प्रमुख होती है तथापि आज मीडिया को भी कई मामलों में ईमानदार नही कहा जा सकता। प्रायः बड़े घराने प्रिंट या इलेक्ट्रानिक मीडिया में इसीलिए आते हैं कि उनका दबदबा बना रहे। वे चौनलों का भी मुंह बंद करने के लिए उनके सबसे बड़े विज्ञापनदाता साबित होते हैं जो टीवी चैनलों के लिए ऑक्सीजन है। आज प्रेस व मीडिया पर भी वैसे आतंककारी दबाव न होकर ऐसे सूक्ष्म दबाव हैं जो दिखाई तो नही पड़ते पर भ्रष्टाचारी ताकतों को पालने पोसने में अहम भूमिका निभाते हैं।

ऐसे हालात में भ्रष्टाचार पर काबू पाने के लिए हर व्यवस्था अपने तरीके ईजाद करती है जिससे जनता का भरोसा सत्ता में बना रहे। पुस्तक की भूमिका लिखते हुए भारत के पूर्व मुख्य सतर्कता आयुक्त एन विट्ठल ने लिखा है, डॉ भास्कर राव द्वारा प्रस्तुत यह पुस्तक हमारे देश में सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार के मुद्दे पर जारी रहने वाली

बहस में एक महत्वपूर्ण योगदान है। वे खुद कहते हैं कि उन्होने सरकार में 42 वर्षों से भी अधिक का समय व्यतीत किया है इसलिए स्वाभाविक रूप से उनके दृष्टिकोण पक्षपातपूर्ण हो सकते हैं पर वे यह भी कहते हैं कि ''यदि ईमानदार लोक सेवक सुशासन लाए जाने तथा भ्रष्टाचार को समाप्त किए जाने के प्रयास में पांचवें स्तंभ बन जाएं तो भ्रष्टाचार पर रोक लगाए जाने में वे बाहरी एजेंसियों की तुलना में कहीं बेहतर योग्यता वाले लोग सिद्ध हो सकेंगे। उन्होंने अन्ना हजारे के आंदोलन का उदाहरण दिया कि '' निम्नतम से लेकर शीर्ष नौकरशाही व संगठनों को लोकपाल के दायरे में लाए जाने की मांग करने वाला प्रस्ताव हो सकता है प्रथमद्रष्टया एक अव्यावहारिक प्रस्ताव हो पर यह तो सिद्ध किया ही कि जनता की राजनीतिक इच्छा की अभिव्यक्ति सरकार को अपने कदम पीछे हटाने व सुधारात्मक कदम अपनाने पर बाध्य कर देती है।''

श्री एन भास्कर राव ने यह पुस्तक सात सुविस्तृत अध्यायों में लिखी है। परिचय, भ्रष्टाचार के संबंध में धारणाएं, भ्रष्टाचार तथा गरीब, भ्रष्टाचार नियंत्रण : एक रणनीतिक दृष्टिकोण, सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी, मीडिया, धारणाएं तथा भ्रष्टाचार एवं सुशासन हेतु एक रणनीति तथा एक अभियान।

भ्रष्टाचार के संबंध में अवधारणाओं का अध्ययन करते हुए भास्कर राव ने पाया है कि यह अफवाह नही है। सुनी सुनाई बात नही है। लोग या तो अनुभवों के आधार पर कोई धारणा बनाते हैं या खुद उस व्यवस्था से होकर गुजरते हुए। इंडिया करप्शन सर्वे के आकलन के अनुसार तमाम ऐसे गरीब परिवारों से संपर्क किया गया तो उनका कहना था कि आवश्यक सार्वजनिक सेवाएं उन्हें केवल इसलिए नही मिल सकीं क्योंकि वे घूस दे पाने में सक्षम नहीं थे। इस अध्ययन में दलालों के वर्चस्व का अध्ययन भी शामिल है कि कैसे वे सार्वजनिक कार्यालयों में बैठे निर्णय लिए जाने हेतु उत्तरदायी लोगों के एजेंट के रूप में कार्य करते हैं अथवा अंदर बैठे अधिकारियों के संपर्क के रूप में कार्य करते हैं। किसी भी सेवा प्रदाता (ड्राइविंग लाइसेंस, पासपोर्ट आफिस, रजिस्ट्री कार्यालय, विकास प्राधिकरण, विकास खंड, बिजली विभाग, न्यायालय, रेल रिजर्वेशन कार्यालय, बैंक, कचहरी आदि) कार्यालय के इर्द गिर्द दलालों का एक घेरा होता है। इस कवच को तोड़ना बहुत असंभव सा हो चला है। कुछ दिन सफाई अभियान चलता है फिर वही ढाक के तीन पात। एक सच्चे प्रशासन को दलालों के इस घेरे को तोड़ना ही होगा तभी भ्रष्टाचारमुक्त सेवाएं दी जा सकती हैं। कई मामलों में आनलाइन सेवाओं के चलते यह संभव हुआ है कि अब कई स्तरों पर ई गवर्नेंस, कम्प्यूटरीकरण, सूचना का अधिकार अधिनियम, के कारण घूस आदि देने से जनता को मुक्ति मिली है पर अभी भी बहुत साफ सुथरा तंत्र विकसित नहीं हुआ है। इस मामले में भास्कर राव एक उपयुक्त शिकायत निवारण तंत्र की स्थापना की बात करते हैं जो किसी भी मामले में त्वरित कार्रवाई करे। इससे भ्रष्टाचार में कमी आ सकेगी। राव यह बात जोर देकर कहते हैं कि शिकायत निवारण में जवाबदेही तय की जानी चाहिए। इस मामले में

मीडिया की सक्रियता व स्टिंग आपरेशन ने भी एक प्रभावी भूमिका अदा की है। इसमें राव ने अनेक सर्वेक्षण तालिकाएं भी प्रस्तुत की है। शिकायत निवारण संबंधी धारणा, घूस देने वाले नागरिकों का प्रतिशत।

भ्रष्टाचार तथा गरीब विषयक अध्याय में उन्होंने भ्रष्टाचार एवं सिविल सोसाइटी, योजना आयोग की पहल, केंद्रीय सतर्कता आयोग की पहल–2010, सूचना का अधिकार, लोक सेवा गारंटी अधिनियम, 2010, मध्यप्रदेश, सिटीजन चार्टर्स, आधार, न्यायपालिका एवं भ्रष्टाचार, राजनीतिक दल एवं उनकी चिंताएं, लोकतंत्र एवं चुनाव आदि पर प्रकाश डाला है। भ्रष्टाचार को मिटाने के लिए सिविल सोसाइटी समूह तो हैं पर वे मात्र दो चार लोगों तक ही सीमित है। ऐसे संगठनों में भी अधिकांश किसी स्थानीय परिस्थिति या घटना तक ही सीमित और तदर्थ एवं अल्पकालिक रहते हैं। मध्यप्रदेश में लोकसेवा गांरटी अधिनियम लाया गया व बिहार में जन प्रतिनिधियों को अपनी संपत्तियों व बैंक डिटेल्स देने के लिए आदेशित किया गया। इसके अलावा बिहार में ही सेवा हेतु अधिकार अधिनियम भी लाया गया परन्तु सेवाओं में कितनी तत्परता या पारदर्शिता आई कहना कठिन है। पर जहां तमाम अधिनियम व उपाय किए गए वहीं नौकरशाही अपने पंजे मजबूत करती गयी है और नागरिकों में निस्सहायता का वातावरण भी सृजित हुआ है। यह भी एक दुखद तथ्य है कि कुछ जगहों के एंटी करप्शन ब्यूरो ने जिन लोगों के विरुद्ध भ्रष्टाचार के आरोप तय पाए, उनमें से 40 प्रतिशत को ही कानूनी तौर पर अभियोजित किया जा सकता था, शेष के विरुद्ध कार्यवाही के लिए अनुमति ही नहीं मिल सकी।

सुशासन आखिर है क्या। भ्रष्टाचार नियंत्रण एक रणनीतिक राजनीतिक दृष्टिकोण के अंतर्गत सुशासन की व्याख्या करते हुए भास्कर राव ने समावेशिता, भ्रष्टाचार मुक्त क्रियान्वयन, जवाबदेही, पारदर्शिता, विश्वसनीयता को गुड गवर्नेंस का महत्वपूर्ण कारक माना है। पर आज आजाद भारत के इतने सालों के बावजूद भ्रष्टाचार पर न तो लगाम लग सकी है न सुशासन स्थापित हो सका है। यहां तक कि पूर्व सतर्कता आयुक्त एन विट्ठल को कहना पड़ा कि शासन एक ऐसी व्यवस्था बन चुका है जो लोकसेवकों को भ्रष्टाचार में संलिप्त होने के लिए प्रोत्साहित करती है। भ्रष्टाचार के निवारण के प्रावधानों का क्या असर पड़ा है, इस संबंध में विचार करते हुए राव कहते हैं कि भ्रष्टाचार से संघर्ष मात्र कानूनों एवं सरकार के द्वारा नहीं किया जा सकता। इसलिए आईपीसी की धारा 161 से 165 व भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1988 के अस्तित्व में आने के बावजूद स्थिति में आमूलचूल सुधार नही आ सका है। निजीकरण के बारे में यह बहस चली कि सार्वजनिक सेवाओं को निजी क्षेत्र में दे दिया जाए तो भ्रष्टाचार कम होगा। दिल्ली व मुंबई में बिद्युत वितरण व्यवस्था निजी क्षेत्र में होने के बाद से निश्चय ही इस सेवा में सुधार हुआ है पर यही बात स्वास्थ्य एवं शिक्षा संबंधी सेवाओं के मामले में नही कही जा सकती जिस पर निजी क्षेत्र का वर्चस्व होने के कारण ये सेवाएं आम आदमी के सामर्थ्य के बाहर हैं।

पांचवां अध्याय सूचना एवं संचार प्रौद्योगियों मीडिया धारणाओं व भ्रष्टाचार के स्वरूप पर बात करता है। भ्रष्टाचार से मुक्ति में दूरसंचार, ई सेवा, बायोमेट्रिक्स प्रणाली, आनलाइन डिस्पोजल को एक बड़ी कामयाबी के रूप में देखा जा सकता है। भ्रष्टाचार पर मीडिया में कवरेज मिलने से इसमें मदद मिल सकती है यदि उस पर भ्रष्टाचारी को नायकत्व न प्रदान किया जाए। छठा अध्याय सार्वजनिक सेवाओं एवं भ्रष्टाचार से संबंधित है। राव ने रोटी मकान रोजगार एवं भ्रष्टाचार पर व्यापक प्रकाश डाला है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली भी शुरु से ही भ्रष्टाचार के घेरे में रही है। राशन की दूकानो का राशन दूकान पर आने के पहले ही बाजार में मंहगे दामों में चला जाता है। दूकान के स्टाक के जांच की कोई व्यवस्था नहीं है। कभी कभार निरीक्षण होने पर भी बमुश्किल वितरक के विरुद्ध कार्रवाई होती है तथा उसका लाइसेंस रद्द किया जाता है। नागरिक आपूर्ति व्यवस्था में तमाम घालमेल है जिस पर यहां विस्तार से बातचीत की गयी है। सार्वजनिक सेवाओं में नरेगा एक प्रमुख कार्यक्रम है जिसमें लगातार सुधार के उपाय किए जाते रहे हैं। यहां भी दलालों का हस्तक्षेप कम नही है। जाब कार्ड प्राप्त करने के लिए, मजदूरी प्राप्त करने के लिए व पंजीकरण के लिए हर स्तर पर कुछ भेंट पूजा करनी होती है। यही हाल बीपीएल परिवार के लिए हाउसिंग के आबंटन का रहा है जिसके लिए कितने ही चक्कर आबंटी को लगाने होते हैं। पुलिस और न्यायिक सेवाएं भी खास तौर पर भारत में बहुत ही भ्रष्टाचार से प्रभावित हैं। यही भ्रष्टाचार न होता तो हिंदी के एक कवि को यह न कहना पड़ता कि

भले जा के जंगल में धूनी रमाना
मगर मेरे बेटे कचहरी न जाना।

कचहरी की महिमा निराली है बेटे
कचहरी वकीलों की थाली है बेटे
पुलिस के लिए छोटी साली है बेटे
यहाँ पैरवी अब दलाली है बेटे

कचहरी ही गुंडों की खेती है बेटे
यही जिन्दगी उनको देती है बेटे
खुले आम कातिल यहाँ घूमते हैं
सिपाही दरोगा चरण चूमते है। (कैलाश गौतम)

यह न्याय प्रक्रिया की हकीकत है कोई देखी सुनी अवधारणा भर नही है। न्याय की प्रक्रिया में उम्र बीत जाती है पीढ़ियां लडते हुए परास्त हो जाती हैं पर समय से न्याय नही मिलता। अस्पताल, स्कूल, विद्युत आपूर्ति सेवा,जलापूर्ति सेवा, नगर पालिकाओं

में व्याप्त भ्रष्टाचार के बारे में क्या कहा जाए। आज भी संपत्ति कर भवन नक्शे को पास कराने, विकास शुल्क अदा करने, संपत्ति कर निर्धाण, जन्म मृत्यु प्रमाणपत्र, अवैध निर्माण, लाइसेंस का नवीनीकरण, भू लेख पंजीकरण, स्वामित्व के हस्तांतरण, बैकिंग सेवाएं जैसे ऋण आदि प्राप्त करने में, आयकर निर्धारण में, अर्थदंड कम किए जाने में – हर काम में या तो पैसा दीजिए या फिर रोज ब रोज लाइन लगाइये – ऐसे हालात आज भी तमाम सुधारों के बावजूद दृष्टव्य हैं।

हर समस्या का कोई न कोई समाधान होता है। भास्कर राव ने सातवें अध्याय में सुशासन हेतु रणनीति एवं अभियान चलाए जाने पर बल दिया है तथा उसके लिए अपने बहुतेरे सुझाव दिए हैं। इसके लिए वे कहते हैं कि कार्यप्रक्रियाओं को सरल बनाया जाए। उपभोक्ता समितियां बनाई जाएं, कुछ सेवाओं के लिए आउटसोर्स व्यवस्था की जाए जिससे त्वरित काम हो, सेवाओं के वितरण में पारदर्शिता लाई जाए, शिकायतों के निवारण का त्वरित तंत्र विकसित किया जाए, सार्वजनिक सुनवाई के लिए लोक अदालतों को सक्रिय किया जाए, सूचना के प्रवाह को कारगर बनाया जाए, इसमें शिक्षाविदों, सिविल सोसाइटी समूहों व मीडिया की भूमिका को कारगर बनाया जाए। अंत में राव ने ऐसे सर्वेक्षणों पर भी नजर डाली है जो यह जताते हैं कि आम तौर पर दलालों का आतंक आज भी है, न्यायपालिका निष्प्रभावी है, इसके लिए राजनीतिज्ञ उत्तरदायी हैं, चुनाव की प्रक्रिया भ्रष्टाचार की जननी बन चुकी है।

इस तरह कहना न होगा कि तमाम क्षेत्रीय सर्वेक्षणों पर आधारित सुशासनरू भ्रष्टाचार मुक्त लोक सेवाओं का प्रदाता– लोक सेवाओं में भ्रष्टाचार के चलन का व्यापक अध्ययन करती है तथा सुशासन यानी गुड गवर्नेंस के क्रियान्वयन के प्रभावी तरीके सुझाती है। पुस्तक के बारे में हम पुनरू एन विट्ठल के इस मत का समर्थन करते हैं कि यह पुस्तक एक ऐसे लेखक द्वारा लिखी गयी है जो जमीनी अध्ययन के साथ साथ मीडिया अध्ययनों के विशेषज्ञ भी हैं तथा ऐसे समय यह पुस्तक आई है जब शासन के साथ साथ वास्तव में सिविल सोसाइटी की भूमिका भ्रष्टाचार निवारण में अहम हो गयी है।

पुस्तक का नाम : l|'kklu % Hk"Vkpkj eqDr yksd lsokvksa dk çnkrk
लेखक : एन. भास्कर राव
प्रकाशक : सेज प्रकाशन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली
मूल्य : रु. 325 /–

• • •

oreku vd e ;kxnku dju oky jpukdkjk dh ir lfgr lph

Jh 'kyUn dekj vfXugk=h ¼vkb-,-,l- lokfuoÙk½
सी–16, एल. पार्क महानगर विस्तार
लखनऊ–226006

d- xhrk lkrkIIkk nodj
अनुसंधान छात्रा, राजनीति शास्त्र विभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महाराष्ट्र)

Jherh Nk;k 'kek] vkb-ih-,l-
उप–महानिरीक्षक,
राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

Jh tkye flg
क्वार्टर नं. 05, रिजर्व पुलिस लाईन,
जैसलमेर–345001

Mk- uehpUn
पुत्र श्री रतन लाल जी
रेलवे स्टेशन रोड़, बिजली बोर्ड के पास,
बिलारा, जोधपुर– 342602 (राजस्थान)

lJh eerk dekjh
शोध छात्रा, समाज कार्य अध्ययन केंद्र,
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय,
वर्धा, पिन–442001 (महाराष्ट्र)

Mk- 'khyUn dekj
86 / 32, सरोजनी देवी लेन,
मकबूलगंज, लखनऊ–226018 (उत्तर प्रदेश)

Mk- 'kHk tk'kh
सहायक प्रोफेसर,
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय,
वर्धा, पिन–442001 (महाराष्ट्र)

Ák- 'kehe eknh
अध्यक्ष, सेंटर फॉर लॉ राइट्स एवं कांसटीट्युशनल गवर्नेंस,
टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, मुंबई– 400088

Ák- lqn'ku oek
आचार्य, विधि विभागाध्यक्ष,
विधि अध्ययन विद्यापीठ, बी.बी.ए.यू., लखनऊ

Jh fur'k dqekj prqonh
एल. एल. एम., विधि विभाग,
विधि अध्ययन विद्यापीठ, बी.बी.ए.यू., लखनऊ

Mk- ,l- ,e- >joky
कुलाधिपति,
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म.प्र.)

M,- vfer dqekj fo'okl
सहायक संपादक,
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय,
वर्धा–442001 (महाराष्ट्र)

Jh fnudj dqekj
4–बी–1, ग्लोरी अपार्टमेंट
तरुण नगर मेन रोड, गुवाहाटी–781005 (असम)

Jh food fd'kkj] vkb-ih-,l-
एल–31, निवेदिता कुंज, सेक्टर–10,
आर.के.पुरम, नई दिल्ली–110022

Ák- jkd'k dekj flg
संकायाध्यक्ष एवं विभागाध्यक्ष,
विधि संकाय, लखनऊ विश्वविद्यालय,
लखनऊ (उत्तर प्रदेश)

Jh idt dekj
सामाजिक कार्यकर्ता
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय,
समाज कार्य विद्यापीठ, ब्लॉक– 15,
मैदान गढ़ी, नई दिल्ली– 110068

lJh vkdk{kk
स्त्री अध्ययन विभाग से संबद्ध
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय,
वर्धा–442001 (महाराष्ट्र)

Mk- ltyk Fkkuoh]
निदेशक, सूरज संस्थान,
33/160, 'सूरज धाम', वरूण पथ,
मानसरोवर, जयपुर, राजस्थान

Jh vujkx ekmh
104, मल्टीस्टोरी बिल्डिंग, नैरोजी कैंपस,
टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, मुंबई– 400088

Jherh Kkuorh /kkdM] vf/koDrk
402, प्रेस्टीज अपार्टमेंट, सहदेव मार्ग,
सी–स्कीम, जयपुर– 302005

Ák- ljkt dekj oek
06, विश्वविद्यालय आवास,
खबड़ा रोड, मुजफ्फरपुर–842001 (बिहार)

Mk- iquhr dqekj
विभागाध्यक्ष,
शोध केन्द्र एवं स्नातकोत्तर राजनीति विज्ञान विभाग,
शासकीय एस.एम.एस. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शिवपुरी म.प्र.

Mk- eatqyrk xxZ
सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग
शासकीय एस.एम.एस. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शिवपुरी, म.प्र.

lqJh dapu ekyk
659 / 12 बी. वृन्दावन उपनगरी,
रायबरेली रोड, लखनऊ (उ0प्र0) 226025

Mk- fMEiy dqekjh
140, श्रीजी नगर, दुर्गापुरा,
जयपुर– 302018 (राजस्थान)

Mk- tksl dkykijk] ,l-t-
निदेशक, ज़ेवियर इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल रिसर्च,
दीघा घाट, पटना– 800011 (बिहार)

Mk- vk'kqrks"k dqekj fo'kky
पुत्र श्री आर. एस. राम
नई पुलिस लाईन चॉक, गांव–दादर,
पोस्ट– अहियापुर, मुज़फ्फरपुर–8432108 (बिहार)

Mk- çfrHkk
आचार्य एवं विभागाध्यक्ष
इतिहास विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय
उदयपुर (राजस्थान)

Mk- ykykjke tkV
सहायक आचार्य, उदयपुर स्कूल ऑफ सोशल वर्क,
जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय,
उदयपुर– 313026 (राजस्थान)

Mk- vfuyk
21, गढ़ मगरी, शोभागपुरा,
उदयपुर–313001 (राजस्थान)

Jherh jtuh xklkbl
SRB 67-D, शिप्रा रिवेरा,
इंदिरापुरम, गजियाबाद, उ0 प्र0– 201010

Jh vf'ouh dqekj
सहायक आचार्य, सत्यवती कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय)
अशोक विहार फेज III, नई दिल्ली–110052

Jherh ljkt tSB
माधव शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय,
लाडनूँ–341306, जिला–नागौर (राज.)

Jherh e/kq dkdfj;k
फ्लैट नं. 1004, लिलियम,
आर 12 सेक्टर, नाहर अमृत शक्ति
चंडीवली, मुम्बई–400072

Jh çkty /kj
जी–22, एन.पी.एल. कॉलोनी,
न्यू राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली – 110060

Jherh y{eh tk;loky vxoky
1/4786, द्वितीय तल, गली नं. 10,
बलबीर नगर एक्सटेंशन,
शाहदरा, दिल्ली– 110032

lqJh vkdk{kk ikjs
सहायक संपादक, आउटलुक ग्रुप,
ए बी –5, सफदरजंग एनक्लेव,
नई दिल्ली – 110029

Jh vke fu'py
द्वारा डॉ0 गायत्री शुक्ल,
जी–1 / 506 ए, उत्तम नगर,
नई दिल्ली – 110059

Jh fo'oukFk Ålkn frokjh
संपादक, दस्तावेज,
बेतियाहाता, गोरखपुर– 273001 (उत्तर प्रदेश)

Mk- jhrkef.k o';
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
गुवाहाटी विश्वविद्यालय, गोपीनाथ बारदोलोई नगर,
जिला– कामरूप (मैट्रो)–781014 (आसाम)

Mk- dekun vk;l
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
केंद्रीय विश्वविद्यालय, गया (बिहार)

Jh euk t d|ekj >k
द्वारा सुरेश मिश्र, दीवानी तकिया,
कटहल बाड़ी, दरभंगा

Jh vfpr
बाँकीपुर हरिसभा,
सब्जीबाग, पटना

Jh mik'k|
डॉ. संतोष जी का मकान,
दीवान मुहल्ला, दुल्ली घाट, पटना

çk- vuUr feJ
विलन्दपुर (डी.आई.जी. आवास के सामने)
गोरखपुर–273001

अनुच्छेद 20.

(1) प्रत्येक व्यक्ति को शान्ति–पूर्ण सभा करने या समिति बनाने की स्वतन्त्रता का अधिकार है।

(2) किसी को भी किसी संस्था का सदस्य बनने के लिए मज़बूर नहीं किया जा सकता।

अनुच्छेद 21.

(1) प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश के शासन में प्रत्यक्ष रूप से या स्वतन्त्र रूप से चुने गए प्रतिनिधियों के जरिए हिस्सा लेने का अधिकार है।

(2) प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश की सरकारी नौकरियों को प्राप्त करने का समान अधिकार है।

(3) सरकार की सत्ता का आधार जनता की इच्छा होगी। इस इच्छा का प्रकटन समय–समय पर और असली चुनावों द्वारा होगा। ये चुनाव सार्वभौम और समान मताधिकार द्वारा होंगे और गुप्त मतदान द्वारा या किसी अन्य समान स्वतन्त्र मतदान पद्धति से कराए जाएंगे।

अनुच्छेद 22. समाज के एक सदस्य के रूप में प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा का अधिकार है और प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के उस स्वतन्त्र विकास तथा गौरव के लिए–जो राष्ट्रीय प्रयत्न या अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग तथा प्रत्येक राज्य के संगठन एवं साधनों के अनुकूल हो–अनिवार्यतः आवश्यक आर्थिक, सामाजिक, और सांस्कृतिक अधिकारों की प्राप्ति का हक है।

अनुच्छेद 23.

(1) प्रत्येक व्यक्ति को काम करने, इच्छानुसार रोजगार के चुनाव, काम की उचित और सुविधाजनक परिस्थितियों को प्राप्त करने और बेकारी से संरक्षण पाने का हक है।

(2) प्रत्येक व्यक्ति को समान कार्य के लिए बिना किसी भेदभाव के समान मज़दूरी पाने का अधिकार है।

(3) प्रत्येक व्यक्ति को जो काम करता है, अधिकार है कि वह इतनी उचित और अनुकूल मजदूरी पाए, जिससे वह अपने लिए और अपने परिवार के लिए ऐसी आजीविका का प्रबन्ध कर सके, जो मानवीय गौरव के योग्य हो तथा आवश्यकता होने पर उसकी पूर्ति अन्य प्रकार के सामाजिक संरक्षणों द्वारा हो सके।

(4) प्रत्येक व्यक्ति को अपने हितों की रक्षा के लिए श्रमजीवी संघ बनाने और उनमें भाग लेने का अधिकार है।

अनुच्छेद 24. प्रत्येक व्यक्ति को विश्राम और अवकाश का अधिकार है। इसके अन्तर्गत काम के घंटों की उचित हदबन्दी और समय–समय पर मज़दूरी सहित छुट्टियां सम्मिलित है।

अनुच्छेद 25.

(1) प्रत्येक व्यक्ति को ऐसे जीवनस्तर को प्राप्त करने का अधिकार है जो उसे और उसके परिवार के स्वास्थ्य एवं कल्याण के लिए पर्याप्त हो। इसके अन्तर्गत खाना, कपड़ा, मकान, चिकित्सा–सम्बन्धी सुविधाएं और आवश्यक सामाजिक सेवाएं सम्मिलित है। सभी को बेकारी, बीमारी, असमर्थता, वैधव्य, बुढापे या अन्य किसी ऐसी परिस्थिति में आजीविका का साधन न होने पर जो उसके काबू के बाहर हो, सुरक्षा का अधिकार प्राप्त है।

(2) जच्चा और बच्चा को खास सहायता और सुविधा का हक है। प्रत्येक बच्चे को चाहे वह विवाहिता माता से जन्मा हो या अविवाहिता से, समान सामाजिक संरक्षण प्राप्त होगा।

अनुच्छेद 26.

(1) प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा का अधिकार है। शिक्षा कम से कम प्रारम्भिक और बुनियादी अवस्थाओं में निःशुल्क होगी। प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य होगी। टेक्निकल, यांत्रिक और पेशों–सम्बन्धी शिक्षा साधारण रूप से प्राप्त होगी और उच्चतर शिक्षा सभी को योग्यता के आधार पर समान रूप से उपलब्ध होगी।

(2) शिक्षा का उद्देश्य होगा मानव व्यक्तित्व का पूर्ण विकास और मानाव अधिकारों तथा बुनियादी स्वतन्त्रताओं के प्रति सम्मान को पुष्टि। शिक्षा द्वारा राष्ट्रों, जातियों अथवा धार्मिक समूहों के बीच आपसी सद्भावना, सहिष्णुता और मैत्री का विकास होगा और शांति बनाए रखने के लिए संयुक्त राष्ट्रों के प्रयत्नों के आगे बढ़ाया जाएगा।

(3) माता–पिता को सबसे पहले इस बात का अधिकार है कि वे चुनाव कर सकें कि किस किस्म की शिक्षा उनके बच्चों को दी जाएगी।

अनुच्छेद 27.

(1) प्रत्येक व्यक्ति को स्वतन्त्रतापूर्वक समाज के सांस्कृतिक जीवन में हिस्सा लेने, कलाओं का आनन्द लेने, तथा वैज्ञानिक उन्नति और उसकी सुविधाओं में भाग लेने का हक है।

(2) प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी ऐसी वैज्ञानिक, साहित्यिक या कलात्मक कृति में उत्पन्न नैतिक और आर्थिक हितों की रक्षा का अधिकार है जिसका रचयिता वह स्वयं हो।

अनुच्छेद 28. प्रत्येक व्यक्ति को ऐसी सामाजिक और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की प्राप्ति का अधिकार है जिसमें इस घोषणा में उल्लिखित अधिकारों और स्वतन्त्रताओं को पूर्णतः प्राप्त किया जा सके।

अनुच्छेद 29.

(1) प्रत्येक व्यक्ति का उसी समाज के प्रति कर्तव्य है जिसमें रहकर उसके व्यक्तित्व का स्वतन्त्र और पूर्ण विकास संभव हो।

(2) अपने अधिकारों और स्वतन्त्रताओं का उपयोग करते हुए प्रत्येक व्यक्ति केवल ऐसी ही सीमाओं द्वारा बद्ध होगा, जो कानून द्वारा निश्चित की जाएंगी और जिनका एकमात्र उद्देश्य दूसरों के अधिकारों और स्वतन्त्रताओं के लिये आदर और समुचित स्वीकृति की प्राप्ति होगा तथा जिनकी आवश्यकता एक प्रजातन्त्रात्मक समाज में नैतिकता, सार्वजनिक व्यवस्था और सामान्य कल्याण की उचित आवश्यकताओं को पूरा करना होगा।

(3) इन अधिकारों और स्वतन्त्रताओं का उपयोग किसी प्रकार से भी संयुक्त राष्ट्रों के सिद्धान्तों और उद्देश्यों के विरुद्ध नहीं किया जायगा।

अनुच्छेद 30. इस घोषणा में उल्लिखित किसी भी बात का यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए जिससे यह प्रतीत हो कि किसी भी राज्य, समूह या व्यक्ति की किसी ऐसे प्रयत्न में संलग्न होने या ऐसा कार्य करने का अधिकार है, जिसका उद्देश्य यहां बताये गए अधिकारों और स्वतन्त्रताओं में किसी का भी विनाश करना हो।

ISSN 0973-7588
मानव अधिकार : नई दिशाएं
राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, भारत
अंक- 14, 2017

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
मानव अधिकार भवन, ब्लॉक - सी,
जी.पी.ओ. कॉम्प्लेक्स, आई.एन.ए., नई दिल्ली- 110023
E-mail : covdnhrc@nic.in, Website : www.nhrc.nic.in